-18

इकाई, दहाई, सैकड़ा

● ●□ ●□□

विमल मित्र

अनुवादक

दिनेश आचार्य

Devash Anchvi

18

इकाई, दहाई, सैकड़ा

●　　●□　　●□□

विमल मित्र

अनुवादक

दिनेश आचार्य

Devansh Archvi

© १९६६
विमल मित्र, कलकत्ता

प्रकाशक
ओम्‌प्रकाश
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-६

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स, दिल्ली-६

द्वितीय आवृत्ति, १९६७

H83
V73I

१२ रुपये ५० पैसे

मन्टू

संसार-यात्रा की सारी जिम्मेदारियों से मुझे छुटकारा देकर तुमने हमेशा मेरी सहायता की है, इसलिए ‘साहब बीबी गुलाम,’ ‘खरीदी कौड़ियों के मोल’ और ‘इकाई, दहाई, सैकड़ा’ की रचना सम्भव हो पायी। मेरी इच्छा है कि इस कृति के साथ तुम्हारा नाम संलग्न रहे।

The time will come when the sun will shine only upon a world of free men who recognise no master except reason, when tyrants and slaves, priests and their stupid or hypocritical tools will no longer exist except in history or on the stage.

—*Marquis de Condorcet*
1743-1794

भूमिका

१९३८ का अगस्त का महीना। यूनिवर्सिटी का घेरा अभी लाँघा ही था। अपने कर्मजीवन की उस शुरूआत के साथ मैं चुपचाप एक निश्चय कर बैठा। निश्चय था—जिस देश में मैं पैदा हुआ हूँ, एक ख़ास समय से शुरू करके जीवन की एक विशेष तारीख़ तक, धारावाहिक रूप से ऐतिहासिक पटभूमि में विभिन्न भागों का एक उपन्यास लिखूँगा। उस समय कलम सशक्त नहीं थी लेकिन जवानी का असीम साहस साथ था। उसी साहस के भरोसे एक दिन 'साहब बीबी गुलाम' लिखना शुरू किया। अपने गुपचुप में किये-निश्चय का पहला भाग। यह उपन्यास १९५३ में पूरा हुआ। पाठकों ने उस उपन्यास को पढ़कर मुझे अगाध स्नेह और कृतज्ञता की डोर में कस लिया लेकिन साहित्य-महारथियों ने उतनी ही गम्भीरता के साथ शरसन्धान शुरू कर दिया। समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलों में कुछ नज़ीरें अभी तक मौजूद हैं। शोधक लोग शायद पता रखते होंगे।

लेकिन इसके बावजूद मैं हतस्वास्थ्य ज़रूर हुआ, हतोद्यम नहीं। 'ख़रीदी कौड़ियों के मोल' इसका सबूत है—भारतीय भाषाओं में सबसे बृहत् ही नहीं, सर्वजन समादृत उपन्यास। सौभाग्य से इस उपन्यास को पढ़कर मेरे पाठकों ने आशातीत समादर से मुझे अभिनन्दित किया और साहित्य-महारथियों ने भी यथारीति अपने कर्तव्य में कोई त्रुटि न रखी! यह नज़ीर भी भविष्य में किसी से छिपी हुई न रहेगी।

लेकिन अब तक मुझे साहित्य-महारथियों की इस मनोवृत्ति का पूर्ण परिचय प्राप्त हो चुका था, इसीलिए अपनी उसी निष्ठा के बूते पर मैंने शुरू किया अपने निश्चय का तीसरा भाग। यह उपन्यास आज इतने दिनों बाद पूरा हुआ है—इस 'इकाई, दहाई, सैकड़ा' के रूप में। अपने पुराने अनुभव से मैं कह सकता हूँ इस पुस्तक के ललाट पर भी वही भाषा खुदी हुई

है। इसी से अपने जीवित रहते मैं अपने निश्चय को पूरा कर पाया हूँ, इस आनन्द का मूल्य आँकना शायद मुश्किल होगा।

सन् १६६० की २४वीं अगस्त से १६११ तक 'साहब बीबी गुलाम' की पटभूमि है। यानि कि कलकत्ता की नींव पड़ने से शुरू कर भारतवर्ष की राजधानी के दिल्ली चले जाने तक।

इसके बाद १६१२ में 'ख़रीदी कौड़ियों के मोल' के नायक का जन्म होता है। १६१२ से लेकर १६४७ की १४वीं अगस्त तक 'ख़रीदी कौड़ियों के मोल' की पटभूमि है। यानि कि दो महायुद्धों के बीच का सन्धिकाल।

और अब है 'इकाई, दहाई, सैंकड़ा'। १६४७ की १५वीं अगस्त से लेकर १६६२ की २०वीं अक्तूबर के चीनी हमले तक।

करीब पौने तीन सौ साल के इस समय को अपने उपन्यास में लिपिबद्ध करते मेरी जिन्दगी के पचीस साल कहाँ से कहाँ चले गये उस बारे में सोचने का अभी तक कोई मौक़ा ही नहीं मिला। मेरा प्रयास सार्थक हुआ या नहीं इसका विचारक मैं नहीं हूँ। शायद वर्तमान काल भी उसका विचारक नहीं है, इसका विचार होगा आनेवाले समय में। मैं सिर्फ़ कारक हूँ, कर्त्ता अवाङ्मनसोगोचर।

एक बात और। अलैक्जेन्ड्रिया के कवि कालीमचस् ने कहा: 'ए बिग बुक इज़ ए बिग ईविल'——सौभाग्य या दुर्भाग्य जैसे भी हो, मेरे उपन्यास दीर्घ ही बन पड़े हैं। इसलिए मैं भी इसी अपराध का अपराधी हूँ। लेकिन ये बृहत् ग्रन्थ लिखकर भी मैं पाठक के धैर्य की सीमा को लाँघ नहीं पाया, इसका सबूत भी मेरे पास है। मैं अपने पाठकों के साथ स्नेह और कृतज्ञता की डोर में कसा हुआ हूँ।

अपने निश्चय की पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में ये शब्द कहकर मैं इस भूमिका पर पूर्णच्छेद डालता हूँ। इति——

विमल मित्र

राज्य-परिक्रमा के बाद राजा रोहित राजधानी वापस आये। एक बूढ़े ब्राह्मण ने सामने आकर रास्ता रोक लिया।

"कौन ?"

"मैं हूं, राजा रोहित !"

ब्राह्मण ने पूछा, "लौट क्यों आये ?"

राजा रोहित ने कहा, "मैं थक गया हूं।"

ब्राह्मण ने कहा, "चलते-चलते जो थक जाते हैं, वही तो अन्त-श्री हैं। जो सत्यकाम हैं वे भी अगर निष्क्रिय बैठे रहें तो उनका भी पतन अनिवार्य है। इसलिए तुम चलते चलो, आगे बढ़ो, चरैवेति-चरैवेति !"

राजा इसके बाद घर नहीं लौट पाये। वे फिर से परिक्रमा करने निकल पड़े। लेकिन फिर एक दिन राजधानी लौट आये। उसी ब्राह्मण ने फिर से रास्ता रोक लिया।

"घर क्यों लौट आये ?"

राजा रोहित ने कहा, "इस तरह लगातार चलते रहने से क्या लाभ है ?"

ब्राह्मण ने कहा, "बहुत लाभ हैं। जो चल सकता है वही तो स्वस्थ है। स्वस्थ आदमी ही स्वस्थ मन का अधिकारी है। उसकी आत्मा का विकास होता है। यह क्या चरम लाभ नहीं है ? तुम चलते चलो, आगे बढ़ो—चरैवेति-चरैवेति !"

राजा इस बार भी घर नहीं लौट पाये। फिर निकल पड़े। लेकिन राजा रोहित फिर एक दिन लौटे। ब्राह्मण देवता भी खड़े थे।

"फिर क्यों लौट आये ?"

"अब चला नहीं जाता।"

ब्राह्मण ने कहा, "यह क्या ? जो आराम करता है, उसका भाग्य भी आराम करता है। जो उठ खड़ा होता है, उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है। जो लेटता है उसका भाग्य भी धराशायी हो जाता है। जो आगे बढ़ता

है, उसका भाग्य भी आगे बढ़ता है। तुम आगे बढ़ो ! रुको मत—चरैवेति-चरैवेति !"

इस पर राजा रोहित को फिर लौटना पड़ा। घूमते-घूमते जब फिर से वापस आये, तो वही ब्राह्मण फिर मिला।

"मैं और नहीं घूम सकता। मैं आपका उपदेश भी अब और नहीं सुन पाऊँगा। आप मुझे क्षमा करें। सतयुग में, हो सकता है, यह उपदेश काम आता; इस युग में बेकाम है।"

ब्राह्मण मुसकराया। बोला, "नहीं, सोये रहना ही कलियुग है, जाग उठना द्वापर है, उठ खड़े होना त्रेता, और चलते रहना सतयुग है। इसलिए तुम आगे बढ़ो, राजा रोहित, और आगे बढ़ो, चरैवेति-चरैवेति ! रुको मत—रुकने का नाम मृत्यु है !"

और लौटना नहीं हुआ। राजा रोहित ने फिर से चलना शुरू किया। हिमालय से कन्याकुमारी, सिन्धु से पूर्वी सीमान्त। काशी, कौशल, अयोध्या, मिथिला, कलिंग, द्रविड़, भारतवर्ष के सारे भूखंड पर फिर से उनकी परिक्रमा शुरू हुई। इसके बाद शुरू हुई भारत के बाहर और फिर विश्व-ब्रह्माण्ड में।

इसी तरह काल-प्रवाह आगे बढ़ता रहा। आखिर में युग-युगान्तर के बाद आया १९४७ साल। वह राजा रोहित भी नहीं हैं, वह ब्राह्मण भी नहीं है। उपदेश देनेवाला भी नहीं है, उपदेश सुननेवाला भी कोई नहीं है। उपदेश-उपदेष्टा सभी एकाकार हो गये हैं।

यह उपन्यास वहीं से शुरू करता हूँ।

□ □ □

शुरू में जब इस मुहल्ले में मकान बनना शुरू हुआ, कोई नहीं जानता था। कब ज़मीन खरीदी गयी, कब रजिस्ट्री हुई, किसी को पता नहीं था। इस मुहल्ले के लोग साधारणतः इन सब बातों पर सिर नहीं खपाते। सब अपने-अपने घर अपने में मस्त रहते। इसी ज़मीन पर राज और मज़दूरों ने दिन-रात एक कर यह मकान खड़ा किया है। उन दिनों कभी-कभी एक बड़ी गाड़ी आकर खड़ी होती थी। साथ में एक महिला होती। जिनका मकान था, वे आकर देख जाते, काम कैसा चल रहा है, कहाँ तक आगे बढ़ा। उनकी पत्नी भी देखती। तभी से लोगों को पता लगा कि यह मकान शिवप्रसाद गुप्त का है। कलकत्ता के मशहूर आदमी, प्रसिद्ध देशभक्त ! एक समय के पॉलिटिकल मक़रर शिवप्रसाद गुप्त का नाम किसी के लिए अनजाना नहीं था।

बड़े आदमियों का नाम फैलने से जितने फ़ायदे हैं, उतनी मुश्किलें भी हैं।

शिवप्रसाद पहले-पहल जब इस मकान में आये उस समय मुहल्ले के कितने ही लोग उनसे मिलने आये। उस समय जो आना-जाना शुरू हुआ, वह फिर कभी नहीं रुका।

लोग कहते, "बड़े आदमी होने से क्या हुआ, मिजाज़ बिलकुल 'शिव' की तरह पाया है।"

शिव का मिजाज़ असल में कैसा है, किसे पता ! लेकिन शिव को ठंडे मिजाज़ वाला मान लेने पर उपमा को ठीक-ठीक बैठाने में आसानी होती। इसके अलावा शिवप्रसाद बाबू का शिव के चेहरे से भी मेल था।

शिवप्रसाद बाबू कहते, "अरे, नहीं, आप लोग कहते क्या हैं, आजकल जो हाल है उसमें दिमाग़ ठंडा रखना मुश्किल हो गया है।"

फिर कहते, "दिमाग़ गर्म रखकर क्या पब्लिक के साथ काम चलता है, बंकू बाबू ?"

अकेले बंकू बाबू ही नहीं, मुहल्ले के कई रिटायर्ड वृद्ध शाम के समय सिर, गला और कान ढँके आ बैठते। अख़बार को लेकर बहस होती, कांग्रेस और कम्युनिस्टों को लेकर बातें होतीं। हरेक के पास कहने लायक एक विषय, वह था उनका अतीत। वर्तमान और भविष्य से ज़्यादा वे लोग भूत को लेकर सिर खपाते। सभी के दिल में बीते दिनों की तसवीर खिल उठती—क्या दिन थे वे भी, जनाब ! कहाँ गया वह सोने-सा देश ! उस समय पढ़ाई-लिखाई की क़द्र थी, भगवान और ब्राह्मण में लोगों की श्रद्धा थी। अब तो सब-कुछ बदल गया है। लड़कियाँ ऑफ़िस जाती हैं नौकरी करने। सड़क पर, रास्ते और पार्कों में अकेली घूमती हैं। मर्दों की तो जैसे परवाह ही नहीं करतीं।

हर रोज़ ही ये बातें उठतीं। लेकिन किसी हल पर पहुंचने से पहले ही बद्रीनाथ आ पहुंचता।

बद्रीनाथ आकर कहता, "आपके लिए पूजा की जगह हो गयी है।"

बद्रीनाथ का उस समय कमरे में आना ही शिवप्रसाद बाबू के लिए पूजा की जगह होना था, यह सब जान गये हैं। शुरू-शुरू में ज़रा अजीब लगा। मतलब एकदम शुरू-शुरू में। शिवप्रसाद बाबू ने हँसते-हँसते कहा था, "यही एक ढकोसला नहीं छोड़ पा रहा हूं, इसी से…"

बंकू बाबू ने कहा, "लेकिन आप इसे ढकोसला क्यों कह रहे हैं ? पूजा करना क्या ढकोसला है, जनाब ! आज भी इंडिया सारी दुनिया में इतना आगे है, यह किसलिए, ज़रा बतलाइये ? वह सब है, इसी से तो दुनिया

अभी भी टिकी हुई है। चन्द्र-सूर्य चल रहे हैं। नहीं तो देखते, इंडिया ने कब का कम्युनिस्ट-ब्लॉक ज्वाइन कर लिया होता…"

शिवप्रसाद बाबू ठठाकर ज़ोर से हँसते। एकदम दिल खोलनेवाली हँसी। कहते, "वह सब तो नहीं जानता, भाई; पूजा करके मन को तृप्ति होती है, इसी से करता हूँ। बचपन की आदत पड़ गयी है, छोड़ नहीं पाता…"

बात चौंकने-जैसी ही थी। सभी पूछते, "आप क्या बचपन से ही पूजा करते आये हैं?"

शिवप्रसाद बाबू कहते, "हाँ, दस-बारह साल की उम्र से ही करता हूँ। माँ ने करने को कहा था, इससे करता हूँ। आज भी माँ के आदेश के अनुसार ही चलता हूँ—वह देखिये न, मेरी माँ का फोटो…"

कहकर, माँ के नाम पर दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

सोने के फ्रेम में मढ़ा माँ का एक पोर्ट्रेट दीवार पर टँगा था। काफ़ी बड़ा ऑयल-पेंटिंग। पूरी दीवार को ढँके पोर्ट्रेट झूल रहा था। सब लोग उस ओर ही देखने लगे।

शिवप्रसाद बाबू कहने लगे, "माँ के मन की कोई भी साध पूरी नहीं कर पाया, इसी से आज दुःख होता है। मैं माँ का नालायक लड़का हूँ भाई, अपनी माँ को जीवन में काफ़ी दुःख दिये हैं…" शिवप्रसाद बाबू का गला भर आया।

पड़ोसी लोग और नहीं रुकते। कहते, "नहीं-नहीं, आप पूजा करने जाइये, आपको और नहीं रोकेंगे।"

□ □ □

रात के नौ बजे से साढ़े नौ बजे तक शिवप्रसाद गुप्त का पूजा करने का समय है। उस समय कोई गोलमाल नहीं कर सकता। केवल इतना ही नहीं, सुबह से रात होने तक सारे दिन इस घर में जैसे सुखपूर्ण शान्ति छायी रहती है। यहाँ सभी खुश हैं, इस युग के लिए शायद अजीब बात है। अगर कहीं कोई शिकायत है भी, तो वह किसी के कान में नहीं जाती। हरेक का मन जैसे ख़ुशी से भरा था। सोकर उठने पर सभी कहते—वाह! फिर रात को सोने जाते समय भी निश्चित होकर कहते—वाह! इस युग में यह कैसे सम्भव हो पाया, यह इस मुहल्ले के लोगों के लिए एक समस्या है। कुछ लोग सोचते, इसका कारण शायद पैसा है। ज़रूरत से ज़्यादा पैसा होने पर शायद ऐसी शान्ति का साम्राज्य सम्भव हो सकता है। लेकिन पैसा क्या कलकत्ता शहर में अकेले शिवप्रसाद गुप्त के पास ही है? और

किसी के पास नहीं है ? बंकू बाबू के पास क्या पैसे की कमी है ? अविनाश बाबू को ही क्या पैसे का अभाव है ? अनाथ बाबू के तीनों लड़के दिग्पाल हैं—तीनों ही गज़ेटेड ऑफ़िसर हैं, रुपया चारों ओर बिछा पड़ा है। सभी इस मुहल्ले की बड़ी-बड़ी बिल्डिंगों के मालिक हैं। फ्लोरेसेंट लाइट, रेफ्रिजरेटर, रेडियोग्राम सभी-कुछ तो बाहर से दिखलायी देते हैं। नज़र में आनेवाली सभी चीज़ों का इन लोगों के यहाँ इन्तज़ाम है। लेकिन सभी यहाँ, शिवप्रसाद बाबू के घर आकर जैसे थोड़ी देर खुली हवा का सेवन कर जाते। शिवप्रसाद गुप्त के साथ दो बात करने पर जैसे सभी की उम्र बढ़ जाती। लेकिन ऐसा क्यों होता है, कोई भी नहीं समझ पाता।

सुबह ऑफ़िस जाते समय मन्दा आकर खड़ी होती। शिवप्रसाद बाबू की चीजें सम्हालने के लिए नहीं। उस काम के लिए अलग आदमी है। वह काम बद्रीनाथ का है। उसकी नौकरी इसीलिए है।

शिवप्रसाद बाबू ने मन्दा की ओर देखकर कहा, “पता है, बद्रीनाथ आजकल गाना सीख रहा है, आर्टिस्ट बनेगा।”

बद्रीनाथ शर्म से जैसे सिटपिटा गया।

“क्यों रे, कलाकार बनेगा ? उस्ताद रखा है ? कितना लेता है ?”

मन्दा को भी आश्चर्य हुआ। बोली, “क्या कह रहे हो ? वह और गायेगा, तब तो हो चुका !”

“अरे, नहीं, तुम्हें पता नहीं है, सुबह मैंने अपने कानों सुना। ठंड से ठिठुर रहा था और सुनता हूँ, खूब संगीत चल रहा है। पहले तो समझ ही नहीं पाया; मैंने सोचा, शायद सदाव्रत गा रहा है, फिर लगा कि यह सुरीला गला तो बद्रीनाथ को छोड़ और किसी का हो ही नहीं सकता।”

मन्दा ने कहा, “अच्छा, छोड़ो इन बेकार की बातों को ! फिर कहोगे, ऑफ़िस के लिए देर हो रही है।”

“अरे, बेकार की बात नहीं है; उसी से पूछ लो न ! कौन-सा गाना गा रहा था, रे, बोल न ? ‘मुहब्बत करके रुलाते हो क्यों ?’ इसके बा़द क्या है, रे ?”

मन्दा से न रहा गया। बोली, “देखती हूँ, तुम्हें किसी बात का होश ही नहीं है, मुंह में कुछ रुकता ही नहीं है।”

“वाह, उसके तो प्यार करने में भी कुछ नहीं बिगड़ा और मेरे कहने से ही आफ़त हो गयी ?”

मन्दा ने कहा, “तू जा तो, बद्रीनाथ, भाग इस कमरे से !”

बद्रीनाथ ने भागकर जान बचायी।

लेकिन शिवप्रसाद बाबू हँसने लगे।

बोले, "काफ़ी दिन से तो घर नहीं गया, बीवी की याद आती होगी, और क्या ? उसे कुछ दिनों की छुट्टी दे दो न, क्या कहती हो ?"

"वाह, उसे छुट्टी देने से तुम्हारा काम कैसे चलेगा ? उसके बिना रह पाओगे? बद्रीनाथ के बिना तो तुम्हारा एक मिनट भी काम नहीं चलता।"

"क्यों, उसका काम तुम नहीं कर पाओगी ?"

"मेरी क्या आफ़त आयी है !" कहकर मन्दा ने चेहरे को ज़रा भारी करने की कोशिश की।

शिवप्रसाद बाबू बोले, "पर पहले तो मेरा सारा काम तुम्हीं देखती थीं !"

"जब करती थी तब करती थी। तुम्हीं क्या अब पहले-जैसे रह गये हो?"

"क्यों, मैं कब बदल गया ?"

"बदल नहीं गये ? पहले इतना घूमना-फिरना नहीं होता था, न इतना बड़ा मकान था, न इतना पैसा ही था।"

"लेकिन पैसा क्या अपनी मर्जी से इकट्ठा किया है ? तुम्हें तो मालूम ही है, पैसे का लोभ मुझे कभी भी नहीं था। पैसा, मकान, गाड़ी, रेफ्रिजरेटर, रेडियोग्राम, मैंने कुछ भी नहीं चाहा, सब अपने-आप आ गया। वास्तव में यह सब तुम्हारे भाग्य से ही आया है।"

मन्दा ने ज़रा गुस्सा दिखलाया। बोली, "जाओ, जाओ, तुम्हें देरी हो रही होगी।"

शिवप्रसाद बाबू हँसने लगे। कुर्ता पहन चुके थे। चीज़-वस्त भी सब ठीक हो चुकी थीं। शिवप्रसाद बाबू ने कमरे से निकलने के पहले पूछा, "कुंज ने गाड़ी निकाल ली क्या ?"

बद्रीनाथ बाहर ही खड़ा था। वहीं से बोला, "जी हाँ, निकाल रहा है।"

गाड़ी की बात सुनकर शायद मन्दा को ध्यान आया। पीछे से बोली, "तुमने सदाव्रत के लिए गाड़ी खरीद देने को कहा था !"

शिवप्रसाद बाबू घूमकर बोले, "हाँ, कहा तो था। सदाव्रत कुछ कह रहा था क्या ?"

"उसकी गाड़ी पुरानी हो गयी है न, इसी से कह रहा था। मुझे डर लगता है, पता नहीं कब एक्सिडेंट कर बैठे।"

शिवप्रसाद बाबू—"कह रहा है तो खरीद दो न ! और मैं खुद तो उसकी उम्र में गाड़ी पर चढ़ ही नहीं पाया।"

"लेकिन अभी से इतनी शौकीनी क्या अच्छी होगी ?"

"गाड़ी रखना क्या शौकीनी है ? बस-ट्राम में कॉलेज जाने पर तो एक्सिडेंट होने के ज़्यादा चांस हैं। उस दिन अपने ऑफ़िस ही का एक क्लर्क बस के नीचे दबकर मर गया।"

अचानक टेलीफ़ोन की घंटी बजने से बात बीच में ही रुक गयी। घंटी की आवाज़ सुनते ही बद्रीनाथ ने जाकर रिसीवर उठाया। शिवप्रसाद बाबू कभी भी ख़ुद टेलीफ़ोन नहीं उठाते।

मन्दा तब तक अपने कामकाज निपटाती। दिन में जितनी देर के लिए शिवप्रसाद बाबू घर रहते ,उतनी देर टेलीफ़ोन। हज़ारों लोगों के साथ सम्पर्क रखना पड़ता। यही जो ऑफ़िस जा रहे हैं, शाम को सात-आठ बजे घर लौटेंगे। अगर कहीं मीटिंग हुई तो और भी देर होती। और मीटिंग भी क्या एक-दो होतीं ! इन मीटिंगों से लौटते-लौटते ही किसी-किसी दिन दस-ग्यारह बज जाते। मुहल्ले के बंकू बाबू, अनाथ बाबू वगैरह बाबू को न पा लौट जाते। इतनी रात को लौटने पर भी शिवप्रसाद बाबू पूजा करने बैठते। पूजा नियम से होनी चाहिए, फिर खाना।

शिवप्रसाद बाबू फ़ोन रखकर जा रहे थे।

मन्दा ने पूछा, "क्या आज भी तुम्हारी कोई मीटिंग है ?"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अरे, नहीं, बड़ी मुश्किल में डाल दिया है उन लोगों ने।"

"किन लोगों ने ?"

"और कौन ? वही पी० एस० पी० वाले। मुझे लेकर खींचतान कर रहे हैं। कह रहे हैं कि आप हमारी तरफ से इलेक्शन लड़िये। मैं जितना ही कहता हूँ कि भाई, मैं किसी भी दल का नहीं हूँ, बचपन से निःस्वार्थ-भाव से देश का काम करता आया हूँ,आज भी कर रहा हूँ, जब तक ज़िन्दा रहूँगा, करूँगा। हाँ, तो देश-सेवा के लिए राज़ी हूँ, लेकिन तुम्हारी पार्टी-वार्टी में नहीं हूँ, लेकिन वे लोग किसी भी तरह सुनने को तैयार नहीं होते। सिर्फ़ मुझे अपनी पार्टी में घसीटना चाहते हैं—या तो डॉ० प्रफुल्ल घोष की पार्टी ज्वाइन करनी होगी, नहीं तो अतुल्य घोष की, बीच की गाड़ी नहीं चलेगी।"

मन्दा के दिमाग़ में यह सब नहीं घुसता। पूछा, "तब क्या तुम मीटिंग में जा रहे हो ? तुमने फिर क्या कहा ?"

"और सब से जो कहता हूँ, वही कहा। कह दिया कि बिना माँ की आज्ञा के तो मैं कुछ भी नहीं कर सकता। माँ से पूछूँगा—देखूँ, माँ क्या कहती हैं।"

कहकर और नहीं रुके। बरामदे से होकर एकतल्ले की ओर चलने लगे। बद्रीनाथ भी कागज़-पत्र की गठरी लिये पीछे-पीछे चल दिया। यह गठरी रोज़ शिवप्रसाद बाबू के साथ गाड़ी में जाती है और फिर साथ ही वापस आती है। बद्रीनाथ भी साथ-साथ जाता है, और बाबू के साथ ही लौटता है। नेताजी सुभाष रोड पर दो तल्ले के फ्लैट में शिवप्रसाद बाबू का ऑफ़िस है। लैंड डेवेलपमेंट सिंडीकेट। शिवप्रसाद बाबू के यहाँ क्लर्क हैं, टाइपिस्ट हैं, ड्राफ्ट्समैन हैं। पूरा ऑफ़िस खचाखच भरा है। कलकत्ता जब तालाब और पोखरों में डूबा हुआ था तब की बात अलग है। धीरे-धीरे मकानों की गिनती बढ़ी है। आदमी बढ़े हैं। पार्टीशन के बाद शहर जैसे लोगों से अँट गया है। उस समय से ही शिवप्रसाद बाबू की बुद्धि ने रंग दिखलाया। तभी यह ऑफ़िस खोला। उन्होंने सोच लिया था कि आगामी पाँच-दस साल में कलकत्ता ऐसा ही नहीं रहेगा। और बढ़ेगा। जंगल और झाड़ियों के पार पश्चिम में चन्दननगर, चूंचड़ा और बैंडल तक पहुँचेगा। दक्षिण में जादवपुर और गरिया से परे डायमंड हार्बर तक फैलेगा। उत्तर में बड़ानगर, दमदम को पीछे छोड़ कहाँ तक पाँव फैलायेगा, कुछ ठीक नहीं है। डी०वी० सी० प्रोजेक्ट है, दुर्गापुर है, कल्याणी है। जादवपुर, गरिया और नरेन्द्रपुर सभी उनके प्लान के अनुसार बने हैं। शिवप्रसाद बाबू अपनी दूरदर्शिता पर मन-ही-मन प्रसन्न होते। जैसे यह उन्हीं का कलकत्ता है। यह ग्रेटर कलकत्ता जैसे उन्हीं के हाथों गढ़ा गया है। पैसा जो आ रहा है सो तो आ ही रहा है; साथ ही एक और दामी चीज हाथ लगी है, वह है आत्मतृप्ति। यह आत्मतृप्ति ही गुप्त-परिवार का सबसे बड़ा प्रॉफ़िट है। इस 'प्रॉफ़िट' के बूते पर ही शिवप्रसाद गुप्त ने हिन्दुस्तान पार्क में बँगला बनवाया है।

ऑफ़िस में घुसते ही देखा, एक अजनबी बैठा है। बंगाली नहीं है।

शिवप्रसाद बाबू के आते ही वह उठकर खड़ा हो गया। नमस्कार किया।

"आप कौन हैं, मैं ठीक से पहचान नहीं पा रहा ?"

"आप मुझे नहीं पहचान पायेंगे। मैं एक और काम से आया हूँ, जमीन की खरीद-फरोख्त का काम नहीं है।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "लेकिन मेरा काम तो ज़मीन की ख़रीद-फरोख्त करना ही है।"

"जानता हूँ, लेकिन मैं उस काम से नहीं आया हूँ। मैं जयपुर से आ रहा हूँ।"

"जयपुर !"

"हाँ, सुन्दरियाबाई ने आपके नाम चिट्ठी भेजी है," कहकर एक चिट्ठी शिवप्रसाद बाबू के हाथ में दी।

चिट्ठी लेकर शिवप्रसाद बाबू ने बद्रीनाथ को बुलाया। बद्रीनाथ बाहर था। आते ही उससे बोले, "देख, इस समय आधा घंटे किसी के साथ बात नहीं कर पाऊँगा, अगर कोई आये तो बैठाना, अन्दर मत आने देना।"

इसके बाद बद्रीनाथ को बुलाकर फिर कहा, "और ऑपरेटर से कह दो कि मुझे रिंग न करे, मैं व्यस्त हूँ।"

□ □ □

कलकत्ता के भिन्न-भिन्न मुहल्लों के अलग-अलग रूप हैं। हिन्दुस्तान पार्क का आकाश जब नीला होता है, बहूबाज़ार की मधुगुप्त लेन में उस समय धुएँ की कालोंच भरी होती है, जबकि शिवप्रसाद बाबू के शुरू के दिन इसी मुहल्ले में कटे हैं। इसी मुहल्ले की अँधेरी गली में मन्दाकिनी ने लड़के को पाला-पोसा। इसी मुहल्ले में सदाव्रत बड़ा हुआ। इसी मुहल्ले में अपने मकान की खिड़की से वह कोलतार की सड़क पर लड़कों को क्रिकेट खेलते देखता। इसके बाद ज़रा बड़े होने पर मुहल्ले के लड़कों से मिलने की इजाज़त मिली, लेकिन दूर से। ज़्यादा मेल-मिलाप से माँ नाराज़ होती, ज़रा-सी देर बैठकबाज़ी करते ही डाँटती। माँ उसे आँखों के सामने रखती।

माँ कहती, "मुहल्ले के लड़कों के साथ इतना मिलना-जुलना अच्छी बात नहीं है।"

सदाव्रत कहता, "लेकिन माँ, वे लोग ख़राब तो नहीं हैं!"

"वह सब तुम्हें नहीं देखना होगा, मैं कहती हूँ वे लोग खराब हैं, उनके साथ तुम्हारी इतनी दोस्ती ठीक नहीं है।"

वे शिवप्रसाद बाबू के बढ़ती के दिन थे। उनका समय कहाँ और कैसे कटता, कब कहाँ रहते, क्या करते, कुछ भी ठीक नहीं था। सारे दिन इज्ज़त और प्रतिष्ठा के लिए भूत की तरह मेहनत करते। सुबह घर से निकल जाते और फिर जिस समय लौटते, मधुगुप्त लेन सुनसान हो गयी होती। थके-हारे आते ही सो जाते। मन्दा भी तब निश्चिंत होकर चैन की साँस लेती। उस समय सदाव्रत नहीं था। वे सब चढ़ती जवानी की कड़ी मेहनत के दिन थे। उन दिनों के बारे में सदाव्रत को कुछ भी पता नहीं है। केवल इतना ही मालूम है कि उसके पिता अपनी कोशिशों और मेहनत से अपने पैरों पर खड़े हुए हैं। और सिर्फ़ इतना मालूम है कि उसकी माँ ने परिन्दों की तरह साथ रहकर उसे बड़ा किया है, किन्तु उसके कारण माँ की चिन्ताओं

का अन्त नहीं है—कि दुनिया के हर मुहल्ले में जितने भी लड़के हैं, माँ की नज़रों में सभी ख़राब हैं।

सदाव्रत मन-ही-मन ज़रा हँसा। इसके बाद नम्बर खोजकर एक मकान के सामने जाकर दरवाज़ा खटखटाने लगा।

क्या मज़े की बात है! बचपन में इसी शंभू के यहाँ माँ आने नहीं देती थी। शंभू के पिता किसी ऑफ़िस में क्लर्की करते थे। हाथ में टिफ़िन का डिब्बा लिये सुबह साढ़े आठ बजे बस-स्टॉप की ओर दौड़ते हुए जाते थे। तभी से पता नहीं क्यों, माँ को इन लोगों से बड़ी घृणा हो गयी थी। वैसे अब सदाव्रत बड़ा हो गया है। लोगों के घर जाने में अब उसे कोई झिझक नहीं है। वह शंभू के साथ गप्प लगा सकता है, बैठ सकता है। किसी को पता भी नहीं लगेगा। वह अब इस मुहल्ले का रहने वाला नहीं है। इसी से कोई आपत्ति भी नहीं करेगा।

"कौन ?"

अन्दर से ज़नानी आवाज़ आयी और साथ ही किसी ने दरवाज़ा खोल दिया। फ्रॉक पहने छोटी-सी लड़की।

"शंभू है ?"

"भैया तो क्लब गये हैं। घर नहीं हैं।"

"क्लब ! कौन-से क्लब ? शंभू का कोई क्लब भी है क्या ?"

लड़की ने कहा, "सामने गली का मोड़ है न, मोड़ पर ही देखेंगे एक बताशेवाले की दूकान। उसी के पीछे भैया का क्लब है।"

सदाव्रत ने पहले तो सोचा, जाने दो, अब क्लब तक कौन जाये! घर पर मिल जाता तो कुछ देर बैठ लेता। फिर कोई ख़ास काम भी नहीं है। किताबें खरीदने के लिए कॉलेज स्ट्रीट आया था। किताबें ले चुकने के बाद अचानक पुराने मुहल्ले की याद आयी और इधर चला आया।

सदाव्रत लौटते-लौटते भी आगे बढ़ने लगा। एक बार हाथ में बँधी घड़ी में समय देखा। काफ़ी समय है। जानी-पहचानी वही गली। इतने दिनों में कुछ भी नहीं बदला है। लम्बी-लम्बी दुमंजिली-तिमंजिली इमारतें। ठसाठस भरीं और एक-दूसरे से सटी हुईं। मोड़ पर की वह ड्राई-क्लीनिंग की दूकान अभी भी वैसे ही है। पहले घर में गैरेज नहीं था। पिताजी को सड़क पर के एक मकान के गैरेज में गाड़ी रखकर आना पड़ता था। ऑफ़िस के बाबू लोग लौट रहे हैं। सँकरी गली होने से क्या हुआ, भीड़ खूब थी। इतनी-सी गली में एक गाड़ी भी आ जाती तो मुश्किल होती—लोगों को

मकानों की चौखड़ियों पर चढ़कर खड़े होना पड़ता।

गली के मोड़पर आकर सदाव्रत रुका। खपरैल-पड़ी एक छोटी-सी दूकान दिखलायी दी। दूर से ही मालूम हो जाता है, मूड़ी-बताशे की दूकान होगी।

सदाव्रत ने दूकान के पीछे की ओर देखने की कोशिश की। वहीं तो होना चाहिए शंभू का क्लब। एक बार सोचा, दूकानदार से पूछे। लेकिन दूकानदार उस समय अपने ग्राहकों को सम्हालने में लगा था। दूकान की बाजू से ही एक पतली सीमेंट की गली चली गयी है। वहाँ से मकान के अन्दर की रोशनी दीख रही थी। दो-एक लोग अन्दर जा रहे थे।

सदाव्रत सोच रहा था, अन्दर जाये या नहीं। अचानक एक आदमी को अन्दर जाते देख सदाव्रत ने पूछ लिया, "यहाँ कोई क्लब है क्या ?"

आदमी ने मुड़कर देखा। सदाव्रत को लगा, चेहरा जैसे पहचाना-पहचाना-सा है। उम्र में उससे कुछ ही बड़ा होगा।

आदमी ने जवाब में कहा, "हाँ।"

सदाव्रत ने पूछा, "अन्दर शंभू है क्या ? शंभू दत्त !"

अन्दर से काफ़ी शोरगुल की आवाज़ आ रही थी—हँसी-बहस, सब एक साथ।

उस आदमी ने सदाव्रत की ओर अच्छी तरह देखा। फिर कहा, "अच्छा, ज़रा ठहरिये, देखता हूँ।"

सदाव्रत वहीं सड़क पर खड़ा रहा।

अन्दर जा उस आदमी ने आवाज़ दी, "शंभू, तुम्हें कोई बुला रहा है !"

बाहर अच्छी तरह से सुनायी दिया। इस बात के साथ ही अन्दर का सारा शोरगुल रुक गया।

"कौन बुला रहा है ?"

"वही अपने मुहल्ले के शिवप्रसाद बाबू का पोष्य पुत्र।"

"कौन ?" शंभू जैसे तब भी नहीं समझ पाया।

"अरे, याद नहीं है, अपने मुहल्ले में पहले जो शिवप्रसाद बाबू थे, अब बालीगंज में मकान बनवाकर चले गये हैं।"

फिर भी जैसे किसी ने पूछा, "किसका पोष्य पुत्र ? पोष्य पुत्र क्यों कह रहे हो ?"

"पोष्य पुत्र को पोष्य पुत्र नहीं तो जमाई कहूँगा ! बुढ़ापे तक जब कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ, तो उसे गोद लिया..."

"सदाव्रत, अपने सदाव्रत की बात कर रहे हो ? वह आया है ? कहाँ है ?"

"बाहर खड़ा है। तुझे बुला रहा है।"

शंभू ने गिरते-पड़ते गली के बाहर आते ही उसे बाँहों में जकड़ लिया।

"अरे, तू ! सदाव्रत, बात क्या है ? अचानक इस मुहल्ले में ? तेरी गाड़ी कहाँ है ? पैदल ही आया है ?"

उस अँधेरी गली में खड़े सदाव्रत को लगा, जैसे वह पत्थर हो। जैसे वह होश में नहीं था। मर चुका था। एकदम फ़ॉसिल। मधुगुप्त लेन के कलकत्ता की मिट्टी के नीचे दबकर फ़ॉसिल हो गया हो। युग-युग की घुटन-भरे अंधकार में जैसे उसकी आख़िरी समाधि हो। वह नहीं है। वह ख़त्म हो चुका है। दुनिया से जैसे उसका अस्तित्व ही मिट चुका है।

"क्यों रे, पहचाना नहीं ? मैं ही तो हूँ शंभू ! पैदल क्यों आया है ? तेरी गाड़ी कहाँ गयी ?"

सदाव्रत कोई भी उत्तर नहीं दे पा रहा था।—वह उस घर का कोई नहीं है···उसके माता-पिता, जिन्हें वह अपना समझता आया है, उसके कोई नहीं हैं···इतने दिन उसने नक़ली ज़िन्दगी बितायी है। इतने दिन की पुरानी सब बातें एक-एक कर याद आने लगीं। वह अब तक समझ भी नहीं पाया। उससे छिपाया गया। सच बात कह देने से क्या उसका यह नुक़सान होता ? वैसे लाभ भी क्या होता ! लेकिन किसी ने बतलाया क्यों नहीं ?

"क्यों रे, तेरी तबीयत ठीक नहीं है क्या ? सिर दर्द कर रहा है ?"

सदाव्रत के मुँह से जैसे इतनी देर बाद शब्द फूटे। बोला, "आज चलूँ, भाई, फिर किसी दिन आऊँगा। आज अच्छा नहीं लग रहा।"

"इतनी दूर आकर ऐसे ही वापस चला जायेगा ! आ न, अन्दर क्लब में आकर ज़रा देर बैठ, एक कप चाय पीकर चले जाना, और नहीं तो···"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, आज चलूँगा। फिर किसी दिन आऊँगा।"

"तो फिर कब आयेगा ?"

"अभी से नहीं कह सकता; समय मिलते ही एक दिन चला आऊँगा।"

कहकर सदाव्रत वहाँ और नहीं रुका। रुक ही नहीं पाया···किसी ने उसे बतलाया क्यों नहीं ? उसे बतला देने से किसी का क्या बिगड़ता ? किसी ने उस पर विश्वास क्यों नहीं किया ? वह क्या विश्वास करने लायक भी नहीं है ! सदाव्रत मधुगुप्त लेन की सँकरी गली से जल्दी-जल्दी चलने लगा। ज़्यादा देर यहाँ रुकने पर जैसे उसे कोई पहचान लेगा। हाँफते-हाँफते सदाव्रत सीधे बस-स्टॉप पर आकर रुका।

◻ ◻ ◻

बंकू बाबू ने कहा, "क्या बात है, जनाब ? आजकल तो आपका पता ही नहीं रहता, धन्धे में शायद बुरी तरह फँसे हैं ?"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "धन्धे की बात छोड़िये, अब तो धन्धे को समेटने की सोच रहा हूँ।"

"क्यों ?"

"अब क्या वे दिन रहे हैं ! अब तो गवर्नमेंट ने ही ज़मीन का धन्धा शुरू कर दिया है। मैंने तो उस दिन डॉ० राय को कह दिया कि क्या सब कुछ ही नेशनलाइज़ कर डालियेगा ? बस, ट्राम, इलेक्ट्रिसिटी, सभी तो ले रहे हैं। अब अगर ज़मीन-वमीन का काम भी न करेंगे तो हम लोग कहाँ जायँ ? हम लोग क्या खाकर ज़िन्दा रहें ?"

"तो डॉ० राय ने क्या कहा ?"

"सुनकर हँसने लगे। डॉ० राय मेरे पुराने दोस्त हैं।"

अनाथ बाबू चौंके, "डॉ० राय आपके पुराने दोस्त हैं क्या ?"

"वाह, आपको नहीं मालूम ! आज भले ही चीफ़ मिनिस्टर हो गये हैं, हम लोगों ने तो एक साथ एक सभा में लेक्चर दिये हैं। कलकत्ता में जिन दिनों रॉयट्स हुए थे, तब मैंने और श्यामाप्रसाद बाबू ने ही तो दिन-रात घूम-घूमकर सारा काम किया। उस समय मधुगुप्त लेन के मकान में रहता था। मेरे घर दिन में दो-दो बार मीटिंग होतीं। कांग्रेसवाले उस समय समझ ही नहीं पा रहे थे कि क्या करें।"

ये सब सिर्फ़ बातें ही नहीं थीं। ये बातें कुछ ही लोग जान पाते थे। किसी-किसी दिन अचानक टेलीफ़ोन आ जाता। शिवप्रसाद बाबू रिसीवर उठाते। कुछ देर बात करते। फिर झुँझलाकर टेलीफ़ोन छोड़ देते। कहते, "लगता है, ये लोग मेरी जान लेकर छोड़ेंगे।"

सभी पूछते, "क्यों, क्या हुआ ? किसने टेलीफ़ोन किया था ?"

"और कौन करेगा ? वही आप लोगों का मेयर !"

मेयर का नाम सुनकर सभी को आश्चर्य होता। सारा कलकत्ता जैसे शिवप्रसाद बाबू की राय लेने के लिए लालायित रहता है। शिवप्रसाद बाबू की राय लिए बिना जैसे मिनिस्ट्री टूट जायेगी, सारा कलकत्ता तहस-नहस हो जायेगा। कोई फ़ोन ऐसे समय पर आता कि सभी मुश्किल में पड़ जाते।

मन्दा पूछती, "अब फिर से कहाँ जा रहे हो ?"

शिवप्रसाद बाबू कहते, "हो आऊँ, अचानक बुलाया है। नहीं जाने से ख़राब लगेगा। सोचेंगे, मैं किसी की परवाह ही नहीं करता।"

बद्रीनाथ को बुलाकर कहते, "बद्री, कुंज से गाड़ी निकालनें को कह!"

बहुत अरसे पहले जब मन्दा बहू बनकर इस घर में आयी थी, मुँह बन्द रखे चुपचाप गृहस्थी का सारा काम करती। शिवप्रसाद बाबू के वे कड़ी मेहनत के दिन थे। एक बार तो लगातार तीन दिन तक भले आदमी का पता ही नहीं लगा। घर पर ख़बर तक नहीं दे पाये। सुबह खा-पीकर घर से निकले, शाम को लौट आने की बात थी। वह दिन गुज़रा, दूसरा दिन भी निकला। उसके बाद का दिन भी निकल गया। फिर भी कोई खबर नहीं, पता नहीं। उस समय घर में इतने नौकर-चाकर भी नहीं थे। कहीं कोई एक्सिडेंट ही तो नहीं हो गया? घर में कोई ख़बर लेनेवाला तक नहीं था। पूछें भी तो किससे? पतिदेव कहाँ जाते, किसी दिन मन्दा को नहीं बतलाया। मन्दा के लिए वे दिन बड़े अकेले-अकेले गुज़रे। उन दिनों खोका भी नहीं था। मधुगुप्त लेन के मकान की खिड़की के पीछे से मन्दा तीन दिन तक सड़क की ओर देखती खड़ी रही। फिर भी पता नहीं। हिन्दू-मुस्लिम दंगे के समय घर के अन्दर अकेली खड़ी डर से काँपती रही। भले आदमी के लिए हर समय डर बना रहता। मन्दा ने कितनी ही बार कहा भी—'आज ही न जाओगे तो क्या आफ़त आनी है! इस मार-काट और खून-खराबी के समय तुम्हारे न जाने से क्या हो जायेगा?'

वे सब दिन भी निकल गये। दंगे, अकाल, दिन हो या रात, छोटी-छोटी बात के लिए दरवाज़े के सामने धरना देना। उस समय मन्दा को लगता—दिन जैसे कटेगा ही नहीं, रात बीतेगी नहीं। लेकिन दुःख के दिन हों या सुख के, वे गुज़रते ही हैं। शिवप्रसाद बाबू के भी वे सारे दिन गुज़र गये। न जाने कहाँ-कहाँ मीटिंग करते फिरते। सारे दिन, सारी रात की मेहनत के बाद शायद सुबह के समय घर लौटते। इसके बाद ज़रा देर विश्राम किया नहीं कि कोई और बुलाने आ जाता, उसी समय थोड़ा-बहुत पेट में डालकर फिर निकल पड़ते। मन्दा कहती, "इन सब झमेलों से अगर तुम अपने को अलग ही रखो।"

शिवप्रसाद बाबू कहते, "लेकिन मेरे अलग रहने से काम कैसे चलेगा? सभी घर में साँकल लगाकर बैठे रहें तो इतने लोगों का क्या हाल होगा?"

मन्दा कहती, "उन्हें देखने के लिए सरकार है, पुलिस है, वही देखेगी।"

शिवप्रसाद बाबू नाराज़ हो जाते। "जो बात समझती नहीं हो उस पर बहस मत करो, औरतों की बुद्धि से चलने पर देश का काम हो लिया।"

इसी तरह दिन गुज़रते रहे। इसके बाद ही शायद सब गड़बड़ खत्म

हो गयी। तभी से शिवप्रसाद बाबू को जैसे थोड़ा आराम मिला।

लेकिन तब भी बैठकखाने में मीटिंगें जमतीं। बार-बार चाय आती, पान आते। कितनी ही बार कान लगाकर सारी बातें सुनी हैं। कुछ भी समझ में नहीं आया। पार्टीबाज़ी, दल में फूट। ज़ोर की बहस चल रही थी। इसी बीच एक बार अन्दर आकर पूजा कर गये। फिर वही। राम बाबू मिनिस्टर होंगे कि श्याम बाबू। कौन मेयर होगा, कौन डिप्टी-मेयर होगा, इसी फैसले के लिए उन लोगों की नींद हराम थी।

उस समय कहाँ-कहाँ नहीं घूमे हैं। आज जलपाइगुड़ी गये तो दूसरे ही दिन बरासात में मीटिंग होती। वहां से लौटते ही फिर आसनसोल। मन्दा को कभी-कभी डर भी लगता। इस तरह घर को अंधेरा छोड़ मस्जिद में दीया जलाते कहीं खुद का धन्धा न ठप्प हो जाय।

मन्दा पूछती, "इधर तुम कई दिनों से ऑफ़िस नहीं जा रहे हो, तुम्हारा ऑफ़िस कौन देख रहा है ?"

शिवप्रसाद बाबू सवाल में जवाब देते, "बिज़नेस पहले कि देश पहले ?"

"देश देखनेवाले तो कितने ही हैं। तुम्हारे न देखने से कुछ जानेवाला नहीं है।"

शिवप्रसाद बाबू कहते, "मैं क्या जानकर देखता हूं ? अगर नहीं देखना हो तो शायद बच जाऊँ। लेकिन पता है, इस देश के लिए कितने लोगों ने प्राण दिये हैं ! हज़ारों लोगों को क़ैद हुई, और जेल में टी० बी० के शिकार हो गये। खुदीराम और गोपीराम साहा को फाँसी हुई, यतीनदास अनशन करके मरे—अगर आज हम लोग न देखें तो उन लोगों का प्राण देना बेकार ही गया। आँखों के सामने इधर-उधर के आदमी लूट-पाट कर मज़े उड़ायें, यह तो और देखा नहीं जाता, इसी से तो मरता हूँ। नहीं तो मेरा क्या है ? अपना बिज़नेस करता रहूँ और आराम से खा-पीकर पड़ा रहूँ।"

मन्दा ये सारी बातें सुनती, लेकिन उसमें विरोध करने का साहस नहीं था। और उसके विरोध करने पर शिवप्रसाद बाबू सुननेवाले आदमी नहीं हैं। शिवप्रसाद बाबू हमेशा से अपनी मर्ज़ी के मुताबिक चले हैं, आज भी चल रहे हैं। आज भी किसी-किसी दिन कहाँ चले जाते हैं, कुछ पता नहीं चलता। कहने का समय ही कहाँ मिलता है !

बाहर के कमरे से अचानक पति को अन्दर आते देख मन्दा अवाक् रह गयी। पूछा, "क्या हुआ ?"

शिवप्रसाद बाबू—"बद्रीनाथ कहाँ गया ?"

"वह तो तुम्हारी पूजा का इन्तज़ाम कर रहा है।"

शिवप्रसाद बाबू ज़ीना चढ़ते-चढ़ते बोले, "कुंज से गाड़ी निकालने के लिए कहलाना है।"

"क्यों, इतनी रात में क्या फिर कहीं बाहर जाना है ?"

"हाँ, एक बार जाना ही होगा।"

"कोई ज़रूरी मीटिंग है ?"

मन्दा पीछे-पीछे चलती रही। बद्रीनाथ भी खबर पाकर मालिक के पास आया। बोला, "कुंज ने गाड़ी बाहर कर ली है, हुज़ूर !"

जल्दी से कपड़े बदलकर शिवप्रसाद बाबू फिर नीचे उतर गये। उन्हें जैसे किसी के साथ बात करने की फुरसत नहीं है।

बद्रीनाथ भी जानेवाला था। मन्दा ने पूछा, "बाबू कहाँ जा रहे हैं, तुझे कुछ पता है ?"

"जी, नहीं।"

"कोई टेलीफ़ोन आया था ?"

"यह तो नहीं मालूम, मालिक को तो बाहर के कमरे में बंकू बाबू के साथ बातें करते देखकर आ रहा हूँ।"

"तो इस समय अचानक बाहर जाने की क्या ज़रूरत आ पड़ी ?"

तभी बाहर से गाड़ी के स्टार्ट होने की आवाज़ आयी। बद्रीनाथ बाहर भागा, लेकिन उसके बाहर पहुँचने से पहले ही गाड़ी चल दी थी। कुंज से इस सब के बारे में कुछ पता नहीं लगता। बाबू कहाँ जाते हैं, कहाँ नहीं जाते, उससे कुछ भी मालूम करना मुश्किल है। बड़ा ही गुमसुम है। दिन-रात गूंगे की तरह काम किये जाता है। जहाँ कहीं जाता है, लौटकर उसके बारे में कोई बात नहीं करता। गैरेज के दरवाज़े पर बिछौना खोलकर लेट जाता और महाराज के आवाज़ देने पर खाकर फिर आ पड़ता। जैसे आदमी न हो, मशीन हो। मशीन की तरह आज इतने दिनों से शिवप्रसाद बाबू के यहाँ काम कर रहा है।

शिवप्रसाद बाबू पहले श्यामबाज़ार की एक गली में गये। मालिक को उतारकर कुंज गाड़ी की झाड़-पोंछ करने लगा, फिर गाड़ी में बैठ गया। मालिक को कहाँ-कहाँ जाना होता है। मकान के बाहर और भी कितनी ही गाड़ियाँ खड़ी थीं। यहाँ कितनी देर रुकना होगा, कुछ ठीक नहीं है। देखते-देखते और भी कितनी ही गाड़ियाँ आकर खड़ी होने लगीं। कुछ देर बाद शिवप्रसाद बाबू बाहर आये, गाड़ी में बैठते-बैठते बोले, "चलो !"

कुंज ने एक्सीलेटर दबाकर इंजिन चालू कर दिया। इसके बाद सब चुप ! कुंज चुपचाप ही गाड़ी चलाता है। ड्राइवर का बेकार बोलना शिवप्रसाद बाबू को पसन्द नहीं है। कार्नवालिस स्क्वायर के सामने पहुंचते ही शिवप्रसाद बाबू सीधे बैठ गये। बोले, "कुंज, एक टैक्सी तो रोक !"

सड़क के किनारे पर गाड़ी लगाकर कुंज बाहर निकला। 'टैक्सी चाहिए' कहते ही तो टैक्सी मिलती नहीं। ज़रा देर लगती है। इन्तज़ार करना पड़ता है।

शिवप्रसाद बाबू को शायद कोई ज़रूरी काम था। टैक्सी के आते ही झट से बैठ गये। फिर कुंज से बोले, "यहीं रुकना, मैं अभी आया।"

कार्नवालिस स्क्वायर के कोने पर गाड़ी लगाकर कुंज चुपचाप बैठा रहा। रात के नौ बज रहे थे।

□ □ □

वास्तव में इसकी शुरुआत १९४७ के पहले से ही हुई थी। कलकत्ता शहर के लोग समझ गये थे, एक और नया युग आनेवाला है। जिस किसी के लिए ही हो, आज़ादी आनी ही है। लेकिन आज़ादी किसकी ? ग़रीबों की या बड़े लोगों की ? असल में एक बात समझ में नहीं आयी, वह समझी भी नहीं जा सकती। जब बाढ़ आती है तो सब-कुछ डूब जाने पर भी आखिर में कहीं ऊसर बालू छोड़ जाती है और कहीं उर्वर कछार। कहीं बंजर होता है तो दूसरी जगह सोने की खेती होती है। कुंज यह सब नहीं सोचता। उसके दिमाग में ये बातें आती ही नहीं। मन्दा भी नहीं सोचती। बद्रीनाथ भी इन सब बातों में सिर नहीं खपाता। अनाथ बाबू, बंकू बाबू, अविनाश बाबू कोई भी यह सब नहीं सोचता। सब-के-सब अपनी पेंशन के हिसाब को लेकर मशगूल रहते हैं। यहाँ तक कि मधुगुप्त लेन क्लब के लड़के भी नहीं सोचते, सोचा सिर्फ़ एक आदमी ने। ऐसा क्यों हुआ ? ऐसा तो होना नहीं चाहिए था।

सदाव्रत ने पहले-पहले उन्हीं से सुना था। उस समय सदाव्रत की उम्र कम थी। मधुगुप्त लेन वाले मकान में रोज़ शाम को पढ़ाने आते थे। सारा दिन स्कूल में रहने के बाद शाम को कहीं निकलने की मनाही थी। किसी तरह दोपहर कटने के बाद दिल बड़ी बेचैनी के साथ शाम का इन्तज़ार करता था। शाम होते ही मास्टर साहब आते। मास्टर साहब की सोहबत में, उनके साथ बातें करते-करते सदाव्रत जैसे सब-कुछ भूल जाता।

इतने दिनों बाद हठात् आज उन्हीं मास्टर साहब की याद आयी।

मन्दा ने पूछा, "महाराज, छोटे बाबू को अभी तक खाना खाने के लिए नहीं बुलाया ?"

"छोटे बाबू तो घर में नहीं हैं।"

मन्दा को भी आश्चर्य हुआ। अभी ज़रा देर पहले ही तो देखकर आयी हूँ, कमरे में ही था। फिर पूछा, "थोड़ी देर पहले ही तो था, फिर कहाँ चला गया ? गाड़ी लेकर गया है ?"

मन्दा खुद भी एक बार सदाव्रत के कमरे में गयी। दूसरी मंज़िल पर एक कोने में उसका कमरा था। वहाँ उसने अपनी अलग गृहस्थी बसा रखी है। जाने कहाँ-कहाँ की किताबें इकट्ठी कर रखी हैं। उन्हें सजाकर रखा है। आजकल वह किस समय कमरे में रहता है और कब निकल जाता है, मन्दा को कुछ पता ही नहीं लगता। लड़के बड़े होने पर जैसे माँ के लिए पराये हो जाते हैं। कमरा खाली देखकर मन्दा को बड़ा अजीब-अजीब-सा लगा। पहले फिर भी दिन में एकाध बार दीख जाता था; आजकल तो कब घर में है, कब नहीं है, कुछ पता ही नहीं रहता। उस दिन काफ़ी रात गये घर लौटते ही माँ ने जाकर पूछा. "क्यों रे, तू खाना नहीं खायेगा ?"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं।"

"क्यों, खायेगा क्यों नहीं ? क्या हुआ ? तबीयत ठीक नहीं है ?"

सदाव्रत तकिए में सिर छिपाये बिस्तरे पर पड़ा था। माँ की बात सुनकर भी उसने मुँह नहीं उठाया। बोला, "नहीं, तबीयत ठीक है, ऐसे ही नहीं खाऊँगा।"

"ऐसे ही क्यों, कुछ मालूम भी हो ? कहीं पार्टी-वार्टी थी ?"

"नहीं।"

मन्दा ने लड़के के सिर पर हाथ रखकर देखा, बुखार तो नहीं है। सदाव्रत ने माँ का हाथ हटा दिया।

"आख़िर कुछ कहेगा भी, क्या हुआ ? खायेगा क्यों नहीं ?"

"नहीं, तुम यहाँ से जाओ। मुझे कुछ नहीं हुआ है।"

मन्दा फिर भी कुछ नहीं समझी। पूछा, "तब बतला, क्या बात है ?"

सदाव्रत ने कहा, "तुमसे कहना बेकार है, तुम नहीं समझोगी।"

"कल भी खाया नहीं, आज भी नहीं खा रहा, तुझे हुआ क्या है ?"

"तुम लोग ही क्या मुझे सब-कुछ बतलाते हो !"

"तुझे सब बातें नहीं बतलाते ? तू कह क्या रहा है ?"

"माँ, मैं तुम्हारे पांवों पड़ता हूं, तुम यहां से जाओ। मुझे ज़रा देर

अकेले रहने दो।"

इसके बाद मन्दा ने और कुछ नहीं कहा। लड़का बड़ा हो गया है, उसकी इच्छा अपनी इच्छा हो सकती है। सदाव्रत भी उस दिन के बाद से न जाने कैसा हो गया। अपने पिछले जीवन की एक-एक घटना याद करने लगा। उसने कब क्या चाहा, क्या मिला और क्या नहीं मिला। उसके बारे में किसी ने भी तो नहीं सोचा। उसके भले-बुरे को लेकर किसने सिर खपाया है? पिताजी! उन्हें वह घर में कितनी देर के लिए देखता है। वह सारे दिन बिज़नेस और अपने दूसरे कामों में लगे रहते हैं। और माँ! उन्हें घर-गृहस्थी से ही फ़ुरसत नहीं है।

मास्टर साहब के मकान के पास पहुंचते ही देखा, गली के अन्दर बहुत-सी गाड़ियाँ खड़ी हुई हैं। एक उसके पिताजी की भी है। गाड़ी के अन्दर कुंज चुपचाप बैठा था। सदाव्रत लौट पड़ा, घूमकर दूसरे रास्ते से गली के अन्दर आया। इस ओर भीड़ नहीं थी। मास्टर साहब के मकान के सामने पहुंचकर सदाव्रत ने दरवाज़ा खटखटाया।

"मास्टर साहब!"

"कौन?"

केदार बाबू ने अन्दर से ही कहा, "दरवाज़ा खुला ही है, आ जाओ!"

सदाव्रत को देखकर केदार बाबू बड़े ख़ुश हुए, "अरे, तुम आये हो! अभी ज़रा पहले तुम्हारे बारे में ही सोच रहा था।"

"मेरे बारे में ही सोच रहे थे?"

केदार बाबू ने कहा, "हाँ, सोच रहा था, पहले तो रोज़ ही तुम्हारे घर जाता था, उस समय तुम्हारे पिताजी की हालत इतनी अच्छी नहीं थी, लेकिन देखो, अब तो तुम लोगों की हालत काफ़ी अच्छी हो गयी है—हो गयी है न?"

सदाव्रत एकदम से इस बात का जवाब नहीं दे पाया। केवल बोला, "जी, हुई तो है।"

"लेकिन देखो, तुम लोगों की तरह सिर्फ़ दो-चार लोगों की हालत अच्छी हुई है, देश की हालत तो अच्छी नहीं हुई, देश के आम लोगों की हालत तो शायद पहले से भी ख़राब हो गयी है। बात सच है न?"

केदार बाबू अचानक यह सब क्यों पूछ रहे हैं, सदाव्रत कुछ भी नहीं समझ पाया। एक छोटे-से तख़्त पर बिछी दरी, मैला-चीकट एक तकिया; उसी दरी के ऊपर अधलेटे जाने क्या लिख रहे थे। सारे कमरे में गर्द जमी

थी, चारों ओर किताबें-कॉपियाँ-कागज़ बिखरे पड़े थे।

"सच है कि नहीं, बोलो ?"

सदाव्रत ने कहा, "सच है।"

"मैं भी यही सोच रहा था। मन्मथ ने सवाल तो ठीक ही उठाया।"

"मन्मथ कौन ?"

"मेरा एक विद्यार्थी। मैं उसे हिस्ट्री पढ़ाता हूँ। एंशियेंट हिस्ट्री। पढ़ते-पढ़ते आज चट से मन्मथ ने मॉडर्न हिस्ट्री का यह सवाल पूछ लिया। मैंने भी सोचकर देखा, मन्मथ ने कोई ग़लत बात तो नहीं कही। यह बात तो मैंने पहले कभी नहीं सोची थी। तभी तुम लोगों का ध्यान आया। इसके बाद काफ़ी देर सोचता रहा। सोचते-सोचते जवाब मिल ही गया।"

कहते-कहते केदार बाबू उत्तेजित हो उठे। बोले, "समझे सदाव्रत, जवाब मिल ही गया। रूसो की किताब में देखा, साफ़-साफ़ लिखा है—'आदमी पैदा तो स्वतन्त्र हुआ है, लेकिन हर जगह उसके पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं।' मैंने मन्मथ से कहा कि देश को फ्रीडम मिलने से ही आम आदमी भी फ्री हो जायेगा, ऐसी कोई बात नहीं है।"

सदाव्रत केदार बाबू की बात ज़रा भी नहीं समझ पाया।

"तुम कुछ समझ पा रहे हो या नहीं ?"

सदाव्रत ने कहा, "मैं आपसे एक और बात पूछने आया था।"

"लेकिन तुम पहले मेरी बात का उत्तर दो, अपने पिताजी की ही मिसाल ले लो। अब तो तुम लोग काफ़ी बड़े आदमी हो गये हो, तुम्हारे पिताजी के मन में कोई दुःख नहीं है ? कोई कष्ट ? कोई यन्त्रणा ?"

सदाव्रत ने कहा, "वह तो मुझे नहीं मालूम।"

"लेकिन 'मालूम नहीं' कह देने से तो काम नहीं चलेगा। तुम्हारा काम चलने पर भी मेरा तो नहीं चलेगा। मुझे लड़कों को पढ़ाना होता है, मुझे तो उत्तर देना ही होगा—इसीलिए मैं तभी से सोच रहा था, यह सवाल सदाव्रत से पूछना होगा। मतलब—देश को फ्रीडम मिलने से आदमी को फ्रीडम मिलती है या नहीं ? और अगर मिलती है तो अपने इंडिया में किसे मिली है ? कितनों को मिली है ? अभाव से छुटकारा पाना भी तो एक तरह की फ्रीडम ही है—ठीक है न ?"

सदाव्रत ने बीच में ही कहा, "इस विषय पर फिर बात करूँगा।"

"मुझे बतला सकते हो, इस समय तुम्हारे पिताजी की इन्कम कितनी है ? तुम्हारे पिताजी तो ज़मीन की खरीद-फरोख्त का काम देखते हैं, इंडिपें-

डेंस के बाद उनके बिज़नेस में एकाएक इतनी उन्नति कैसे हो गयी ? कांग्रेस के लोगों के साथ मेलजोल है, इसीलिए न ?"

"नहीं, पिताजी तो किसी पार्टी के मेम्बर नहीं हैं। पिताजी ने बिज़नेस से पैसा कमाया है।"

"लेकिन उनकी इन्कम कितनी है ?"

सदाव्रत—"मुझे माफ़ कीजिये, मास्टर साहब, मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। मेरे माता-पिता मुझे कुछ भी नहीं बतलाते—मैं उस घर का कोई भी नहीं हूँ, असल में मैं उन लोगों का लड़का नहीं हूँ—यही बात बतलाने मैं आपके पास आया था।"

केदार बाबू अचम्भे में पड़ गये। बोले, "लड़के नहीं हो, माने ?"

"कई दिनों से अच्छी तरह सो नहीं पा रहा, खा नहीं पाता—समझ में नहीं आता, किसके पास जाऊँ, किसके पास जाकर अपनी बात कहूँ—ठीक नहीं कर पा रहा था, इसी से आपके पास चला आया। अब चलूं, शायद आपके साथ मेरी यह अन्तिम मुलाक़ात हो।"

"अरे, सुनो-सुनो ! जा कहाँ रहे हो ? "

लेकिन सदाव्रत तब तक सड़क पर पहुँच चुका था। इतनी जगहों के रहते वह मास्टर साहब के पास ही क्यों आया ? अपने में खोये इन भोलानाथ से अपना दुःख कहकर वह कौन-सी सहानुभूति चाहता था ? जो आदमी खुद अपना भला-बुरा नहीं समझता, उस पर दूसरे की भलाई-बुराई का बोझ डालकर क्या सदाव्रत बच पायेगा ? चलते-चलते जैसे सदाव्रत के सिर का बोझ भी बढ़ गया। आस-पास में कितने लोग चल रहे हैं। ग़रीब, अमीर—गाड़ी, रिक्शा, ट्राम। सदाव्रत को लगा, जैसे वह अकेला है, उसका अपना कोई नहीं है। गृहस्थी की छोटी-मोटी बातें जैसे उसकी आँखों के सामने आकर कौंधने लगीं। उसके कमरे में बिस्तरे की चादर समय पर क्यों नहीं बदली जाती, खाते समय उससे क्यों नहीं पूछा जाता कि उसे और कुछ चाहिए या नहीं। सब बिलकुल छोटी-छोटी बातें, जिनको उसने पहले कभी सोचा भी नहीं था। लेकिन आज हीव बातें जैसे बड़ी दीख पड़ने लगीं। कार्ल मार्क्स किसी पर भी विश्वास नहीं करता था—उसकी बायोग्राफी में लिखा है। इतने दिनों बाद सब-कुछ समझ में आया है। हालाँकि माँ-बाप पर भरोसा कर उसने कितनी ही बार हठ किया है, अपना अधिकार मनवाने की कोशिश की। वही झूठा विश्वास जैसे आज सदाव्रत के जीवन पर बोझा बनकर लदा था। वैसे सदाव्रत हरेक

से यही उपदेश सुनता आया है कि अविश्वास करके फायदा करने से भरोसे से ठगना ज़्यादा अच्छा है।

केदार बाबू फिर से अपने ध्यान में मशगूल होने जा रहे थे कि अचानक पीछे का दरवाज़ा खुला।

"कौन आया था ?"

"कोई भी नहीं, तू जा इस समय, अभी खाना नहीं खाऊँगा।"

"खाना खाने नहीं बुला रही, मैंने सब-कुछ सुन लिया है। तुम भी कैसे हो, काका ! कुछ भी नहीं समझते। उसे इस तरह से क्यों जाने दिया ?"

"क्यों···क्या मैंने जाने दिया, वह तो स्वयं ही चला गया। सदाव्रत की बात कर रही है न ?"

"चला गया, इसलिए तुम ऐसे ही जाने दोगे ? उसका चेहरा, आँख-मुंह नहीं देख पाये ? अगर अभी रास्ते में गाड़ी के नीचे आ दब जाये ? अगर आत्महत्या कर बैठे ? मैं अन्दर से सब-कुछ देख रही थी···"

"आत्महत्या करेगा ? क्यों ? क्या हुआ है उसे ?"

"ओफ़, तुम भी क्या हो, काका ? सुना नहीं, उसने क्या कहा ?"

इतनी देर बाद जैसे होश आया। बात का महत्त्व अब समझ में आया। बोले, "अब क्या करूँ ? यह तो बड़ी गड़बड़ हो गयी। सच ही तो मुझे समझना चाहिये था। उस हालत में उसे जाने देकर मैंने बड़ी ग़लती की···"

"तो अब जाओ न ! अभी-अभी तो गया है···शायद अभी बस के रास्ते तक भी नहीं पहुंचा होगा।"

"वही ठीक रहेगा··· उसे पकड़ लाऊँ।"

कहकर केदार बाबू और नहीं रुके। उसी हालत में सड़क पर निकल पड़े। शैल दरवाज़े पर आकर खड़ी रही। अँधेरी गली। दूरी पर चलते लोग ठीक से दिखलायी नहीं देते थे। फिर भी सामने की ओर देखती रही। देखा, केदार बाबू जल्दी-जल्दी बस-स्टॉप की ओर जा रहे थे।

□ □ □

सारा कलकत्ता न जाने कैसा लग रहा था। सिर्फ़ उसकी अपनी अनिश्चितता के लिए नहीं। यह सारा शहर जिस समय अनिश्चितता के बीच झूल रहा था, उस समय सदाव्रत को लगता, उसकी अपनी ज़िन्दगी की तरह इस शहर का इतिहास भी नक़ली है। यह सड़क, बस, ट्राम—कुछ भी असली नहीं है। मास्टर साहब को जाकर सब-कुछ बतलायेगा—सोचकर ही वह उनके पास गया था, लेकिन फिर लगा कि कहकर कोई भी फ़ायदा

नहीं होगा। एक समय था जब मास्टर साहब उसके घर आते थे। पचास रुपये महीना लेते थे। लेकिन एक दिन पता नहीं क्या सूझी, एकाएक बोले, "अच्छा, देखकर तो आओ, तुम्हारे पिताजी घर में हैं या नहीं ?"

उस समय सदाव्रत छोटा था। घर के अन्दर देख आने के बाद बोला, "नहीं, पिताजी तो नहीं हैं।"

केदार बाबू ने कहा था, "किस समय घर पर रहते हैं, समझ में नहीं आता···बड़ी मुश्किल हुई।"

फिर कुछ सोचकर कहा, "कब आने पर मिल सकेंगे ?"

"सुबह के समय।"

"तब सुबह ही आऊँगा।"

कहकर मास्टर साहब चले गये। दूसरे दिन सुबह होते ही आ पहुँचे। पिताजी उस समय बैठकखाने में बैठे थे। शिवप्रसाद बाबू मास्टर साहब को पहचान ही नहीं पाये। लेकिन इससे कोई फ़र्क नहीं हुआ।

"आप कौन हैं ?"

"मैं खोका का मास्टर हूँ, आपके लड़के सदाव्रत का मास्टर केदारनाथ राय। आपसे कुछ कहना था।"

"क्या कहना चाहते हो, कहिये। रुपये बढ़ाने होंगे ?"

"जी···"

शिवप्रसाद बाबू काम के आदमी हैं, बातों के नहीं। पूरी बात सुने बिना ही बोले, "देखिये, मैं एक साधारण आदमी हूं, चोटी का पसीना एड़ी तक बहाकर पैसा पैदा करता हूँ। मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार आपको दे रहा हूँ। वैसे आपको कितना मिलता है ?"

"पचास !"

"पचास रुपये से एक पैसा भी ज़्यादा देने की ताक़त मेरी नहीं है। अगर होती, तो मैं जरूर देता। आप शायद सोचते होंगे—मैं बिज़नेस करता हूँ, ज़मीन ख़रीदने-बेचने की दलाली करता हूँ, लेकिन वास्तव में बिज़नेस की ओर देखने का समय ही नहीं मिलता। कल ही देखिये न, ऑफ़िस से सीधे मेदिनीपुर चले जाना पड़ा।"

"मेदिनीपुर ? क्यों ? वहाँ शायद आजकल कुछ ज़मीन का काम···"

"नहीं-नहीं, बाढ़ की वजह से। बाढ़ में वहाँ सब-कुछ बह गया है। लेकिन वह सब छोड़िये, इससे ज़्यादा देना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।"

केदार बाबू ने कहा, "मैं वही बात कहने तो आया था, आप मेरी

तनख़्वाह कुछ कम कर दीजिये।"

"कम !" शिवप्रसाद बाबू जैसे चौंक पड़े। अच्छी तरह से केदार बाबू को देखा। साधारण कपड़े। साफ़ घने बाल। पैरों में पुरानी चप्पल। आँख पर मोटा चश्मा। डबल एम० ए० हैं, सुनकर लड़के को पढ़ाने के लिए रख लिया। भले आदमी का दिमाग़ तो ख़राब नहीं हो गया !

"कम कर दीजिये ! मतलब ?"

केदार बाबू ने कहा, "आजकल बाज़ार की जो हालत है, उसे देखते हुए पचास रुपये लेना मेरी ज़्यादती है—आप कुछ रुपये कम कर दीजिये। चारों ओर बाढ़ वगैरह आ रही है। इस हालत में कितनों ही के लिए गृहस्थी चलाना मुश्किल हो रहा होगा, आजकल लोग बड़ी तकलीफ़ में हैं।"

शिवप्रसाद बाबू और उत्सुक हो उठे। बोले, "बैठिये न, खड़े क्यों हैं ?"

ऐसा अजीब आदमी शिवप्रसाद बाबू ने अपनी सारी ज़िन्दगी में नहीं देखा। यह क्या इस शताब्दी का आदमी है ? लेकिन केदार बाबू बैठे नहीं। बोले, "इस समय मेरे पास बैठने का समय नहीं है, दो जगह और पढ़ाने जाना है, दोनों ही लड़के बी० ए० में पढ़ रहे हैं।"

"ट्यूशन करने के अलावा आप और क्या करते हैं ?"

केदार बाबू ने कहा, "समय ही नहीं मिलता; और क्या करूँगा ! मेरे पास क्या एक ही ट्यूशन है—दिन-भर में छः लड़कों को पढ़ाता हूँ।"

"तब तो आप काफ़ी रुपया कमाते होंगे ?"

"सो तो कमाता ही हूँ।"

"कुल मिलाकर कितने रुपये होते हैं ?"

"आप देते हैं पचास और तीन लोग तीस-तीस रुपये देते हैं, इसी में गुज़ारा हो जाता है।"

शिवप्रसाद बाबू ने हिसाब लगाकर कहा, "ये तो केवल एक सौ चालीस रुपये हुए, और दो जने ?"

"उन लोगों की बात छोड़ दीजिये, वे दोनों कुछ भी नहीं दे पाते।"

"तब आपकी गुज़र कैसे होती है ?"

"वही तो बात कह रहा था, बड़ी मुश्किल से गुज़र होती है—हिस्ट्री में कोई-कोई ऐसा समय आता है, जब इसी तरह मुश्किल से गुज़ारा करना होता है, इंडिया में इसी तरह की सिचुएशन एक बार १७७० में आयी थी। इस समय तो फिर भी राशन-शॉप हो गयी हैं। १८६९ के अकाल के समय वे भी नहीं थीं···अच्छा, अब मैं चलूँ, कई काम हैं।"

कहकर केदार बाबू जा ही रहे थे कि शिवप्रसाद बाबू ने रोका। पूछा, "आप एक नौकरी करेंगे ?"

बात सुनकर केदार बाबू भौंचक्के-से खड़े रहे।

"मेरे ऑफ़िस में नौकरी करेंगे ? दो सौ रुपये महीना दूँगा।"

केदार बाबू एकदम से कुछ भी नहीं कह पाये। कुछ देर ठहरकर बोले, "मेरे पास समय कहाँ है ? मैं छः-छः टयूशन करता हूँ, नौकरी कब करूँगा?"

"टयूशन छोड़ दीजिये; टयूशन करके जो मिलता है उससे ज़्यादा पायेंगे, आप-जैसे ऑनेस्ट आदमी की ही मुझे ज़रूरत है।"

"लेकिन लड़कों का क्या होगा ?"

"उन लोगों को और कोई मास्टर मिल जायेगा।"

केदार बाबू हँस पड़े, बोले, "तब तो हो लिया। मेरे सभी स्टूडेंट अच्छे हैं···ख़राब मास्टर के हाथ पड़ते ही उनका कैरियर चौपट हो जायेगा—सभी तो धोखा देते हैं। इसके अलावा यह तो आप जानते ही हैं कि देश की हालत कितनी ख़राब है ! कितनों ही के पास किताबें ख़रीदने को भी पैसा नहीं है।"

कहते-कहते केदार बाबू के चेहरे और आँखों का भाव न जाने कैसा हो गया। वह वहाँ और ज़्यादा नहीं रुके। सदाव्रत को याद है, पिताजी अगले दिन से मास्टर साहब को दूसरी नज़र से देखने लगे। पढ़ने-लिखने की बाबत फिर किसी दिन कुछ नहीं पूछा। केदार बाबू के हाथों उसे सौंपकर जैसे निश्चिंत थे। बचपन से शुरू कर सालों पढ़ाते रहे। एक बार भी फीस बढ़ाने के लिए नहीं कहा। एक दिन भी नागा नहीं किया। बारिश में भी एक टूटा छाता लिए भीगते-भीगते आकर पढ़ा जाते। पढ़ने के सिवाय सदाव्रत जैसे कुछ जानता ही नहीं था। आज इतने दिनों बाद जैसे अचानक दुनिया के साथ पहली मुलाक़ात हुई। पहली दोस्ती। उस पहली निकटता में ही एक ज़ोर का धक्का लगा।

सुबह होते ही माँ कमरे में आयी। सदाव्रत ने सिर उठाकर एक बार देखा, फिर मुँह फेर लिया।

"हाँ रे खोका, कल किस समय आया ?"

सदाव्रत अचानक कोई जवाब नहीं दे पाया।

"क्यों रे, तुझे हुआ क्या है ? कल गाड़ी भी नहीं ले गया ! बात क्या है ? वह कह रहे थे कि तेरी गाड़ी पुरानी हो गयी है, एक नयी गाड़ी ख़रीदनी होगी। गाड़ी के लिए गुस्सा हो तो गाड़ी चाहते ही तो नहीं

मिल जाती ! आजकल एक साल पहले से नाम रजिस्ट्री कराकर रखना होता है।"

फिर भी सदाव्रत ने कुछ नहीं कहा।

तभी एकाएक शिवप्रसाद बाबू कमरे में आये।

"अरे, क्या हुआ ? कल रात इतनी देर तक कहाँ थे ? यार-दोस्तों के चक्कर में पड़ गये हो क्या ?"

सदाव्रत कभी भी पिता के सामने सहज होकर बात नहीं कर पाता था। पिताजी के साथ उसका सम्पर्क ही कितना है ! दिन-भर में उनके साथ मुलाक़ात ही कितनी देर के लिए होती है ! बचपन से ही उसने घर में अकेले किताबों के बीच दिन काटे हैं। दोस्त नहीं, भाई-बहन नहीं। मुहल्ले के लड़के थे, लेकिन उनसे बोलना मना था।

शिवप्रसाद बाबू को क्या उत्तर दे, वह ठीक नहीं कर पाया।

"आज मेरे साथ ऑफ़िस चलना। अब तुम्हें अभी से सब-कुछ समझ लेना चाहिए।"

मन्दाकिनी को भी सुनकर ज़रा आश्चर्य हुआ। बोली, "तुम क्या उसे भी ऑफ़िस में बैठाओगे ?"

शिवप्रसाद बाबू—"तुम चुप रहो, हर बात में क्यों बोलती हो ! वह ऑफ़िस में बैठेगा या पढ़ाई-लिखाई करेगा, यह मैं ठीक करूँगा। मैं जो कुछ कहूँगा वही उसे मानना होगा।"

कहकर शायद जा ही रहे थे, लेकिन जाने कौन-सी बात याद आ गयी कि लौट पड़े। बोले, "मैं आज दस बजे निकलूँगा, तैयार रहना।"

मन्दा ने कहा, "इसकी गाड़ी का क्या हुआ ? तुमने तो कहा था, इसके लिए नयी गाड़ी ले दोगे—गाड़ी के लिए ही तो नाराज़ है।"

सदाव्रत ने इतनी देर बाद सिर उठाया। माँ की ओर देखकर बोला, "मैंने तो गाड़ी के बारे में कब कहा, मुझे गाड़ी नहीं चाहिए ! मेरा क्या दिमाग़ ख़राब हो गया है !"

शिवप्रसाद बाबू लड़के की ओर देखकर अवाक् रह गये। इस तरह से तो कभी बात नहीं करता था खोका ! उनकी आँखों के सामने ही यह लड़का इतना बदल गया ! शक्ल देखकर भी जैसे विश्वास नहीं हुआ। इस लड़के को उन्होंने ज़रा-सा देखा हैं। आज वह इतना बड़ा हो गया। सदाव्रत के चेहरे पर दाढ़ी-मूँछ आ गयी है। इतना लम्बा हो गया है। शिवप्रसाद बाबू के ही क़रीब होगा। उन्होंने लड़के को जैसे दूसरी नज़रों से देखा। दुनिया

इतनी जल्दी-जल्दी बदलती है। इतनी जल्दी वह बूढ़े हो गये।

सारे दिन न जाने कैसी बेचैनी-सी रही। ऑफ़िस जाकर उन्होंने ज़्यादा देर काम नहीं किया। कर ही नहीं पाये। सदाव्रत साथ गया था। दो-तीन टेलीफ़ोन आये। हेड क्लर्क हिमांशु बाबू काम लेकर आये। शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अब यह और क्या ले आये ?"

"कल आपने यह प्लान देखने को कहा था।"

"कौन-से प्लान ?"

"चन्दननगर और दुर्गापुर की ज़मीनवाले—पार्टी जल्दी मचा रही है।"

"पार्टियों को जल्दी मचाने दो, उन लोगों की जल्दीबाज़ी के लिए ही कल्याणी में इतना नुक़सान हो गया, फिर से नुक़सान उठाना है क्या ? दुर्गापुर की ज़मीन की तो दर बढ़ गयी थी, अब क्या हुआ ? स्पेक्यूलेशन क्या इतना ही आसान है ! उस समय तो उन लोगों ने सोचा था, बाद में एकदम से ज़मीन का भाव बढ़ेगा, कहाँ बढ़ा ?"

शिवप्रसाद बाबू ने काफ़ी डांट लगायी। छोटा-सा ऑफ़िस। अन्दर बात करने पर सारे ऑफ़िस में सुनायी देती। सभी चुपचाप सुनते रहे। निःस्तब्ध ऑफ़िस में टाइपराइटर की खट्-खट् कानों को बड़ी ख़राब लगती।

नन्दी बाबू ने टाइपिस्ट की ओर इशारा कर कहा, "ए मिस्टर, इतनी खट्-खट् क्यों कर रहे हो ? सुनते नहीं, अन्दर कितनी चिल्ल-पों मची है !"

"चिल्ल-पों हो रही है तो मैं क्या करूं ?"

"ओफ़, ज़रा धीरे-धीरे काम करिये न, सुनाई नहीं दे रहा।"

□ □ □

वैसे सुनने लायक कुछ है भी नहीं। एकदम व्यापारिक बातें। कलकत्ता के पचास-साठ-सत्तर मील के बीच की सारी बेकार ज़मीन सस्ते भाव पर खरीदकर यहां ज़्यादा दाम पर बेची जाती है। दो सौ रुपये बीघा के हिसाब से खरीदकर यहां दो हज़ार का दाम लिया जाता है। आज न हो, पर एक दिन तो कलकत्ता बड़ा होगा। और भी बड़ा होगा। १९४७ के पार्टीशन के बाद कलकत्ता इतना बढ़ जायेगा, यह क्या कोई सोच पाया था ? कोई भी नहीं सोच पाया। सोच पाये थे सिर्फ़ शिवप्रसाद बाबू।

शिवप्रसाद बाबू की इसी फ़र्म ने लाखों बीघा ज़मीन ख़रीदकर, पोखरे पाटकर, सड़क बनाकर, जंगल को शहर में बदल दिया है। उन सब जगहों का भाव आज एक हज़ार, डेढ़ हज़ार रुपया कट्ठा है। वहीं से इलेक्ट्रिक ट्रेन में चढ़कर आजकल के कलकत्ता के ऑफ़िसों के बाबू लोग डेली पैसेन्जरी

करते हैं। लेकिन उनमें से कोई नहीं जानता, इसी कलकत्ता में अभी कितनी ही रद्दो-बदल होगी। लोग जिस समय उत्तरपाड़ा, बाली, डायमंड हार्बर से पान चबाते-चबाते कलकत्ता आते हैं, जब ख्रुश्चेव, आइज़नहावर और चर्चिल को लेकर बहस करते हैं; जब नेहरू, विधान राय, गोआ को लेकर माथापच्ची करते हैं, उस समय भी दिमाग़ में नहीं आती कि उनकी धरती छोटी हुई जा रही है और शहर में आबादी बढ़ रही है। सोच ही नहीं पाते कि यही कलकत्ता किसी दिन दुर्गापुर तक जा पहुंचेगा। मधुगुप्त लेन की बताशे की दूकान के पीछे जिस समय बहूबाज़ार में संस्कृति-केन्द्र के शंभू आदि ड्रामे के लिए नया नाटक चुनने के लिए मीटिंग करते हैं, वे भी नहीं जान पायेंगे। बंकू बाबू, अविनाश बाबू, अखिल बाबू—हिन्दुस्तान पार्क के पेंशन-होल्डर्स को भी पता नहीं चलेगा कि अन्दर-ही-अन्दर क्या षड्यन्त्र चल रहा है, क्या सलाह हो रही है, क्या जालसाज़ी हो रही है। फड़ेपुकुर लेन के केदार बाबू भी नहीं जान पाते कि ऐंशियेंट हिस्ट्री के पेजों में कब नाथूराम गोडसे ने महाराज अशोक का खून किया और कब भगवान् बुद्ध की हत्या करता है माओ-त्से-तुंग। रातोंरात कलकत्ता बदल जाता है, दुनिया बदल जाती है। सदाव्रत भी बदल जाता है।

शिवप्रसाद बाबू जब सारी दुनिया की चिन्ता में पड़े होते हैं, तब अचानक पाते हैं कि रातोंरात उनका ख़ुद का नक्शा भी बदल गया है। सदाव्रत बड़ा हो गया है।

सदाव्रत सब सुन रहा था। सुन रहा था और देख रहा था। बचपन से ही बाबा के कारोबार की बातें सुन रखी हैं। आँखों से आज ही देखा। आँखों में आतंक और हाथ में कलम लिये लाइन-की-लाइन क्लर्क बैठे हैं, वह उनका भावी मालिक है। उसे भी क्या यहीं एक दिन इन लोगों का भाग्य-विधाता बनकर बैठना होगा! इसी ऑफ़िस के अन्दर ज़मीन के भाव में कमी-बेशी होने वाले बैरोमीटर की ओर नज़र रखे सारी ज़िन्दगी गुज़ारनी होगी! लॉस और प्रॉफ़िट? पौंड, शिलिंग, पैंस की लेज़रबुक!

"चलो!"

अचानक जैसे सदाव्रत की विचारधारा टूट गयी। शिवप्रसाद बाबू खड़े हो गये थे।

"दिस इज़ माई लाइफ़। माई क्रिएशन। अभी से यह सब देखने को मैं तुमसे नहीं कह रहा। यह भी नहीं कह रहा कि तुमको अभी से यहाँ बैठना होगा। लेकिन तुम्हें जानकारी रखना ज़रूरी है। अपने लिए तुम

कौन-सा प्रोफ़ेशन चुनोगे, यह तुम्हीं को ठीक करना होगा। मैं तुम्हारे ऊपर कुछ भी फोर्स नहीं करना चाहता।"

सदाव्रत चुपचाप सब-कुछ सुनता रहा।

"इतने दिन तक मैंने तुमसे यह सब नहीं कहा। लेकिन वर्ल्ड धीरे-धीरे बड़ी हाई होती जा रही है। हमारी हिस्ट्री, बायोग्राफी, महाभारत, गीता, रामायण सब-कुछ फिर से लिखने का समय आ गया है। आज भले ही इंडिया फ्री हो गया है, लेकिन इतने दिनों बाद यह सोचने का टाइम आया है कि हम इस आज़ादी के लायक हैं या नहीं। और लायक बनने के लिए हमें क्या-क्या करना चाहिए। मैं जिस शहर में पैदा हुआ हूं उसमें तुम पैदा नहीं हुए। मैंने जो बंगाल नहीं देखा, तुम वही बंगाल आज देख रहे हो। यह और भी बदलेगा। तुम लोग ज़्यादा उपभोग कर रहे हो, इसी से हम लोगों की अपेक्षा तुम लोगों की जिम्मेदारी भी ज़्यादा है, तुम लोग ही देश को आगे बढ़ाओगे। स्कूल-कॉलिज में इतने दिन जो पढ़ाई-लिखाई की, वह बहुत ही कम है, तुम लोगों की असली एजूकेशन तो अब शुरू हुई है। और कोई भी फ़ादर होने पर तुमको अभी से बिजनेस या नौकरी में लगा देता, लेकिन मैं तुम्हारा कैरियर ख़राब नहीं करना चाहता। तुम सोचो। ख़ूब अच्छी तरह से सोचो कि तुम कौन-सा कैरियर पसन्द करोगे। तुम जो कुछ चाहोगे, मैं वही देने की कोशिश करूंगा। रुपये की चिन्ता न करना, अगर इच्छा हो तो अमेरिका जा सकते हो, यू० के० जा सकते हो। टोकियो या वेस्ट जर्मनी, जहाँ भी तुम्हारी इच्छा हो, जा सकते हो—मैं सब इन्तज़ाम कर दूंगा। आजकल डालर की बड़ी दिक्कत है, एक्सचेंज-ट्रबुल तो है ही, लेकिन तुमको शायद पता ही है, मिनिस्ट्री में मेरा इन्फ्लुएंस है। मैं सब ठीक कर दूंगा, उस बारे में तुम्हें कुछ भी नहीं सोचना होगा।"

फिर अचानक ही क्या मन में आया। बोले, "चाहो तो अपने प्रोफ़ेसर से इस मामले में सलाह ले सकते हो। देखो न, क्या कहते हैं !"

शिवप्रसाद बाबू ने अचानक बात बदल दी।

"अच्छा, तुम्हारे एक ट्यूटर थे, जाने क्या नाम था उनका ?"

"केदारनाथ राय, रीसेंटली उनके साथ मेरी मुलाकात हुई है।"

"क्यों ? उनके साथ मुलाकात कैसे हुई ? वैसे आदमी सच्चा है, वेरी ऑनेस्ट। यह भी मानता हूं कि ऑनेस्टी इज़ द बेस्ट पॉलिसी। आज भी मुझे वह घटना याद है।

"भले आदमी ने एक दिन मेरे पास आकर अपनी फ़ीस में दस रुपये

कम कर देने को कहा। एकदम सिली, तुम्हीं कहो। सुनकर उस दिन मुझे खूब हँसी आयी थी। वैसे मैं हँसा नहीं था, लेकिन उसी दिन समझ गया कि इस आदमी से जीवन में कुछ भी नहीं होगा। उसी समय जान गया, आदमी कम्प्लीट्ली फ़ेल्योर है—उससे कुछ भी नहीं होगा।" इसके बाद कुछ देर के लिए शिवप्रसाद बाबू रुके, फिर कहने लगे, "असल में तुम्हें यह सब बतलाना बेकार है, तुम क्वाइट क्वालीफ़ाइड, क्वाइट एजूकेटेड। ये बातें तुम मुझसे ज़्यादा अच्छी तरह से जानते हो, यह सब ऑनेस्टी आज के ज़माने में नहीं चलती। यह 'सर्वाइवल ऑफ़ द फिटेस्ट' का ज़माना है। यह भी एक तरह की लड़ाई है। यह दुनिया ही लड़ाई का मैदान है। हम लोग जो मांस-मछली खाते हैं, क्यों खाते हैं? क्योंकि खुद ज़िन्दा रहने के लिए उन्हें मारना ही होगा। हिंसा-अहिंसा की बात नहीं है। इसी तरह हम लोगों को मारकर कोई बचे रहना चाहता है तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। उसे क्या दोष दिया जा सकता है ? तुम्हीं बोलो। इसलिए हमें हमेशा अपनी आत्मरक्षा के लिए सतर्क रहना है। इस आत्मरक्षा के लिए कभी-कभी डिस-ऑनेस्ट होना होगा। यह भी एक तरह का धर्म है। और धर्मयुद्ध की बात तो अपने हिन्दू-शास्त्रों में है ही—इसी से कह रहा था कि आदमी एकदम फ़ेल्योर है, कहीं तुम भी उसके प्रिंसिपल पर अमल न कर बैठना। अरे, हाँ—जाने क्या नाम था उसका ?"

"केदारनाथ राय।"

"हाँ, तो वे सब बातें छोड़ो। यह सब कहने के लिए ही आज तुम्हें यहां ले आया। आज गोआ के मामले पर मीटिंग है, मैं यहीं उतरूंगा, इसी हाज़रा पार्क में। कुंज तुम्हें घर पहुंचाकर मुझे यहां से ले जायेगा।"

कहकर शिवप्रसाद बाबू गाड़ी से उतर पड़े। बोले, "कुंज, इधर फुटपाथ पर गाड़ी रखना।"

हाज़रा पार्क में उस समय अपार भीड़ जमा थी। चारों ओर बड़े-बड़े पोस्टर झूल रहे थे: 'पोर्तुगीज सालाजार, गोआ छोड़ो!' 'गोआ के वन्दियों को आज़ाद करो!' शिवप्रसाद बाबू मीटिंग की भीड़ में घुस गये।

कुंज ने गाड़ी स्टार्ट कर दी थी। सदाव्रत ने कहा, "कुंज, अभी घर नहीं जाऊँगा, मुझे ज़रा बहूबाजार-स्ट्रीट छोड़ दो।"

"बहूबाज़ार ?"

"हाँ, वहीं मेडिकल कॉलेज के सामने—मधुगुप्त लेन।"

कुंज ने मिट्टी के पुतले की तरह स्टियरिंग ह्वील घुमा दिया।

□ □ □

मधुगुप्त लेन की गली के नुक्कड़ पर बताशे की दूकान के पीछे उस समय गर्मागर्म बहस छिड़ी हुई थी। क्लब के लिए यह रोज़मर्रा की बात है। जब सारे मेम्बर आ जाते हैं, सब आ पहुंचते हैं, तब शुरू होता है रिहर्सल। वैसे इस बार का ड्रामा नया है। कालीपद साहित्यिक आदमी है। बाम-लॅरी ऑफ़िस में काम करता है। सबसे ज़्यादा जोश उसी को है। बराबर कहता रहता है—"हमेशा कल्चर-कल्चर करते हो, कल्चर का मतलब समझते हो ? इब्सन पड़ा है ? बर्नार्ड शॉ पढ़ा है ? टेनेसि विलियम्स पढ़ा है ? आर्थर मिलर पढ़ा है ?"

मधुगुप्त लेन क्लब के किसी मेम्बर ने यह सब नहीं पढ़ा था। वे लोग ऑफ़िस में नौकरी करते हैं, सिनेमा-ड्रामा देखते हैं, उनकी पहुँच ज़्यादा-से-ज़्यादा शिशिर भादुड़ी और अहीन्द्र चौधरी तक है। डी० एल० राय और क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद का नाम सुन रखा है। उस सब पर कभी सिर नहीं खपाया। उनके लिए पढ़ाई-लिखाई माने बँगला-अखबार।

हाँ, तो उसी कालीपद ने ही एक लेटेस्ट तकनीक का नाटक लिख डाला—'मरी मिट्टी', अर्थात् पाकिस्तान से चले आए रिफ्यूजियों की पृष्ठभूमि पर। नाटक हीरोइन-प्रधान है। शुरू से अन्त तक हीरोइन ही सब-कुछ, दूसरे सारे रोल सेकंडरी हैं। जिस दिन पहली बार नाटक पढ़ा गया, कालीपद की एण्टी-पार्टी के लड़कों को भी कहना पड़ा—'न भाई, तुझमें आर्ट है। मोहल्ले का लड़का कहकर हम लोग अब तक नहीं पहचान पाये।'

उसी दिन से 'मरी मिट्टी' का रिहर्सल शुरू हो गया है। चन्दा हुआ, अभी भी हो रहा है। मुश्किल हुई हीरोइन को लेकर। वह भी मिल गयी। कालीपद कितनी ही लड़कियों को बुला-बुलाकर लाया—देखने-सुनने में सभी ठीक थीं। क़ीमती ब्रेसरी और फ़ॉन्स जूड़े लगाने पर किसी की उम्र का अन्दाज़ करना मुश्किल है। लेकिन दो-एक दिन रिहर्सल होने के बाद ही एक-न-एक ऐब निकल आता। कोई ठीक से 'हिंस्र' का उच्चारण नहीं कर पाती, कोई चन्द्र-बिन्दु बोलने में गड़बड़ा जाती। 'फाँसी' कहते कहते 'फासी' कह जाती।

आख़िर कालीपद ने सारी आशा छोड़ दी। कहता—"देखता हूँ एक स्यूटेबल हीरोइन के लिए 'प्ले' ख़राब होगा—मेरे ड्रामा की थीम ही चौपट हो जायेगी।"

सारे मेम्बर हाथ धोकर हीरोइन की खोज में लग गये। स्टार, रंगमहल और विश्वरूपा में जितने अम्येचोर थियेटर होते, सब-के-सब हीरोइन की

खोज में देखने पहुँचते ।

किसी को दिखलाकर शंभू कहता, "यह कैसी रहेगी ? देख, तो इसके पीछे का लोअर पार्ट बड़ा स्टिफ़ है।"

इसी तरह कोई-न-कोई कमी निकल ही आती । किसी का लोअर पार्ट स्टिफ़ है, किसी का फ्रंट व्यू एकदम फ्लैट होता तो किसी का स्टेपिंग बैड । जैसी होनी चाहिए, वैसी एक भी न मिलती । शंभू जिसको भी क्लब में लाता, कालीपद रिजेक्ट कर देता । आख़िर जब 'भरी मिट्टी' का स्टेज होना लगभग कैंसिल हो गया, कुन्ती नाम की लड़की आयी ।

शंभू दत्त ने कालीपद के कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से पूछा, "क्यों रे, पसन्द है ?"

कालीपद उस समय एकटक कुन्ती की ओर देख रहा था। बैक, फ्रंट, साइड—हर ओर से देख लेने के बाद कालीपद एक कप चाय लेकर सोचता और बीच-बीच में लड़की की ओर देखता ।

चाय पीते-पीते कुन्ती ने पूछा, "इतना क्या देख रहे हो ?"

कालीपद जरा झेंप गया। बात बदलकर बोला, "आपने कौन-कौन से ड्रामों में भाग लिया है ?"

"मैंने बेलेघाटा क्लब के 'स्वर्णलता' नाटक में कनक का पार्ट किया है; तरुण समिति के 'जिसकी जैसी मर्जी' नाटक में अन्नदा का पार्ट किया है; टर्नर मारिसन ऑफ़िस क्लब के 'भक्तिस्नान' ड्रामे में···"

कालीपद ने टोका, "ब्लैंक-वर्स बोल सकती हैं ? "

कुन्ती अनजान की तरह देखती रही, "ब्लैंक-वर्स माने ?"

"गिरीश घोष के नाटक नहीं पढ़े ?"

कालीपद ने चाय की चुस्की ली । गिरीश घोष का नाम नहीं सुना, इन लोगों को लेकर ड्रामा करना भी आफ़त है। क्या कहे, समझ में नहीं आ रहा था।

पास बैठे शंभू ने धीरे से कहा, "इसी को ले-ले, कालीपद, ऐसी फिगर और नहीं मिलेगी—बड़ी मुश्किल से ढूंढा है।"

"शंभू !"

अचानक अपना नाम सुनकर शंभू ने मुड़कर देखा। लेकिन पहचान नहीं पाया। कोट-पैंट-टाई पहने। ध्यान से चेहरा देखकर ही पहचान पाया।

"अरे सदाव्रत, क्या हाल है ?"

शंभू ने उठकर सदाव्रत को दोनों हाथों से जकड़ लिया।

यहाँ लड़कियाँ भी आ सकती हैं, सदाव्रत ने नहीं सोचा था। ज़रा संकोच हुआ। क्लब के सारे मेम्बर उसकी ओर ताक रहे थे।

सदाव्रत ने कहा, "तुझसे एक काम था, ज़रा वाहर आयेगा ? बड़ा ज़रूरी काम है।"

"बाहर क्यों, यहीं बैठ न। उस दिन यहाँ तक आकर चला गया, आज बैठ न ज़रा।" कहकर सदाव्रत का हाथ खींचकर उसे बैठा लिया।

सदाव्रत की बैठने की ज़रा भी इच्छा नहीं थी, लेकिन न बैठना भी अच्छा नहीं लगता था। सदाव्रत को ऐसी अजीब वातावरण में आने का पहले कभी मौक़ा नहीं हुआ था। टीन की छत। दीवार पर बहुत-सी तसवीरें टँगी थीं। रामकृष्ण परमहंस की फोटो। गिरीश घोष की फोटो। और भी कितनी ही फोटो फ्रेम में मढ़ी झूल रही थीं। सिगरेट का धुआँ, चाय के कपों की खन-खन। सभी सदाव्रत की ओर देख रहे थे। शायद इन लोगों के किसी ज़रूरी काम में बाधा पड़ी।

सदाव्रत ने पूछा, "तुम लोग शायद कोई काम कर रहे थे ?"

शंभू ने कहा "नहीं-नहीं, तू बैठ। कालीपद, तू अपना काम कर।"

कालीपद फिर पूछने लगा, "अच्छा, आप गा सकती हैं ?"

कुन्ती ने कहा, "मैंने तो पहले ही शंभू बाबू को बतला दिया था कि मैं गाना नहीं जानती। अगर जानती होती तो स्टार में चांस मिल जाता, आप लोगों के यहाँ नहीं आना होता !"

कालीपद ने कहा, "अरे नहीं, गाने-वाने की मुझे ज़रूरत नहीं है। वैसे ही पूछा, अगर जानती तो 'मरी मिट्टी' में एकाध गीत डाल देता। ख़ैर, कोई बात नहीं है। नाच जानती हैं ?"

सदाव्रत क्लब में बैठा-बैठा बोर हो गया था। वैसे यह भी एक जगह है। मास्टर साहब से जानी दुनिया जैसे यहाँ एकदम झूठी पड़ जाती है। एक ओर हिस्ट्री और दूसरी ओर रियलिज़्म। यह रियलिज़्म ही एक दिन हिस्ट्री हो जायेगा। तब केदार बाबू जैसे लोग उसी पर रिसर्च करेंगे। प्रोफ़ेसर लोग मोटी-मोटी थीसिस लिखेंगे। डॉक्टरेट लेंगे। सदाव्रत ने लड़की को अच्छी तरह से देखा। इतने सारे लोगों के बीच वही एक लड़की थी। कहीं किसी तरह का संकोच नहीं। चाय पीकर एक पान मुंह में रख लिया। सिर्फ़ दस साल पहले तक इस घटना की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी; जबकि आज यह सत्य है—पानी की तरह सहज और सच ! लड़की की बातें कानों तक नहीं आ रही थीं। आँखें, मुंह, चेहरा—कुछ भी

दिखलायी नहीं दे रहा था। लेकिन आज की सारी घटनाओं ने जैसे उसे पागल बना दिया था। सुबह देखा अपना ज़मीन की ख़रीद-फ़रोख़्त का ऑफ़िस, शाम को हाज़रा पार्क की गोआ-अभियान मीटिंग, और उसी के बाद मधुगुप्त लेन के अन्दर बहूबाजार संस्कृति-संघ का यह वातावरण, सब कुछ जैसे बड़ा बेमेल-बेमेल-सा लग रहा था। सदाव्रत को लगा, सब-कुछ जैसे छिन्न-भिन्न है। एक-दूसरे से बिलकुल अलग ! कहीं भी जैसे मेल नहीं है !

अचानक शंभू की ओर घूमकर सदाव्रत ने कहा, "तुझसे एक काम था, शंभू, ज़रा बाहर चल !"

शंभू उठ खड़ा हुआ। बोला, "चल !"

□ □ □

क्लब के बाहर आकर सदाव्रत खड़ा हो गया, शंभू भी आया। पूछा, "क्या कह रहा था ? अब कह !"

सदाव्रत क्या कहते-कहते क्या कह गया, खुद भी नहीं समझ पाया। पूछा, "वह लड़की कौन है ? क्या करने आयी है ?"

शंभू ने कहा, "ट्रायल ले रहा हूँ। पता नहीं, कर पायेगी या नहीं।"

सदाव्रत ने कहा, "कितने ही दिनों से तेरी ओर 'जाऊँ-जाऊँ' सोच रहा था—मैं अब शायद ज़्यादा दिन कलकत्ता नहीं रहूँगा। क्या करूँगा, कुछ तय नहीं कर पा रहा।"

"विलायत चला जा !"

"इस समय कैसे जा सकता हूँ ?"

"क्यों ? अखबार में रोज़ ही तो देखता हूँ, कितने ही लोग जर्मनी, चीन और रूस में घूमने जा रहे हैं। गवैये और साहित्यिक भी जाते हैं, आजकल तो सभी इंग्लैंड-रिटर्न हैं !"

"लेकिन मुझे कौन ले जायेगा ? डालर-एक्सचेंज ही नहीं मिलता, आजकल बड़ी सख़्ती हो गयी है।"

शंभू ने कहा, "इससे तुझे क्या ! तेरे पिताजी तो हैं, उनके साथ तो कितने ही मिनिस्टरों की जान-पहचान है।"

"वह सब रहने दे। असल में मेरा एक और ही प्लान है—तेरे पास मैं एक दूसरे ही काम से आया हूँ। तेरा वह दोस्त कहाँ है ? वही, उस दिन वाला, जो कह रहा था···"

शंभू ने कहा, "कौन ? क्या कह रहा था ? तेरे बारे में ?"

सदाव्रत सहज स्वर में बोला, "वैसे मैंने उसकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया है, उस बात के लिए ज़रा भी 'वरीड' नहीं हूँ, लेकिन बात जब उठी है, तब ज़रूर ही कहीं कुछ हुआ है।"

"कौन-सी बात ?" शंभू कुछ भी समझ नहीं पाकर, सदाव्रत की ओर एकटक देखता रहा।

सदाव्रत ने कहा, "अच्छा, तुझे क्या लगता है ? तू तो काफ़ी दिनों से मुझे जानता है, मेरे पिताजी को भी देखा है।"

"लेकिन असल में बात क्या है ?"

"आज मैं पिताजी के ऑफ़िस गया था। सोचा, बात चलाऊँगा। लेकिन किससे पूछूँ, यही ठीक नहीं कर पाया। लेकिन कभी सोचता हूँ—आदमी का विचार क्या उसकी बर्थ पर ही होगा ? आदमी का बर्थ, उसकी हेरिडिटी—क्या इतना ही इम्पॉर्टेण्ट फैक्टर है ? फिर सोचता हूँ···"

"लेकिन मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा।"

"लेकिन वह आदमी कहाँ है, जिसकी ज़बान से पहली बार सुना कि मैं अपने पिताजी का 'ऐडाप्टेड सन' हूँ। मुझे गोद लिया गया है। लेकिन मैं दत्तक या कुछ भी हूँ, इतना जानने का तो मुझे भी अधिकार है कि मैं किस फ़ैमिली का हूँ—असल में मेरे माँ-बाप कौन हैं ? वे लोग कहाँ रहते हैं ? जिन्दा हैं या नहीं ?"

शंभू ने इतनी देर बाद सदाव्रत के चेहरे की ओर अच्छी तरह से देखा। आश्चर्य ! एक समय इसी सदाव्रत से मुहल्ले के सारे लड़के जलते थे। आज इतने दिनों बाद शंभू को लगा, जैसे सदाव्रत टूट चुका है।

"तेरी गाड़ी का क्या हुआ ?"

"कई दिनों से गाड़ी लेकर नहीं निकलता, भाई। लगता है मेरा कुछ भी नहीं—किसी चीज़ पर भी मेरा राइट नहीं है। मैं 'लाइफ़' की इस दुनिया में जैसे 'ट्रैसपासर' हूँ।"

"अरे, तू भी किन बातों में पड़ा है ! देख तो, तू कितना बड़ा आदमी है ! ऐवरेज लड़कों के साथ खुद का मुकाबला करके देख न ! कितने ही लड़के अपने निजी कमरे में अकेले सो भी नहीं पाते, खाने-पहनने की बात तो छोड़ ही दे। और शायद तुझे नहीं मालूम, मैं जानता हूँ, बस, ट्राम और टैक्सी में जो सफ़ेदपोश टेरिलिन की बुशर्ट और गैबरडिन ट्राउजर पहने घूमते हैं, असल में वे कितने पानी में हैं ? यही देख न, सारे दिन ऑफ़िस में काम करके यहाँ क्लब में आकर बैठते हैं। आखिर क्यों ? हम

लोगों के घरों में जगह नहीं, पाता है ? भाई-बहन लिखते-पढ़ते हैं, इसी से यहाँ पंखे के नीचे कुछ समय काट जाते हैं—हम लोगों की तेरे साथ क्या बराबरी ! अगर तुझे राइट नहीं है तो क्या हम लोगों को राइट है ? असल में हम लोग ही इस वर्ल्ड के ट्रैसपासर हैं।"

कहकर शंभू हँसने लगा। हँसकर शायद कुछ और कहनेवाला था, अचानक रुकना पड़ा। वही लड़की क्लब से निकल रही थी। शंभू भौंचक देखता रहा। लड़की वैनिटी-वेग लिये गली पार कर मधुगुप्त लेन की ओर जा रही थी। शंभू जाकर सामने खड़ा हो गया। पूछा, "यह क्या, आप तो जा रही हैं !"

सदाव्रत ने भी देखा, वही लड़की। कुन्ती।

कुन्ती ने कहा, "देखिये, अभी तक आप लोगों का कुछ भी ठीक नहीं है, पहले ठीक करिये, फिर मुझे बुलाइयेगा !"

कहकर वह जाने लगी। शंभू की बात पर रुकी। बोली, "देखिये, आपने कहा था, इसी से मैं आप लोगों के क्लब में आयी हूं। नहीं तो मुझे और भी काम हैं।"

"लेकिन कालीपद ? कालीपद ने ही तो 'मरी मिट्टी' लिखा है, कालीपद ने आपसे क्या कहा ?"

कुन्ती ने कहा, "देखिये, मैं ब्लैंक-वर्स जानती हूं या नहीं जानती, मैंने गिरीश घोष का नाम सुना है या नहीं सुना, इन बातों का इम्तिहान देने आपके यहां नहीं आयी हूं ! मुझे जो लोग पार्ट देते हैं, वे मुझे देखकर ही पार्ट देते हैं, मेरी परीक्षा लेकर पार्ट नहीं देते !"

"लेकिन ज़रा देर और रुकिये न ! मैं कालीपद से पूछता हूं।"

लेकिन कुन्ती और नहीं रुकी। जाते-जाते कह गयी, "मुझसे काम कराना हो तो पहले मेरे घर जाकर पिचहत्तर रुपये दे आइयेगा, तब काम करने आऊंगी, बिना हाथ में नक़द रुपए आये अब कहीं भी नहीं जाऊंगी।"

कहकर लड़की चली गयी। उसे वापस लाने के लिए शंभू की सारी कोशिश, सारी ख़ुशामद बेकार गयी।

शंभू चुपचाप खड़ा था। सदाव्रत ने कहा, "वह कहां रहती है ? क्या करती है ?"

सड़क की ओर देखते हुए शंभू ने कहा, "करेगी क्या, मुहल्ले-मुहल्ले नाटक करती फिरती है। देखा न, आजकल कितना घमंड हो गया है इन लोगों को ! और कालीपद भी अजीब है, करना तो है अम्येचोर ड्रामा,

उसके लिए इतनी पूछताछ क्यों ? और जब हम लोग पिचहत्तर रुपए से ज़्यादा दे नहीं पायेंगे तो इतनी जांच-पड़ताल की क्या ज़रूरत ?"

"देखने में तो ठीक ही है; शायद पार्ट ठीक से नहीं कर पाती ?"

"अरे, यह बात नहीं है। वह एकदम बर्नार्ड शॉ हो गया है—यही अपना कालीपद ! हम लोग कोई नाट्य साहित्य की उन्नति के लिए तो ड्रामा कर नहीं रहे, कर रहे हैं, जिससे एक रात चॉप-कटलेट खा पायें, जरा मौज-मज़ा करें, और क्या ! इसके अलावा दो नाइट प्ले कर पाने पर गवर्नमेंट से एकाध हज़ार रुपया वसूल कर लेंगे। हां, तो इसीलिए इतनी ख़ुशामद करनी पड़ रही है।"

"उन लोगों को पैसा देना होगा न ?"

"सिर्फ़ रुपये ? रुपये भी देने होंगे, ऊपर से ख़ुशामद भी करनी होगी। गाड़ी से घर तक पहुंचाना भी होगा, सो अलग। आजकल इन लोगों की ख़ूब डिमाण्ड है न ! इससे तो भाई पहले अच्छा था, लड़के दाढ़ी-मूंछ साफ़ कराके लड़की का पार्ट करते थे···ख़ैर, इन सब बातों को छोड़, तू इन बातों पर दिमाग़ मत ख़राब कर।"

सदाव्रत ने कहा, "मैं दिमाग़ नहीं ख़राब कर रहा, लेकिन मैं उस आदमी से एक बार पूछना चाहता हूँ कि उसे ख़बर कहां से मिली ?"

"लेकिन दुलाल-दा तो आज आये नहीं हैं, मैं पूछ रखूंगा।"

"लेकिन मेरा नाम मत लेना। मैंने पूछा है यह न कह देना। मैं फिर आऊँगा। अगर बात सच है तो मुझे सब-कुछ नये सिरे से सोचना होगा, ज़िन्दगी को अब तक जिस तरह देखा है अब उस तरह काम नहीं चलेगा।"

शंभू ने पीठ थपथपाकर उसकी हिम्मत बढ़ायी, "अरे, तू पढ़ा-लिखा है, इन सब बातों पर इतना ध्यान क्यों देता है ? तू हम लोगों की तरह मूर्ख तो नहीं है। मैं तो समझता हूँ दुलाल-दा ने मजाक में कहा होगा !"

"मज़ाक !"

शंभू को शायद अन्दर क्लब में काम था। उसने कहा, "ठीक है, फिर किसी दिन आना, मैं पूछ रखूंगा। अब ज़रा अन्दर जाकर देखूं, आख़िर हुआ क्या ? लड़की नाराज़ होकर क्यों चली गयी ? अच्छा !"

कहकर अन्दर पहुँचते ही देखा—कालीपद गुमसुम बैठा है। सभी का पारा चढ़ा हुआ है। शंभू ने कहा, "क्यों कालीपद, क्या हुआ ? कुन्ती लाल-पीली होकर क्यों चली गयी ?"

कालीपद ने एक सिगरेट सुलगायी। बोला, "ऊँह, उससे नहीं होगा।

मेरा सब्जेक्ट है रिफ़्यूजी-प्रॉब्लम; उसके गले अभी तक वही मेलॉडी लगी हुई है! अरे बाबा,यह डी० एल० राय का 'चन्द्रगुप्त' तो है नहीं, या 'मेवाड़ -पतन' भी नहीं है—काँपती आवाज़ में एक्टिंग करने का समय कब का जा चुका है, कोई ख़बर ही नहीं रखता। इब्सन के आने से ड्रामा की वर्ल्ड में कितना बड़ा रिवोल्यूशन हो गया है, इसका भी किसी को पता नहीं है—और टेनेसि विलियम्स के बाद से अमेरिकन ड्रामा होलसेल चेंज हो गया है। बाँगला देश में कोई इसे जानता भी नहीं।"

उस ओर शक्तिपद बैठा था। उसने कहा, "लेकिन हम लोग ड्रामा फ़ेस्टीवल में तो नाम लिखा नहीं रहे हैं। हम लोग तो मज़ा करने के लिए ही ड्रामा कर रहे हैं।"

कालीपद गुस्सा हो गया। बोला, "तब वही करो। मौज़ करके ही अगर देश की उन्नति करना चाहते हो, करो, लेकिन बाबा, मुझे तब माफ़ करो। इससे ही अगर बंगाली जाति का नाम रोशन होता हो तो वही करो, कोई भी नहीं रोकेगा। लेकिन मैं कहे देता हूँ, एक दिन इस बंगाल में ही इब्सन, टेनेसि विलियम्स और आर्थर मिलर पैदा होंगे। मेरी यह 'मरी मिट्टी' ही एक दिन बंगाली कल्चर का 'गौरव' होगी।"

फिर शंभू की ओर हाथ बढ़ाकर बोला, "ला, एक सिगरेट निकाल, दम लगाता-लगाता घर जाऊँ।"

□ □ □

कुंज को यहाँ आते ही छोड़ दिया था। चलते-चलते सदाव्रत मधुगुप्त लेन पार कर ट्राम के रास्ते पर आ गया। इस ओर फुटपाथ पर चलना मुश्किल है। रास्ते में ही बाज़ार लग गया है। एक बार बस में चढ़ने की कोशिश की। झूलते-लटकते लोग। बड़ी-बड़ी डबल-डेकर बस। ट्राम से जाने पर एस्प्लेनेड चेंज करना होगा। क्या करे, सदाव्रत ठीक नहीं कर पा रहा था। काफ़ी देर फुटपाथ पर चलता रहा। सीधे एकदम दक्षिण की ओर। अचानक एक खाली टैक्सी रोककर सदाव्रत बैठ ही रहा था। टैक्सीवाले ने पूछा, "कहाँ जायेंगे?"

"बालीगंज!"

लेकिन दरवाज़ा खोलकर टैक्सी में बैठते ही एक गड़बड़ हुई।

"देखिये, ये लोग मेरे पीछे लगे हैं!"

सदाव्रत पीछे देखते ही भौंचक्का रह गया। वही लड़की। कुन्ती को भी आश्चर्य हुआ। शंभू बाबू के क्लब में इसी आदमी को तो देखा था!

"कौन ? पीछे-पीछे कौन आ रहा है ?"

कुन्ती ने पीछे की ओर इशारा कर दिया। अँधेरे के कारण साफ़ दिखलायी नहीं दे रहा था। फिर भी सदाव्रत उस ओर बढ़ा। लेकिन भीड़ में कुछ भी पता नहीं चला। कुछ लोग सिर्फ़ सन्देहजनक लगे।

सदाव्रत ने पूछा, "कहाँ ?"

शायद कुन्ती भी खोज रही थी। बोली, "वह है न !"

लेकिन भीड़ में उसने किसे दिखलाया, ठीक से समझ में नहीं आया। सभी इनोसेंट। सीधे-सादे आदमी। अपने-अपने काम से जा रहे थे। कोई भी अपराधी-जैसा नहीं लगता था। कम-से-कम किसी के चेहरे से तो ऐसा नहीं लगता था। और खड़े रहना भी ठीक नहीं था। साथ में कुन्ती भी थी। सदाव्रत लौटकर टैक्सी की ओर आया। पूछा, "तुम कहाँ जाओगी ?"

कुन्ती ने कहा, "आप अगर ज़रा छोड़ देते मुझे..."

"कहाँ रहती हो तुम ?"

"आप किस ओर जायेंगे ?"

टैक्सी काफ़ी देर से खड़ी थी। सदाव्रत ने कहा, "तुम बैठो, मुझे बालीगंज जाना है। तुम्हें जहाँ जाना हो, छोड़ दूँगा।"

टैक्सी चलने लगी। सीधे वेलिंग्डन स्क्वायर की ओर जाकर मोड़ पर घूमी। कुन्ती चुपचाप बैठी थी। सदाव्रत ने अचानक पूछा, "उन लोगों ने क्या तुमको लिया नहीं ?"

कुन्ती ने सदाव्रत की ओर देखा। बोली, "आप भी तो उसी क्लब के मेम्बर हैं ?"

"मेम्बर ! मैं तो वहाँ किसी को पहचानता भी नहीं। शंभू से थोड़ा काम था, इसी से गया था।"

कुन्ती ने कहा, "आप शायद नहीं जानते, वहाँ फिर मत जाइयेगा !"

"क्यों ?"

"वे सब कम्युनिस्ट हैं !" कुन्ती ने कहा

सदाव्रत को इससे पहले शायद इतना आश्चर्य कभी नहीं हुआ था। कम्युनिस्ट ! उसने ज़रा ध्यान से लड़की की ओर देखा। जाने कैसा सन्देह-सा होने लगा। चेहरे से तो वैसी नहीं लगती। अब समझ में आया—लोग पीछे क्यों लगे थे।

लेकिन कुन्ती ने खुद ही सफ़ाई दी। बोली, "शायद आप सोचते होंगे मैं बेकार में उन लोगों को बदनाम कर रही हूं। शायद सोचते होंगे मेरा

कोई ख़राब मतलब है, लेकिन विश्वास करिये, मैं किसी भी दल की नहीं हूं। मैं कांग्रेस के साथ भी नहीं, कम्युनिस्टों के साथ भी नहीं हूं। सिर्फ़ पैसे के लिए, पेट पालने के लिए यह पेशा करना पड़ रहा है। मेरी साड़ी, होंठों की लिपस्टिक देखकर शायद आपको लगेगा कि मेरी हालत अच्छी है, लेकिन सच मानिये, मेरे इस बैग में सिर्फ़ तीन रुपये हैं। सोचा था, इन लोगों से आज कुछ एडवांस मिलेगा, लेकिन कुछ भी नहीं मिला। ऊपर से मेरी पढ़ाई-लिखाई और बुद्धि पर टिप्पणी कसी। यही सब देखकर मुझे गुस्सा आ गया, मैं चली आयी।"

सदाव्रत चुप ही रहा। सच ही तो लड़की ने सिल्क की साड़ी पहन रखी है, वह इतनी देर बाद दिखलायी दी। होंठों की लिपस्टिक भी अब साफ़-साफ़ नज़र आने लगी। बदन में सेंट लगाया है। खुशबू आ रही थी।

एक और मोड़ आते ही सदाव्रत ने पूछा, "तुम कहां जाओगी ?"

लड़की ने कुछ भी ज़वाब नहीं दिया। अचानक सदाव्रत ने देखा—लड़की की आंखें भरी हैं। बीच-बीच में चेहरे पर सड़क की रोशनी आकर पड़ती। लेकिन क्या कहे, क्या कहना ठीक होगा—कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। लड़की का भी आखिर इरादा क्या हो सकता है...

अचानक लड़की सीधे होकर बैठी, "यहीं।"

"यहीं ? क्यों ? अचानक क्या हो गया ?"

कुन्ती ने कहा, "अचानक नहीं, आपको मैं जानती-पहचानती नहीं, इस तरह आपसे सब-कुछ कहना भी नहीं चाहती थी। आपने ही मुझे गाड़ी में क्यों बैठाया ? मैं चोर, डाकू या ख़राब लड़की भी तो हो सकती हूं ? आप मुझे पहचानते तक नहीं हैं, आपको ब्लैक-मेल भी तो कर सकती हूं ?"

'ब्लैक-मेल' शब्द सुनकर सदाव्रत को और भी आश्चर्य हुआ। बोला, "ब्लैक-मेल शब्द के माने जानती हो ?"

"ठीक-ठीक नहीं जानती, लेकिन कितने ही मुंह सुना है, मैं भी तो वही हो सकती हूं ? आपने मुझ पर विश्वास कर गाड़ी में क्यों बैठा लिया ?"

सदाव्रत ने कहा, "गाड़ी में बैठने के लिए तुमने ही तो कहा था !"

"लेकिन मैं तो आपके लिए अनजान हूं। इस तरह अनजान लड़कियों को गाड़ी में बैठाकर मुश्किल में पड़ सकते हैं, यह भी क्या आपको मालूम नहीं ?"

सदाव्रत हँस पड़ा।

बोला, "अपनी फ़िक्र मैं कर लूंगा, तुम्हें चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं

है । तुम्हें जाना कहां है, मुझे बतला दो, मैं पहुंचा दूंगा ।"

कुन्ती तब तक थोड़ी सम्हल चुकी थी । बोली, "मैंने उन लोगों को कम्युनिस्ट कहा है, क्या इसीलिए आप नाराज़ हो गये हैं ?"

"नाराज़ ? लेकिन कम्युनिस्ट माने क्या होता है, तुम जानती हो ?"

कुन्ती ने सदाव्रत की ओर देखा । फिर पूछा, "आप भी क्या कम्युनिस्ट हैं ?"

"देखता हूं, तुम कम्युनिस्टों से काफ़ी नाराज़ हो ! कम्युनिस्टों के साथ तुम्हारा इतना मेल-जोल कैसे बढ़ा ?"

कुन्ती ने कहा, "हम लोगों का मेल-जोल नहीं है तो किसका होगा ? पता है हम अपना वतन छोड़ कर यहीं चले आये हैं, एक कपड़े में, सब-कुछ छोड़कर । यहां हम लोग जानवरों की तरह, गाय-बकरियों की तरह गुज़र कर रहे हैं । जहां आये हैं, वह क्या अपना देश है ? यहीं चारों ओर रोशनी, चमक-दमक, मोटरें—यह सब क्या हमारा अपना है ?"

"तुम लोगों का नहीं है तो किसका है ? यह देश तुम लोगों का ही तो है ! और किसका है ?"

"अमीरों का ! वे लोग क्या हम लोगों के बारे में सोचते हैं ? हम लोग क्या खाते हैं, किस तरह ज़िन्दा हैं, कोई परवाह करता है ? वे लोग क्यों परवाह करने लगे ! हम लोग मरें या जियें, उन लोगों का क्या जाता है ?"

सुनकर सदाव्रत को जैसे हँसी आने लगी । थोड़ा मज़ा भी लगा । पूछा, "यह सब तुम्हें किसने सिखलाया ? कम्युनिस्टों ने ?"

कुन्ती ने कहा, "सिखलायेगा कौन ? हम लोगों के क्या आँखें नहीं हैं ? हम लोग क्या अख़बार नहीं पढ़ते ? हम लोग ग़रीब हैं, इसलिए क्या हमारे दिमाग़ नहीं है ? कलकत्ता आये आज सात साल हो गये । जिस समय आयी, फ्राक पहनती थी, अब साड़ी पहनती हूँ । बहुत-कुछ देखा-सुना है, तब भी क्या कहना चाहते हैं कि दूसरे के कन्धे पर रखकर बन्दूक चला रही हूँ ?"

टैक्सी-ड्राइवर सरदार था । एक मोड़ के पास अचानक रुक गया ।

"किधर जाना है, सा'ब ?"

ड्राइवर को जगह बतलाकर सदाव्रत ने कुन्ती से पूछा, "तुम कहां रहती हो ?"

कुन्ती ने कहा, "बालीगंज में रहना मेरे बूते के बाहर है ।"

"वह ठीक है, फिर भी जगह का कुछ नाम तो होगा ?"

"समझ लीजिये फुटपाथ पर।"

"लेकिन मैं बड़ा आदमी हूँ, यही कैसे सोच लिया ? मेरी सूरत देखकर? कपड़े देखकर ?"

कुन्ती ने कहा, "वह तो मालूम नहीं। और आप अमीर आदमी हैं या ग़रीब, यह जानने की भी मुझे कोई ज़रूरत नहीं है। उन लोगों के क्लब से निकलने के बाद से मन बड़ा ख़राब हो गया था, इसी से गुस्से में बहुत-कुछ कह गयी। आप बुरा न मानियेगा।"

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहे। फिर सदाव्रत ने ही पहले शुरू किया। कहा, "अभी तुम्हारी उम्र कम है, लेकिन एक बात याद रखना—आदमी का ऊपरी रूप ही सब-कुछ नहीं है। सुख-दुःख, ख़ुशी-रंज यह सब ग़रीब-अमीर की परवाह नहीं करते। मैं ज़िन्दगी में कितने ही ग़रीब आदमियों से भी मिला हूँ और कितने ही रईसों को भी जानता हूँ, फ़र्क सिर्फ़ बाहर ही पाया, भीतर दोनों ही एक हैं।"

"अगर आप मेरी हालत जानते होते तो यह बात नहीं कहते।"

फिर एकाएक सदाव्रत की ओर देखकर बोली, "जानते हैं, बिना खाये रहना क्या चीज़ होती है ? जानते हैं, फाके करना किसे कहते हैं ? और किसे कहते हैं खाली पेट भरे होने का बहाना करना ?"

कहकर ज़रा देर चुप रही, फिर अचानक बोली, "अच्छा, नमस्ते, हाज़रा पार्क आ गया है, टैक्सी रोकने को कहिये।"

तभी एक आवाज़ सुनकर दोनों चौंक पड़े। पार्क में लगे लाउडस्पीकर से भाषण की आवाज़ आ रही थी। आगे-पीछे हर तरफ भीड़ थी। अन्दर ऊँचे प्लेटफ़ार्म पर खड़े वक्ता लेक्चर दे रहे थे—और हज़ारों लोग मुग्ध होकर सुन रहे थे।

वक्ता कह रहे थे, "फ़िलॉसफर कांट रोज़ सुबह ठीक पाँच बजे घूमने जाते थे। लेकिन उस दिन एकाएक ख़बर आयी, फ्रांस की जनता के हाथों अपना सिंहासन छोड़कर वहाँ का राजा बन्दी हो गया। ख़बर आयी, बैन्टिल का पतन हो गया। फ्रांस की राज्यशक्ति के इस पतन ने सारी दुनिया में खलबली मचा दी। ज़िन्दगी में सिर्फ़ इसी दिन उन्हें घूमने जाने में देर हुई। वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज़, हेज़लिट ने इस विद्रोह का स्वागत किया। सभी ने मान लिया कि ख़ून-ख़राबी में से अतीत के साथ जो विच्छेद आया, वह विश्व के लिए मंगलकारी होगा। भारत में आज हम पूँजीपति-वर्ग द्वारा

शोषित समाज-व्यवस्था नहीं चाहते। शोषण-रहित समाज-तन्त्र ही हमारा लक्ष्य है। जो धर्म खटमल को तो खून पिलाये और आदमी का खून चूसे, उसे हम अहिंसा नहीं मानते···"

चारों ओर से पटापट तालियाँ पिटने लगीं।

वक्ता ने फिर से बोलना शुरू किया, "आज देश आज़ाद है, हमारी आज़ादी में कहीं भी कोलोनियलिज्म की बू नहीं है। लेकिन इसी देश के एक हिस्से में आज भी पुर्तगीज़ कॉलोनी का ज़हरी फोड़ा रह गया है। वैसे आज यह बहुत ही छोटा और मासूम लगता है, लेकिन मैं कहे देता हूँ, एक दिन यह ज़हरी फोड़ा ही जानलेवा हो जायेगा। आज हम गोआ की बात कर रहे हैं। भारत सरकार इसे मुक्त करने का भार अगर अपने ऊपर नहीं लेना चाहती तो हमारे ऊपर छोड़ दे। हम क्रान्ति चाहते हैं, और क्रान्ति का क्या मूल्य देना होता है वह भी जानते हैं। इसी क्रान्ति के सैनिकों के लिए हम···"

गाड़ी अभी भी भीड़ काटती चल रही थी।

कुन्ती ने एकाएक मुँह खोला, "देखा, ये लोग भी कम्युनिस्ट हैं!"

"किसने कहा, कम्युनिस्ट हैं?"

"मुझे मालूम है, मैं सबको जानती हूँ।"

"तुम उन्हें कैसे जानती हो?"

कुन्ती फिर से हँसी। बोली, "मैं सारे क्लबों में तो जाती हूँ। मेरा धन्धा ही तो नाटक करना है। सोचते होंगे—दूसरी औरतों की तरह मैं भी रसोईघर में दाल-भात पकाती हूँ और अखबार पढ़ती हूँ! आप भी जो नहीं जानते मैं जानती हूँ, आपसे बहुत ज़्यादा जानती हूँ। इसी से तो कह रही थी···।"

सदाव्रत बोला, "जानती हो वह कौन हैं? वही जो भाषण दे रहे हैं? वह हैं मेरे पिता। मैं शिवप्रसाद गुप्त का लड़का हूँ।"

सामने साँप देखकर भी लोग इतना नहीं डरते। अँधेरे में सदाव्रत ठीक से देख नहीं पाया, लेकिन नाम सुनते ही कुन्ती डर से सिकुड़ गई।

हाज़रा पार्क में बाबू शिवप्रसाद गुप्त अभी भी बोले जा रहे थे—"गोआ हमारा है—हमारी मातृभूमि का अभिन्न अंग है। यही अभिन्न अंग आज दूसरे के पंजे में है। इसे छुड़ाना ही होगा, जरूरत होने पर क्रान्ति भी करनी होगी। ज्ञान, कर्म और त्याग-निष्ठा अगर हमारे जीवन में नहीं है, चरित्र की दृढ़ बुनियाद अगर हम नहीं बना पाते हैं तो एक बार फिर

ज़रा-सी ब्रिटिश शक्ति की तरह यह गोआ ही सारे भारत को हज़म कर जायेगा, यह चेतावनी दिये देता हूँ···"

□ □ □

दुनिया में बहुत-कुछ होता है जो नज़र नहीं आता। या नज़र आने पर भी उसका महत्त्व समझ में नहीं आता। १९४७ के बाद से शहर में यही चल रहा था। बात न चीत, कोई-कोई आदमी एकाएक बड़ा आदमी हो गया, और दूसरा शिक्षा, बुद्धि और क्षमता के होते हुए भी धीरे-धीरे नीचे की ओर जाने लगा। या एक दूसरी श्रेणी कोई सहारा न पाने के कारण अफ़ीम की पीनक में डूबी थी। दूसरी ओर अख़बार की कोई बड़ी-सी ख़बर थोड़ी देर के लिए लोगों को चौंका देती। रूस के स्टालिन की मृत्यु हो गयी या रूस ने स्पूतनिक छोड़ा। सुबह-सुबह जो लोग बस-ट्राम में झूलते-झूलते ऑफ़िस जाते, वे साथ में अख़बार लेकर चलते। समय मिलने पर कभी पढ़ लेते। कभी बड़ी चमक-दमक वाली कोई फ़िल्म आने पर सिनेमा-घरों के सामने जाकर लाइन लगाते। देश आज़ाद है, अब क्या चिन्ता ! कंट्रोल ख़त्म हो गया, अच्छा ही हुआ। सीमेंट, चीनी, कपड़ा सभी चीज़ों के दाम बढ़ गये। ठीक है, बढ़ें, वही लेकर जिसे सिर खपाना है, खपाये। 'यह आज़ादी झूठी है'—कहकर चिल्लानेवाले चिल्लाएँ। मोनूमेंट के नीचे लाउडस्पीकर पर गरमागरम भाषण दें। हम लोगों से वह सब नहीं होगा, ज़रूरत भी नहीं है। हम लोग हमेशा खाते-पीते, रोते-गाते हैं, अब भी वही करेंगे। बख़्तियार ख़िलजी के समय से कल की ब्रिटिश हुकूमत तक वही किया, आज भी वही करेंगे। हम लोग अपने झंझटों से ही परेशान हैं, जनाब ! यह सब सोचने का समय हमारे पास कहाँ है ?

उस दिन केदार बाबू यही सोच रहे थे। उन्हें लड़कों को पढ़ाना होता है। ये सब बातें भी तो हिस्ट्री की हैं। मन्मथ ने ध्यान दिला दिया, अच्छा ही हुआ।

यह सब सोचते-सोचते ही घर लौट रहे थे। रास्ते में बड़ी भीड़ थी। हाथ में बहुत-सी किताबें लिये मन-ही-मन सोचते आ रहे थे। 'वार' के बाद एक नयी पुस्तक निकली है, 'ए सर्वे ऑफ़ वर्ल्ड सिविलाइज़ेशन'—यह पुस्तक पढ़नी होगी। आदमी को भी कितनी परेशानियाँ हैं। केदार बाबू चलते-चलते रुके गये। सारी गड़बड़ इस नेपोलियन के कारण ही हुई। फ्रैंच रिवोल्यूशन जैसी घटना को एकदम से उलट दिया !

सोचते-सोचते कब घर के पास आ गये, ध्यान ही नहीं रहा। दरवाज़ा

खटखटाते-खटखटाते आवाज़ दी, "शैल ! ओ शैल !"

अन्दर से दरवाजा खोलकर किसी ने पूछा, "किसे चाहते हैं ?"

केदार बाबू सकपका गये। किसे चाहते हैं—मतलब ? अपने घर आने में भी मुश्किल !

केदार बाबू ने पूछा, "आप कौन हैं ?"

उन्होंने भी पूछा, "आप कौन हैं ?"

"अरे, क्या अपने घर में भी नहीं घुसने देंगे ?"

तभी शायद अन्दर नज़र पड़ी। सब-कुछ नया-नया-सा लगा। सोचने पर कुछ अजीब-सा लगा। क्या भूल से दूसरे के घर में घुस आये ! बीस साल से इस घर में रह रहे हैं, फिर भी यह ग़लती कर बैठे ! चारों ओर देखकर बोले, "रुकिये, मैंने शायद ग़लती की है।"

घर के मालिक ज़रा मुसकराये। फिर पूछा, "आप शायद इस मोहल्ले में नये हैं ?"

केदार बाबू ने कहा, "नया क्यों होने लगा ? इस फड़ेपुकुर स्ट्रीट में रहते मुझे बीस साल हो गये हैं।"

"यह फड़ेपुकुर स्ट्रीट तो नहीं है, यह तो मोहनबागान-रो है।"

"अज़ीब तमाशा है !" केदार बाबू ने कहा, "बुरा न मानियेगा, ज़रा गोलमाल हो गया।"

कहकर सड़क पर आ गये। इस बार भूल करने का चांस नहीं आया। अपने घर के सामने पहुँचते ही हरिचरन बाबू ने कहा, "अरे, मास्टर साहब···"

केदार बाबू ने कहा, "कौन, हरिचरन बाबू ! आज तो गजब हो गया, मैं ग़लती से आज मोहनबागान-रो पहुँच गया, वैसे आज मुझे यहाँ रहते बीस साल···"

हरिचरन बाबू ने बीच में ही रोक दिया। बोले, "आपसे एक बात कहने के लिए कई दिन से चक्कर काट रहा हूँ। आप तो मिलते ही नहीं। काफ़ी अरसे पहले मैंने आपसे कहा था, शायद याद होगा···"

केदार बाबू—"हाँ-हाँ, याद क्यों नहीं होगा ?"

"आपने कहा था, मकान खाली कर देंगे।"

केदार बाबू ने हामी भरी, "हाँ, कहा तो था।"

"और यह भी कहा था कि दो-एक महीने में ही छोड़ देंगे। सो आज क़रीब एक साल हो आया, लेकिन अब और राह देखना तो मेरे लिए

मुश्किल है। आखिर मैं भी तो साधारण आदमी हूँ, ज़रा मेरी भी तो सोचिये। कितनी मुश्किल से गुज़र कर रहा हूँ वह मैं ही जानता हूँ।"

केदार बाबू ने कहा, "आप बिलकुल ठीक कहते हैं। जैसा समय आया है, गुज़र करना बड़ा ही मुश्किल हो गया है। मैं एक लड़के को पढ़ाता हूँ, उसका नाम है बसन्त। लड़का खूब ही अच्छा है, ब्रिलियंट बॉय। पता है, उसके पिता ने आज कह दिया—समय बड़ा ख़राब है, मेरी छः महीने की तनख्वाह नहीं दे पायेंगे।"

हरिचरन बाबू बोले, "वह सब सुनकर तो मेरा कोई लाभ होगा नहीं; आप घर कब खाली कर रहे हैं, यह बतलाइये? एक डेफ़िनेट-डेट बतला दीजिये, अब और नहीं रुक पाऊँगा।"

"डेफ़िनेट-डेट?"

केदार बाबू सोचने लगे। फिर बोले, "ज़रूर, कोई डेफ़िनेट-डेट तो देनी ही चाहिए। आपको काफ़ी तकलीफ़ हो रही है, समझ रहा हूँ। लेकिन मैं भूल गया था चटर्जी साहब, एकदम भूल गया था। कई दिनों से एक और ही बात सोच रहा था। हिस्ट्री में एक समय आता है जब इसी तरह की स्केयरसिटी, इसी तरह के ख़राब दिन आते हैं। एक बार ऐसा ही समय आया था सेवेन्टीन-फिफ्टी-सेवेन में। अब इस युद्ध के बाद, आप सोचते हैं क्या शान्ति आयी है? बेकार की बात—देखिये न, जर्मनी में पार्टीशन हो गया, इंडिया में पार्टीशन हो गया, कोरिया में पार्टीशन हो गया…"

हरिचरन बाबू ने बीच में ही कहा, "ये सब बातें मैंने पहले भी कितनी ही बार सुनी हैं। अब आप मेरा मकान खाली कर दीजिये।"

केदार बाबू ने कहा, "ज़रूर खाली कर दूँगा। मैंने कब कहा कि आपका मकान नहीं छोड़ूँगा!"

"लेकिन कब छोड़ेंगे, यह भी तो बतलाइये? मुझे इसी महीने के अन्दर मकान चाहिए।"

केदार बाबू बोले, "खाली कर दूँगा। कह तो रहा हूँ इसी महीने…"

"काका…!"

अन्दर से एकाएक शैल की आवाज़ आयी। केदार बाबू ने एक बार अन्दर की ओर देखा। बोले, "देखते हैं मेरी भतीजी ने मेरी आवाज सुन ली है…आ रहा हूँ री, चटर्जी साहब के साथ दो-एक बात कर रहा हूँ।"

"काका, तुम ज़रा अन्दर तो आओ—एक काम है।"

केदार बाबू ने अन्दर जाकर पूछा, "क्यों री, क्या हुआ?"

"अच्छा, तुम क्या हो? तुमने क्या सोचकर इसी महीने के अन्दर मकान खाली कर देने को कह दिया है? यह घर छोड़कर कहाँ जाओगे? कहाँ मिलेगा घर? कलकत्ता में मकान मिलना क्या इतना ही आसान है?"

"लेकिन उसे बड़ी तकलीफ़ हो रही है। उससे वायदा कर लिया है।"

"तुमने वायदा क्यों कर लिया? इसीलिए तो मैंने तुम्हें बुलाया। जाओ, उससे जाकर कह दो कि जब मकान मिलेगा तब जाएँगे।"

"यह कैसे हो सकता है! मैंने उससे वायदा जो कर लिया है।"

"क्या वायदा ही सब-कुछ है? मकान छोड़कर हम लोग जाएँगे कहाँ?"

"उसके लिए कुछ-न-कुछ तो होगा ही, पता है आज भवानीपुर होकर आ रहा था, सुना खूब मीटिंग-वीटिंग हो रही है।"

"किस बात की मीटिंग?"

"और किसकी, गोआ की! इन लोगों की अक्ल तो देख, इंडिया में आज भी जमे हैं! सभी चले गये, ब्रिटिश गये, फ्रैंच गये, पुर्तगीज अभी जमे रहना चाहते हैं—यह तो ठीक बात नहीं है। हम लोगों को जो तकलीफ़ हो रही है वह नहीं समझते—यही जिस तरह हम लोगों के कारण चाटुज्जे साहब को हो रही है। हम लोग एकदम जमकर बैठे हैं।"

शैल और नहीं सह पायी। बोली, "तुम रुको तो! गोआ के लिए क्या हो रहा है, यह जानकर मुझे क्या करना है! तुम जाकर चाटुज्जे साहब से कह आओ कि हम लोगों को जब मकान मिलेगा तभी जाएँगे।"

"लेकिन मैंने तो कह दिया है!"

"तुम्हारे कहने की कोई क़ीमत नहीं है। जाओ, जल्दी से कह आओ।"

केदार बाबू ने कहा, "जाऊँ?"

"ज़रूर जाओगे, तुम तो सारे दिन बाहर रहते हो, और मैं यहाँ कितनी मुश्किल से समय काटती हूँ, तुम्हें क्या पता! मकान छोड़कर अब अगर सड़क पर खड़े होना पड़े, तो क्या करोगे? एक महीने के अन्दर तुम्हें कहाँ मकान मिलेगा? जाओ!"

केदार बाबू बाहर आये। हरिचरन अब वहाँ नहीं थे। चले गये थे।

शैल ने कहा, "ज़रा आगे बढ़कर देख आओ न, अभी भी शायद ज़्यादा दूर नहीं गये होंगे। तुम जाकर कह आओ कि जब मकान मिलेगा तभी जाएँगे, इससे पहले जाना सम्भव नहीं होगा। फिर हम लोग बिना भाड़ा दिये तो रह नहीं रहे। हर महीने किराया तो ठीक से दे रहे हैं।"

केदार बाबू उसी हालत में फिर से सड़क पर आये। फड़ेपुकुर स्ट्रीट

पर भी अनगिनती लोग थे। केदार बाबू सोचने लगे—सच ही तो काफ़ी दिन पहले चाटुज्जे ने मकान खाली करने को कहा था। उसे घर की ज़रूरत है। इसलिए उसने कोई ख़राब बात तो नहीं की। फिर भी अगर एक महीने के अन्दर घर न मिले तब ? "चाटुज्जे साहब ! चाटुज्जे साहब !"

सामने ही हरिचरन बाबू जा रहे थे। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा।

केदार बाबू ने कहा, "देखिए, चाटुज्जे साहब···एक बात···"

कहते-कहते रुक गये। कोई और था। अनजान आदमी भी सकपका गया। केदार बाबू ने कहा, "मैं ठीक से पहचान नहीं पाया, मैंने सोचा हरिचरन बाबू हैं—आप कुछ सोचिएगा नहीं···"

ट्राम-लाइन तक जाकर केदार बाबू लौट रहे थे। मकान-मालिक महीने की ठीक दूसरी तारीख़ को बराबर किराया लेने आता। केदार बाबू बहुत पुराने किरायेदार हैं। बीस रुपया महीना किराया देते हैं। तीन कमरे। बहुत पुराना मकान है। शैल ने कितनी बार ज़रा मरम्मत कराने के लिए कहा है। कभी सफ़ेदी भी नहीं कराता, मरम्मत की बात कहते ही घर छोड़ देने को कहता है। क्या किया जाय ! वैसे उसे तकलीफ़ तो ज़रूर हो रही है। हम भी तो पुर्तगीज़ लोगों से गोआ छोड़ देने को कहते हैं।

लौट ही रहे थे। एकाएक दाहिनी ओर से कुछ गोलमाल सुनाई दिया। केदार बाबू ने चश्मा ठीक कर लिया। बड़ा लम्बा प्रॅसेशन आ रहा था। अब फिर किस बात का प्रॅसेशन ? गली के आस-पास जो इधर-उधर जा-आ रहे थे धमककर खड़े हो गये।

"क्या हुआ, जनाब ? किस बात का प्रॅसेशन ?" केदार बाबू ने मुड़कर पास के आदमी की ओर देखा, "कौन आया है ?"

थोड़ी दूर से आवाज आ रही थी :

'हमारी माँगें पूरी करो !'

'नहीं तो गद्दी छोड़ दो !'

"ये लोग कौन हैं ? क्या कह रहे हैं ?"

'अत्याचारियों को सज़ा दो—सज़ा दो !'

कोई नहीं समझ पा रहा था ये लोग कौन हैं। देखते-देखते जुलूस काफ़ी पास आ गया। केदार बाबू देखने लगे—जुलूस की लाइन के सिरे पर के लाल कपड़े पर न जाने क्या-क्या लिखा था।

"बंगालियों की आँखें अभी भी नहीं खुली हैं। हाय रे बंगाली जात !"

"क्या हुआ, जनाब ? किस बात का प्रॅसेशन है ?"

एक ने कहा, "सुना नहीं डलहौजी स्क्वायर में गोली चली है? डेढ़ सौ बेक़सूर पुलिस की गोली के शिकार हो गये। फिर भी···"

"क्या किया था उन्होंने?"

"करते क्या, सिर्फ़ जुलूस लेकर विधान राय से मुलाक़ात करना चाहते थे, अपना अधिकार मांगना चाहते थे—यही उनका क़सूर था। देख आइये, रास्ता ख़ून से भर गया है।"

जो लोग सुन रहे थे सभी कहने लगे, "क्यों? क्यों? निहत्थे लोगों पर यह अत्याचार क्यों?"

"यही तो है जनाब कांग्रेसी राज्य! इसी के लिए खुदीराम और गोपीनाथ साहा फांसी के तख़्ते पर झूले! इससे तो ब्रिटिश राज्य कहीं अच्छा था। कम-से-कम विदेशी राज्य है, यह तो मालूम था। आज के ये लोग तो वेश बदले डाकू हैं, ब्रिटिशों की गोली खाकर हमने आज़ादी हासिल की और यें लोग मज़े से मोटी-मोटी तनख़्वाह डकार रहे हैं!"

जुलूस सामने से गुज़र रहा था। देहाती किसान-परिवार की औरतों का झुण्ड। फ्लैग लिए आगे-आगे वे ही चल रही थीं, और पीछे थे लाइन-की-लाइन आदमी। नंगे पांव, फटे कपड़े, पिचके गाल, धँसी आँखें। बेक़सूर, भूखे। सभी के चेहरे उत्तेजित। जुलूस के दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर कुछ लीडर जैसे लोग थे। वे ही चिल्ला रहे थे:

'अत्याचारियों को सज़ा दो!'

और सभी गला फाड़कर चिल्लाते:

'सज़ा दो!'

फिर आवाज़ बदलकर कहते:

'हमारी मांगें माननी होंगी!'

सब जोर से कहते:

'हमारी मांगें माननी होंगी!'

उसी आवाज़ से लीडर चिल्लाते:

'नहीं तो गद्दी छोड़ दो!'

भीड़ भी चिल्लाती:

'नहीं तो गद्दी छोड़ दो!'

आस-पास के लोगों में भी फुसफुसाहट शुरू हो गयी। यह सरकार अत्याचारी है, इसका पतन जरूरी है। विधान राय क्या इसके बाद भी चुपचाप गद्दी सँभाले बैठे रहेंगे! और हम लोग खड़े-खड़े यह सब सहेंगे!

धिक्कार है बंगाली जाति को !

आस-पास के लोगों का ठंडा ख़ून जैसे एक सेकंड में खौलने लगा।

एक ने कहा, "आप लोगों ने ही वोट देकर उन्हें गद्दी पर बैठाया है।"

पास के आदमी ने कहा, "नहीं जनाब, मैंने कम्युनिस्टों को वोट दिया है।"

केदार बाबू खड़े-खड़े चुपचाप देख रहे थे और सुन रहे थे। हरिचरन बाबू को ढूंढने जो निकले, अब वह बात ध्यान से उतर चुकी थी। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि उन्होंने मकान-मालिक से कोई वायदा किया है, या एक महीने के अन्दर उन्हें घर छोड़ना होगा। उनके मन में बार-बार एक ही बात आ रही थी। देश के लोग सचमुच दु:खी हैं। उस पर गवर्नमेंट के अत्याचारों का अन्त नहीं है। तब क्या होगा ? लड़के पढ़ाई कैसे करेंगे ? वसन्त के पिता ने मँहगाई के कारण उनकी छ: महीने की तनख़्वाह नहीं दी। मन्मथ ने तो ठीक ही कहा। संसार में बहुत-कुछ होता है जो दिखलाई नहीं देता। इसी में से कोई-कोई आदमी तो अमीर हो जाता है। सदाव्रत के पिता ने तो ख़ूब टीमटाम कर ली है। इस मँहगाई के ज़माने में वे एकाएक इतने बड़े आदमी कैसे हो गये ?

सोचते-सोचते दिमाग़ चकराने लगा। केदार बाबू धीरे-धीरे घर की ओर लौटने लगे।

□ □ □

सरदार टैक्सी-ड्राइवर एक मन से गाड़ी चला रहा था।

सदाव्रत ने कहा, "गाड़ी घुमा लो—घुमाओ गाड़ी !"

कहते-कहते सदाव्रत विचारों में खो गया। अचानक केदार बाबू की याद आ गई। सच ही तो, केदार बाबू ने ही एक दिन पूछा था—'तुम्हारे पिताजी की इन्कम कितनी है ?' सदाव्रत खुद भी नहीं जानता कि उसके पिता की इन्कम कितनी है।

लड़की को ज़रा पहले रासबिहारी ऐवेन्यू के मोड़ पर उतार दिया था।

सदाव्रत ने पूछा था, "यहाँ से कहाँ जाओगी ?"

कुन्ती ने कहा, "पास ही कालीघाट क्लब है। कुछ रुपये बाकी हैं।"

"तब तुम रहती कहाँ हो ?"

"जोड़ा साँको।"

शायद अनजान आदमी को पता बतलाना नहीं चाहती थी। अपनी असली हालत का परिचय कौन देना चाहता है ? कुन्ती को मेहनत करके

खाना होता है। उसकी बातें सुनकर लगता था—कम्युनिस्टों से भारी नाराज है। सिर्फ़ कम्युनिस्टों पर ही नहीं, अमीरों पर भी गुस्सा है। कुन्ती को उतार कर उसी के बारे में सोचते-सोचते सदाव्रत को और किसी बात का ध्यान ही नहीं रहा। टैक्सी किधर जा रही है, यह भी भूल गया। इतने दिन कॉलेज में पढ़ा। उसके कॉलेज में भी कितनी ही लड़कियाँ पढ़ती थीं। उनमें से किसी के भी साथ उसकी जान-पहचान नहीं हुई। शायद वह सभी से बचकर रहता था, इसी से परिचय नहीं हुआ। सिर्फ़ लड़कियाँ ही नहीं, लड़कों से भी उसका ज़्यादा मेल-जोल नहीं था। क्लास शुरू होने के ठीक पहले उसकी गाड़ी कॉलेज पहुँचती और क्लास खत्म होते ही स्टार्ट हो जाती। यह शायद बचपन की आदत थी।

कोई-कोई उसकी ओर इशारा कर कहता—'घमंडी !'

सदाव्रत का किसी के साथ ज़्यादा मेल-जोल नहीं बढ़ाना भी लोगों को घमंडीपन लगता था। दो-एक ने बातचीत करने की कोशिश भी की। सिगरेट बढ़ायी। शायद उसकी गाड़ी में बैठने का लोभ था। उसकी गाड़ी में बैठकर उसी के पैसे से सिनेमा देखना चाहा, जैसा सब कॉलेजों में होता है। लेकिन सदाव्रत की ओर से ज़्यादा लिफ्ट न मिलने के कारण ही शायद दोस्ती नहीं जम पायी। और लड़कियाँ ? ऐसा नहीं कि लड़कियों से बातचीत करने की सदाव्रत की इच्छा नहीं हुई। क्लास में ही कई बार एक लड़की के साथ आँखें भी लड़ीं। लेकिन वही शुरू और वही अन्त। न जाने कैसा एक संकोच सदाव्रत की आँखों, मुंह और चेहरे पर छा गया। फिर कभी उस ओर नहीं बढ़ा।

और भी पहले की बात है। उस समय सदाव्रत फर्स्ट-ईयर में पढ़ता था। उस दिन शायद स्टुडेंट-स्ट्राइक थी। तय हुआ था कि सभी कॉलेज से मार्च करते-करते मोनूमेंट के नीचे जाकर इकट्ठे होंगे। उस जुलूस में लड़कियाँ भी शामिल होंगी, शायद इसीलिए लड़कों में बड़ा जोश था। सभी जब कॉलेज-कम्पाउंड में इकट्ठे हो गये, तभी कुंज गाड़ी लेकर आ पहुंचा।

एक लड़की ने, जिसका नाम आज याद नहीं है, पूछा था, "आप क्या हम लोगों के साथ नहीं जायेंगे ?"

सदाव्रत शर्म से सिमटकर रह गया। वैसे मन-ही-मन वह कितने ही दिनों से उसके साथ बात करना चाह रहा था, लेकिन पता नहीं, क्या हुआ उसे, जवाब तक नहीं दे पाया। किसी तरह सिर्फ़ 'नहीं' कहकर ही

गाड़ी में बैठकर घर चला आया। बचपन से ही सदाव्रत बड़ा शर्मीला था। अभी भी शर्मीला है, लेकिन पहले जितना नहीं। अब तो फिर भी कुन्ती के साथ एक टैक्सी में बैठकर उससे कितनी ही बातें कर डालीं, कितने ही सवाल पूछ डाले, काफ़ी उत्सुकता दिखलायी।

लड़कों में से कोई-कोई पीठ पीछे से कहता—'लाड़ला बेटा !'

शायद इतने दिनों वह माँ-बाप का लाड़ला ही था। जन्म से उसे कोई कमी, कोई तकलीफ़ नहीं हुई। अब लगता है कि दूसरे लड़कों की तरह अभाव की ज़िन्दगी ही उसके लिए अच्छी रहती। उन लोगों की तरह आवारागर्दी करते घूमना ही उसके लिए अच्छा होता। तब उसे इस नयी दुनिया के आमने-सामने खड़े होते यह झिझक नहीं होती। वह भी आज मधुगुप्त लेन में शंभू के क्लब में निःसंकोच बैठा होता। तब इस तरह कुन्ती को सड़क के मोड़ पर उतारकर जैसे वह आफ़त टल गयी, नहीं सोचता। केदार बाबू के अलावा और किसी भी ट्यूटर से पढ़ने पर उसका यह हाल नहीं होता।

"किधर जाना है, सा'ब ?"

सदाव्रत अचानक जैसे सोते से चौंक पड़ा। इतनी देर तक अपने पिछले दिनों की याद में इतना खोया था कि पता ही नहीं रहा किधर जा रहा है। सदाव्रत ने बाहर की ओर देखा। इससे पहले कभी इस ओर तो नहीं आया। शायद यही टालीगंज है। दोनों ओर टीन की चालियाँ और खपरैल के झोंपड़े। यहाँ जो लोग रहते हैं, वे ही शायद शरणार्थी हैं। रास्ते में और सड़क पर देखा है। पाकिस्तान बनने के बाद से ही ये लोग आ रहे हैं और शहर की भीड़ बढ़ रही है। ये ही लोग जुलूस निकालते हैं, सड़क और रास्ते गन्दे करते हैं, गड़बड़ करते हैं। अखबारों में वह इन्हीं लोगों के बारे में पढ़ता रहता है।

सदाव्रत ने कहा, "हिन्दुस्तान पार्क चलो।"

टैक्सी घूमकर उल्टी ओर चलने लगी। टैक्सी-ड्राइवर को भी शायद ज़रा अचम्भा हुआ था। बाबू बहूबाज़ार से एक लड़की को साथ लिये आ रहा है। फिर एक जगह उसे उतार भी दिया। क्यों तो बैठाया और क्यों उतार दिया, वह किसी भी तरह ठीक नहीं कर पा रहा था। और फिर इतनी दूर टालीगंज की ओर ही क्यों बढ़ता रहा ! अब फिर वही काली-घाट, जिधर से आया था।

रासबिहारी ऐवेन्यू के मोड़ पर एक जानी-पहचानी सूरत देखकर सदा-

व्रत चौंक उठा। तो कुन्ती अभी तक खड़ी है ! आस-पास और बहुत-से लोगों की भीड़ है। वे लोग पता नहीं किस बात को लेकर बहस कर रहे थे।

फुटपाथ के पास गाड़ी रुकते ही कुन्ती की नज़र भी उस पर पड़ी। बाहर मुंह निकालकर सदाव्रत ने पूछा, "तुम अभी तक खड़ी हो ?"

इस तरह से पकड़ी जाएगी—कुन्ती ने नहीं सोचा था।

सदाव्रत ने फिर पूछा, "अभी तक घर नहीं गयीं ?"

कुन्ती ने सिर हिलाया, कहा, "नहीं !"

"कालीघाट क्लब जानेवाली थीं ? रुपये मिले ?"

"नहीं।"

"तब ? इस तरह अकेली खड़ी हो ? घर नहीं जाना ?"

कुन्ती ने कहा, "मैं चली जाऊँगी, आप जाइये !"

सदाव्रत ठीक नहीं कर पा रहा था, क्या कहे। फिर जैसे डरते-डरते कहा, "जोड़ा साँको तो काफ़ी दूर है, जाने में देर लगेगी।"

कुन्ती ने कहा, "लेकिन जाऊँगी कैसे ? बस-ट्राम तो सब बन्द हैं।"

सदाव्रत ने सड़क की ओर देखा। बस या ट्राम कुछ भी नहीं है। "क्यों, बस-ट्राम बन्द क्यों हैं ?"

"धर्मतल्ला में गोली चली है। टियर-गैस छोड़ी गयी है। क़रीब डेढ़-सौ आदमी मरे हैं।"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन हम लोग तो अभी उसी ओर से आये हैं। उस समय तो कुछ भी नहीं था।"

"उस समय नहीं था, उसके बाद ही हुआ।"

"फिर तुम घर कैसे जाओगी ?"

कुन्ती ने जवाब नहीं दिया।

सदाव्रत ने जल्दी से दरवाज़ा खोल दिया। बोला, "बैठो, यहाँ कब तक खड़ी रहोगी ! कहीं और ही पहुँचा दूं, जहाँ तुम्हें जाना हो।"

कुन्ती ने आनाकानी नहीं की। टैक्सी में बैठ गयी।

"स्यालदा की ओर से चलो। उधर से तुम्हें घर छोड़ दूंगा।"

"नहीं, मेरे लिए बेकार इतना पैसा किसलिए ख़राब कर रहे हैं ?"

"इसलिए कि तुम मुसीबत में हो।"

कुन्ती ने कहा, "मुसीबत में क्या मैं अकेली पड़ी हूँ, मेरी तरह और भी दो-तीन सौ आदमी मुश्किल में पड़े हैं।"

"लेकिन उन्हें तो मैं पहचानता नहीं। तुम्हें जानता हूँ, इसी से तुम्हें

गाड़ी में बैठा लिया।"

"लेकिन आप मुझे जानते ही कितना हैं ? मेरा क्या जानते हैं ? सिर्फ़ मेरा नाम छोड़कर मेरे बारे में और क्या जानते हैं ?"

सदाव्रत ज़रा मुसकराया। कहा, "यह और जानता हूँ कि तुम अम्येचोर क्लबों में ड्रामा करती हो। और भी एक बात जानता हूँ…"

"क्या ?"

"तुम कम्युनिस्टों से घृणा करती हो और बड़े आदमियों से डरती हो।"

लेकिन कुन्ती यह बात सुनकर हँस नहीं पायी। वैसी ही गम्भीर रही। सिर्फ़ कहा, "यह बात छोड़िए, आपको तकलीफ़ करके इतनी दूर तक नहीं जाना होगा। मुझे देशप्रिय पार्क के पास ही उतार दें तो बड़ी कृपा होगी।"

"यहाँ तुम्हारा कौन है ?"

"मेरे एक रिश्तेदार हैं।"

"पहले तो यह नहीं बतलाया था ?"

"पहले बतलाने की ज़रूरत नहीं हुई।"

सदाव्रत ने फिर भी कहा, "लेकिन अपने घर जाने में तुम्हें क्या आपत्ति है ? मुझे ज़रा भी तकलीफ़ नहीं होगी।"

"नहीं, फिर भी रहने दीजिए।"

"इसलिए कि कहीं मैं तुम्हारा पता न मालूम कर लूँ, यही बात है न ?"

कुन्ती ने कहा, "नहीं, नहीं, आप मेरा पता जान लेंगे तो इसमें नुक़सान क्या है।"

"कभी-कभी तुम्हें तंग करने पहुँच सकता हूँ न !"

"मुझे तंग करनेवाले लोगों की वहाँ कमी नहीं है। कितने ही आते हैं। मैं कोई पर्दानशीन तो हूँ नहीं।"

"तुम्हें डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं किसी क्लब का मेम्बर नहीं हूँ, मैं ड्रामा भी नहीं देखता हूँ और एक्टिंग तो खैर करना जानता तक नहीं। आज का दिन लेकर सिर्फ़ दो दिन शंभू के क्लब गया हूँ, वह भी अपने ही ज़रूरी काम से…"

तभी कुन्ती ने कहा, "मुझे यहीं उतार दीजिए। देशप्रिय पार्क आ गया।"

टैक्सी रुकी। कुन्ती खुद ही दरवाज़ा खोलकर उतर गयी। बोली, "अच्छा, चलती हूँ। नमस्कार।"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन तुमने अपने घर का पता तो बताया ही नहीं?"

कुन्ती ने कुछ देर सोचा। फिर कहा, "हमारा मकान आपके लायक नहीं है।"

"फिर भी जान तो लूँ, शायद कभी किसी काम आ जाऊँ।"

"इतना ही है तो सुनिए—बत्तीस बी, अहीर टोला, सेकंड बाई लेन !"

सदाव्रत ने कहा, "ठीक है, याद रहेगा, बहुत-बहुत शुक्रिया।"

इसके बाद और ज़्यादा रुकना अच्छा नहीं लगा। टैक्सी चल दी। सदाव्रत ने पीछे मुड़कर देखा—कुन्ती एक बड़े बंगले के पोर्टिको के अन्दर घुस गयी। इसके बाद उसको और कुछ नहीं दीख पड़ा। सरदारजी ने टैक्सी की रफ्तार बढ़ा दी।

पोर्टिको का फ़र्श सीमेंटेड था। कुन्ती उसी के अन्दर जाकर खड़ी हो गयी। मोटे खम्भे के पीछे खुद को ढँक लिया। सड़क के आदमी उसे नहीं देख सकते थे। एक गाय फ़र्श पर आराम से बैठी, आंखें बन्द किये जुगाली कर रही थी। वार्निश किये दरवाज़े के ऊपर पीतल की प्लेट में बंगले के मालिक का नाम लिखा था। अंधेरे के कारण ठीक से दिखलायी नहीं दे रहा था। कुन्ती काफ़ी देर वहीं खड़ी रही। अब तक वह जा चुका होगा। फिर तनिक बाहर की ओर झाँककर देखा। टैक्सी नहीं है। चली गयी।

इसके बाद धीरे-धीरे पोर्टिको से निकल आयी।

नहीं, टैक्सी नहीं है।

फुटपाथ पार कर कुन्ती सड़क पर आयी। फिर सड़क पार कर बस-स्टॉप पर आ खड़ी हो गयी। वहाँ और भी कई लोग खड़े हैं। उनमें से कई उसकी ओर तेज़ नज़रों से देख रहे थे। देखें। अब तक शायद बस भी चलने लगी होंगी। काफ़ी दूर पर एक डबल-डेकर दिखलायी दी। कुन्ती ने साड़ी अच्छी तरह सम्हालकर किसी तरह आगे की सीट पर जगह कर ही ली।

□ □ □

हाजरा पार्क की मीटिंग काफ़ी देर पहले खत्म हो चुकी थी। जो लोग आस-पास रहते हैं, वे इस पार्क में घूमने आते हैं। ऑफ़िस से लौटने के बाद शाम को ज़रा हवाखोरी भी होती, साथ ही बिना पैसे का तमाशा भी देखने को मिलता। पहले से कोई खबर नहीं मिलती। खबर जानने की किसी को खास दिलचस्पी भी न थी। सिनेमा और ड्रामा देखने के लिए फिर भी टिकट लेनी होती है। यहाँ तो बिलकुल फ्री। किसी दिन कांग्रेस की मीटिंग तो किसी दिन जनसंघ की। कभी पी० एस० पी० का कुछ, कभी

आर० एस० पी० या फॉरवर्ड ब्लॉक का कुछ। अनगिनत पार्टी, अनगिनत राय। सभी मिनिस्ट्री कैप्चर करना चाहते हैं। ऊपर से हर कोई देश-सेवा करना चाहता है। सब ग़रीबों की भलाई करना चाहते हैं। सभी ग़रीबों के शुभचिन्तक हैं।

कुंज गाड़ी को पार्क किये नियत जगह पर खड़ा था।

शिवप्रसाद बाबू अच्छा भाषण देते हैं। पार्क की सारी जनता उनके भाषण से मन्त्रमुग्ध हो गयी थी। उनकी एक-एक बात से जैसे आग बरस रही थी। वह कह रहे थे, "ज़िन्दगी के साथ सुलह हो सकती है, लेकिन मौत के साथ नहीं। मौत की मौत नहीं होती, मृत्यु अविनाशी है..."

जिस समय वह मंच से उतरे, उस समय हर कोई सोच रहा था कि नेताजी सुभाष बोस अगर जिन्दा होते तो वह भी इतनी आग नहीं बरसा सकते थे।

गाड़ी के पास आते ही कुंज ने दरवाज़ा खोल दिया। गाड़ी में बैठकर शिवप्रसाद बाबू ने खादी की चादर पास में रख ली। बोले, "चल !"

फिर एकाएक बोले, "कुंज !"

"जी।"

"मेरा भाषण सुना ? कितना सुना ? शुरू से ?"

"जी, हाँ !"

यह सवाल सुनने की कुंज को आदत है। हर मीटिंग के बाद कुंज को इस सवाल का जवाब देना होता है। हर बार ही बाबूजी का भाषण उसे अच्छा लगता है।

"तुझे कैसा लगा ?"

"बहुत अच्छा।"

शिवप्रसाद बाबू इतने पर ही नहीं माने। पूछा, "मेरा अच्छा लगा या त्रिदेव चौधरी का ?"

"आपका ही ज़्यादा अच्छा था।"

"सभी मन से सुन रहे थे ? किसी ने गड़बड़ नहीं की ?"

ऐसे कितने ही सवालों का जवाब कुंज को देना होता। यही नियम है। सब-कुछ अच्छा मानना होता। कुंज ने यह सीख लिया है। शिवप्रसाद बाबू की गाड़ी की ड्राइवरी करने के लिए यह सब करना ज़रूरी है। नौकरी माने ही गुलामी। कुंज सिर सीधा रखे गाड़ी ड्राइव करने लगा।

☐ ☐ ☐

सदाव्रत जिस समय घर के सामने पहुंचा, काफ़ी रात हो चुकी थी।

जेब से नोटबुक निकालकर उसने पता लिख लिया। बत्तीस बी, अहीर टोला, सेकंड बाई लेन। यह भी उस ओर ही है। चितपुर पार कर उत्तर की ओर जाना होगा। बाई लेन—इसलिए ज़रूर ही काफ़ी छोटी और संकरी गली होगी। लड़की ने कहा था—हम लोगों का घर जाने लायक नहीं है। कलकत्ता में जाने लायक कितने घर हैं!

टैक्सी रुकते ही किराया चुकाया, लेकिन सदर दरवाज़े की ओर देखते ही चौंक पड़ा। गैरेज़ में गाड़ी नहीं थी। तब क्या पिताजी अभी तक नहीं लौटे? मीटिंग से क्या और कहीं चले गये?

तभी माँ दिखलायी दी। देखने से काफ़ी परेशान लगती थी। सदाव्रत को देखते ही बोली, "इतनी देर कर दी? आजकल कहाँ जाते हो? उधर कलकत्ता में गोली चली है, इतनी रात कर दी, मुझे फिक्र नहीं होती?"

सदाव्रत हमेशा की तरह अपने कमरे की ओर ही जा रहा था।

मन्दा ने फिर कहा, "तुम भी घर पर नहीं रहते, वह भी बाहर जायें। फिर मैं किसके लिए यह गृहस्थी सम्हाले बैठी रहूं?"

सदाव्रत ने कहा, "पिताजी मीटिंग से नहीं लौटे?"

"आने से क्या होता है! फिर निकल गये हैं।"

"कहां गये हैं?"

"और कहां जायेंगे? देश-सेवा! अपने कारोबार के लिए जायें, यह तो समझ में आता है, लेकिन कहाँ मेदिनीपुर में बाढ़ आयी, वह जायेंगे। गोआ में कौन जाने क्या हो रहा है, वहां भी जायेंगे। घर में एक लड़का है, उसका भी यही हाल! फिर मैं किसके लिए घर की चौकीदार करूँ?"

"लेकिन पिताजी को क्या किसी ने बुलाया है?"

"उन्हें ख़बर देनेवाले लोगों की क्या कमी है! पूजा करके उठे ही थे। मैं खाना परोस रही थी, तभी टेलीफ़ोन आया—पता नहीं विधान राय, अतुल्य घोष या प्रफुल्लचन्द्र किससे बातें कीं। बस एकाएक चले गये।"

सदाव्रत ने और कुछ नहीं कहा। सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर चला गया।

□ □ □

अब चितपुर। शहर की यह एक ख़ास और ज़रूरी जगह है। हिन्दुस्तान पार्क, मधुगुप्त लेन, डलहौजी स्क्वायर और फड़ेपुकुर स्ट्रीट की तरह इसे भी बिना माने काम नहीं चलता। चितपुर रोड जहाँ बीडन स्क्वायर के बाद सीधी उत्तर की ओर चली जाती है, उसी के आस-पास के इलाके

की बात कर रहा हूँ। दिन के समय यहाँ आकर कुछ भी पता लगाना मुश्किल है। पाँच दूसरे बाज़ारों की तरह इसके पास भी जोड़ा बाज़ार है। सड़क के दोनों ओर बरतन, हुक्का और तम्बाकू या हारमोनियम-तबले की दूकानें हैं। ट्राम-बस की खिड़कियों से बाहर ताकने पर दोनों ओर एक-दूसरे से सटी लाइन-की-लाइन दूकानें दिखलायी देंगी। वैसे उनमें कोई खास बात नहीं है। या तो सोने-चांदी की, नहीं तो हुक्के-गुड़गुड़ी, चना-मुरमुरा या हारमोनियम-तबलों की बिक्री ही रही है। सारी बे-मज़ा, सूखी चीज़ें। लेकिन रात को यह जगह रंगीन हो उठती है। तब इस जगह का चेहरा ही बदल जाता है। सड़क के दोनों ओर संकरा फुटपाथ और उस पर चलते सैकड़ों-हज़ारों लोग।

पहली मंजिल पर लोगों की भीड़। लेकिन दूसरी मंजिल पर ?

ठुंग्-ठुंग् करती ट्रामों की आवाज़ के बीच ही अचानक हल्ला मचता—'गया-गया-गया...'

चारों ओर से भीड़ आ जमती।—"क्यों साहब, जरा-सा और होने पर ट्राम के नीचे आ जाते न ! इस तरह ऊपर की ओर ताककर चला जाता है ? जरा देख-सुनकर चला कीजिए !"

उस ओर की सुरंग से खिलखिलाहट की आवाज़ आती। लड़कियाँ कहतीं, "बेचारा···"

सुरंग कहना ही ठीक होगा। उसी सुरंग के रास्ते एकदम सीधे नाक की सीध पर नरक, या कुछ लोग स्वर्ग भी मानते हैं, तक पहुंचा जा सकता है। जो पहुंचते हैं वे भी होशियार लोग हैं। लेकिन रात के समय ठीक उसी हालत में शायद उनकी सारी होशियारी न जाने कहाँ गायब हो जाती है। यह ठीक है कि कोई-कोई आदमी ट्राम या बस की चपेट में आने से बच जाता है। लेकिन कोई-कोई सचमुच चपेट में आ ही जाता है। और तब ट्राम-बस-टैक्सी या भैंसागाड़ी की क़तार लग जाती। तब ऊपर की रेलिंग से झुककर सभी नीचे का तमाशा देखते हैं। ऊपर के लोग नीचे की ओर देखते हैं, और नीचे के लोग ऊपर की ओर। ऊपर की ओर देखते-देखते ही कोई-कोई सिर झुकाये तीर की तरह सुरंग के अन्दर जा घुसते।

लेकिन पद्मरानी के फ़्लैट के क़ायदे-क़ानून दूसरे ही हैं।

पद्मरानी पुराने ज़माने की औरत है। कहती, "तीन-चौथाई गुज़रकर यह चौथी आ लगी, अभी तक मूंछ देखकर आदमी नहीं पहचान पाती बेटा, और तुम लोग आदमी पहचानोगी ?"

दूसरी मंजिल पर सीढ़ी के सहारे ही पद्मरानी का कमरा है । परदा उठाते ही वहाँ से एकदम सदर दरवाज़े तक नज़र जाती है । चाहने पर सब-कुछ देखा जा सकता है । सुबह दरवाज़ा खुलने से लेकर रात के एक-दो बजे तक—कभी-कभी रात के तीन बजे तक भी सदर दरवाज़ा खुला रहता है । किसी-किसी दिन तो बन्द ही नहीं होता लेकिन कुलफ़ीवाला ही हो, या फूलवाला ही हो, या गुंडा-बदमाश, गिरहकट ही हो, सभी नज़र आते हैं । एक बार चेहरा देखते ही पद्मरानी आदमी को पहचान लेती है । लड़कियों को भी यही सिखलाती । कहती—'काठ की बिल्ली हो या मिट्टी की, परवाह नहीं, बेटी, चूहा पकड़ पाना ही असली चीज़ है ।'

यानी रुपये मिलने चाहिए । पद्मरानी खुद भी पैसे का दाम अच्छी तरह से जानती । इस मुहल्ले में और भी कितने ही मकान हैं । मकान भी कम नहीं हैं, लड़कियों की भी कमी नहीं है । एक बार जाल फेंकते ही खेप भर जाने की तरह । लेकिन जो लोग यहाँ रहते हैं उनमें से वह अलग है । जो लोग यहाँ आते हैं वे भी जानते हैं कि यहाँ पैसा ही सब-कुछ है । पैसा फेंक, भरपेट ख़ातिर कराकर रूमाल से मुंह पोंछते घर चले जाते हैं । लेकिन ख़ातिर ऐसी करनी होगी कि लौट-फिरकर यहीं आना पड़े । एक बार जो पद्मरानी के फ़्लैट में आता है भूलकर भी और कहीं नहीं फटकता ।

पद्मरानी इसी से सबको सुनाती हुई कहती—'फेंको कौड़ी, खाओ घी, तुम क्या पराए हो, राजा ?'

और जगह जो होता है, यहाँ नहीं चलता । सभी को मालूम है कि ख़ालिश शराब नाम की चीज सिर्फ़ पद्मरानी के यहाँ ही मिलती है । पद्मरानी पैसा पकड़ती है, लेकिन नमकहराम नहीं है । कहती है—'मैं पैसा लूंगी, असली माल दूंगी, बाद में तुम्हारा धरम तुम्हारा, मेरा धरम मेरा । आज अगर मैं तुम्हें ठगती हूं, कल तुम मुझे ठगोगे । तब तो मेरा लोक भी गया, परलोक भी गया ।'

पास में ही सुफल की दूकान है । सुफल केंकड़े की भुनी हुई टांग और झिंगड़ी मछली का कलिया बड़ा ज़ायकेदार बनाता है । दूर-दूर से ख़रीददार आते हैं । काँच के शो-केस में माल सजाकर रखता है । देखते ही लार टपकने लगती है । जब कि भाव एकदम सस्ता है । रात के समय ही ज़्यादा भीड़ रहती है । फिर भी काम-काज के बीच ही किसी तरह समय निकाल पद्मरानी के कमरे के सामने आकर आवाज़ देता, "माँ !"

"कौन, सुफल ? क्या बात है, बेटा ?"

"टगर दीदी के कमरे में ताला लगा है। क्या टगर दीदी है नहीं ?"

"क्यों ? तेरा कुछ पैसा बाकी है क्या ?"

सुफल कहता, "हाँ, माँ, यही कोई तीन रुपया छः आना बाकी थे।"

"लेकिन पैसे बाकी छोड़े ही क्यों ? पैसे भी क्या कभी बाकी रखने चाहिए, बेटा ! तुम लोग रंगीन चेहरा देखते ही सब-कुछ भूल जाते हो। इस लाइन में बाकी रखकर कोई काम करता है ? मैंने तुझसे पहले ही कहा था, बेटा…"

सुफल फिर भी खड़ा रहता। पूछता, "क्यों, टगर दीदी कहाँ गयी है ? आयेगी नहीं ?"

"आयेगी नहीं तो जायेगी कहाँ, बेटा ? यही जो वासन्ती थी न, सत्रह नम्बर कमरे में, अब बारह नम्बर में आ गयी है, पहचानता है न ? हाँ तो, यह वासन्ती ही एक दिन मिज़ाज दिखाकर कुनबा बसाने चली गयी थी। कहती थी—ब्याह करके कुनबा बसाऊंगी। मैंने भी कह दिया—तो जाओ न बेटा, गृहस्थी में क्या-क्या सुख हैं, कुनबा बसाकर देख आओ न। हाँ तो, गयी भी। मैंने मांग में सिन्दूर भर दिया। दोनों को आशीष दिया। दो साल पटलडांगा में घर लेकर रही भी। फिर एक दिन काँख में एक बच्चा दबाये रोती-बिलखती आ पहुंची—समझ गयी, पिरीत पूरी हो गयी है !"

ये सब पुरानी बातें हैं। ये किस्से सुफल भले ही न जाने, पर और सब किरायेदार लड़कियाँ जानती हैं।

अगर कोई पूछता—'फिर ?'

तब पद्मरानी कहती—'फिर क्या ! फिर यह पद्मरानी का फ़्लैट ही आसरा था—अढ़ाई सौ रुपए का फ़्लैट नुक़सान सहकर डेढ़ सौ रुपये में दिया, तब पेट पल रहा है। इसीलिए तो वासन्ती से अब कहती हूँ—गू क्या हम लोग खाना नहीं जानतीं, बेटा ? जानती हैं। खातीं क्यों नहीं ? बदबू है इसलिए…'

पद्मरानी की बातें कुछ भी हो सुनने लायक होती हैं। सारे दिन अपने कमरे में खाट पर बैठी-बैठी फ़्लैट चलाती है। सिरहाने एक गॉदरेज की आलमारी है, उसमें रुपये रखकर पल्ले में चाबी बाँधती है। और काम हो या न हो, बिन्दू को पुकारती। कहती—'बिन्दू ! ओ बिन्दू !'

पद्मरानी का भरोसा है—बिन्दू। बिन्दू ही पद्मरानी के लिए खाना बनाती है। इतनी बड़ी गृहस्थी सम्हालती है। एक दरबान है, वह नाम के लिए। वह कब कहाँ रहता है, कोई नहीं जानता। वास्तव में बिन्दू ही सब

लोगों की देखभाल करती है और पद्मरानी के हुक्म की तामील करती है। पद्मरानी के कमरे में टेलीफ़ोन है। ज़्यादातर ऐसे ही पड़ा रहता है। मालिक अगर कभी टाइम पाते हैं तो टेलीफ़ोन करते हैं, नहीं तो नहीं। उन्हें भी कितने ही काम रहते हैं। बीच-बीच में दारोग़ा-पुलिस-सिपाहियों का फ़ोन आता है। वे लोग जिस दिन आनेवाले होते हैं, उससे पहले ही पद्मरानी को होशियार कर देते हैं—'बोतल वगैरह ज़रा सम्हाल कर रखिएगा, हम आ रहे हैं।'

इसी पद्मरानी के फ़्लैट के सामने ही आकर हाज़िर हुआ जॉर्ज टामसन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड ऑफ़िस के रिक्रिएशन क्लब का सेक्रेटरी दुलाल सान्याल। साथ में था असिस्टेंट सेक्रेटरी अमल घोष और उसका साथी संजय। संजय सरकार। संजय के लम्बे-लम्बे घुँघराले बाल हैं। शाहजहाँ का पार्ट किया है आलमगीर औरंगज़ेब में। माइथोलॉजिकल, हिस्टॉरिकल, सोशल किसी भी तरह का नाटक बाकी नहीं छोड़ा।

दुलाल सान्याल ज़रा आनाकानी कर रहा था। लेकिन ऑफ़िस से निकलकर आख़िर में तीनों ही साथ हो लिए। ट्राम से उतरकर खोजते-खोजते तीनों ही असली जगह आ पहुँचे। ज़रा-ज़रा डर भी लग रहा था। हिचक भी रहे थे। लेकिन फीमेल-रोल के लिए जब बिना फीमेल लिये काम नहीं चलेगा तो इतना सोचने से क्या फ़ायदा!

अमल ने कहा, "धत्तेरे की, यह कहाँ ले आया तू? यह तो रंडियों का मुहल्ला है!"

संजय ने कहा, "उससे क्या हुआ? हम लोग कोई इस काम से तो आये नहीं हैं—हम लोग तो आर्टिस्ट खोजने आये हैं।"

दुलाल सान्याल तनिक गम्भीर आदमी है। हाथ में एक पोर्टफ़ोलिओ बैग है। उसमें पैड, कांट्रैक्ट फ़ॉर्म साथ ले आया है। कुछ नकद रुपये भी हैं। अगर एडवांस माँग बैठे!

दुलाल सान्याल ने पूछा, "कौन-सा घर?"

सुफल अपनी दूकान पर बैठा गोश्त की घुघनी पका रहा था। मिर्च-मसाला और प्याज़ डालकर ऐसी घुघनी बनाई है कि सौंधी-सौंधी सुगन्ध से सारी चोहट्टी गुलज़ार हो गई है। घुघनी उतारकर पराँठे सेंकने शुरू करेगा। इस मुहल्ले के रहनेवाले ज़्यादातर रात को खाना नहीं पकाते, सुफल के यहाँ की चाट और पराँठे खाकर ही गुज़र कर लेते हैं। पद्मरानी के फ़्लैट के अधिकांश किरायेदार रात को खाना पकाने का समय नहीं पाते।

बाबू लोगों के पैसे से खाना वसूल करते हैं।

सुफल ने घुघनी बनाते-बनाते ही कहा, "गोरे, जा तो, अन्दर जाकर पूछ आ डिम-करी कितनी प्लेट चाहिए ? और टगर के कमरे का ताला अगर खुला हो तो आकर मुझे बतलाना।"

"क्यों भाई, यहाँ पद्मरानी का फ़्लैट कौन-सा है बता सकते हैं ?"

सुफल ने मुड़कर देखा। उसे बात करने की फ़ुरसत नहीं है। बदली छायी है, भीनी-भीनी हवा। ऐसे ही दिनों में बाबू लोगों की भीड़ ज़्यादातर होती है।

"पद्मरानी का फ़्लैट ?"

सुफल ने ठीक से देखा। चेहरे देखते ही पहचान गया, ऑफ़िस के बाबू हैं। चन्दा करके मज़ा लूटने आये हैं।

"यही है, इधर से सदर दरवाज़े से अन्दर चले जाइए।"

लेकिन दुलाल को इससे सन्तोष नहीं हुआ। बोला, "एक बात बतला सकते हो, भाई ? तुम तो यहीं के रहनेवाले हो। हम लोग एक काम से आये हैं।"

"क्या काम है, कहिये न ?"

"यहाँ कुन्ती गुहा नाम की कोई एक्ट्रेस···मतलब, नाटक वगैरह में काम करती है ?"

कुन्ती गुहा ! सुफल सभी लड़कियों को पहचानता है। बोला, "नाटक करती है ? नहीं बाबू, नाटक तो कोई भी नहीं करता, नाटक करनेवाली कोई लड़की यहाँ नहीं रहती, यह तो खराब लड़कियों का मकान है।"

अमल ने कहा, "ख़राब लड़की होने से क्या बिगड़ता है ? हम पैसे देंगे, पार्ट करके चली आयेगी। इस नाम की कोई लड़की है या नहीं ?"

सुफल ने कहा, "मैं तो इतना सब नहीं जानता। आप माँ से पूछ लें।"

"माँ !"

सुफल ने कहा, "हाँ, उस दरवाज़े से सीधे अन्दर चले जाइए। अन्दर ऊपर जाने की सीढ़ी है। सीढ़ी से ऊपर चढ़कर सामने ही देखेंगे परदा-लगा एक दरवाज़ा। वहीं पूछ लेना।"

संजय ने कहा, "दुलाल दा, तुम लोग न जाओ, बाहर ही खड़े रहो, मैं अकेला ही जाता हूं।"

लेकिन धीरे-धीरे तीनों ही अन्दर घुसे। अन्दर अच्छा-खासा मकान था। ईंटों का पक्का आंगन, बीच में एक खम्भे पर इलेक्ट्रिक बल्ब झूल रहा

था। आंगन के कोने से धुआं आ रहा था। उस ओर शायद रसोईघर है। नल-पाखाना सब-कुछ। एक बिल्ली पैर कुड़मुड़ाए चुपचाप बैठी थी। दूसरी मंज़िल पर भी हर ओर लाइन-की-लाइन कमरे थे। कुछ कमरों के दरवाज़े बन्द थे। किसी-किसी कमरे से हारमोनियम और घुंघरुओं की आवाज़ आ रही थी : 'चांद कहे ओ चकोरी, तिरछी नज़रों से न देख।' एक लड़की सीढ़ी पर रेलिंग के सहारे खड़ी-खड़ी सिगरेट पी रही थी। आंखें चार होते ही झुककर देखा। बोली, "आइए न !"

दुलाल सान्याल ने कहा, "ख़बरदार, अमल, आगे मत बढ़ना !"

"कौन है ?"

शायद कोई औरत हाथ में कटोरा लिये रसोईघर की ओर से आ रही थी।

"इसी से पूछ, अमल !"

अमल आगे बढ़ा। पूछा, "क्योंजी, यहाँ कोई कुन्ती गुहा रहती है ?"

बिन्दू में शरम-हया भी है, यह मानना होगा। बाएं हाथ से बदन की धोती सम्हालकर ठीक की। मुंह ज़रा ढंककर कहा, "आप माँ से पूछिए।"

"ए बिन्दू, कौन है री ?"

पद्मरानी ने शायद ऊपर से सुन लिया था। परदे की संद से सब दीखता है।

बिन्दू ने ऊपर चढ़ते-चढ़ते कहा, "मां, ये भले आदमियों के लड़के आये हैं, पता नहीं किसे खोज रहे हैं।"

फिर दुलाल की ओर देखकर कहा, "आप लोग ऊपर आइए !"

नये आदमियों की आवाज़ सुनकर और भी कई लड़कियाँ रेलिंग के पास आ जुटीं। एक-दूसरे के ऊपर गिरतीं-पड़तीं सब-की-सब हँस रही थीं। संजय एकटक उसी ओर देखता सीढ़ी चढ़ रहा था। बोला, "अरे, इतना मत हँसो, दांत पर मक्खी बैठ जाएगी !"

साथ-ही साथ और भी ज़ोर की खिलखिलाहट। उनमें एक काफ़ी चंचल थी। बोली, "इधर आइए न, मक्खी मारने की मशीन हमारे पास है।"

दुलाल सान्याल भी पीछे-पीछे ही था। डाँटकर बोला, "ए संजय, ख़बरदार, मज़ाक मत कर !"

तब तक पद्मरानी का कमरा आ गया था। बिन्दू ने अन्दर घुसकर परदा उठा दिया। फिर कहा "माँ, ये लोग आये हैं।"

"क्या, बेटा, तुम लोगों को कैसी चाहिए ?" कहते-कहते चारपाई पर

बठे-ही-बैठे पद्मरानी ने बदन पर की साड़ी को सम्हाला । बोली, "तुम लोग बैठो, बेटा । बिन्दू, ज़रा कुर्सियाँ खींच ला तो !"

दुलाल सान्याल बैठ नहीं पा रहा था । अमल भी कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था । वह भी खड़ा था । लेकिन संजय बैठ चुका था । कमरा काफ़ी तरतीब से सजा था । चारपाई के नीचे एक काँसे की पीकदानी रखी थी । सारा कमरा अगरबत्ती की गन्ध से महक रहा था । खिलौनों से भरी काँच की आलमारी रखी थी । दूध का प्याला हाथ में लेते हुए पद्मरानी ने पूछा, "तुम्हें कौन-सी पसन्द है ? तीनों क्या एक ही कमरे में बैठेंगे ?"

संजय ने कहा, "हम लोग कुन्ती गुहा को चाहते हैं । वही जो ड्रामा करती है—हम लोग नाटक खेल रहे हैं न !"

"नाटक ?"

"जी हाँ, हम लोग जॉर्ज टामसन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड ऑफ़िस से आ रहे हैं, हमारे रिक्रिएशन क्लब की ओर से 'जो एक दिन आदमी थे' नाटक खेला जाएगा । हम लोग हीरोइन खोज रहे हैं । सुना है, आपके यहाँ कुन्ती गुहा नाम की कोई लड़की है । उसे ही खोज रहे हैं ।"

पद्मरानी ने कहा, "कुन्ती नाम की तो कोई लड़की नहीं है, टगर है, वासन्ती है, जूथिका है—लड़कियाँ मेरी कई हैं, सभी देखने-सुनने में अच्छी हैं, चाल-चलन भी अच्छा है ।"

संजय ने पूछा, "लेकिन उन्होंने क्या कभी ड्रामे में पार्ट किया है ? वे लोग क्या नाटक में भाग ले पाएँगी ?"

"तुम लोग देख लो न, तुम लोगों के देखने में क्या बुराई है ? ओ बिन्दू, ज़रा जा तो, उन सबको बुला ला । कहना, ऑफ़िस से भले घर के लड़के आये हैं ।"

और कहने की देर नहीं हुई । चार-पाँच लड़कियाँ खिलखिलाती हुईं आ पहुँचीं ।

पद्मरानी ने कहा, "हाँ री, टगर कहाँ गयी ? कमरे में नहीं है ?"

"हाँ तो, टगर नहीं है तो न सही । वासन्ती है, जूथिका है, गुलाबी है, सिन्दू है । पद्मरानी के फ़्लैट की मशहूर सुन्दरियाँ महफ़िल रोशन करती आ खड़ी हुईं । पद्मरानी के सामने किसी की बोलने की हिम्मत नहीं होती । सभी एक-दूसरे से सटी खड़ी थीं । बड़ी बेचैनी लग रही थी । दुलाल सान्याल का तो जैसे दम घुट रहा था । लेकिन पद्मरानी आदमी पहचानने में ग़लती नहीं करती । बोली, "तुम लोग बातचीत करो न, दूसरे कमरे में जाकर इन

लोगों से बात करो। बड़ी अच्छी लड़कियाँ हैं—मैं तो बेटा सीधी-सादी बात पसन्द करती हूँ। मेरी लड़कियों का भी वही हाल है। तभी तो इनसे कहती हूँ मैं, गुन दीखते ही रीझो और नमक पाते ही रांधो, मेरी लड़कियों के गुनों का पार नहीं पाओगे।"

फिर ज़रा रुककर कहा, "गुलाबी, बोल न! बात कर न, बेटा! भले घर के लड़के आये हैं ऑफ़िस से, प्ले कर सकेगी? ये लोग रुपये देंगे, सोने की मेडल देंगे—बोल न!"

आख़िर में दुलाल सान्याल की ओर देखकर पद्मरानी ने कहा, "देख रहे हो न बेटा, इन लड़कियों को देख रहे हो न, ऐसी लड़कियाँ तुम्हें सोनागाछी में ढूँढने पर भी नहीं मिलेंगी···अच्छा, एक काम करो, तुम ज़रा ख़ुद ही इस गुलाबी के कमरे में जाकर अकेले में बातचीत कर लो, भाव-ताव कर लो, लड़की बड़ी नाज़ुक है। मेरे सामने बात करते शर्माती है। जा न, गुलाबी, बेटे को अपने कमरे में ले जा न—जा!"

दुलाल सान्याल ने कहा, "लेकिन हम लोग तो कुन्ती गुहा को खोज रहे हैं। सुना है, बड़ा अच्छा एक्टिंग करती है।"

वासन्ती तभी बोल उठी, "हम लोग क्या पसन्द नहीं आयीं?" और कहने के साथ ही उसने आँख फिराकर एक बाँका-सा कटाक्ष किया।

संजय देख रहा था, वह उठ खड़ा हुआ। बोला, "ठीक है, दुलाल दा, मैं ज़रा टेस्ट करके देखता हूँ···आपने क्या पहले कभी प्ले किया है?"

वासन्ती के कुछ कहने से पहले ही दुलाल सान्याल ने टोका। बोला, "नहीं, रहने दो, कोई ज़रूरत नहीं है। कुन्ती गुहा अगर होती तो हम लोगों का काम चलता।"

"माँ!"

तभी बाहर की आवाज़ को पहचानकर पद्मरानी बोल उठी, "लो, टगर आ गयी—आ बेटा, टगर, यहाँ आ!"

इतने सारे अजनबियों को कमरे में देखेगी, कुन्ती ने नहीं सोचा था। सबको देखकर ज़रा चौंक गयी। पद्मरानी ने कहा, "यह लो, मेरी टगर बेटी आ गयी। तुम्हें यह पसन्द है, बेटा? सिखलाने पर यह तुम्हारा प्ले कर लेगी। क्यों री टगर, बाबू लोगों को ड्रामे के लिए लड़की चाहिए—तू कर पायेगी?"

कुन्ती ने दुलाल सान्याल की ओर देखा। ये लोग क्या उसे पहचानते हैं? फिर पद्मरानी की ओर देखकर कहा, "मैं प्ले करना तो जानती नहीं,

माँ, मैं प्ले कर सकती हूँ किसने कहा ?"

"कहेगा कौन बेटा, ये कुन्ती नाम की किसी लड़की को खोज रहे हैं। मैंने कहा कुन्ती नाम की तो कोई है नहीं, इनमें से कोई पसन्द हो तो चुन लो!"

दुलाल सान्याल और अमल घोष तब तक उठ खड़े हुए थे। बोले, "असल में हम लोग कुन्ती को खोजने आये थे। सुना था कुन्ती गुहा यहीं रहती है, इसी पद्मरानी के फ़्लैट में···"

कुन्ती को कैसा एक सन्देह हुआ। "आप लोगों को किसने बतलाया ?"

"हम लोगों की जान-पहचान के एक आदमी ने।"

कुन्ती ने फिर पूछा, "आप लोगों ने उसे देखा ?"

"उसका प्ले देखा है, कभी उसके साथ प्ले किया नहीं है।"

अचानक टेलीफ़ोन की घंटी बज उठी। चारपाई के पास से रिसीवर उठाकर पद्मरानी ने कहा, "हलो !"

कुन्ती ने दुलाल सान्याल की ओर घूमकर कहा, "नहीं, आप लोगों को ग़लत खबर मिली है। कुन्ती नाम की इस फ़्लैट में तो कोई नहीं है। यहाँ मैं हूँ, मेरा नाम टगर है, इसका नाम वासन्ती है, उसका जूथिका और उसका गुलाबी है। और जो हैं, उनके कमरों में इस समय मेहमान हैं। एक्टिंग जनाब हममें से कोई नहीं करता। जो लोग यहाँ ऐश करने आते हैं, हम उन्हें अपने कमरे में बैठाती हैं। अभी तक नहीं समझ पाए आप कि यह वेश्याओं का कोठा है।"

दुलाल सान्याल ने और देरी नहीं की। अमल को खींचता हुआ बाहर चला गया। संजय शायद तब भी अन्दर ठहरना चाहता था। बोला, "तब आप ही करिए न, आपके होने से ही हम लोगों का काम चल जाएगा।"

बाहर से दुलाल ने फिर आवाज़ दी, "ए संजय, चला आ !"

संजय फिर नहीं रुका। बाहर नीचे के आँगन से भी कई लोगों की आवाज़ कान में आयी। हो सकता है बाबू लोगों ने आना शुरू कर दिया हो। अब पद्मरानी के फ़्लैट के गुलज़ार होने का टाइम हो गया। अब सुफल की दूकान से केंकड़े की टाँग, गोश्त की घुघनी और मुगलाई पराँठों का आना शुरू होगा। और उसके बाद बैजू की दूकान से बोतलों का आना शुरू होगा। फिर रात के आठ बजने के बाद पद्मरानी के निजी भण्डार से बोतलें निकलेंगी। ये दूसरी तरह की बोतल। उस बोतल में माल के साथ ऐण्टी मिला रहता है। यह तुम जितनी चाहोगे उतनी ही मिलेगी। पद्मरानी सारी रात सप्लाई कर सकती है। फिर आयेगा कुल्फी-मलाई, आलू-टिकिया

और चाट-पकौड़ीवाला, तब आयेगा बेला का हार और जूड़े बेचनेवाला और तभी हारमोनियम और तबले के साथ शुरू होगा—'चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछी नज़रों से न देख !'

□ □ □

पद्मरानी ने टेलीफ़ोन रखकर मुँह घुमाया। वासन्ती वगैरह चली गयी थीं। कुन्ती तब भी खड़ी थी।

पद्मरानी ने कहा, "क्यों री लड़की, दो दिन से तेरा पता ही नहीं है। बाबू लोग आकर लौट जाते हैं। बात क्या है, री ? सुफल के तीन रुपये साढ़े छः आना बाकी रख छोड़े हैं ! आख़िर हुआ क्या है तुझे ? कहती हूँ धन्धा उठा रही है क्या ?"

कुन्ती ये सारी बातें सुनाने के लिए ही शायद आयी थी। बोली, "सुफल के पैसे अभी-अभी चुकाकर आयी हूँ ।"

"और जुलाई के महीने से मेरा किराया बाकी पड़ा है सो···"

"वह भी लायी हूँ," कहकर पर्स से दस-दस रुपये के दस नोट निकालकर पद्मरानी के हाथ में दिये—"यह एक सौ रुपये आज बड़ी मुश्किल से ला पायी हूँ। इस समय यही रखो माँ, बाद में और रुपयों का इन्तजाम करूँगी। मेरा बाप बड़ा बीमार है, माँ···"

पद्मरानी ने हाथ के रुपये गॉदरेज़ की आलमारी में रखते हुए कहा, "सो ही तो कहूँ, धन्धे में मन नहीं लगाएगी तो रुपये कहाँ से आएँगे, बेटा ? रुपये क्या पेड़ में फलते हैं ? और फिर मेरी ओर भी तो देखना चाहिए, बेटी टगर, मैं भी ग़रीब आदमी हूं, मेरा दूध-घी कहां से आएगा ? इसके सिवाय घर का टरेक्स है। तुम लोग अगर किराया नहीं दोगी तो मेरी गुज़र कैसे होगी, बेटा ? मैं क्या अब जवान हूं जो इस उम्र में अपने कमरे में ग्राहक बैठाऊंगी ! तू अगर कमरा छोड़ दे तो मैं आज ही अढ़ाई-सौ रुपये में उठा दूं। लेकिन मेरे तो करम में ही नुक़सान लिखा है ! तुम लोग तो वह देखती नहीं हो। उस समय सोचा था टगर की उम्र कम है. अभी ज़रा जमा ले। फिर खूब कमाएगी, बाद में ही देगी—तुम तो समझदार हो बेटा ! माँ के बारे में एक बार भी नहीं सोचती।"

कुन्ती ने अपराधी की तरह सिर नीचा किये कहा, "बाप बीमार है, इसी से···"

"···बाप तो बीमार आज हुआ है, पहले क्या हुआ था ? इसके पहले तुमने कितने दिन गंगाजल छिड़ककर दूकान खोली है, ज़रा गिनकर

बताओ ? व्यापार लक्ष्मी है। वह लक्ष्मी ही अगर चंचला हो जाय तो कारोबार टिकता है ? भले-भले घर के लड़के आकर पूछते हैं—'टगर कहां है, टगर कहां है ?' हाय, बेचारे दिल बहलाने आते हैं, उतरा मुंह लिये लौट जाते हैं। देखकर तरस आता है, बेटी। आती लक्ष्मी को इस तरह ठुकराना नहीं चाहिए। इससे तुम्हारा भला नहीं होगा, बतला देती हूं। इससे तो बेटा, तुम मेरा कमरा खाली कर दो। अढ़ाई-सौ रुपये में नयी लड़की रखूंगी। अपना भी नुक़सान मत करो, मुझ ग़रीब मां का भी नुक़सान मत करो।"

कुन्ती ने कहा, "अब मैं रोज़ आया करूँगी।"

पद्मरानी प्यार-भरे शब्दों में बोली, "मैं तो तुम्हारे भले के लिए ही कहती हूं। तुम्हारी मां अगर ज़िन्दा होती तो वह भी यही कहती। यही तो गुलाबी है न। गुलाबी की गृहस्थी है, मालिक है, बच्चे-कच्चे भी हैं। वह कैसे आती है ? वह तो कभी नागा नहीं करती ? घर का काम-काज निबटाकर, बच्चों को खिला-पिलाकर रोज़ छः बजे के अन्दर आकर दूकान खोलती है। बाद में रात के बारह बजे या एक बजे ठीक घर चली जाती है। मुझे कहना भी नहीं होता। तुम्हारी तरह महीनों तक किराया भी बाकी नहीं रखती, ग्राहक भी नहीं लौटाती।"

कुन्ती चुप रही, कुछ भी नहीं बोली।

पद्मरानी ने दूध के कटोरे में घूंट भरते हुए कहा, "मैं तुमसे यह तो नहीं कहती कि अपनी बहन को मत देखो, बूढ़े बाप को मत देखो—खाली यहां आकर सारे दिन गुलछर्रे उड़ाओ। यह तो नहीं कह रही, बेटी ! तुम गृहस्थ घर की लड़की हो, पेट के लिए यहां आयी हो, हालत अच्छी होने पर ब्याह-शादी करके अपनी गृहस्थी सम्हालोगी। तुमसे वह करने को क्यों कहने लगी, बेटा ? मैं क्या पिशाच हूं ? नहीं, बेटा टगर, ऐसे मां-बाप से पैदा नहीं हुई हूं।"

अब कुन्ती ने कहा, "कई रोज़ से बड़ा झंझट चल रहा है, क्या करूँ कुछ समझ में ही नहीं आता…"

पद्मरानी ने बीच में ही टोका, "झंझट किसे नहीं है, बेटा ? किसके झंझट नहीं है ? इस झंझट के मारे ही तो भले-भले घर के लड़के यहां दौड़े आते हैं, आकर बोतल मुंह में डालकर थोड़ी देर के लिए शान्ति खोजते हैं।"

कुन्ती ने कहा, "नहीं, यह दूसरा ही झंझट है—लगता है अब घर छोड़ना होगा, मां !"

"क्यों, छोड़ना क्यों होगा ? किराया नहीं देती ?"

कुन्ती ने कहा, "मुसीबत तो यही है ! बस्ती का मकान ठहरा। दस रुपये किराया दे रही थी। इधर कई साल से बढ़ाकर चौदह रुपये कर दिया है। अब कहते हैं कि बस्ती खत्म करनी होगी, जबकि उस मकान के पीछे मैंने डेढ़ सौ रुपये खर्चे हैं। जंगला तक नहीं था, जंगला लगवाया है। कल दरबान आया था। बोला, मकान छोड़ना होगा। छः महीने का समय दिया था, अभी तक किसी ने घर नहीं छोड़ा। अब सुना है गुण्डे लगाकर बस्ती में आग लगवा देंगे।"

"कौन लगवायेगा ?"

"ज़मींदार, ज़मींन का मालिक। बड़े-बड़े फ़्लैट बनेंगे, उससे काफ़ी किराया आयेगा। इस समय मैं वहीं से आ रही हूं।"

पद्मरानी ने कहा, "तब तेरा बाप क्या कहता है ? उसकी नौकरी है या छूट गयी ?"

अचानक तभी सुफल कमरे में आया। बोला, "आज एग-करी बड़ी चटपटी बनी है। एक प्लेट लाऊँ क्या, माँ ?"

पद्मरानी ने मुंह बनाया।

"तूने क्या दिमाग़ बेच खाया है ! तुझे पता नहीं आज पूनो है ? पूनो के दिन मुझे गोश्त, मछली, अंडा, केंकड़ा कुछ भी छूते देखा है ? यह देख न, दीखता नहीं, गरम दूध पी रही हूँ !"

फिर जैसे अचानक याद आया।

"ओ बिन्दू, बिन्दू, कहाँ गयी री, मेरे लिए ज़रा बात का तेल तो गरम कर ला !"

इसके बाद कुन्ती की ओर घूमकर कहा, "कई दिन से बेटी, पता नहीं क्या हो गया है, कमर में ऐसे चपके चलते हैं, सीधे खड़ी भी नहीं हो पाती। बदन जैसे टूट रहा है। अब देखती हूँ कि दिन पूरे हो आए।"

सुफल तब तक दूसरे कमरे में चला गया। उसके पास वक्त नहीं है। कुन्ती भी शायद कुछ और कहनेवाली थी कि अचानक फिर से टेलीफ़ोन की घंटी बजने लगी। कुन्ती ने कहा, "आज जाती हूँ, माँ !"

"कल आ रही है न ?"

"हाँ, माँ, कल मैं ज़रूर आऊँगी। बिना आये काम कैसे चलेगा ?" कहकर सीधी कमरे से निकल गयी। पद्मरानी ने टेलीफ़ोन का रिसीवर हाथ में लेकर कहा, "हलो !"

□ □ □

एक लम्बा-चौड़ा ब्लू-प्रिण्ट प्लान टेबल पर फैलाये शिवप्रसाद बाबू समझा रहे थे, "यह देखो, यह कलकत्ता की नॉर्थ-वेस्ट साइड हुई, यही जोड़ा साँको, चितपुर सब। इस ओर सिटी में कुछ भी रद्दोबदल नहीं होगी। किसी दिन इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट अगर हाथ लगाये तो दूसरी बात है। मैं इस ओर के बारे में नहीं सोच रहा हूँ। ईस्ट की ओर अभी भी काफ़ी स्कोप है। इधर सी० आई० टी० रोड के आस-पास देखो, यह रेलवे लाइन है। इसके उस पार यह देखो सारी बंजर ज़मीन पड़ी है—मार्शलैंड। देखना, यहाँ भी एक दिन बस्ती होगी। एकदम यहाँ विद्याधरी तक—यह होल एरिया ही वास्तव में अभी तक 'फ्यालो' पड़ा था। मेरी ही नज़र इस ओर सबसे पहले पड़ी।"

सदाव्रत चुपचाप सुन रहा था।

"जिस समय पाकिस्तान बना, सभी के तो सिर पर हाथ था। रिफ़्यूजी आ-आकर स्यालदा स्टेशन पर जमा हो रहे थे। तुम उस समय काफ़ी छोटे थे। श्यामाप्रसाद बाबू और मैं इन सारी जगहों में घूमते थे। अगर पार्टीशन नहीं होता तो मैं भी ग्रेटर केलकटा सिटी अच्छी तरह से नहीं देख पाता। उधर बहूबाज़ार की मारवाड़ी कम्युनिटी ने काफ़ी पैसा दिया, गवर्नमेंट ने भी करोड़ों रुपया खर्च किया। यहाँ जितनी मस्जिदें थीं, अधिकांश में रिफ़्यूजी बस गये। जगह का अभाव फिर भी रहा। स्यालदा की ओर मुसलमानों की जितनी दूकानें थीं, उनमें हिन्दू लोग घुस बैठे।"

इसके बाद ज़रा रुककर कहा, "यह जानना तुम्हारे लिए ज़रूरी है, इसी से कह रहा हूँ। आज तुम भी एक इंडियन सिटिजन हो, तुम्हें वोट देने का अधिकार है—सो यू शुड नो। लेकिन आज तुम लोग देख रहे हो कश्मीर ट्रबुल, बॉर्डर ट्रबुल, कितना कुछ हो रहा है! इसका रूट तुम्हें जान रखना चाहिए। पाकिस्तान के न होने पर यह सब कुछ भी नहीं होता—और अगर पाकिस्तान नहीं होता तो मेरा यह लैंड-स्पेक्यूलेशन भी इतना फ़्लॉरिश नहीं करता।"

शिवप्रसाद बाबू जैसे और भी उत्साहित हो गये। "सोचते होगे, बिजनेस की बात में पॉलटिक्स लेकर डिसकशन क्यों कर रहा हूँ? लेकिन तुमने तो इकॉनोमिक्स पढ़ी है। तुम जानते होगे राजनीति के साथ अर्थ-नीति का कितना मेल है? प्राइम मिनिस्टर के एक लेक्चर पर शेयर-मार्केट के भावों में कैसी तेज़ी-मन्दी आ जाती है? इस लैंड-स्पेक्यूलेशन का भी यही हाल है। अगर पाकिस्तान नहीं होता तो मेरा बिजनेस भी फ़्लॉरिश

नहीं करता। लेकिन पाकिस्तान आखिर बना क्यों, तुम जानते हो?"

बचपन से ही सदाव्रत को पिता के लेक्चर सुनने की आदत है। आज भी जैसे वह छोटा हो। सदाव्रत छोटे बच्चे की तरह चुपचाप सुनता रहा।

"पाकिस्तान किसने बनाया, कुछ पता है?"

सदाव्रत ने कोई जवाब नहीं दिया।

"अखबारों में तुम तरह-तरह की बातें पढ़ोगे। हिस्ट्री की किताबों में भी बहुत-कुछ लिखा है। मैं उस सब के बारे में नहीं कह रहा। असल में, मैं इनसाइड सर्किल में था न, इसी से सीक्रेट जानता हूं। पाकिस्तान को जन्म किसने दिया, कहो न। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने?"

सदाव्रत ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

"नहीं, ब्रिटिश गवर्नमेंट नहीं। तब किसने? कौन? महात्मा गांधी? जवाहरलाल नेहरू? सरदार पटेल? मुहम्मद अली जिन्ना? लियाक़त अली खां? सुहरावर्दी? नहीं, नाजिमुद्दीन साहब? वह भी नहीं तो कौन?"

शिवप्रसाद बाबू जैसे किसी सभा में भाषण दे रहे हों।

"असल में इनमें से कोई भी ज़िम्मेदार नहीं है, इसके पीछे न हिन्दू हैं, न मुसलमान—पीछे है···"

कहकर सामने की ओर ज़रा झुके। आवाज़ ज़रा धीमी की। बोले, "मैं उस समय हाई कमान्ड के इनर सर्किल में था, असली सीक्रेट तुम्हें मैं बतलाता हूं···तुम्हारा जान रखना ज़रूरी है···असल सीक्रेट थी···"

कौन जाने क्या सीक्रेट थी। शायद कोई सीक्रेट होगी, लेकिन वह ओपिन नहीं हो पायी। अचानक टेलीफ़ोन की आवाज़ में सब गोलमाल हो गया। शिवप्रसाद बाबू ने रिसीवर उठाकर कहा, "हलो!"

फिर कहने लगे, "हां-हां, ज़रूर। दस्तावेज, डीड्स—सब मेरे ऑफ़िस में ही हैं, लोकल पुलिस को भी कह रखूंगा। इतनी ज़िम्मेदारी मेरी है। लेकिन मुझे लगता है रिफ्यूजी लोग कुछ गड़बड़ ज़रूर करेंगे। लेकिन जब डिक्री हो चुकी है, इजेक्टमेंट ऑर्डर निकल गया है, तब दखल करने के लिए मारपीट छोड़ उपाय ही क्या है? जबर्दस्ती कब्ज़ा जब साबित हो ही गया है···समझ गया, मैं पेपर्स लेकर अपने लड़के को आपके पास भेज रहा हूं—हां, मेरा लड़का। उसको सारा कारबार समझा रहा हूं, और क्या! अच्छा, नमस्कार!"

रिसीवर रखकर आवाज़ दी, "बद्रीनाथ, बड़े बाबू को बुला!"

हिमांशु बाबू हड़बड़ाते-हड़बड़ाते अन्दर आये। शिवप्रसाद बाबू ने कहा,

"हिमांशु बाबू, जादवपुर की ज़मीन के जो पेपर्स अपने ऑफ़िस में हैं, वह फ़ाइल लाइए ज़रा। सदाव्रत वह सब लेकर गोलक बाबू के पास जायेगा।"

हिमांशु बाबू चले गये। शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "तुम्हें भेज रहा हूं, क्योंकि तुम्हें भी कुछ-कुछ समझ लेना चाहिए। अपनी फ़र्म के एडवोकेट गोलक बाबू, गोलकबिहारी सरकार। उनके साथ मुलाक़ात भी होगी, जान-पहचान भी हो जायेगी। हां, जादवपुर की बस्ती भी तुम्हें एक दिन दिखला लाऊंगा। रिफ़्यूजियों ने उस ज़मीन पर मकान बनाकर मौरुसी-पट्टा कर लिया है। ज़रा सोचो, उस प्लॉट को अगर बेच भी दूं तो इस समय कितना फायदा होगा! और कुछ नहीं, कम किराये के फ़्लैट ही अगर बनवा दिये जाएं, तो भी हर महीने कम-से-कम फिफटी-टू-सिक्स्टी परसेंट प्रॉफिट होगा। इसीलिए कह रहा था कि पाकिस्तान बनने से अपना तो कोई नुक़सान नहीं हुआ। तुम्हीं कहो न, पाकिस्तान न होने पर क्या रिफ़्यूजी यहां आते? रिफ़्यूजी लोग अगर नहीं आते, तब क्या ज़मीन का भाव इतना बढ़ जाता? तुम्हीं कहो न—यह तो एक तरह से अच्छा ही हुआ।"

तभी फ़ाइलें लिये हिमांशु बाबू आ गये। शिवप्रसाद बाबू ने सारे पेपर्स सदाव्रत को दिखला दिये। फिर कहा, "यह लो, और गोलक बाबू का मकान अहीर टोला लेन में है। अहीर टोला लेन पहचानते हो न। और अगर नहीं भी मालूम तो कुंज जानता है। कुंज बतला देगा। जाओ! कुछ कहना नहीं होगा, सिर्फ़ पेपर्स दे देना। वह खुद ही सब समझ जायेंगे।"

अहीर टोला! सदाव्रत जैसे चौंक उठा।

फ़ाइलें सम्हालकर उठ खड़ा हुआ। बोला, "अच्छा!"

□ □ □

कुंज ठीक जगह पर ही ले गया। वह कितनी ही बार बाबू को यहां वकील साहब के मकान पर लाया है। इस जगह को अच्छी तरह से पहचानता है। शाम के समय चितपुर रोड पर ट्रैफिक ज़्यादा रहता है। सड़क संकरी है। उसी में ट्राम-लाइन। कभी-कभी काफ़ी समय के लिए ट्रैफिक जाम हो जाता है। लेकिन कुंज सधा हुआ ड्राइवर है। मिजाज़ का भी ठंडा। आगे की गाड़ी को ओवर-टेक करने की भी कोशिश नहीं करता। वह आराम से गाड़ी ड्राइव कर रहा था।

"अच्छा, कुंज…"

सदाव्रत पिछली सीट पर बैठा था। लेकिन जैसे ओर नहीं रोक पाया। गाड़ी चलाते-चलाते ही कुंज ने पीछे मुड़कर देखा। सदाव्रत पूछ ही बैठा

"अहीर टोला सेकंड बाई लेन पहचानते हो ?"

कुंज सब जानता है। ड्राइव करते-करते पक्का हो चुका है। बोला, "जानता हूँ, छोटे बाबू !"

"पहले वकील साहब का घर पड़ेगा या सेकंड बाई लेन पड़ेगी ?"

"सेकंड बाई लेन। लेकिन उस गली में गाड़ी तो जा नहीं सकती।"

सदाव्रत ने कहा, "पहले तुम वहीं चलो। मुझे एक मिनट से ज़्यादा नहीं लगेगा। तुम गली के बाहर ही गाड़ी लगा देना। मैं पैदल ही जाकर अपना काम निपटा आऊँगा।"

सच ही तो ज़्यादा टाइम लगने की बात ही क्या है ! ऐसा कोई खास काम तो है नहीं ! इसके अलावा जब एक्टिंग करनेवाली लड़की है तो बाहरी आदमियों का आना-जाना भी होगा ही। फिर भी लड़की ने कहा था—वह घर जाने लायक नहीं है। शायद किसी पुराने टूटे-फूटे मकान में दो-एक कमरे लेकर रहती होगी। उसमें शर्म की क्या बात है, जबकि रिश्तेदारों में कोई-कोई बड़े आदमी भी हैं। उस दिन रात को टैक्सी से उतरकर जिस बंगले के पार्टिको में गयी, वह तो काफ़ी बड़े आदमी लगते हैं। उनका ख़ुद का घर न भी हो, वह मकान किराये का ही हो, तब भी कुछ कम नहीं है। कम-से-कम अढ़ाई-सौ रुपये किराया तो देते ही होंगे। लेकिन ख़ुद इतनी ग़रीब क्यों है ? उस दिन लड़की ने काफ़ी सुनाया। कम्युनिस्टों से नाराज़, बड़े लोगों से नाराज़। अजीब बात है ! कलकत्ता में भी कैसे-कैसे लोग हैं !

"यही है सेकंड बाई लेन, छोटे बाबू, इसके अन्दर गाड़ी नहीं जाएगी।"

सदाव्रत ने गाड़ी से बाहर निकलकर गली की ओर ताका। सँकरी, घिच-पिच। बदबू से भरी डैम्प आबहवा ! दोपहर को ही जैसे शाम लगती थी। दोनों ओर की दीवारों के प्लास्टर में से ईंटें जैसे दांत दिखला रही थीं। एक खुजैला कुत्ता। डस्टबिन। नाले में पास के मकान की सँडास का मैला सड़सड़ करके बह रहा था। पीछे की ओर चमड़े के सूटकेस का कारखाना था। सुनार की दूकान।

सदाव्रत ने पॉकेट से नोटबुक बाहर निकाली। वैसे पता याद ही था, फिर भी एक बार मिला लेना अच्छा होता है। बत्तीस-बी, अहीर टोला, सेकंड बाई लेन।

दीवार पर लिखे मकान-नम्बरों को देखता हुआ सदाव्रत गली के अन्दर घुस गया। ☐ ☐ ☐

हिमांशु बाबू पिछले सोलह साल से इस 'लैंड डेवेलपमेंट सिण्डीकेट' ऑफ़िस में काम कर रहे हैं। एक बार नक्शा देखते ही समझ जाते हैं, ज़मीन कैसी है। पानी रुकता है या नहीं। ज़मीन ढालू है या एकसार। हिमांशु बाबू को यह सब किसी ने सिखलाया नहीं है। पहले एक वकील के यहां मुंशीगिरी करते थे। शिवप्रसाद बाबू उन्हें वहीं से ले आये थे। उस समय ऑफ़िस छोटा था। इतने क्लर्क नहीं थे। हिमांशु बाबू ही मैनेजर-अर्दली सब-कुछ थे। शिवप्रसाद बाबू को ऑफ़िस देखने का समय ही कितना मिलता था। ब्रिटिश गवर्नमेंट अभी जाने ही वाली थी। हर ओर बदइन्तज़ामी फैली थी। श्यामाप्रसाद बाबू सेंटर में मिनिस्टर हो गये। यार-दोस्त सभी मिनिस्टर, नहीं तो पार्लमेंटरी सेक्रेटरी। सभी ने सोचा, शिवप्रसाद बाबू भी कहीं मिनिस्टर हो जायेंगे। या तो मिनिस्टर, नहीं तो स्टेट मिनिस्टर, नहीं तो डिप्टी। बार-बार दिल्ली जा रहे थे।

लेकिन कुछ भी नहीं हुए। शायद सोचा होगा कि मिनिस्टर बनकर ही क्या करेंगे ! साथ में पगड़ी पहने चपरासी घूमेगा, गाड़ी मिलेगी, हो सकता है मोटी तनख्वाह भी मिले। घर के दरवाज़े पर हर वक्त लाल पगड़ी का पहरा रहेगा। लेकिन बस इतना ही। मिनिस्टर तो वैसे भी हाथ में रहेंगे ही। कांग्रेस पार्टी भी हाथ में रहेगी। फ़ायदा अन्दर से ही होना है। फिर बेकार में स्टाम्प लगाने की क्या ज़रूरत। ठीक किया, किंग होने से किंग-मेकर होना कहीं अच्छा है। शिवप्रसाद बाबू वही हुए। इधर ऑफ़िस का काम हिमांशु बाबू ने सम्हाल लिया।

शिवप्रसाद बाबू ने आदमी अच्छा चुना था।

ऑनेस्ट, मेहनती और हिसाबी—हिमांशु बाबू में तीन गुण थे। शिवप्रसाद बाबू दिल्ली गये थे। हिमांशु बाबू सदाव्रत को कामकाज समझाने लगे।

हिमांशु बाबू कहते, "ये पुरानी फ़ाइलें पढ़कर देखिए !"

एक गट्ठर फ़ाइल टेबल के ऊपर रख गये। पिताजी नहीं हैं। दूसरे दिन से ही सदाव्रत ठीक वक्त पर ऑफ़िस जा पहुंचता। मालिक के नाम पर अकेला सदाव्रत था। शुरू-शुरू में पिताजी की चेयर पर बैठते ज़रा झिझक होती। नेताजी सुभाष रोड की एक बड़ी बिल्डिंग की तीसरी मंजिल का एक फ़्लैट। नीचे झांककर देखने पर दिखलायी देतीं लाइन-की-लाइन गाड़ियां और चींटी-जैसे आदमियों की लाइनें। ठीक जैसे दीवार पर लाइन लगाकर चींटियां मरे कीड़े को खाने जाती हैं। और सिर पर भरी फ़ाइलों

का यह पहाड़ और लपेटकर गोल किये ब्लू-प्रिण्ट ! चारों ओर पेंटेड शीशों का पार्टीशन। दीवार पर लाइन-की-लाइन फ़ोटो। गांधीजी पैर मोड़े बैठे हैं, जवाहरलाल नेहरू माइक्रोफोन के सामने मुट्ठी बांधे भाषण कर रहे हैं। किसी में शिवप्रसाद बाबू डॉ० विधान राय के साथ तो किसी में श्यामाप्रसाद मुकर्जी के साथ।

चारों ओर फ़ोटो देखते-देखते सदाव्रत सोचने लगता। अन्दर-ही-अन्दर मन में जैसे एक छिपा हुआ गर्व जाग उठता। वह भी तो इस सब का उत्तराधिकारी है। हो सकता है वह इस वंश का लड़का नहीं हो। फिर भी उत्तराधिकारी तो वही है। इसके गौरव का उत्तराधिकारी, इसके ऐश्वर्य का भागीदार। वह जैसे लकड़ी का पुतला है। कोई उस पुतले को काम चलाने के लिए यहां बैठा गया है।

एक फ़ाइल लेकर सदाव्रत शुरू से आख़िर तक पढ़ गया। ज़मीन के ख़रीदने से शुरू कर बेचने तक। लेकिन कुछ भी समझ में नहीं आया। एक फ़ाइल और निकाली। उससे भी कुछ पल्ले नहीं पड़ा। जैसे करॅसपॅन्डेंस की क्रासवर्ड पज़िल। इसी करॅसपॅन्डेंस और ब्लू-प्रिण्ट के मन्थन से उनके जीवन का अमृत निकलता है। वही अमृत बैंक में जाकर मधुचक्र की सृष्टि करता है।

उस दिन वह और नहीं रोक पाया। पूछा, "अच्छा हिमांशु बाबू, हम लोगों की ईयरली इन्कम कितनी है ?"

"किस चीज़ की इन्कम ?"

"इस फ़र्म की। हर महीने इस फ़र्म से पिताजी कितना ड्रा करते हैं ?"

हिमांशु बाबू ऐसे प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। फिर अपने को सम्हालकर बोले, "हम लोगों की बैलेन्स-शीट है। अपनी बैलेन्स-शीट हम लोगों को ज्वाइन्ट स्टॉक-कम्पनी के रजिस्ट्रार के यहां सबमिट करनी होती है। मैं दिखलाता हूँ। अभी लाया।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं-नहीं, उसकी कोई ज़रूरत नहीं है। मैं ज़रा ऐसे ही जानना चाहता था। इस बिज़नेस से पिताजी की एप्रोक्सीमेट इन्कम कितनी है ? आपको तो मालूम ही होगा।"

"शिवप्रसाद बाबू ही तो इस कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं, उन्हें अपने शेयर्स का डिवीडेंड मिलता है। इसके अलावा एक एलाउन्स है साढ़े चार सौ रुपये महीने का।"

साढ़े चार सौ रुपये !

सदाव्रत ने मुंह से कुछ नहीं कहा। सिर्फ़ साढ़े चार सौ रुपये ! पिताजी की इन्कम इतनी कम है ? इतना बड़ा मकान, यह गाड़ी, ड्राइवर, नौकर-चाकर, महाराज-महरी—सब साढ़े चार सौ रुपये में ! लेकिन कुंज की तनख्वाह ही तो अस्सी रुपये है। और भी कितने ही खर्चे हैं। अभी तक उसके कॉलेज की फीस थी, मास्टर साहब की फीस थी। फिर उसकी किताबों का खर्चा। उसने खुद ही तो न जाने कितने रुपयों की किताबें खरीद डाली हैं। जब जो चाहा उसे मिला। उसकी गाड़ी पुरानी हो गयी है, फिर भी उसका खर्चा तो है ही !

हिमांशु बाबू शायद सदाव्रत के मन की बातें समझ गये। बोले, 'अपनी फ़र्म ज़्यादा रिच तो नहीं है। इस समय उतना प्रॉफिट कहां हो रहा है ? अब तो कितने ही लैंड-स्पेक्यूलेशन ऑफ़िस हो गये हैं, कई राईवल कम्पनियां हो गयी हैं। पहले-जैसा प्रॉफिट अब कहां है !"

सदाव्रत ने जवाब में सिर्फ़ कहा, "ओह !"

"इसी से तो अपने स्टाफ की तनख्वाह भी नहीं बढ़ा पाते।"

"एक क्लर्क को कितना मिलता है ?"

हिमांशु बाबू ने कहा, "जो देना चाहिए उतना नहीं दे पाता। वह जो नन्दी नाम का लड़का है, आज पांच साल हो गये, अभी तक उसे सत्तर रुपये से ज़्यादा नहीं दे पा रहा।"

"लेकिन सत्तर रुपये में क्या उसका काम चलता है ? अपने ड्राइवर कुंज को ही तो अस्सी रुपये मिलते हैं।"

हिमांशु बाबू ने कहा, "शिवप्रसाद बाबू प्रायः ही कहते हैं—इन लोगों को भरपेट खाना दे पाऊं मेरी यह हालत भी नहीं है। उन्हें मन-ही-मन बड़ा अफसोस होता है। इसी से कोई कुछ नहीं बोलता। शिवप्रसाद बाबू को मन-ही-मन दुःख होता है, यह सिर्फ़ मैं ही समझता हूं।"

"आपको खुद कितना मिलता है ?"

"मेरी मुसीबत के समय उन्होंने मेरी जो सहायता की उसे मैं कभी भी नहीं भूल पाऊंगा। तनख्वाह न मिलने पर भी मैं इस ऑफ़िस को छोड़कर नहीं जा पाऊंगा। मैं डेढ़ सौ रुपये लेता ज़रूर हूं, लेकिन वह भी लेते समय मेरा हाथ कांपता है।"

"और डिवीडेंड ?"

सदाव्रत पिताजी की अनुपस्थिति का सुयोग पाकर जैसे अनधिकार प्रवेश की कोशिश कर रहा था। बोला, "यह सब पूछ रहा हूं, आप कुछ

औ रन समझिएगा, हिमांशु बाबू ! असल में पिताजी कुछ दिनों से सब-कुछ समझ लेने को कह रहे हैं।"

हिमांशु बाबु ने कहा, "अरे नहीं, यह क्या कह रहे हैं आप ? आपको सब-कुछ जानना ही चाहिए। शिवप्रसाद बाबू मुझसे भी तो कह गये हैं कि आप जो कुछ जानना चाहें, बतला दूं। असल में बात यह है कि आजकल कम्पनी कुछ अच्छी नहीं चल रही—माने, जितनी अच्छी चलनी चाहिए उतनी अच्छी नहीं चल रही ।"

सदाव्रत ने अचानक बीच में ही टोका, "अच्छा देखिये, उस दिन जयपुर से किसी ने ट्रंक-कॉल किया था। उसका नाम शायद सुंदरियाबाई था—वह कौन है ? सुंदरियाबाई को पहचानते हैं आप ?"

"सुंदरियाबाई ?"

हिमांशु बाबू ने कुछ देर सोचा। फिर बोले, "मैं तो समझ नहीं पा रहा कुछ। क्यों ? उन्होंने क्या कहा ?"

"नहीं, कहा कुछ भी नहीं। पिताजी को पूछ रही थीं। मैंने कह दिया दिल्ली गये हैं।"

हिमांशु बाबू ने कहा, "ओह, समझा, शायद पार्क-स्ट्रीटवाली प्रॉपर्टी के बारे में बात करना चाहती होंगी, मैं ठीक से नहीं जानता। अंग्रेज़ लोग तो जा रहे हैं न, अब सब-कुछ मारवाड़ी लोग खरीद लेना चाहते हैं।"

सदाव्रत ने कहा, "अच्छा, आप जाइये, मैं फ़ाइल देखूं।"

कहकर जैसे हठात् याद आया। बोला, "एक बात और, हिमांशु बाबू, उस बस्ती के मामले का क्या हुआ ? वही जिसकी फ़ाइलें लेकर मैं उस दिन गोलक बाबू के यहां गया था ? उसका क्या हुआ ?"

"उसका सारा इन्तजाम हो गया है।"

"क्या इन्तज़ाम ?"

"वकील का काम वकील ने किया। उन्होंने पेपर्स देख लिये हैं। हम लोगों की ओर से कोई फ्लॉ नहीं है। अब सिर्फ़ क़ब्ज़ा करना रहता है।"

"क़ब्ज़ा करना माने ?"

हिमांशु बाबू ने कहा, "ये सब रिफ़्यूजी लोग यहां आकर जम गये हैं न ! किसकी जमीन है कुछ ठीक नहीं, जिसे जहां जगह मिली घर बनाकर जम गया है। जबकि देखिये, इन्हीं लोगों को गवर्नमेंट से हज़ारों रुपये लोन और कॅम्पनसेशन के मिले हैं; कपड़े की दूकान खोली हैं। खा-पीकर मज़े सेघूमते हैं। पाकिस्तान से जो लोग आये हैं—इन लोगों की वजह से बस-

ट्राम तक में जगह नहीं मिलती। आपको तो मालूम ही है। जैसे यह इन्हीं का देश हो। हम लोगों को तो जैसे आदमी ही नहीं मानते।"

"तो नहीं मानें, अब क्या मुक़दमा करके इन्हें हटायेंगे ?"

हिमांशु बाबू ज़रा मुसकराये। बोले, "नहीं-नहीं, मुक़दमा करके क्या इन लोगों को हटाया जा सकता है ! जहां जो जम गया है उसे वहां से हटाना मुश्किल है। गवर्नमेंट भी उन लोगों से कुछ कहने की हिम्मत नहीं कर सकती !"

"क्यों, गवर्नमेंट क्या डरती है ?"

"डरेगी नहीं ? उन लोगों को भी तो वोट देने का अधिकार है। चुनाव होने वाले हैं, इसी से उन्हें नाराज़ नहीं करना चाहती। कम्युनिस्ट लोग भी तो उन्हीं लोगों की बैकिंग पर चुनाव लड़ रहे हैं। गवर्नमेंट और अदालत से कुछ भी नहीं होगा।"

"तब उन लोगों को कैसे हटायेंगे ?"

"मारकर ! रातों-रात काम ख़त्म कर देना होगा। नहीं तो उन लोगों के पीछे कम्युनिस्ट पार्टी है। अगर रॉयट जैसा कुछ हो जाये तो हम लोग क्रिमीनल-केस में फंस जायेंगे ! इसी से वह सब झमेला नहीं करना है। हम लोगों का सब इन्तज़ाम है। किसी दिन मिड-नाइट में जाकर सब झोंपड़े वग़ैरह तोड़-फोड़कर क़ब्ज़ा कर लेंगे।"

"लेकिन वे लोग जायेंगे कहां ?"

"यह वे लोग समझें। रीजेन्ट पार्क की दस बीघा ज़मीन हम लोगों ने इसी तरह रिक्लेम कर ली। और अपने इसी मुहल्ले के एक बिजनेसमैन हैं। उनकी भी कुछ ज़मीन रिफ़्यूजियों ने दबा ली थी। उन्होंने भलमनसाहत करके अदालत में केस चलाया। आज सात साल हो गये, मामला भी चल रहा है, गांठ के रुपये भी खर्च हुए सो अलग। अभी तक कोई फ़ैसला नहीं हो पाया है। शिवप्रसाद बाबू से मैंने इसीलिए कहा कि बिना मार भगाये ये लोग जानेवाले नहीं हैं। जब तक दो-चार का सिर नहीं फूटेगा, इन लोगों की समझ में नहीं आयेगा !"

उस दिन रात को तो सदाव्रत टैक्सी लेकर टालीगंज रिफ़्यूजी कॉलोनी देखने गया था। उसी दिन की बातें उसे याद आने लगीं। सड़क के किनारे की अच्छी-ख़ासी ज़मीन पर फटे-चिथड़ों, टाटों, टूटे बांसों और खपचियों से रानीगंज के झोंपड़े तैयार किये हैं। सदाव्रत ऑफ़िस की चेयर पर बैठा-बैठा उस बस्ती की कल्पना करने लगा। हिमांशु बाबू जैसे बड़े बाबू के कारण

ही शायद लैंड-डेवेलपमेंट सिण्डीकेट चल रहा है। सभी ऑफ़िसों में शायद एक-एक हिमांशु बाबू होते हैं। उन लोगों के लिए ऑफ़िस ही ज़िन्दगी है। ऑफ़िस की छोटी-छोटी बातों से लेकर बड़े-बड़े बजट और बैलेन्स-शीट इन लोगों की ज़बान पर रहते हैं। कुछ ही दिनों में सदाव्रत को पता लग गया कि हिमांशु बाबू खुद भी एक फ़ाइल हैं। हज़ारों-लाखों धूल-जमे कागज़ों के बीच एक मरा हुआ कागज़।

हिमांशु बाबू ऑफ़िस आते ही अपनी चेयर-टेबल खुद ही डस्टर से झाड़ लेते। हिमांशु बाबू काम करते-करते कहते, "तुम लोग सारे काम चपरासी से कराते हो, यह तो कोई अच्छी बात नहीं है। चपरासी है ऑफ़िस के काम के लिए, उसे चाय लेने क्यों भेजते हो ? चपरासी क्या तुम लोगों के घर का नौकर है ?"

नन्दी कहता, "तो हम लोगों को टिफिन की छुट्टी दीजिये !"

हिमांशु बाबू कहते, "बंगालियों में यह बड़ा भारी दोष है। हर बात में बहस करेंगे। बंगाली बहस करने में ही गये। मिलिटरी में क्या ऐसे ही बंगालियों को नहीं लेते !"

सदाव्रत केबिन में बैठा-बैठा सब सुनता। सुनने में ख़ूब मज़ा आता।

"कहता हूं, टिफिन करने का अगर इतना ही शौक है तो गवर्नमेंट ऑफ़िस में नौकरी करो न ! सारे दिन बैठे-बैठे घंटा-भर टिफिन-रूम में बिताकर मज़े से घर चले आते, यहां क्यों आ गये ! हम लोग कोई खुशामद करने तो गये नहीं थे ! तुम लोगों को बुलाने भी नहीं गये थे कि अरे भाई, तुम लोग आओ, तुम लोगों के बिना सारा काम-काज रुका पड़ा है।"

एकाएक गले की आवाज़ बदलकर कहते, "दत्त, चिट्ठी टाइप हुई ?"

टाइपिस्ट दत्त कहता "जी, ज़रा देरी होगी, इस मशीन से और काम नहीं चलेगा। एक नयी मशीन मंगाइए।"

हिमांशु बाबू कहते, "वह तो कहोगे ही। एक दिन मैंने अकेले ही उस मशीन पर टाइप किया है। अकेले ही ऑफ़िस की सारी फ़ाइलें क्लीयर की हैं, और आज उसी काम के लिए इतने सारे लोग हैं। मैंने मालिक से तभी कहा था, ज़्यादा आदमी न लीजिए। ज़्यादा लोगों से जो काम होगा सो तो दीख रहा है।"

नन्दी से शायद और सहा नहीं गया। बोला, "लेकिन हम लोग काम नहीं करते हैं तो करते क्या हैं। आपके सामने ही तो बैठे हैं !"

ऐसी छोटी-छोटी बातों की वजह से सारा ऑफ़िस जैसे पत्थर हो गया

था। सदाव्रत इसके पहले भी नहीं जानता था कि जहाँ से उसके घर की आय हो रही है, जिस पैसे से उसकी गृहस्थी चलती है, जिस आय के बूते पर उसकी ख़ुद की पढ़ाई-लिखाई हुई, वहीं से इतनी शिकायतें, इतना असन्तोष। इनमें से कोई भी तो ख़ुश नहीं है। इन लोगों को साठ या सत्तर रुपये महीना मिलते हैं। और सदाव्रत अपनी गाड़ी के पेट्रोल में ही तो पचास रुपये उड़ा देता है !···

एक दिन हिमांशु बाबू केबिन में आये। सदाव्रत ने कहा, "अच्छा हिमांशु बाबू, एक बात पूछनी थी।"

"कौन-सी बात, कहिए ?"

"कह रहा था कि क्या इन लोगों की, माने इन्हीं कुछ क्लर्कों की तनख़्वाह नहीं बढ़ायी जा सकती ? यही कोई चार-पाँच रुपये महीने।"

"चुप, चुप।" हिमांशु बाबू ने धीरे-से कहते हुए अपने होंठों पर अँगुली रखी और बोले, "वे लोग सुन लेंगे। इतनी ज़ोर से न बोलिए !"

सदाव्रत ने आवाज़ धीमी करते हुए कहा, "नहीं, एक दिन देखा, टिफिन के समय कुछ भी नहीं खा पाये। सिर्फ़ चाय पीकर ही रह गये। और कोई बात नहीं है। लेकिन बद्रीनाथ घर से मेरे लिए खाना लाता है, यह उन लोगों को मालूम है ?"

हिमांशु बाबू फुसफुसाए, "वे और आप ? उन लोगों के साथ अपनी तुलना कर रहे हैं ?"

"नहीं, तुलना नहीं कर रहा, लेकिन खाते समय जाने कैसा लगता है। बद्रीनाथ जब प्लेटें धोता है, वे लोग देखते होंगे।"

हिमांशु बाबू ने कहा, "अरे नहीं, आप ज़रा भी फिक्र न करिए। उन लोगों ने पढ़ाई-लिखाई कुछ भी नहीं की है। इस नौकरी के बूते पर ही पेट पाल रहे हैं। यहाँ नौकरी न मिलने पर क्या करते, ज़रा सुनूँ ? आप तनख़्वाह बढ़ाने का नाम न लीजिए। इन लोगों को शह मिलेगी।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, मैं तो ऐसे ही कह रहा था। अगर बढ़ा सकते···"

"नहीं, छोटे बाबू ! वह सब मैंने बहुत देखा है, दो रुपये महीने बढ़ाने से उन लोगों के घर नहीं पहुँचेगा। या तो रेस में जायेगा, नहीं तो शराब की भट्ठी में। मैं इन लोगों को पहचानता हूँ।"

इसके बाद और कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके बाद सदाव्रत और कुछ नहीं बोल पाता। अख़बार, टेक्स्ट-बुक्स में इतने दिनों जो कुछ पढ़ा है,

हिमांशु बाबू की बात के सामने झूठ मालूम देता है।

हिमांशू बाबू ने जाते-जाते कहा, "और एक दिन मैंने शिवप्रसाद बाबू से यह बात कही थी। चीज़ों की क़ीमतें बढ़ रही हैं, यह तो देखता ही हूँ। मुझे भी तो गृहस्थी चलानी होती है। मैं क्या समझता नहीं हूँ ? हाँ, तो शिवप्रसाद बाबू ने सब-कुछ सुना, बोले कुछ नहीं। ग़रीबों का दुःख नहीं देख पाते न !"

सदाव्रत ने पूछा, "आपका अपना ख़ुद का काम कैसे चलता है ?"

हिमांशु बाबू ने समझाने की मुद्रा में कहा, "वह आदत की बात है। ख़र्चा बढ़ाने से ही बढ़ता है। तब लगता है, बिना गाड़ी के नहीं चलेगा, रेफ्रिजरेटर न होने से काम नहीं चलेगा, एअर-कन्डीशन्ड कमरे के बिना काम नहीं चलेगा। शिवप्रसाद बाबू ने क्या गाड़ी खरीदनी चाही थी ? मैंने ही तो कह-कहकर खरीदवायी। कहा—हम लोग ग़रीब पैदा हुए, ग़रीब ही मर जाएँगे, लेकिन आपको तो पाँच भले आदमियों के साथ सरोकार पड़ता है, मिनिस्टरों के साथ मुलाक़ात करनी होती है, आप गाड़ी खरीदिए। वह तो फिर गीता का भी पाठ करते हैं न। असल में यह बात मैं ही जानता हूँ। ऊपर से जैसे दीखते हैं, वास्तव में वह वैसे नहीं हैं। अपने निजी रहन-सहन में भी उसी गीता के अनुसार चलना चाहते हैं। रुपये-पैसे का तो कोई लोभ है ही नहीं। लोभ होता तो क्या कम्पनी की यह हालत होती ! इस कम्पनी को मैं, सिर्फ़ मैं ही सोने से मढ़ देता। और फिर जो कुछ भी कमाया सभी तो दान कर डाला।"

सदाव्रत को और भी आश्चर्य हुआ।

कुछ रुककर फिर कहा, "ये बातें कहीं उनसे न कहिएगा। यह सब किसी को भी नहीं मालूम। उन्हें अपनी उदारता का ढोल पिटवाना पसन्द नहीं है। इन शरणार्थियों को ही लीजिए। इन लोगों के लिए क्या उन्होंने कुछ कम किया है ! वे तो दान करते-करते ही फक्कड़ हो गये।"

अचानक एक ट्रंक-कॉल आने से बात बीच में ही रुक गयी। हिमांशु बाबू ने रिसीवर उठाकर कहा, "हलो···नहीं···वह तो नहीं हैं।" कहकर फ़ोन छोड़ दिया।

सदाव्रत ने पूछा, "कौन फ़ोन कर रहा था ? कहाँ से ?"

हिमांशु बाबू ने कहा, "ऊँह, जयपुर से था, मैंने कह दिया कि नहीं हैं।"

सदाव्रत को अजीब-सा लगा।

"जयपुर से ? पहले भी किसी ने किया था—सुंदरियाबाई थी क्या ?"

"वह तो पता नहीं। नाम नहीं बतलाया।"

□ □ □

उस दिन टेलीफ़ोन उठाते ही उधर से किसी ने कहा, "सदाव्रत गुप्त है क्या ?"

"मैं सदाव्रत बोल रहा हूँ।"

"मैं शंभू हूँ। ऑफ़िस से बोल रहा हूँ। मैंने इस बात का पता लगा लिया है। दुलाल दा से मुलाक़ात हुई थी।"

"क्या कहा ?"

"टेलीफ़ोन पर वह सब नहीं कहा जा सकता। हमारे यहाँ ऑफ़िस से टेलीफ़ोन करने की मनाही है। मैं जैसे-तैसे लुक-छिपकर कर रहा हूँ। आज मेरे घर चले आना। मैं बन्द कर रहा हूँ।"

कहकर जल्दी से लाइन काट दी। और कुछ सुनायी नहीं दिया। सदाव्रत ने हाथ की फ़ाइल रख दी। जैसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। अचानक सब-कुछ फिर से याद आ गया। रोज़ ऑफ़िस आने और ऑफ़िस से घर लौटने में जैसे उस बात को भूल ही गया था। हर रोज़ कुंज आकर गाड़ी लिये खड़ा रहता, और सदाव्रत उसमें बैठकर यहाँ चला आता। वही एक रास्ता और वही एक चेहरा। कितने ही दिन और कहीं जा ही नहीं पाया। माँ कहीं जाने ही नहीं देती। कह दिया था, ऑफ़िस से सीधे घर आना। वे हैं नहीं, वह भी कहीं देरी करके घर न लौटे। जब कि पिताजी न जाने कहाँ-कहाँ जाते हैं, उनका कोई ठीक ही नहीं है, माँ उन्हें तो बाँध नहीं पायी। सदाव्रत को शायद इसीलिए शुरू से ही आस-पास रखना चाहती है। किसी-किसी दिन ऑफ़िस में भी टेलीफ़ोन करती।

माँ कहती, "क्यों रे, टिफिन कर लिया ?"

सदाव्रत कहता "हाँ, कर लिया।"

"खाना ठीक था न ? जयनगर की मिठाई थी, फेंक तो नहीं दी ?"

सदाव्रत गुस्से हो जाता। वह क्या छोटा-सा बच्चा है ! कहता, "मैंने तो कह दिया था खा लूँगा, फिर टेलीफ़ोन क्यों किया ?"

"तुझे याद दिला दिया, नहीं तो तू जैसा भुलक्कड़ है !"

"नहीं, मुझे याद दिलाने की कोई ज़रूरत नहीं है, तुम इतना खाना क्यों भेज देती हो ? मुझे खाने में शर्म आती है।"

"क्यों, शर्म किसी बात की ? मेहनत करनी पड़ती है, बिना खाये शरीर कैसे चलेगा ?"

"तुम कुछ भी नहीं समझतीं। मुझे कोई काम नहीं है। मैं सिर्फ़ चुपचाप बैठा रहता हूँ। इसके अलावा ऑफ़िस का और कोई भी क्लर्क नहीं खाता। बद्रीनाथ जब प्लेटें धोने जाता है तब सब देखते हैं—मैं क्या खाता हूँ, क्या नहीं खाता।"

माँ शायद ठीक से समझ नहीं पाती। कहती, "वे लोग तो ग़रीब हैं, क्या खायेंगे ? उन लोगों के साथ तू ?"

सदाव्रत ने बात और नहीं बढ़ायी। माँ के साथ बात करना दिमाग़ ख़राब करना है। जल्दी-जल्दी दो-एक बात कहकर रिसीवर रख दिया। प्रायः रोज़ ही ऐसा होता। घर पहुँचकर भी कितने ही दिन माँ को समझाया। और सब लोगों को जब खाना नहीं मिलता, उस समय उसका खाना ठीक नहीं। यह बात माँ को किसी तरह नहीं समझा पाया। उस दिन भी फूड-क्राइसिस को लेकर ही गोली चली। कितने ही लोग पकड़े गये, कितने ही मारे गये, और कितने ही अभी तक अस्पताल में पड़े थे।

शंभू !

ऑफ़िस से निकलकर घर की ओर न जाकर सदाव्रत सीधा वहूबाज़ार पहुँचा। मधुगुप्त लेन का जाना-पहचाना मकान।

काफ़ी दिनों बाद फिर से इस ओर आने पर बड़ा अच्छा लगा। शंभू के यहाँ बाहर के कमरे में शायद भाई-बहनों को मास्टर पढ़ा रहा था। अन्दर से पढ़ाने की आवाज़ आ रही थी।

लेकिन शंभू शायद तैयार ही था। सदाव्रत के पहुँचते ही बाहर आ गया। बोला, "आ गया ? चल !"

बाहर गाड़ी देखकर बोला, "आज गाड़ी लेकर आया है ?"

सदाव्रत ने कहा, "ऑफ़िस से सीधा आ रहा हूँ न ! पिताजी कलकत्ता में नहीं हैं···और क्या हाल है ?"

"अरे, वह सब बेकार की बात थी।"

"बेकार की बात ?"

"दुलाल दा ने ख़ुद ही मुझे बतलाया। कह रहे थे वह तो मज़ाक में कह दिया था। मैंने कहा, तुमने मज़ाक में भी वह बात क्यों कही ? लेकिन दुलाल दा तो हैं ही ऐसे। हर बात में मज़ाक करते हैं। मैंने तुझसे उसी दिन कहा था, मज़ाक की बात है। तूने बेकार में इस बात को लेकर अपना दिमाग़ ख़राब किया। चल, क्लब चल। घर में मास्टर आया है, बैठने की जगह नहीं है। चल, आज दुलाल दा से भी आने को कहा है, उनके मुँह से

ही सुन लेना।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, रहने दे। इस तरह की सीरियस बात पर भी कोई मज़ाक करता है?"

"मैंने भी वही कहा। कहा, मज़ाक करने की भी तो एक लिमिट होती है।"

सदाव्रत को खींचते-खींचते शंभू एकदम गली के मोड़ पर क्लब के दरवाज़े तक ले गया। सदाव्रत अन्दर जाते-जाते लौट आया। बोला, "नहीं भाई, मैं अब अन्दर नहीं जाऊँगा। तुम लोगों का प्ले क्या फिर से हो रहा है?"

'वह तो वहीं-का-वहीं पड़ा है। हीरोइन ही नहीं मिल रही। मैंने भी कह दिया है कि मैं तो अब हीरोइन ढूँढने जाऊँगा नहीं। ढूँढना ही हो तो कालीपद ढूँढे, हम लोगों से कोई मतलब नहीं। प्ले हो या नहीं हो!"

सदाव्रत ने अचानक पूछा, "वह लड़की फिर नहीं आयी?"

"कौन-सी लड़की?"

"वही, शायद कुन्ती ही तो उसका नाम था?"

शंभू ने कहा, "नहीं, कालीपद डायरेक्टर है। कालीपद ने ही उसे कैंसिल किया है। अब अगर कालीपद ही उसे बुलाकर लाये तो प्ले होगा; नहीं तो नहीं होगा। उसके बाद तो और भी कितनी ही लड़कियों का ट्रायल लेकर देखा गया, कोई भी सूट नहीं करती।"

"अच्छा, उस लड़की का घर कहाँ है?"

शंभू ने कहा, "वह तो शायद जादवपुर की बस्ती में रहती है।"

"जादवपुर में?"

सदाव्रत अवाक् रह गया। बोला, "लेकिन मुझसे तो उस दिन कहा था—अहीर टोला?"

"तेरे साथ कब मुलाक़ात हुई?"

"उसी दिन की तो बात है। मैं टैक्सी रोककर बैठ ही रहा था कि आकर बोली, 'मुझे अगर रास्ते में छोड़ दें।' मैंने बालीगंज उतार दिया। जाते समय बोली, 'अहीर टोला में रहती हूँ।' लेकिन वहाँ तो उस नाम का कोई भी नहीं था।"

शंभू को थोड़ा अजीब लगा, "तू क्या उसे ढूँढने गया था?"

सदाव्रत ने कहा, "हाँ, हमारे वकील का घर तो उसी ओर है। जाकर देखता हूँ, जो पता दिया है, वहाँ लड़कों का मेस है। बड़ा ख़राब लगा।"

"वे लोग ऐसी ही होती हैं। उन लोगों की बात का कभी भी यकीन न करना—चल-चल, शायद दुलाल दा आ गये होंगे।"

कुंज से थोड़ी देर ठहरने को कहकर सदाव्रत अन्दर गया। क्लब खचाखच भरा था। अन्दर घुसते ही कुन्ती को देखकर सदाव्रत चौंक गया। फिर से यहीं मुलाक़ात होगी उसने नहीं सोचा था। हाथ में चाय का प्याला था। उस समय झुककर चाय पी रही थी। पहले तो देख ही नहीं पायी। लेकिन जूतों की आवाज़ सुनकर सिर उठाते ही सामने सदाव्रत को खड़ा पाया। और साथ ही चाय छलककर साड़ी पर बिखर गयी।

□ □ □

असल में शंभू को पता ही नहीं था कि उस दिन कुन्ती फिर से क्लब आयेगी। किसी को भी पता नहीं था। कालीपद की ही बहादुरी थी। उस दिन बाम-लॅरी ऑफ़िस से कालीपद जल्दी छुट्टी लेकर निकल पड़ा था। शंभू से पहले दिन जो बातचीत हुई थी उसी से पते का अन्दाज़ा कर लिया था। उसी के भरोसे निकल पड़ा।

बस से उतरकर जहाँ जादवपुर टी० बी० अस्पताल है, उसके पश्चिम की ओर जाना था। सिर्फ़ इतना ही मालूम था। इसके बाद ही शुरू हो गयी रिफ़्यूजी-कॉलोनी। छोटे-छोटे टीन पड़े मिट्टी के घर। लाइन-की-लाइन। उन्हीं में से किसी में वह रहती है। छाती पर हाथ रखकर या तो इस पार या उस पार सोचकर ही उस दिन कालीपद निकला था।

हमेशा की तरह उस दिन भी कुन्ती सज-धजकर निकल रही थी। बग़ल के जीवन बाबू की बहू ने आवाज़ दी, "ए, तुम क्या बाहर जा रही हो, भाई ? मेरा एक काम करोगी ?"

इन सब कामों के लिए कुन्ती कभी भी न नहीं कहती। बोली, "कहिए न, भाभी, क्या मँगाना है ?"

"एक साबुन लेती आओगी ? बदन में लगानेवाला।"

इस मुहल्ले से जो लोग बाहर नहीं निकलते, उन लोगों के लिए कुन्ती कितनी ही चीज़ें ला देती। शुरू-शुरू में जब आयी थी यहाँ, फ्रॉक पहने घूमा करती थी। उसी समय से लड़की के पैर में जैसे चक्कर पड़ गया था। सभी ने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार झोंपड़े बनाये थे। किसकी जमीन, कौन जमींदार, किसी को कुछ भी पता नहीं था। फरीदपुर से ईश्वर कयाल आया था। लगन का पक्का—कर्मठ आदमी। स्यालदा स्टेशन पर एक दिन रुककर, दूसरे दिन ही निकल पड़ा। कलकत्ता कोई छोटा-मोटा शहर तो

है नहीं। एक दिन में घूम लेना नामुमकिन है। घूमते-घूमते जान-पहचान-वाले कितने ही लोग मिल गये। गुप्तापाड़ा के हरिपद काका, उत्तरपाड़ा का साधू सामन्त, विष्टू सान्याल। साधू सामन्त और विष्टू सान्याल में हमेशा होड़ रहती थी। पासा खेलते समय कोई भी दूसरे को नहीं देख पाता था। इसके बाद और भी कितने ही परिचित लोग मिल गये। इस समय सभी में ज़ोरों का मेल-जोल था।

हरिपद काका ने पूछा, "तुम लोग कहाँ हो, ईश्वर ?"

"जी, स्यालदा के प्लेटफ़ार्म पर पड़े हैं, और लंगर में खा लेते हैं।"

"कहते क्या हो ? बाल-बच्चे, बहू—सब कहाँ हैं ?"

ईश्वर ने कहा, "सभी किसी तरह से गुज़र कर रहे हैं। मारवाड़ी लोग चावल और दूध देते हैं, सो खा लेते हैं। लड़की बीमार है, सिर छिपाने को जगह नहीं। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। आप ही कोई रास्ता बतलाइए, काका !"

हरिपद काका ने रास्ता दिखला दिया। खुद ने यहाँ आकर कैसे घर बसा लिया, बतलाया। चन्दा करके घर-आँगन बनाया है। मुर्गी पाली हैं, कद्दू और काशीफल की बेल लगायी है।

"ज़मीन किसकी है ?"

हरिपद काका ने कहा, "कौन जाने किसकी है ? यह सब देखने का समय किसके पास था ? देखा, खाली पड़ी है, बस आ बसे। अब जिसमें हिम्मत हो आकर हटाये !"

"अगर पुलिस आकर मार भगाये ?"

"अरे, ऐसे भी तो मर रहे हैं ! न होगा तो वैसे भी मरेंगे। लेकिन ईश्वर, इस बार भागेंगे नहीं, मरने से पहले दो-चार को मारकर मरूँगा।"

हरिपद काका की हिम्मत देखकर ईश्वर कयाल को बड़ा आश्चर्य हुआ। जवानी में हरिपद काका बड़े अच्छे लट्ठबाज़ थे। अब उम्र ज्यादा हो गयी है। लेकिन हिम्मत उतनी ही है।

हरिपद काका ने कहा, "तुम लोग भी यहीं चले आओ न ! डर की कोई बात नहीं है—हम लोग हैं, और भी लोग हैं। उन लोगों का कहना है, वे भी हमारे साथ लड़ेंगे। सब जवान-जवान लड़के हैं।"

"वे लोग कौन ?"

"तुम लोग आओ न, देख लेना।"

"कांग्रेसी हैं क्या ?"

हरिपद काका ने कहा, "वह तुम बाद में देखना। यह हँसिया-हथौड़े का दल है। तिरंगा झंडा तो नहीं है, लेकिन इन लोगों का भी झंडा है। इन लोगों का झंडा लाल रंग का है। उस पर हँसिया और हथौड़ा अँका है।"

हाँ तो, वहीं से शुरुआत हुई। ईश्वर कयाल गाँव के जितने भी आदमी थे, सबको स्यालदा से यहाँ ले आया। और सभी के साथ मधु सिकदार, मनमोहन गुहा, निरंजन हलदार भी इस मुहल्ले में आ बसे। बाद में यहीं पर सब लोगों ने अपनी-अपनी गृहस्थी जमा ली। चन्दा करके ट्यूब-वेल लगवा लिया। पोखर खुदवा ली। चन्दा करके ही स्कूल और लाइब्रेरी की इमारत भी खड़ी कर ली। फिर भी सभी के मन में एक डर समाया था। शुरू-शुरू में हँसिया-हथौड़ा-मार्का छोकरे आकर अभयदान कर गये। फार्म भरवाकर उन्हीं लोगों ने सरकार से रुपया भी वसूल करा दिया। उसी रुपये से शरणार्थियों ने शहर में जहाँ-तहाँ दूकानें खोलीं—कपड़े की दूकान, सौदागरी की दूकान। और भी कितनी तरह की दूकानें। इसी तरह सात साल गुज़र गये। लोग तरह-तरह से रुपया कमा रहे थे। लेकिन फरीदपुर के जनाब मनमोहन कुछ भी नहीं कर पाये। शरीर टूट चुका है, दिल टूट चुका है। कुन्ती जब यहाँ आयी थी, फ्रॉक पहनती थी। फिर एक दिन साड़ी पहनने लगी। लेकिन साड़ी पहनने के साथ ही लोग पीछे लग गए। उन लोगों के साथ कहाँ-कहाँ घूमती, कहाँ-कहाँ खाती—और न जाने कहाँ-कहाँ से रुपया लाकर बाप के हाथ में रखती।

मनमोहन बाबू को बड़ा अजीब लगता। गिनकर देखते—एक-दो नहीं, पूरे दस-दस रुपये।

पूछते, "रुपये कहाँ से मिले ? किसने दिये ?"

कुन्ती कहती, "उन लोगों ने !"

"वे कौन ? नाम नहीं है ?"

"वे ही, जो ले गये थे।"

"कहाँ ले गये थे ?"

"उन लोगों के वहाँ ड्रामा करने..."

बापजी तभी से समझते, लड़की ड्रामे में एक्टिंग करती है। घर लौटने में किसी-किसी दिन काफ़ी रात हो जाती। आस-पास के लोग भी समझते, मनमोहन बाबू की बड़ी लड़की ड्रामों में एक्टिंग करती है। ड्रामा-क्लब के बाबू लोग काफी रुपया देते। उसी रुपये से मनमोहन बाबू ने घर के ऊपर फूस की जगह टीन का छप्पर छवा लिया। जरा-सी कुन्ती के बदन पर गहने

दीखने लगे। बाप के लिए कपड़े बने। छोटी बहन के लिए नया फ्रॉक आया। घर में दोनों समय चूल्हा जलने लगा। रसोईघर से हिल्सा-मच्छी के तलने की सुगन्ध आने लगी। यानी कि एक शब्द में मनमोहन बाबू के दिन फिर आये। अब लड़की को कुछ कहा नहीं जा सकता था। लड़की थी, इसी से बुढ़ापे में खा-पहन पा रहे हैं! बीमार होने पर डॉक्टर आता है, पथ्य के लिए फल आते हैं। छोटी लड़की को स्कूल में भर्ती करा दिया है। कुन्ती न होती तो क्या होता?

कालीपद ढूंढते-खोजते इसी मुहल्ले में आ पहुंचा।

मनमोहन बाबू कच्चे चबूतरे पर बैठे खांस रहे थे।

सामने जवान लड़के को देखकर बोले, "कौन?"

कालीपद ने कहा, "जी, मैं कुन्ती गुहा को खोज रहा हूँ, अपने क्लब के ड्रामे के सिलसिले में।"

मनमोहन बाबू बोले, "ड्रामेवाले बाबू? लेकिन तुम लोग मेरी लड़की को इतनी देर से क्यों छोड़ते हो? जरा ज़ल्दी नहीं छोड़ सकते? बेचारी दुधमुंही बच्ची इतना कैसे सह सकती है, तुम्हीं बोलो?"

कुन्ती उस समय अन्दर के कमरे में माथे पर बिन्दी लगाने में जुटी थी। पहचानी-पहचानी आवाज़ सुनाई दी। ज़रा बाहर की ओर झाँककर देखा। देखते ही पहचान गयी। जल्दी-जल्दी साड़ी लपेटकर शीशा रखकर बाहर आयी। बोली, "क्या हुआ? फिर से कैसे? फिर मेरे पास आये हैं?"

कालीपद ने कहा, "बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं, मतलब कितने ही ट्रायल लिये, पार्ट के साथ कोई भी फिट नहीं बैठ रहा।"

"लेकिन मैं ही कर पाऊंगी, यह किसने कहा?"

"क्लब के मेम्बरों का कहना है, पार्ट तुमको ही करना होगा, नहीं तो क्लब तोड़ देंगे। इतनी मुश्किलों से लिखा मेरा 'मरी मिट्टी' नाटक चौपट हो जाएगा। मैं दिखला देना चाहता हूं, रियल नाटक किसे कहते हैं!"

"लेकिन रुपये? कितने रुपये देंगे?"

"पिचहत्तर रुपये, जो ठीक हुए थे।"

कुन्ती ने कहा, "नहीं, मुझे एक-सौ रुपये देने होंगे। आधे एडवान्स चाहिए—और रिहर्सल एक महीना दूंगी, एक दिन भी ज़्यादा नहीं।"

कालीपद मन-ही-मन न जाने क्या सोचने लगा।

कुन्ती ने फिर कहा, "और रिहर्सल-रूम में फ़ालतू आदमियों की भीड़ नहीं रह पायेगी।"

मनमोहन बाबू बीच में बोल उठे, "नहीं-नहीं, फ़ालतू आदमियों के सामने मेरी लड़की रिहर्सल नहीं देगी। यह भी कोई बात है! किसके मन में क्या है कुछ कहा जा सकता है?"

कालीपद ने कहा, "फ़ालतू आदमी कहाँ हैं? सभी क्लब के मेम्बर हैं!"

"नहीं, उस दिन थे न? एक भले आदमी? लम्बे, गोरे-गोरे-से…"

कालीपद ने काफ़ी सोचा। पहले तो पहचान नहीं पाया। फिर बोला, "ओह, वह तो सदाव्रत था, शंभू का दोस्त। वह तो कभी भी आता नहीं, सिर्फ एक उसी दिन आया था।"

मनमोहन बाबू ने खांसते-खांसते कहा, "लेकिन एक दिन भी क्यों आयेगा? एक दिन-एक दिन करते बाद में रोज़ ही आयेगा। यह तो ठीक बात नहीं है।"

कालीपद ने कहा, "अच्छा, ठीक है। फ़ालतू आदमियों को नहीं घुसने दूंगा। तुम आज ही चलो।"

इसके बाद पॉकेट से तीन दस-दस रुपये के नोट निकालकर बोला, "फिलहाल ये तीस रुपये रखो। क्लब पहुंचकर बाकी बीस दे दूंगा। और हाँ, मैं टैक्सी लेने जा रहा हूं।"

कुन्ती ने कहा, "रुपये पिताजी के हाथ में दीजिए।"

हाँ, तो कालीपद इस तरह कुन्ती को लेकर क्लब में आया। आते ही सभी से कह दिया कि अब से रिहर्सल के समय कोई बाहरी और फ़ालतू आदमी नहीं आ पायेगा। आने पर बाहर की बाहर विदा कर देना होगा। इसके बाद चाय आयी। कुन्ती को बीस रुपये भी दे दिये थे। कुन्ती ने उन्हें बैग में डाल लिये। अभी चाय पीना शुरू ही किया था, तभी शंभू और सदाव्रत आ पहुंचे।

सदाव्रत को देखते ही कुन्ती जैसे चौंक पड़ी। चौंकते ही चाय साड़ी पर छलक पड़ी।

कालीपद शायद शंभू से कुछ कहने ही जा रहा था, कुन्ती ने इशारे से कहा, "नहीं, कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। उन्हें रहने दीजिए।"

□ □ □

'मरी मिट्टी' नाटक में फीमेल-रोल कई हैं। लेकिन वे सब साइड करेक्टर हैं। एक घर की आया है, एक माँ है। पहले अंक के पहले दृश्य में ही माँ का 'डेथ-सीन' दिखलाया गया है। इसके बाद और एपिरियेंस नहीं है। इसी तरह दो-चार छिटपुट रोल हैं ज़रूर, लेकिन शुरू से अन्त तक

शान्ति का ही रोल है। असल में शान्ति ही 'मरी मिट्टी' की हीरोइन है। इन्हीं लोगों ने स्यालदा स्टेशन पर आकर गृहस्थी जमायी है। साथ में तुम्हारे बूढ़े पिताजी हैं। छोटे-छोटे भाई-बहन भी हैं। आस-पास में और भी परिवार हैं। सभी घरवार-हीन। और तुम्हारी माँ एक फटी-पुरानी गुदड़ी पर पड़ी बुखार में तप रही है, मृत्युशैया पर। और थोड़ी देर में ही तुम्हारी माँ मर जा सकती है। यही हालत है। फर्स्ट सीन के शुरू-शुरू में मैंने कोई डायलॉग नहीं रखा है। सिर्फ़ एक्शन है। तुम माँ के सिरहाने बैठी हो। तुम्हारी आँखें छलक रही हैं। तुम्हारे छोटे-छोटे भाई-बहन प्लेटफार्म पर दूसरी ओर भीख मांग रहे हैं। और तुम्हारी माँ के पैताने बैठा तुम्हारा निकम्मा बूढ़ा बाप हुक्का पी रहा है। इसके साथ ही और भी कई 'सीनिक इफेक्ट्स' दूंगा। विंग्स के पास इधर-उधर तरह-तरह के लोग आ-जा रहे हैं। कोई-कोई तुम्हारी ओर अच्छी तरह से देखता भी है। तुम सुन्दर हो, तुम युवती हो, यह उन लोगों की दृष्टि से मालूम हो जाता है। चारों ओर धुन्ध-सी छायी है, स्टेज की फुट-लाइट्स ऑफ हैं। बीच-बीच में इंजिन की सीटी सुनायी देती है। तुम्हारा ध्यान किसी ओर भी नहीं है। बैकग्राउन्ड से फैन्ट्सी वॉयलिन की एक सैड ट्यून आ रही है—और विंग्स के ऊपर से तुम्हारे चेहरे पर एक फ़ोकस आकर पड़ रहा है...

ये कालीपद के शब्द थे। कालीपद ही समझा रहा था। आस-पास के सब लोग चुपचाप बैठे थे। सभी ध्यान से सुन रहे थे। शंभू बैठा था और उसके पास ही सदाव्रत। सदाव्रत भी सुन रहा था।

...इसी बीच एक आदमी तुम्हारी ओर देखता हुआ दूसरी ओर चला जाता है। लगता है, जैसे उसके साथ एक और भी आदमी है। दोनों भूखी निगाहों से तुम्हारीओर देखते रहते हैं। फिर चेहरे का भाव बदलकर तुम्हारे पास आकर पूछते हैं—आपकी माँ क्या बीमार हैं? तुमने सिर उठाकर एक बार देखा, फिर नजर नीची कर ली। कुछ बोलती नहीं हो।

आदमी फिर पूछता है, "डॉक्टर को खबर की है?"

तुम्हारे पिताजी इतनी देर बाद सिर उठाकर देखते हैं। बोले, "डॉक्टर कहाँ मिलेगा? पैसा कहाँ है? फिर डॉक्टर को बुलाने कौन जाये? अपना तो भगवान ही मालिक है, भैया!"

दूसरा आदमी कहता है, "आपके पास अगर रुपयों की कमी हो तो हम दे सकते हैं।"

कहकर वह आदमी जेब से दस रुपये का नोट निकालकर तुम्हारे पिता

को देने लगता है। तुम देखती रहती हो, इतनी देर बाद बोलती हो। यही होता है तुम्हारा फर्स्ट डायलॉग। तुम धीरे से पूछती हो—आप लोग कौन हैं ?—लेकिन याद रखो, तुम गाँव की अनपढ़ लड़की हो। शहरी बदमाश लोगों की चाल-ढाल तुम्हारे लिए अनजान है। इससे पहले कभी भी तुमने शहर नहीं देखा। गुण्डा लोगों को भी तुम अच्छा आदमी समझती हो। तुम्हारे चेहरे पर सन्देह की छाया भी न आने पाये, नहीं तो सब स्पॉयल हो जायेगा। एक वर्जिन लड़की को सभी ख़राब करना चाहते हैं, यह तुम उन लोगों की शक्ल देखकर भी नहीं समझ पातीं। तुम्हारा दिल बड़ा ही ···माने सरल है। और, इसके अलावा तुम्हारी माँ उस समय···

सदाव्रत ने शंभू के कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "क्यों रे शंभू, तेरे दुलाल दा को क्या हुआ ? अभी तक नहीं आये।"

शंभू ने धीरे से कहा, "ज़रा देर बैठ न, अभी आयेंगे।"

कालीपद कुन्ती की ओर देखकर कहने लगा, "अच्छा, अब ज़रा देखूँ तो तुम्हारे मुँह से कैसा लगता है। तुम सोच लो कि तुम्हारी उम्र सोलह साल है। तुम्हारी साड़ी फटी हुई है, बदन पर एक फटी समीज़ है, यानी कि तुम्हारी हालत बहुत ही ख़राब है···हाँ, बोलो। मान लो तुम्हारे सामने मैं आया हूँ। मैं तुम्हारे पिता से कहता हूँ—'आप लोगों को अगर रुपयों की ज़रूरत हो तो हम लोग दे सकते हैं।' अब तुम चेहरे को ज़रा उठाओ। उठाकर सीधे मेरी ओर ताको। ताककर पूछो—'आप लोग कौन हैं ?' धीरे-धीरे कहो—'आप लोग कौन हैं ?"

कुन्ती शायद मन-ही-मन कोशिश कर रही थी। चेहरे को सहज और स्निग्ध बना रही थी। लेकिन ठीक से नहीं कर पा रही थी।

कालीपद ने प्रोत्साहन देते हुए कहा, "बोलो-बोलो, एक्सप्रेशन ठीक है। अब बोलो।"

तभी एकाएक शंभू की ओर घूमकर बोला, "शंभू, तू चुप रह न, डिस्टर्ब क्यों कर रहा है? अगर चुप नहीं रहा जाता तो बाहर चला जा!"

असल में बात सदाव्रत ही कर रहा था। बात भी उसी को लगी। वह खड़ा होकर शंभू से बोला, "मैं चलता हूँ, रे !"

कहकर बाहर निकल ही रहा था तभी शंभू भी उठा। लेकिन कुन्ती की बात से अचानक बाधा पड़ी।

कुन्ती ने कहा, "फ़ालतू लोगों को आप लोग क्यों घुसने देते हैं ?"

सदाव्रत जाते-जाते रुक गया। मुड़कर बोला, "मेरी बात कह रही

हो ?"

सदाव्रत की बात पर सारा क्लब सकपका गया।

कुन्ती भी कम नहीं थी। साथ-ही-साथ बोली, "हाँ, आपकी बात ही तो कर रही हूँ, आप तो इस क्लब के मेम्बर नहीं हैं। आप यहाँ काम के समय डिस्टर्ब करने क्यों आते हैं ?"

इस बात से शंभू ही सबसे अधिक लज्जित हुआ। बोला, "कुन्ती, तुम क्या कह रही हो ? किससे क्या कह रही हो ? सदाव्रत तो मेरा फ्रेंड है। मैं ही उसे यहाँ लिवा लाया हूँ।"

कुन्ती ने कहा, "आपके दोस्त हैं, यह मुझे मालूम है, लेकिन दोस्त हैं इसलिए क्या आदमी अक्ल भी खो बैठता है ! यह तो ठीक नहीं है।"

सदाव्रत को भी गुस्सा चढ़ आया। बोला, "इसका मतलब ?"

"अगर आप में अक्ल होती तो मेरी बात का मतलब नहीं पूछते !"

तभी सदाव्रत ने अचानक कहा, "लेकिन उस दिन तुम्हीं ने तो इस क्लब में आने को मना किया था, कि ये लोग कम्युनिस्ट हैं ? तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम्हारा घर बत्तीस-बी, अहीर टोला लेन पर है !"

कुन्ती भी हार मानने वाली न थी। बोली, "लेकिन आप ही कहिए, अगर यह झूठ नहीं बोलती तो क्या आप मुझे अपनी टैक्सी से उतरने देते ?"

"तुम कहना क्या चाहती हो ?"

"हाँ, नहीं तो शायद किसी बगीचे में ले जाते मुझे। आपने सोचा होगा हम लोग कुछ समझते ही नहीं हैं ? इतने दिनों से कलकत्ता शहर में हूँ, आप समझते हैं यह छोटी-सी बात मैं समझ नहीं पाऊँगी ?"

सदाव्रत क्षणभर के लिए कुछ बोल ही नहीं पाया। फिर शान्त स्वर में बोला, "आज इतने सारे लोगों के सामने क्या तुम मुझे लम्पट प्रमाणित करना चाहती हो ?"

कुन्ती ने कहा, "अब वह बात मेरे मुँह से क्यों कहलवाते हैं ?"

सदाव्रत जैसे और नहीं रुक पाया। अचानक सब लोगों की ओर फिरा। बोला, "आप सभी शायद इसी की बात सही मानते होंगे, लेकिन आज मैं कहे जाता हूँ जिस काम के लिए मैं यहाँ आया हूँ उसे मेरा यह दोस्त शंभू ही जानता है। मैं यहाँ लड़कियाँ देखने नहीं आया हूँ। आप लोग यही बात जान रखिए—मैं और कुछ कहना नहीं चाहता।"

कालीपद ने अचानक पूछा, "तो क्या आपकी कुन्ती गुहा से पुरानी जान-पहचान है ?"

सदाव्रत ने कहा, "यह बात उसी से पूछिए न !"

लेकिन कुन्ती से पूछने की ज़रूरत नहीं हुई। शायद वह डर गयी थी। आँखें भर आयी थीं। बोली, "कालीपद बाबू, आप से पैसा लेकर मैं यहाँ काम करने आयी हूँ, लेकिन मैंने ऐसा क्या कसूर किया है कि एक आदमी मेरी बेइज़्ज़ती करे और मुझे वह सहनी पड़े ? मैंने इसीलिए तो कहा था कि रिहर्सल के समय फ़ालतू आदमियों को न आने दीजिएगा।"

"लेकिन मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं है, उसे शंभू ही लाया है।"

शंभू अभी तक चुपचाप बैठा था। अब उसने अपनी सफ़ाई पेश की, "वाह, तूने पहले से तो यह सब बतलाया नहीं, नहीं तो मैं आज क्लब में घुसता भी नहीं।"

कालीपद गर्म हो गया। "तुझसे क्या यह सब कहना होगा ? तू खुद नहीं समझ सकता ? तेरे भेजे में क्या बुद्धि नहीं है ?"

शंभू भी तैश में आ गया, "खबरदार, कालीपद ! ईडियट की तरह बात मत कर।"

"क्या ? तूने मुझे ईडियट कहा !"

शंभू ने कहा, "'ईडियट तो कुछ भी नहीं है, अगर कुन्ती नहीं होती तो और भी बहुत कुछ कहता ! क्लब क्या तुझ अकेले का है ? किसने तुझे डायरेक्टर बनाया, किसने तेरे लिए कनवेंसिंग की, कह तो ज़रा ? इस समय तो बड़ी हुकूमत झाड़ रहा है !"

कालीपद उठ खड़ा हुआ। बोला, "क्या कहा ? डायरेक्टर के साथ किस तरह बात की जाती है, तुझे इतना भी नहीं मालूम ! याद रख, यह तरुण समिति नहीं है। यहाँ रंडियों को लेकर नाटक नहीं खेला जाता। हम भले घर की लड़की को लेकर प्ले कर रहे हैं। भले आदमियों के साथ किस तरह बात की जाती है, यह सीखकर इस क्लब में आना !"

"तूने मुझे अभद्र कहा ?"

शंभू और गुस्सा नहीं रोक पाया। कसकर एक तमाचा जड़ दिया कालीपद के गाल पर। और साथ-ही-साथ सब लोगों ने आकर दोनों को पकड़ लिया। क्लब के अन्दर उस समय धक्का-मुक्की और शोर शुरू हो गया था। गड़बड़ में किसी को कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा था। कालीपद जितना चीखता, शंभू उससे दूना।

सदाव्रत ने देखा, झगड़े की जड़ वही है। उसी की वजह से झगड़ा हो रहा है। उसने अचानक शंभू का हाथ पकड़ लिया। बोला, "छिः ! चल यहाँ

से ! चल, निकल आ !"

शंभू अभी भी चीख रहा था, "मेरे फ्रेंड की इन्सल्ट करे, यह हिम्मत ! मेरे दोस्त की इन्सल्ट करना माने मेरी इन्सल्ट करना। मैं देख लूँगा कैसे तेरा नाटक खेला जाताहै। जाने कहां का एक कूड़ा नाटक लिख लिया है—बड़ाई मारता है। अरे, ऐसा नाटक तो मैं भी लिख सकता हूं।"

अक्षय पास ही खड़ा था। उसने कहा, "तुम लोग क्या हो ! असभ्य-जंगलियों की तरह झगड़ा कर रहे हो ? कुन्ती क्या सोचती होगी ?"

इतनी देर बाद कुन्ती की आवाज सुनायी दी, "ओ कालीपद बाबू, मैं अब चलूंगी, मेरा टैक्सी का किराया दे दीजिए ।"

सदाव्रत ने इस बार झटका देकर शंभू को खींचा। खींचकर बाहर ले आया। बोला, "तू उन लोगों के मुंह क्यों लगा ? मैंने तो पहले ही कहा था, मैं क्लब के अन्दर नहीं जाऊंगा।"

शंभू अभी तक बड़बड़ा रहा था, "क्यों, अन्दर क्यों नहीं जायेगा ? उसके क्या बाप का क्लब है ? मैं मेम्बर नहीं हूं ? मैं चन्दा नहीं देता हूं ? मेरा कोई अधिकार ही नहीं है ?"

"अच्छा, बस कर ! मुझे पहले से ही पता था। इन बेकार के कामों में क्यों लगा रहता है ? तुम लोगों के पास और कोई काम नहीं है ?"

शंभू अभी तक गुस्से से काँप रहा था। सड़क पर चलते-चलते भी कहे जा रहा था, "मैं कालीपद को किसी भी तरह प्ले नहीं करने दूंगा, तू देख लेना, जबकि मैंने ही सबको राज़ी किया था, पता है।"

कुंज गाड़ी के अन्दर चुपचाप बैठा था। सदाव्रत वहां पहुंचकर खड़ा हो गया। बोला, "मैं चलूं !"

शंभू ने कुछ नहीं कहा। वह अभी तक अपमान नहीं भुला पाया था। सदाव्रत ने कहा, "मेरे लिए ही तेरा इतना अपमान हुआ, मैं अगर क्लब में न जाता तो कुछ भी न होता।"

"तू देखना, मैं कालीपद का क्या करता हूं। वह कैसे ड्रामा करता है, मैं देख लूंगा।"

"मैं काफ़ी दिनों से तुझसे कहने की सोच रहा था, तू इस क्लब और ड्रामे में इतना समय क्यों खराब करता है ? तुम लोगों के पास और कुछ नहीं है करने को ? चारों ओर आदमी तरह-तरह की परेशानियों के मारे पागल हैं, और तुम लोग ड्रामा-थिएटर करने में मस्त हो !"

"लेकिन करूँ क्या ? सारे दिन ऑफ़िस में पिसने के बाद घर आकर

ज़रा देर रेस्ट कर लूं, इसके लिए भी जगह नहीं है। क्या करूँ, तू ही बोल ?"

"क्यों ? दुनिया में काम की कमी है ? एक समय तुम्हीं लोगों ने तो रॉयट के समय चन्दा इकट्ठा किया था, लड़ाई के समय लंगर खाना खोला था। क्लब की जगह उसी कमरे में ग़रीब लड़के-लड़कियों को पढ़ाया भी तो जा सकता है।"

"छोड़, वह सब अब और अच्छा नहीं लगता।"

"यही देख न झंझटों की क्या कमी है। केदार बाबू जो मुझे पढ़ाते थे, कहते हैं कि देश के आज़ाद होने से ही सिर्फ़ काम नहीं चलता, असली प्रॉब्लम तो अब शुरू हुई है। अभी वह समय आया है जब सब कुछ नये सिरे से सोचना होगा। यह जो इतनी सारी मैन-पावर बेकार जा रही है, इसका क्या होगा ? मुझे ही ले न ! ज़रा मेरे बारे में ही सोचकर देख।"

"अरे, तुझे क्या है ! तेरे पिताजी के पास पैसा है, तू अगर कुछ न भी करे तो भी कोई नुक़सान नहीं होगा।"

सदाव्रत ने कहा, "यही तो तुम लोगों की भूल है ! हमारे पास पैसा है, इसी से तो ज़्यादा चिन्ता है। किस लाइन में जाऊं, अभी तक ठीक नहीं कर पाया। कितनी ही ऑप्शन हैं, लेकिन कौन-सी चुनूं, ठीक नहीं कर पा रहा। पिताजी विलायत जाने को कह रहे हैं, लेकिन विलायत जाकर करूँगा क्या ? क्या सीखकर आऊंगा ? उससे मेरी या देश की क्या उन्नति होगी ? हर ओर देखता हूं, सभी 'हाय पैसा-हाय पैसा' कर रहे हैं। पैसा मिलना और भगवान का मिलना एक ही हो गया है। डॉक्टरी पास कर लेने से ही काम नहीं चलेगा, डॉक्टरी करके रुपया कमाना होगा। आस-पास के जितने भी लोग हैं सभी से बड़ा होना होगा।"

"लेकिन तुम लोग तो वही हो। तुम लोग तो रईस हो ही ?"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, और भी बड़ा होना होगा। लोगों का खयाल है ज़्यादा पैसा पैदा किये बिना ज़िन्दगी बेकार है। उन लोगों के लिए पैसे के बिना परमार्थ भी मिथ्या है। देखते नहीं, जिस आश्रम के पास जितना पैसा है, सब उसी के शिष्य होना चाहते हैं। बिना पैसे के आज की दुनिया में साधुओं को भी कोई नहीं पूछता।"

"वह तो ख़ैर देख ही रहा हूं, लेकिन देखने से फायदा ? हमारे पास पैसा भी नहीं है, हम लोग कोशिश भी नहीं करते।"

"लेकिन पैसा नहीं है तो न सही, इसलिए क्या इस तरह समय की बरबादी तुम लोगों को अच्छी लगती है ?" सदाव्रत ने कहा।

"हम लोगों की बात जाने दे, हम लोग सोसाइटी के लिए भार-स्वरूप हैं।" खिन्न-भाव से शंभू बोला।

"तुझसे यह सब कहा, इसका बुरा न मानना। चारों ओर यही सब देखकर यह बात मेरे ध्यान में आ गयी, लगता है इस बाँगला देश के नसीब में काफ़ी बुरे दिन देखने को मिलेंगे।"

फिर ज़रा रुककर बोला, "अच्छा, मैं चलूं, भाई!"

"ठीक है, समय मिले तो कभी-कभी चक्कर लगा जाना। हां, वह असली बात तो खैर मिट ही गयी। अब तेरे लिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है। मैंने दुलाल दा को काफ़ी समझा दिया है। कह दिया है—इन सब बातों को लेकर क्या कोई मज़ाक करता है!"

शंभू चला गया।

सदाव्रत गाड़ी में बैठ गया।

घर पहुंचते ही बद्रीनाथ सामने मिल गया। बोला, "इतनी देर कर दी, छोटे बाबू! मास्टर साहब आपके लिए काफ़ी देर बैठे रहे।"

"कौन-से मास्टर साहब? केदार बाबू?"

बद्रीनाथ ने समझाकर कहा, छोटे बाबू को जो एक समय पढ़ाते थे।

"किसलिए आए थे?"

"यह तो नहीं मालूम। मैंने कहा था छोटे बाबू अभी ऑफ़िस से आ जायेंगे, आप बैठिए। मास्टर साहब को बाहर के कमरे में बिठलाया था। काफ़ी देर बैठकर अभी-अभी चले गये हैं।"

सदाव्रत ने पूछा, "किसलिए आए थे, कुछ कहा?"

बद्रीनाथ ने कहा, "कह रहे थे एक मकान की ज़रूरत है। इसी महीने के अन्दर एक मकान का इन्तज़ाम होना चाहिए।"

'अच्छा' कहकर सदाव्रत धीरे-धीरे अन्दर चला गया।

□ □ □

सारे दिन ऑफ़िस की मनहूसी और उसके बाद मधुगुप्त लेन में शंभू के क्लब की कड़वाहट ने जैसे सदाव्रत को तोड़ दिया था। उसे अपने ही ऊपर घृणा हो रही थी। वह वहां गया ही क्यों? उसके जाने के लिए क्या और कोई जगह नहीं थी? कॉलेज में पढ़ते समय वह कितनी ही जगह गया है। वाई० एम० सी० की बिलियर्ड पार्टी! वहां भी तो जा सकता है वह! और क्या इतना ही? कम-से-कम एक सिनेमा तो देख ही सकता है। आश्चर्य की बात है! आखिर उसे हुआ क्या? किसी चीज़ से जैसे उसे

लगाव ही नहीं है। यह कलकत्ता शहर ! सड़क-फुटपाथ-दूकान-स्टॉल सब कुछ जैसे बनावटी लगते हैं। होश संभालने के बाद से ही जैसे दूसरी निगाहों से देख रहा है। किसी का निश्चित एम नहीं है। दायें घूमते-घूमते अचानक बायीं ओर घूम जाते हैं; श्यामबाज़ार जाते-जाते अचानक दक्षिणेश्वर चले जाते हैं। सब आदमी जैसे पागल हो जाएंगे ! फुटपाथ के ऊपर ही इतनी भीड़ क्यों है ? छुट्टी के दिन क्या करें, फिर कुछ ठीक न कर पाने पर बाहर निकल पड़ते हैं। पार्क में अगर मीटिंग होती है तो जरा देर वहां खड़े हो लेते हैं। पार्क की रेलिंग पर फ्रॉक लटकाये दूकानदार सौदा बेचते हैं। वहां खड़े-खड़े फ्रॉक उलटते-पलटते हैं। फिर अचानक पूछते हैं—"इस फ्रॉक की क्या क़ीमत है ?"

दूकानदार जैसे झपटकर पास आता है। कहता है, "लीजिए न, बाबू ! सस्ती दे दूंगा। बोहनी का समय है।"

"दाम कितना है, यह बोलो न ?"

"कितनी लेंगे ? दो ले लीजिए। सात रुपये में दे दूंगा। ले जाइये।"

ग्राहक हाथ खींच लेता है। कहता है, "नहीं, चीज़ कोई ख़ास अच्छी तो है नहीं।"

इसके बाद थोड़ी दूर बढ़ने पर देखते बनियान बिक रही है। वहां भी वही हाल। वहां भी सौदाबाजी। और बाद में बिना ख़रीदे चल देना। फिर उसी तरह बेकार चक्कर काटना। इसके बाद घर लौट आना। घर आकर खाना और फिर सो जाना। दूसरे दिन फिर ऑफ़िस, फिर वही अनिश्चित यात्रा। इसी तरह दिन, महीने और साल कट जाते हैं। सदाव्रत भी कितनी बार इसी तरह ज़िन्दगी देखने निकला है। गाड़ी सड़क के किनारे लगाकर लॉक करके फुटपाथ पर आ जाता। यह एक और ही शहर है, कलकत्ता शहर के अन्दर एक अजीब कलकत्ता। इस कलकत्ता को ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने नहीं देखा, स्वामी विवेकानन्द ने नहीं देखा। रवीन्द्रनाथ, शरतचन्द्र, किसी ने भी नहीं देखा। १९४७ के बाद के इस कलकत्ता को सिर्फ़ सदाव्रत ने ही देखा है। देखते-देखते बड़ा अजीब लगता। सिनेमा हाउस के सामने आदमियों की क्यू लगी है। घंटों क्यू लगाये खड़े रहते। सिनेमा में ऐसा क्या देखने जाते हैं ये लोग, बाहर की इस क्यू में क्या कुछ मज़ा कम है ? यह क्या कुछ कम देखने लायक है ? लाइन में खड़े-खड़े जब थक जाते तो कोई-कोई समय बरबाद न कर ताश खेलने लगता। सिगरेट फूंकते और ताश खेलते। सदाव्रत उन लोगों को देख-देखकर अवाक् रह

जाता। लगता जैसे यह बरबादी है। इतनी बरबादी जैसे अच्छी नहीं लगती।

किसी दिन अचानक किसी पुराने दोस्त से मुलाक़ात हो जाती।

"क्यों रे, तू ? कहां जा रहा है ?"

विनय ! रोल नम्बर थर्टी-थ्री। प्रोफ़ेसर जो भी कहता, मन लगाकर सुनता और नोट कर लेता।

"क्या बात है, पैदल ही कहाँ जा रहा है ?"

सदाव्रत कहता, "मैं भी घूम रहा हूं।"

"गाड़ी कहां है ? गाड़ी नहीं है ?

इसके बाद सदाव्रत की ओर देखकर ज़रा श्लेष-मिले स्वर में कहता, "तुम लोगों को क्या फ़िक्र है ! तुम लोग मज़े में हो। मानव की कंगाली पर काव्य करने निकला है न !"

"लेकिन तू जा कहाँ रहा है ? तू भी लगता है काव्य करने निकला है।"

विनय ज़ोर से हँस पड़ा। बोला, "वैसे तूने पकड़ा ठीक ही है—तूने कैसे सोच लिया ?"

सदाव्रत ने कहा, "मुझे पता है। यहां फुटपाथ पर चक्कर लगायेगा, फिर रमेश मित्र रोड से घूमकर जदु बाबू के बाज़ार के मोड़ पर निकलेगा। रास्ते में भाव-ताव करेगा, लेकिन खरीदेगा कुछ भी नहीं, सिनेमा की क्यू के सामने खड़ा तमाशा देखेगा, इसके बाद शायद बनियान की दूकान पर जाकर भाव पूछेगा, वहां से भी कुछ खरीदेगा नहीं, इसके बाद काफ़ी रात होने पर जब टायर्ड हो जायेगा तो घर आकर माँ से कहेगा—खाना लाओ।"

"तू बड़े घर का लड़का होकर यह सब कैसे जान गया ?"

सच में विनय अवाक् हो गया था। इतनी पढ़ाई-लिखाई, कॉलेज की फीस, इतने लेक्चर सुनना, इतने नोट लिखना, सब बेकार गया। कैसी फ्रसट्रेशन की हँसी विनय के चेहरे पर खिल उठी !

विनय बोला, "तू ठीक ही कह रहा है, लेकिन और करूँ भी क्या, सदाव्रत ! घर में चुपचाप बैठना अच्छा नहीं लगता। किसी-किसी दिन दोतल्ला बस में बैठकर श्यामबाज़ार चला जाता हूं। फिर उसी बस में लौट आता हूं। फिर जाता हूं, फिर लौट आता हूं, हमेशा यही करता हूं। लेकिन रोज़ नहीं कर पाता। आखिर पैसा खर्च होता है न !"

यही विनय कह रहा था—उसके घर के सामने के फ़्लैट में एक लड़की है। कुछ भी नहीं करती। सारे दिन जंगले की रेलिंग के सहारे खड़ी सड़क की ओर ताकती रहती है। शाम के समय सज-धजकर बाहर निकलती है।

हाथ में बड़ा-सा पर्स लिये। किसी दिन सिनेमा जाती है। किसी दिन सिनेमा भी नहीं जाती, कहीं भी नहीं जाती। सजकर सड़क पर घूमती है।"

"फिर ?"

"फिर क्या ! देखता हूं वह भी मेरी ही तरह है। इस सड़क से उस सड़क पर। फिर उस सड़क से घूम-फिरकर घर लौट आती है। फिर घर आकर शायद मेरी ही तरह माँ से कहती है—खाना लाओ।"

सदाव्रत ने पूछा, "शादी नहीं हुई ?"

"होगी कैसे ? कौन शादी करेगा ? करेंगे तो हम लोग ही करेंगे। लेकिन हम लोग भी कैसे करें ? और करें भी तो क्यों करें ?"

इसके बाद जरा रुककर कहा, "और शादी करने की ज़रूरत ही क्या है ? बस-ट्राम में आजकल कितनी भीड़ रहती है। इस भीड़ से अपने को तो बड़ा आराम है। भीड़ देखते ही ट्राम-बस के दरवाज़े के पास खड़े हो जाते हैं। लड़कियों के साथ बदन रगड़ खाता है। बड़ा मज़ा आता है।"

शंभू को देखने पर सदाव्रत के दिमाग में ये बातें आयी थीं। लोग या तो शंभू की तरह क्लब में रिहर्सल देते हैं, नहीं तो बेमतलब सड़क नापा करते हैं, या फिर सिनेमा में जा बैठते हैं। यही है कलकत्ता की ज़िन्दगी। उसके पिता की तरह कितने लोग देश की चिन्ता करते हैं ! कितने लोग गोआ के मामले को लेकर सिर खपाते हैं ! शिवप्रसाद बाबू के घर जितने पेंशन-होल्डर आते हैं, सभी बूढ़े हैं। उन लोगों ने तो गृहस्थी और नौकरी में ज़िन्दगी काट दी है। केदार बाबू जैसे लोग सारे दिन लड़कों को पढ़ा-पढ़ाकर आदमी बनाने में लगे रहते हैं। लेकिन ज़्यादातर लोग ? और वह ख़ुद किस दल में आता है ? वह भी क्या ज़्यादातर लोगों के दल में है ?

"आज कुछ खाया नहीं, बात क्या है ? जो कुछ भेजा था, वैसे ही पड़ा है।" खाने के सामने बैठकर माँ ने जैसे कैफियत माँगी, "सारे दिन काम करता है। बिना खाये-पिये शरीर कैसे चलेगा ?"

सदाव्रत ने माँ के चेहरे की ओर देखा। आश्चर्य ! इसी माँ को सदाव्रत आज शाम तक सन्देह की नज़र से देख रहा था।

जाने क्या कहने जा रहा था कि अचानक बद्रीनाथ ने आकर कहा, "छोटे बाबू, मास्टर साहब फिर आये हैं।"

"मास्टर साहब ! केदार बाबू !" सदाव्रत बोला, "दरवाज़ा खोलकर बैठने को कह, मैं अभी आ रहा हूँ, पंखा खोल देना।"

सदाव्रत बिना ठीक से खाये ही उठ गया।

"यह क्या, ठीक से खा तो ले !"

लेकिन उस समय यह सब कौन सुनता ! बाहर की ओर जाते-जाते बोला, "मास्टर साहब को बैठाकर मैं खाऊँगा, क्या कह रही हो ?"

□ □ □

सत्रह नम्बर के कमरे में नयी किरायेदार लड़की आयी थी। एकदम कोरी। न बंगला समझती, न और कुछ। पद्मरानी ने यहाँ के नियम-कायदे पहले ही दिन बतला दिये।

पद्मरानी ने कहा था, "यह अपना ही घर समझना, समझी, बेटी !"

लड़की का नाम कुसुम था। पद्मरानी ने कहा था, "बड़ा अच्छा नाम है, कुसुम नाम की मेरी एक और भी बिटिया थी। अहा, बड़ी अच्छी लड़की थी, लेकिन अच्छी बिटिया मेरे भाग्य में कहाँ टिकती हैं। एक दिन पेट से आ गयी और मर गयी। तुम बेटी नयी हो इस लाइन में। तुमसे कहती हूँ—इस लाइन में पिरीत की कि मरी। एक बात याद रखना बेटी, ढीली डोर ही ज़्यादा टिकती है।"

बिन्दू पास ही खड़ी थी। बोली, "माँ, किससे यह सब कह रही हो ? कुसुम तो बंगला समझती नहीं है।"

पद्मरानी अवाक् रह गयी, "ओ माँ, यह बात है क्या ? कब से बोलते-बोलते मेरी तो जबान थक गयी और तूने मुझे बतलाया भी नहीं।"

इसी तरह कितनी ही नयी लड़कियाँ आतीं। कभी उड़ीसा से, कभी मद्रास से, कभी गुजरात से, कभी राजस्थान से। शुरू-शुरू में सभी शर्मातीं। फिर थोड़ी-थोड़ी बंगला सीखतीं। बाद में पूरी बंगाली हो जातीं। लेकिन बंगाली हो जाने पर भी रहन-सहन और पहनावा नहीं बदलता। जितने बाबू, उतने ही शौक। अचानक किसी को मद्रासी लड़की के कमरे में जाने की इच्छा होती तो वह इन्तज़ाम भी है। पद्मरानी के फ़्लैट में शौक पूरा करने की चीज़ों की कमी है, यह बात कोई नहीं कह सकता।

पद्मरानी के लिए सभी एक-जैसे हैं। पद्मरानी सभी से कहती, "इसे अपना घर ही समझो, अपनी पसन्द का ही खाना बनाओ, मैं उसमें से भोग लगाने नहीं आऊँगी—मुझे तो तुम अपनी कमाई के रुपये में चार आना के हिसाब से देती जाओ। बस तुम्हारे साथ मेरा काम ख़त्म।"

पद्मरानी रोब दिखाना भी जानती है। कहती, "इस मयना को ही देख न। ठेके से आज मयना के पास कितना है। यही दो कदम बढ़कर देख। इसी सोनागाछी में मयना के तीन-तीन पक्के घर खड़े हैं, चालीस भरी

सोना, सन्दूक भरी अशर्फियाँ और मोहर, जवान-जवान मारवाड़ी बाबू—यह सब कहाँ से हुआ ? मैं कहूँ यह सब किसके बूते पर हुआ ?"

बिन्दू कहती, "मुझे तो सब मालूम है, माँ, और लोग जो भी कहें।"

"तभी तो मैं कहती हूँ; कहा है न, ताल पकते ही शाल हो जाता है।"

फिर कहती, "लेकिन दूसरों की भलाई में ही मैं तो अपना भला मानती हूँ। हर कोई सुखी हो, ईश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ। मालिक कहते हैं—तुम्हारा तो कुछ भी नहीं हुआ, पद्म। तुम तो जैसी-की-तैसी रह गयीं। मैं कहती हूँ न हो, मुझे सुख नहीं चाहिए, मुझे नहीं दिखलानी जूते-चप्पल और फीतों की बहार—मालिक सुनकर हँसते हैं।"

हाँ, तो इसी बीच जब कुसुम आयी तब पद्मरानी ने उसे भी सब-कुछ सुना दिया, जो सभी को सुनाती। सत्रह नम्बर कमरा खाली था, उसी में पहुँचा दिया गया।

कहा, "यही है तुम्हारा राजपाट, यही है तुम्हारी राजगद्दी। अब तुम्हारे हाथ में ही सब-कुछ है, बेटा। आज की रात दरवाज़े में अड़ंगा लगाकर, नाक बजाकर आराम करो। आज के दिन तुम्हारे कमरे में किसी को नहीं जाने दूंगी। कल से मैं ही सारा इन्तज़ाम कर दूँगी।"

फिर बिन्दू को भी वही हुक्म दे दिया। गुलाबी, वासन्ती, जूथिका—सभी कुसुम के कमरे के सामने जमा हो गयी थीं। उनके दल में एक और सदस्य बढ़ा।

पद्मरानी ने कहा, "तुम लोग इस समय जाओ, बेटी। दो दिन रेलगाड़ी के झकोले खाती आयी है, उसे ज़रा सुस्ता लेने दो। बेटी, तुम रोओ मत—डर किस बात का ? जहाँ मुर्गे नहीं बोलते वहाँ क्या सुबह नहीं होती ?"

नयी कोई आने पर ही पद्मरानी का असली काम पड़ता। एकदम नयी। पंजाब या जयपुर या ग्वालियर से सप्लाई होकर आती। पद्मरानी पहले से ही सारा इन्तज़ाम कर रखती। जगह-जगह पर एजेन्ट रहते। वे ही जगह-जगह की लड़कियाँ सप्लाई करते। कुछ अमृतसर और कुछ बम्बई तो कुछ कलकत्ता में। वे लोग कौन हैं, कोई नहीं जानता। ट्रेन से उतरते ही टैक्सी का माल लिये सीधे पद्मरानी के फ़्लैट। कमरा पहले से ही खाली रहता। माल को वहीं रखा जाता। उसके बाद आज़ाद चिड़िया को किस तरह पालतू बनाया जाता है, पद्मरानी को वह आर्ट अच्छी तरह मालूम है। ऐसा-वैसा मामला होने पर दो-चार दिन अपने पास ही सुलाती। फिर

तो जो एक बार पत्ता डालती है वह हाथ भी फैलाती है। पद्मरानी ने यह सब बहुत देखा है।

पद्मरानी ने दरबान को बुलाया। कहा, "आज ख़ूब सावधान रहना, दरबान। अगर माल खो गया तो मालिक मुझे भी खा डालेंगे और तुम्हें भी ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे—यह कहे देती हूँ!"

इसके बाद अपने कमरे में आकर कहती, "बिन्दू, तू ज़रा सनातन को तो ख़बर करवा दे। कहना, माँ ने बुलाया है, अभी!"

सनातन आया। सनातन इस घर का पुराना दलाल है। दलाली क़रते-करते उसका हाड़-माँस तक सूख गया है। साधारणतः उसकी बुलाहट नहीं होती। रास्ते के बाबुओं के साथ ही उसका धन्धा है। लेकिन माँ के यहाँ से जब उसकी बुलाहट होती है तो वह समझ जाता है। तब उसके धँसे मुँह से हँसी फूटती है। हँसने पर सनातन का पिटा मुँह और भी बीभत्स लगता है।

पद्मरानी बोली, "क्यों रे सनातन, तेरा हाल क्या है आजकल?"

"हुकुम करो न, माँ, सनातन हाज़िर है!"

पद्मरानी ने ज़रा मुँह बनाया। "तू बाबा, हँस मत, डर लगता है। वैसे तो झक मारता फिरता है, काम के समय कहाँ रहता है, पता ही नहीं चलता। कहती हूँ ठगनलाल को ख़बर दे पायेगा? या रसिक को बुलवाऊँ?"

"मैं जब माँ क़ह रहा हूँ, तो मैंने कौन-सा कसूर किया है, माँ?"

"तो जा, ठगनलाल को ख़बर कर आ। कहना कि वह नया माल चाहता था, नया माल आया है। अगर नथ उतारना चाहे तो कल चला आए। कहना कि अब की पचीस हज़ार से कम में माल नहीं छोड़ूँगी।"

"अभी जाता हूँ माँ, ठगनलालजी शायद अभी भी गद्दी पर होंगे।"

एकाएक कुन्ती कमरे में आयी।

पद्मरानी ने कहा, "हाँ री टगर, यही है तेरी बात का दाम! कल तो कह गयी थी आज जल्दी आयेगी? तो यह तेरी जल्दी हुई है?"

जब कि पद्मरानी को यह पता ही नहीं था कि आज शायद वह आ भी नहीं पाती। मधुगुप्त लेन क्लब से टैक्सी करके वह सीधी यहाँ चली आयी है। अभी भी रात ठीक से हुई नहीं है। पद्मरानी के फ़्लैट के कारोबार का यही समय है। शाम को इसी समय शुरू होता है। इसी समय ऑफ़िस के बाबू लोग आना शुरू करते हैं। महीने के शुरू-शुरू में बाज़ार ज़रा गर्म रहता है। इसके बाद ज़्यादा रात होने पर व्यापारी लोग आते हैं। सब

अधेड़ उम्र के लोग। सब ख़ानदानी। किसी-किसी के साथ इनका महीना बँधा होता है। ये लोग ज़्यादा रात होने पर आते हैं और देर तक ठहरते हैं। उसके बाद अगर घर जा पाते हैं, तो जाते हैं, नहीं तो किसी-किसी दिन घर लौटने की हिम्मत ही नहीं रहती। टैक्सी में बैठते ही कुन्ती ने पहले तो सोचा कि सीधे घर ही लौट चले। पिताजी की तबीयत ख़राब है। घर जाना ही ठीक होगा। लेकिन रुपयों का ख़याल आते ही सीधे इस ओर चली आयी। यहाँ आना उसे अच्छा नहीं लगता, लेकिन बिना आए भी नहीं रह पाती।

बैग से रुपये निकालकर बोली, "ये बीस रुपये लायी थी!"

पद्मरानी ने रुपये लेकर कहा, "बीस रुपये? बीस रुपये लेकर क्या अपना अँगूठा चूसूँ? बीस रुपये तुम क्या सोचकर माँ के हाथ में रख रही हो? मेरा दूध-घी···"

बात और पूरी नहीं हो पायी। अचानक सुफल दौड़ता-दौड़ता कमरे में आया। बोला, "माँ, पुलिस आयी है!"

कहकर रुका नहीं, पलक झपकते-न-झपकते ग़ायब हो गया। पद्मरानी ने झट से रुपये अपनी कमर में खोंस लिये। और साथ ही दो-तीन कान्स्टेबल कमरे में घुस आये। पीछे-पीछे थाने का ओ० सी० था।

"क्या बात है? आप लोग किसे चाहते हैं?"

इन्स्पेक्टर ने कुन्ती की ओर देखा। कुन्ती डर से सिमटी खड़ी थी।

इन्स्पेक्टर ने पूछा, "इस मकान की मालकिन क्या आप ही हैं?"

"हां! आप ही शायद चितपुर थाने के दारोग़ा साहब हैं? अपने वह अविनाश बाबू कहां गये? अविनाश बाबू तो हम लोगों को जानते थे।"

इस बात का कोई जवाब दिये बिना दारोग़ा साहब ने पूछा, "यह कौन है?"

"यह तो मेरी बेटी टगर है। बड़ी अच्छी लड़की है। मेरी अपने पेट की लड़की। आप खड़े क्यों हैं? बैठिए न। ओ बिन्दू ...!"

इन्स्पेक्टर ने कान्स्टेबलों को न जाने क्या इशारा किया, उन लोगों ने बढ़कर कुन्ती का एक हाथ पकड़ लिया।

इन्स्पेक्टर ने कहा, "आपकी लड़की को ज़रा थाने ले जा रहा हूँ।"

कुन्ती का जैसे कलेजा फटा जा रहा था। माँ कहकर शायद एक बार चीखने की कोशिश भी की। लेकिन किसी भी तरह चीख नहीं पायी। कुन्ती कुछ भी नहीं कर पायी। उसकी आँखों के सामने जैसे अँधेरा छा गया।

पद्मरानी ने पता नहीं पुलिस को क्या कहा। उसके कान में कुछ भी नहीं गया। कुन्ती को लगा जैसे वह ज़मीन पर धम से गिर पड़ेगी। उसके कान-नाक-मुंह, सब जैसे भाँय-भाँय कर रहे थे।

□ □ □

दूसरे दिन सुबह ही सदाव्रत ने खोज-ख़बर ली। एक-एक दिन करते कई दिन निकल जाने पर भी एक अच्छा-सा घर नहीं मिला। दो कमरे होने से ही केदार बाबू का काम चल जायेगा। एक होने से भी चल जायेगा। केदार बाबू को तो सड़क पर रहने में भी आपत्ति नहीं थी। केदार बाबू ने कहा था, "मैं अकेला आदमी और मेरी दस-पाँच किताबें। मुझे अपने लिए फ़िक्र नहीं है। शैल की वजह से ही मुश्किल में पड़ गया हूँ।"

सदाव्रत ने कहा था, "हम लोगों के पास अगर मकान होता तो आपको ज़रूर दे देता, मास्टर साहब! हम लोगों का मकान तो है नहीं, सिर्फ़ ज़मीन का कारबार है।"

केदार बाबू ने साग्रह कहा था, "तब मेरे लिए तुम ठीक कर दो। मुझे तुम्हारा ही सहारा है।"

वास्तव में सदाव्रत के ऊपर काफ़ी भरोसा किया था उन्होंने। सारे दिन इतना काम रहता है। उसके बीच केदार बाबू को घर की बात का ध्यान ही नहीं आता। वायदा किया था एक महीने के अन्दर घर छोड़ देंगे। पन्द्रह-सोलह दिन गुज़र गये। इन पन्द्रह-सोलह दिनों में कहीं कोशिश भी नहीं की गयी। सब लड़कों से कहा। कोई भी घर नहीं दे पाया। बीस रुपया किराया देते आये हैं। अब बीस रुपये में घर मिलना मुश्किल है। न हो चालीस रुपये दे दिये जायँगे। लेकिन चालीस रुपये में ही कौन दे रहा है! अगर सौ-दो सौ रुपये दे पाते तो शायद मिल भी जाता। लेकिन इतना कहाँ से देंगे? समय बड़ा ख़राब है न!

"तुम अपने घर का कुछ हिस्सा छोड़ दो न। मैं चालीस रुपये किराया ही दूंगा। न होगा तो एक ट्यूशन और ले लूंगा।"

"हम लोगों के यहाँ जगह कहाँ है?"

केदार बाबू ने कहा, "क्यों? यह कमरा? इस कमरे में तो कोई भी नहीं सोता, यह कमरा तो रात को खाली ही पड़ा रहता है।"

"रात को खाली पड़ा रहता है, लेकिन दिन में पिताजी यहाँ बैठते हैं।"

"तो क्या हुआ? दिन में मैं बाहर घूमूंगा, रात को सोने आ जाऊंगा।"

सदाव्रत हँस पड़ा। बोला, "न होगा आप तो रह लेंगे, लेकिन आपकी

भतीजी ?"

"वह तुम्हारी माँ के साथ रह लेगी। न हो तो मैं तुम्हारी माँ से बात करता हूं। माँ को बुलाओ न ज़रा !"

सदाव्रत ने कहा, "मास्टर साहब, आप बात को ठीक से समझ नहीं रहे हैं। यह एक दिन की बात नहीं है। जब हमेशा की बात है तो कुछ-न-कुछ पक्का इन्तज़ाम करना होगा।"

"अच्छा, तुम लोगों की छत पर ? छत पर टीन की बरसाती नहीं है क्या ? वहाँ कौन रहता है ?"

सब सुनने के बाद अन्त में बोले, "नहीं, देखता हूँ, मुझे घर देने की तुम्हारी इच्छा नहीं है—यही कहो न !" कहकर उठ खड़े हुए।

सदाव्रत ने कहा, "अच्छा, मास्टर साहब, मैं वायदा करता हूँ। आपके लिए एक सस्ता-सा घर ठीक करूँगा ही।"

इतना दिलासा मिलने पर भी केदार बाबू खुश नहीं हुए। रात हो रही थी। केदार बाबू खड़े होकर बोले "देखो, मैं इतने दिन आँखें बन्द किये था, सिर्फ़ एंशियेंट हिस्ट्री में ही मस्त था। आज देखता हूँ—अन्दर-ही-अन्दर काफ़ी कुछ हो गया है। मन्मथ ने ठीक ही कहा था।"

कहते-कहते केदार बाबू निकल गये। उस समय काफ़ी रात हो चुकी थी। सदाव्रत ने पीछे से पुकारकर कहा, "सर, आपको गाड़ी से पहुँचा देता हूँ, ज़रा रुकिये !"

"नहीं रे, नहीं !" कहकर केदार बाबू जल्दी-जल्दी चले गये। और नहीं रुके।

सदाव्रत ने पीछे से जाकर फिर कहा, "सर, मैंने तो कह दिया है न एक सस्ता-सा मकान ढूंढ दूंगा।"

केदार बाबू नाराज़ हो गये। बोले, "कहाँ से ढूंढ लाओगे, जरा सुनूं ? देते तो तुम्हीं दे देते। तुम्हारे पिताजी तो इतने बड़े आदमी हैं। पिछवाड़े में भी तो इतनी जगह पड़ी हुई है। वहाँ दो कमरे नहीं बनवा सकते ? तुम्हारे पास क्या रुपये की कमी है ? कलकत्ता में तुम्हारे-जैसे बड़े आदमी कितने हैं और उनमें से कोई एक आदमी का भला नहीं कर सकता ? यह भी कोई बात हुई ? पैसा होने से क्या दया-माया खत्म हो जाती है ? तुम क्या यही चाहते हो कि मैं शैल को लेकर रास्ते में खड़ा रहूँ ? तुम लोगों को शायद वही अच्छा लगेगा ! चारों ओर कितने बड़े-बड़े मकान खड़े हैं, कितने ही कमरे वैसे ही पड़े हैं, चाहने पर क्या कोई दे नहीं सकता ? अब से

मैं मॉडर्न हिस्ट्री पढ़ना शुरू करूँगा । देखूंगा, इंडिया के लोग अमीर कैसे बन गये और हम लोग ग़रीब कैसे हो गये !"

केदार बाबू काफ़ी नाराज़ हो गये थे ।

सदाव्रत जानता था कि केदार बाबू गुस्सा करनेवाले आदमी नहीं हैं। लेकिन मास्टर साहब ने कुछ बेजा तो नहीं कहा ।

अन्दर आते ही मां ने पूछा, "हाँ रे, इतनी रात में तेरे मास्टर साहब क्या करने आये थे ? ज़मीन खरीदना चाहते हैं या और कोई काम था ? तुम कहीं पुराने मास्टर साहब देखकर सस्ते में ज़मीन मत दे बैठना । लौटने पर वह नाराज़ होंगे ।"

केदार बाबू की बातें सदाव्रत के कान में गूंज रही थीं । चारों ओर इतने मकान पड़े हैं, उनमें कितने ही कमरे खाली पड़े हैं, उनमें से कोई मास्टर साहब को रहने के लिए दो कमरे नहीं दे सकता ? सच ही तो सदाव्रत खुद ही कैसे बड़ा आदमी हो गया ? और मास्टर साहब इतनी पढ़ाई-लिखाई करके भी क्यों ग़रीब हो गये ? किसने यह सब किया ? कब किया ?

उस दिन ऑफ़िस से सीधा फड़ेपुकुर स्ट्रीट पहुंचा। बीस दिन हो गये हैं और सिर्फ़ दस दिन बाकी हैं। इन कुछ दिनों के अन्दर मास्टर साहब को नया घर खोज लेना होगा।

"मास्टर साहब !"

दरवाज़ा खटखटाते ही अन्दर से जाने किसने दरवाज़ा खोल दिया । खोलकर धीरे से हट गया।

किवाड़ों को ढकेलकर सदाव्रत अन्दर घुसा। उसी तख़्त के ऊपर ढेर सारी किताबें पड़ी थीं। किससे क्या कहे सदाव्रत, ठीक नहीं कर पा रहा था। काफ़ी देर तक कमरे के अन्दर खड़ा रहा । लगता है शायद घर हैं नहीं। लौटने ही वाला था। कम-से-कम ज़रा खबर तो दे जाता। लेकिन चारों ओर देखा, कोई भी नहीं था।

तभी अचानक लगा जैसे एक साड़ी के पल्ले का छोर दीख रहा है । उसी ओर देखकर सदाव्रत ने कहा, "आप मास्टर साहब से कह देना कि सदाव्रत आया था।"

फिर भी कोई जवाब नहीं मिला।

सदाव्रत ने फिर कहा, "और यह भी कह दीजिएगा कि मैं एक मकान की तलाश कर रहा हूं । दो-एक दिन में खबर दूंगा ।"

अन्दर से शैल ने कहा, "आप बैठिए ! शायद अभी आते ही होंगे ।"

सदाव्रत तख्त पर बैठ गया। दो-एक किताबें उठाकर देखने लगा। सब कॉलेज की किताबें। लड़कों को पढ़ाना होता है। कमरा सीलन से भरा था। डैम्पनेस की हलकी-हलकी बू आ रही थी। उसके बाद और कुछ करने को नहीं था।

सदाव्रत ने अन्दर की ओर मुंह करके कहा, "मैं अब चलूं। आप दरवाज़ा बन्द कर लीजिए।"

साड़ी के पल्ले का छोर फिर दरवाज़े के पास दीखा।

सदाव्रत ने कहा, "कोशिश तो मैंने काफ़ी की है, लेकिन यहां क्या कुछ दिन और नहीं रहा जा सकता ?"

अन्दर से आवाज़ आयी, "आज मकान-मालिक ने नल काट दिया है।"

सदाव्रत अवाक् रह गया।

"यह क्या ? नल की लाइन काट दी ? तब काम-काज कैसे चल रहा है ? कैसे चला रही हैं ?"

"बड़ी तकलीफ़ हो रही है। काका हैं नहीं। मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ गयी हूं।"

सदाव्रत उठ खड़ा हुआ, "मास्टर साहब को पता है कि नल काट दिया गया है ? कब काटा ?"

"आज सुबह।"

"मास्टर साहब खाना खाकर नहीं गये ?"

"वह मकान ढूंढने गये हैं।"

"आप ? आपने खाना खा लिया ?"

कोई जवाब नहीं आया।

सदाव्रत क्या करे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था। बोला, "आप संकोच न करें। मैं केदार बाबू का विद्यार्थी हूं। आप सारे दिन बिना खाये-पिये बैठी हैं, और मैं यहां चुपचाप बैठा रहूं, यह तो हो नहीं सकता। मेरी गाड़ी है। मैं दूकान से आपके लिए खाना ले आऊं !"

अन्दर से शैल ने कहा "नहीं, रहने दीजिये, उसकी ज़रूरत नहीं है।"

"लेकिन सारे दिन क्या बिना खाये ही रहेंगी ? यह भी कोई बात है ! और मास्टर साहब का भी अजीब दिमाग़ है। खुद तो निकल गये और आपने कुछ खाया है, या नहीं खाया, इसका खयाल ही नहीं किया ! मैं अभी ठीक करता हूं।"

लड़की इस बार जैसे सामने आयी। आधा चेहरा दिखलायी दिया। बोली, "नहीं, रहने दीजिए! अगर जरा-सा पीने का पानी ला देते···"

"तब कुंजा या कलसी या और जो कुछ भी हो, दे दीजिये, मैं सड़क के ट्यूब-वेल से खुद पानी ले आता हूं।"

शैल अन्दर गयी। एक पीतल की कलसी सदाव्रत की ओर बढ़ा दी। सदाव्रत ने कलसी लेकर बाहर कुंज को देकर कहा, "कुंज, सड़क के नल में शायद अभी तक पानी है। यह कलसी भर लाओ तो—लाकर उस घर में ले आओ। मैं वहीं हूं।"

कहकर फिर से घर के सामने आते ही देखा कोई दरवाज़े के पास खड़ा-खड़ा अन्दर झांक रहा है।

"आप कौन हैं? किसे चाहते हैं?"

भले आदमी अपनी ढलती पर थे। उन्होंने भी सदाव्रत की ओर गौर से देखा। कहा, "आप कौन हैं?"

"मैं केदार बाबू का विद्यार्थी हूं। आप किसे चाहते हैं?"

"जनाब, मैं इस मकान का मालिक हूं। केदार बाबू को खोज रहा हूं।"

'मालिक' शब्द सुनते ही सदाव्रत ने उस आदमी की ओर अच्छी तरह से देखा। फिर कहा, "आप ही मालिक हैं! तो पानी का कनेक्शन क्यों काट दिया है? यह अधिकार आपको किसने दिया है?"

भले आदमी पहले तो एकदम सटपटा गये। बोले, "आप को देखता हूं, बड़ी-बड़ी बात बना रहे हैं?"

"मैं ज़रा भी बड़ी-बड़ी बात नहीं कर रहा हूं। मैं सीधे-सादे पूछ रहा हूं, आप घर के मालिक हो सकते हैं, लेकिन नल काट देनेवाले आप कौन हैं? पता है इस घर के लोगों को एक बूंद पानी नहीं मिला? पता है मैं आपको पुलिस में दे सकता हूं?"

"क्या कहा आपने? आप मुझे पुलिस का डर दिखला रहे हैं?"

कहा-सुनी होती देखकर सड़क पर कुछ लोग आकर जमा हो गये। कोई-कोई तो अन्दर तक ही घुस आया।

सदाव्रत ने इस ओर तनिक भी ध्यान दिये बिना कहा, "आप पानी का कनेक्शन काटनेवाले कौन होते हैं?"

भीड़ में से एक ने समर्थन किया, "सच ही तो नल काटकर आपने बड़ा ख़राब काम किया है।"

देखते-देखते मामला और भी बढ़ने लगा। कुंज ने पानी की कलसी

लाकर सदाव्रत के हाथ में दी। वह लेकर सदाव्रत अन्दर गया। बरामदे में थोड़ा-थोड़ा अंधेरा था। वहीं खड़ी शैल शायद डर से थर-थर कांप रही थी। सदाव्रत ने कलसी शैल के हाथ में देकर कहा, "यह थामिये और मैं अभी जाकर आपके लिए खाना ले आता हूं।"

शैल ने कलसी रखकर कहा, "नहीं-नहीं, आपके पांव पड़ती हूं। आप और हंगामा न करें।"

सदाव्रत ने कहा, "आप ज़रा भी फ़िक्र न करिए। डरने की कोई बात नहीं है। मैं तो हूं। मैं इस आदमी को पुलिस के हवाले करके छोड़ूंगा।"

शैल ने एकाएक सदाव्रत का हाथ पकड़ लिया और बोली, "नहीं। आप दया कर और कुछ न करिए। आप तो मुझे अकेला छोड़कर घर चले जायेंगे, तब ? तब तो मुझे यहां अकेले ही रहना होगा ! उस समय मुझे बचाने कौन आयेगा ?"

हरिचरन बाबू शायद तब तक चले जाने की कोशिश कर रहे थे।

भीड़ में से कोई कह रहा था, "लेकिन आपने पानी का कनेक्शन क्यों काटा ? आप कोर्ट में नालिश कर सकते थे। इन लोगों ने क्या आपका किराया बाकी रखा था ? इन लोगों ने क्या आपको किराया कम दिया था ? ये लोग क्या आपके साथ ख़राब व्यवहार करते हैं ?"

हरिचरन बाबू तैश में आ गये। वह कह रहे थे, "लेकिन आप लोग कौन होते हैं यह सब कहनेवाले ? आप लोग हम लोगों की बातों में दख़लन्दाजी क्यों कर रहे हैं ? कौन कहता है कि मैंने पानी का कनेक्शन काट दिया ? आपने क्या देखा है मुझे पाइप काटते ?"

सदाव्रत अन्दर से बात सुनते ही बाहर आया। बोला, "अगर पाइप नहीं काटा तो इन लोगों को पानी क्यों नहीं मिला ? क्यों नहीं मिला, इसका जवाब दीजिए मुझे ?"

"पानी नहीं मिला तो मैं क्या करूँ ? नल खराब नहीं होता ? मैं मकान-मालिक क्या हुआ, सब कसूर मेरा ही है ? नल का मिस्त्री नहीं है ? पैसा खर्च करने पर क्या मिस्त्रियों की कमी है ? वह भी क्या मैं अपनी गांठ से ख़र्च कर ठीक कराऊं ? क्या आप लोग यही कहना चाहते हैं ?"

इसके बाद ज़रा रुककर कहा, "और अगर मेरे मकान में उन्हें इतनी ही तकलीफ़ है तो किसने उनसे यहां रहने को कहा है ? मकान छोड़ देने से ही तो झमेला मिट जायेगा।"

सदाव्रत झल्लाया, "नहीं, मकान नहीं छोड़ेंगे ! आपके कहने से ही

मकान खाली कर देंगे ? आपके हुक्म से छोड़ देंगे !"

हरिचरन बाबू कुछ देर गुमसुम खड़े रहे। फिर अचानक बोले, "लेकिन मैं भी इन लोगों को मकान से निकालकर ही दम लूँगा !"

सदाव्रत ने कहा, "यहाँ खड़े होकर डर न दिखलाइए। आप घर से निकल जाइए ! मैं आपको इस मकान में और नहीं रुकने दूँगा। चलिए, बाहर चलिए !"

कहकर सामने की ओर बढ़ने लगा। हरिचरन बाबू पीछे हटते-हटते कमरे से बाहर हो गये। फिर धमकी देकर बोले, "अच्छा, ठीक है। मैं भी देख लूँगा, इस मकान में ये लोग कब तक रहते हैं !"

हरिचरन बाबू और नहीं रुके।

लेकिन ठीक उसी समय केदार बाबू आ पहुँचे। अपने मकान के अन्दर इतने लोगों को देखकर पहले तो तनिक चौंके। फिर सामने ही हरिचरन बाबू और सदाव्रत को देखकर जैसे मामला समझ गये।

"क्या हुआ, हरिचरन बाबू ?"

हरिचरन बाबू ने उनकी बात का जवाब न देकर घुमाकर कहा, "क्या हुआ है, वह दो दिन बाद ही देख पायेंगे। आज इतने लोगों के सामने मेरा जो अपमान किया, इसका फल तो आपको भुगतना पड़ेगा !"

आस-पास के मकानों की खिड़कियों से औरतें झाँक रही थीं। हरिचरन बाबू के चले जाने के बाद जो दूसरे लोग तमाशा देखने आ जुटे थे, वे भी धीरे-धीरे खिसकने लगे।

एक बोला, "कलकत्ता शहर में मकान-मालिक लोग सोचते हैं, जैसे शहर उन्हीं का है। हम लोग कुछ नहीं हैं। इन लोगों के और ज़्यादा दिन नहीं हैं। इनके दिन भी अब पूरे होने को हैं। ब्रिटिश गवर्नमेंट को जिस तरह खत्म किया, अब कैपिटलिस्टों को भी उसी तरह भगाना है।"

"लेकिन मकान-मालिकों का इसमें क्या कसूर है ? सभी क्या इसकी तरह हैं ?"

एक और ने कहा, "कलकत्ता में मकान कितने लोगों के पास हैं, पता है ? सिर्फ़ ट्वन्टी-फ़ाइव परसेंट लोगों के पास ! और पिचहत्तर परसेंट किराये के मकानों में रहते हैं। पता है रूस में क्या हुआ है ? मास्को में सारे मकान गवर्नमेंट ने नैशनलाइज़ कर लिये हैं।"

"रूस के साथ इंडिया की तुलना कर रहे हैं ? मालूम है वहाँ के लोग कितने एडवान्स्ड हैं ?"

"अब देखो न बुलगानिन और ख्रुश्चेव इस बार कलकत्ता आ रहे हैं। सब ठंडा हो जायेगा। देखिए न मज़ा—साली अपनी गवर्नमेंट का हाल ही अजीब है। ग़रीबों की तकलीफ़ नहीं देखती ! जब सब लोग कम्युनिस्ट हो जाएँगे तब समझ में आएगा !"

"अरे जनाब, अगर यह लोग समझ पाते तो उस दिन गवर्नमेंट की गोली से कितने लोग मारे गये, सुना था न ?"

बातें करते-करते लोगों ने धीरे-धीरे अपना-अपना रास्ता लिया। सदाव्रत अभी तक कमरे में खड़ा था। केदार बाबू ने आवाज़ दी, "शैल, कहाँ गयी री !"

शैल तब तक सामने आ गयी।

"क्या हुआ, री ? हरिचरन बाबू क्या कह रहे थे ? एकाएक इतने लाल-पीले क्यों हो गये ? मैंने तो कह ही दिया था कि एक महीने के अन्दर घर छोड़ दूँगा।"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन क्या इतना सब होने पर भी घर छोड़ेंगे ? आज पानी का कनेक्शन काट दिया है, कल हो सकता है गुण्डे लगाएँ। और आपकी भतीजी घर में अकेली रहती है !"

"तो क्या करूँ ? मैं किराया जो कम देता हूँ।"

"और आपकी यह भतीजी ! आज सारा दिन एक बूँद पानी भी नहीं पी सकी, पता है ? आप तो सुबह निकल गये और इस समय लौट रहे हैं ? इस समय खाएँगे क्या ?"

"क्यों ? हाँ री, आज क्या खाना नहीं पकाया ?"

सदाव्रत ने कहा, "आप क्या सपना देख रहे हैं, मास्टर साहब ?"

केदार बाबू नाराज़ हो गये, "सपना नहीं देखूँगा तो क्या करूँगा, तुम्हीं कहो ? मुझे छः ट्यूशन करने होते हैं, यह मालूम है ? जैसे आजकल के स्कूल हैं वैसे ही कॉलेज हैं। कहीं भी पढ़ाई नहीं होती, समझे ? खाली पॉलिटिक्स चलाते हैं। यूनियन और यूनियन ! मैं तो देख-देखकर अवाक् रह जाता हूँ, कौन कम्युनिस्ट हैं, और कौन कांग्रेसी यही लेकर।"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन मास्टर साहब, आपने सारे दिन खाया-पिया नहीं है, यह क्या एक बार भी याद नहीं आया ?"

केदार बाबू नाराज़ हो गये। बोले, "तुम चुप रहो! तुम भी तो अमीरों के दल में हो !"

"इसका मतलब ?"

अचानक उसके ऊपर इतना गुस्सा क्यों है, वह समझ नहीं पाया।

केदार बाबू ने कहा, "मन्मथ के बाप ने मुझे सब समझा दिया है। मुझे अब तक मालूम नहीं था। मन्मथ के बाप गवर्नमेंट ऑफ़िस में नौकरी करते हैं। उन्होंने बतलाया कि कलकत्ता में जितने बड़े आदमी हैं, सब चोरी करके बड़े बने हैं। उन्होंने मुझे सब समझा दिया है। कोई सेल्स-टैक्स की चोरी करता है, कोई लिमिटेड कम्पनी बनाकर पैसा मारता है, कोई चैरिटेबल ट्रस्ट बनाकर चोरी करता है। मतलब यह कि बिना चोरी किये धनवान नहीं हुआ जा सकता। शशिपद बाबू ने मुझे सब शीशे की तरह साफ़-साफ़ समझा दिया है। महीने में तीन हज़ार रुपये कमाकर भी कोई बड़ा आदमी नहीं हो सकता।"

फिर जैसे एकाएक कोई बात याद आ गयी। बोले, "अच्छा, तुमसे एक बात पूछी थी न? तुम्हारे पिताजी की इन्कम कितनी है? तुमने अपने पिताजी से पूछा?"

सदाव्रत ने कहा, "मैंने मालूम किया है—साढ़े चार सौ रुपये!"

"साढ़े चार सौ रुपये!"

केदार बाबू जैसे हताश हो गये। साढ़े चार सौ रुपये! बोले, "तब तो तुम भी बड़े आदमी नहीं हो, तुम लोग भी ग़रीब हो! नहीं, ठीक-ठीक ग़रीब नहीं, मध्यम श्रेणी! मिडिल क्लास। लेकिन मेरा तो ख़याल था तुम लोग बड़े आदमी हो! शशिपद बाबू ने मुझे सब बतला दिया है, गवर्नमेंट ऑफ़िस में नौकरी करते हैं न! ऑफ़िसर किस तरह सरकारी रुपया चोरी करते हैं, सब बतलाया। बैनामा कराके मकान बनवाते हैं। फिर बेच देते हैं। यही देखो, ऑफ़िस की स्टेशन-वैगन लेकर, सुना है, वे लोग बॉटेनिकल गार्डन पिकनिक करने जाते हैं। कितनी ख़राब बात है, ज़रा सोचो। यही सब सुनते-सुनते तो घर और खाने की याद नहीं रही।"

"लेकिन आपकी भतीजी? उसके बारे में भी तो आपको सोचना चाहिए। आप तो घर में थे नहीं। अगर मैं नहीं आता तो क्या होता? मैंने सड़क के नल से पानी ला दिया तब खाना बना। इधर मैं सोच रहा था कि आप घर की फ़िक्र में घूम रहे हैं और दो दिन से मैं भी आपके लिए मकान की कोशिश कर रहा हूँ।"

केदार बाबू चौंक उठे, "तुमने क्या मकान ठीक कर लिया है?"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, कोशिश कर रहा हूँ।"

"भाग्य से तुमने कुछ ठीक नहीं किया, अच्छा ही हुआ।"

सदाव्रत भी अवाक् रह गया, "क्यों ?"

"अरे, मुझे एक घर मिल गया है। किराया ख़ूब ही कम है। चारों ओर बिलकुल कॉम एटमोस्फियर है। कोई भी झमेला नहीं है। बड़े आदमियों का मुहल्ला भी नहीं है, और किराया भी कम है। सिर्फ़ दस रुपये महीना। पाँच कमरे।"

"कहाँ है मकान ?"

"बागमारी में," केदार बाबू ने गम्भीर स्वर में कहा।

"बागमारी ! वह कहाँ है ?" सदाव्रत ने बागमारी का नाम सुना था, लेकिन वह है कहाँ, यह उसे नहीं मालूम। केदार बाबू ने जैसे निश्चिन्त होकर साँस ली। बोले, "वहाँ पानी की भी कोई तकलीफ़ नहीं है। हवा और धूप भी काफ़ी है। वहाँ मुझे आराम रहेगा, शैल। समझी !"

"लेकिन आपने वह मकान ख़ुद देखा है ? दस रुपये किराया कह रहे हैं ! मकान कैसा है ? कमरे कैसे हैं ? नल है या ट्यूब-वेल ?"

केदार बाबू ने कहा, "मैंने अभी तक वह घर देखा नहीं है। सुना है, घर के सामने एक तालाब है। उसमें अथाह पानी है।"

सदाव्रत हँस रहा था। केदार बाबू ने सदाव्रत को हँसते देखकर पूछा, "तुम हँस रहे हो ?"

शैल भी शायद अपने को और नहीं रोक पायी। काका की बात सुनकर वह भी हँस पड़ी।

केदार बाबू ने अवाक् होकर कहा, "तू भी हँस रही है ? यकीन नहीं हो रहा है ? एक महीने का किराया एडवांस भी दे आया हूं। मैं ऐसा अच्छा मकान छोड़ सकता हूं ?"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन आज आप खायेंगे क्या, सर ? आपकी भतीजी क्या खायेगी ? यह सब क्या आपने सोचा है ?"

केदार बाबू ने शैल की ओर देखा। बोले, "क्या खाया जाय, कह तो, बेटी ?"

सदाव्रत ने कहा, "और कल भी क्या खायेंगे, वह भी सोच लीजिये। कल भी नल में पानी नहीं आयेगा।"

केदार बाबू बड़े मायूस-से हो गये। भतीजी की ओर देखकर कहा, "तब क्या करना चाहिए, बेटा शैल ? कल अगर पानी न आये ? हरिचरन बाबू जिस तरह लाल-पीले होकर गये हैं, उससे भी कुछ आशा नहीं होती।"

सदाव्रत ने कहा, "इससे तो एक काम करिये, सर ! आज भर के लिए आप लोग दोनों मेरे घर चलिये। वहीं खाइये, वहीं रहिये।"

केदार बाबू ने कहा, "यह कुछ बुरा न होगा। चलो, सदाव्रत के घर ही कुछ दिन काट दिये जाएं।"

कहकर उठ खड़े हुए। बोले, "साथ में क्या-क्या लूं ?"

सदाव्रत ने कहा, "जो-जो आपकी ख़ुशी हो। मेरी गाड़ी है, ले जाने में कोई तकलीफ़ नहीं होगी।"

फिर शैल की ओर देखकर कहा, "आप भी चलिये।"

केदार बाबू ने तख़्त से अपनी चीज़ें बटोर लीं। बोले, "अरे, तुम भी, देखता हूं, पूरे पागल हो। उससे 'आप' कहकर क्यों बोल रहे हो ? वह तो मेरी भतीजी है—तुमसे काफ़ी छोटी है।"

सदाव्रत ने कहा, "सच, तुम भी चलो।"

शैल ने कहा, "नहीं !"

"क्यों री, तू नहीं जायेगी ? क्यों ? तुझे क्या हुआ ? तू यहां अकेली पड़ी रहेगी ?"

"नहीं, और तुम्हारा जाना भी नहीं होगा, काका !"

"क्यों, सदाव्रत ने तो अच्छी बात ही कही है। उन लोगों के यहां कोई तकलीफ़ नहीं होगी, देखना क्या आलीशान मकान है। बड़े-बड़े पलंग, गद्दी, उसके पास गाड़ी है, गाड़ी में घूमना।"

"मैं तो तुम्हारी तरह से पागल नहीं हूं !"

केदार बाबू भतीजी के चेहरे की ओर देखते-के-देखते रह गये। शैल बातों का सिर-पैर समझ में नहीं आता। उसे यह टूटा-फूटा डैम्प घर ही पसन्द है !

बोले, "नहीं री, तू समझ नहीं पा रही है। वह ऐसा मकान नहीं है। हिन्दुस्तान पार्क में है, वहां बड़े-बड़े आदमी रहते हैं। समझे सदाव्रत, शैल ने शायद सोचा होगा वह भी कोई ऐसा-वैसा ही घर है, इसी की तरह—नहीं री, पगली, नहीं ! वह मकान देखकर तू चौंक उठेगी। इन लोगों के यहां कितने नौकर-चाकर, महराज-महरी हैं, वहां पहुंचकर तुझे खाना-वाना कुछ भी नहीं पकाना होगा। तुझे बरतन भी साफ़ नहीं करने होंगे—पांव-पर-पांव रखकर मज़े से बैठ रहना।"

शैल ने एकाएक बीच में ही रोक दिया, "तुम रुको तो, काका ! मैं नहीं जाऊंगी और तुम्हें भी नहीं जाने दूंगी !"

"लेकिन आख़िर क्यों नहीं जायेगी, कुछ मालूम भी तो हो ?"

"वह सब तुम नहीं समझ पाओगे।"

सदाव्रत ने कहा, "सच ही, चलो न तुम ! मैं कह रहा हूं तुमसे जाने को। वहां जाने पर तुम लोगों को कोई तकलीफ़ नहीं होगी और हम लोगों को भी नहीं होगी।"

शैल चुप रही। कोई जवाब नहीं दिया।

सदाव्रत फिर कहने लगा, "और हरिचरन बाबू आदमी अच्छा नहीं है। वह तो धौंस दिखलाकर चले गये, और नल में भी पानी नहीं है। इसके बाद भी यहां रहोगी कैसे, मेरी तो समझ में नहीं आता। कल जिस समय मास्टर साहब चले जायेंगे, अकेली कैसे रहोगी ? अगर फिर कोई आज की तरह आकर कुछ कहे ?"

केदार बाबू ने भी समर्थन किया। बोले, "हां, सदाव्रत बुद्धिमान लड़का है, ठीक ही तो कह रहा है। इस बात का जवाब दे तू !"

इसके बाद न जाने दिमाग़ में क्या आया, सदाव्रत की ओर घूमकर कहा, "अच्छा, सदाव्रत, एक बात ! हम लोगों को मकान का किराया तो नहीं देना होगा ?"

सदाव्रत कुछ जवाब देने जा रहा था, लेकिन उससे पहले ही शैल ने टोका, "काका तो पागल आदमी ठहरे, लेकिन आप क्यों नहीं समझते ? आप तो काका को जानते ही हैं।"

सदाव्रत ने मायूस होकर कहा, "इसके बाद मेरे कहने को और कुछ भी नहीं है; लेकिन आज जो कुछ हुआ है उसके बाद यहाँ से जाने में डर लगता है। एक बूंद पानी नहीं है, खाने का कोई इन्तज़ाम नहीं है। यह सब देखकर भी मैं कैसे चला जाऊँ ?"

शैल हँसने लगी। बोली, "इतने दिन जैसे चला वैसे ही चलेगा। आप फ़िक्र न करें। ग़रीबों की ज़िन्दगी इसी तरह कट जाती है। शायद आप पहली बार देख रहे हैं, इसीलिए बुरा लग रहा है। आप घर जाइये !"

सदाव्रत ने शैल की ओर देखा। बोला, "लेकिन पानी का क्या होगा?"

"बस्ती के लोग जो करते हैं वही करूँगी।"

सदाव्रत ने अच्छी तरह से शैल की ओर देखा। इतनी देर से इस लड़की के बारे में जो सोच रहा था शायद ठीक नहीं था। घर के कोने में जो लड़की हमेशा क़ैद रहती है, उसके अन्दर भी इतना तेज हो सकता है, वह जैसे कल्पना भी न कर पाया। कुन्ती को भी इतनी बार देखा है। लेकिन एक बार ही देखने पर शैल में उससे कहीं ज़्यादा तेज जान पड़ा।

"तब क्या सचमुच मुझे जाने को कह रही हो ?"

शैल ने कहा, "हाँ, आप जाइये !"

"तुम लोगों को कोई तकलीफ़ तो नहीं होगी ?"

"तकलीफ़ तो होगी ही। तकलीफ़ होने पर ग़रीब लोग जो करते हैं, हम भी वही करेंगे।"

सदाव्रत ने कहा, "वायदा करो, ज़रूरत होने पर मुझे ख़बर दोगी।"

शैल फिर हँस पड़ी। बोली, "वाह, जिन लोगों का कोई नहीं होता उन लोगों का क्या कुछ भी नहीं होता ?"

"मैं मास्टर साहब के लिए सोच रहा हूँ। उनका ख़याल करके ही मैं इतना कह रहा हूँ।"

"आपके मास्टर साहब हैं, तो मेरे भी तो काका हैं। अपने काका को मैं अच्छी तरह से पहचानती हूँ।"

फिर भी दरवाज़े के पास आकर सदाव्रत जरा हिचकिचाया। बोला, "लेकिन तुम लोगों का खाना ?"

शैल भी दरवाज़ा बन्द करने के लिए बढ़ रही थी। हँसकर बोली, "आपके मास्टर साहब को मैं भूखा नहीं रखूँगी। डरने की कोई बात नहीं है। अभी भी खाने की दूकानें खुली हुई हैं। आप जाइए !"

सदाव्रत और नहीं रुका। बाहर सड़क पर आ गया। फिर पैदल गाड़ी के पास पहुँचकर बोला, "कुंज, चलो !"

□ □ □

हिन्दुस्तान पार्क के बँगले में उस समय बंकू बाबू, अविनाश बाबू, अखिल बाबू—सभी की महफ़िल जमी होती।

अविनाश बाबू ने कहा, "हाँ तो, पंडित नेहरू ने सुनकर क्या कहा ?"

शिवप्रसाद बाबू बोले, "कहते क्या, चुप रह गये ! एकदम चुप। मैंने कहा कि पंडितजी, आपको इसका जवाब देना ही होगा ! चुप रहने से मैं छोड़ने का नहीं हूँ। काश्मीर को लेकर इतनी माथापच्ची कर रहे हैं, लेकिन बंगाल का हाल भी तो जरा सोचिये ! बंगाल भी तो एक बॉर्डर-स्टेट है। बंगाल की रिफ़्यूजी प्रॉब्लम को लेकर सेंटर क्या कर रहा है ? कितना कर रहा है ? वेस्ट-बंगाल को आप लोग नेगलेक्ट जो कर रहे हैं ! एक ओर तो कह रहे हैं प्रॉब्लम-स्टेट। लेकिन इसके लिए आप कर क्या रहे हैं ? यहाँ के शरणार्थियों को ज़मीन नहीं मिली, पैसा नहीं मिला, सड़क और फुटपाथ पर उन लोगों की गृहस्थी जमी है, इनके बारे में कौन सोचेगा ? यहाँ के जवान लड़के अनएम्प्लॉयड हैं, यहाँ की लड़कियाँ और कुछ न पाकर अपना

शरीर वेचती हैं···"

बंकू बाबू चौंक उठे, "आपने कही यह बात ?"

"कहूँगा क्यों नहीं ? मैं भाई पब्लिकमैन हूँ। आज सत्ताईस साल से पब्लिक का काम कर रहा हूँ। वेस्ट-बंगाल की प्रॉब्लम मुझे मालूम नहीं होगी तो किसे होगी ? नेहरू तो बड़े इंटेलीजेण्ट आदमी हैं। चुपचाप सुनते रहे। फिर बोले—'ऑल राइट, मैं देखूंगा। आई शैल थिंक ओवर इट'।"

"फिर ?"

"डॉ० राय भी मेरा साहस देखकर चौंक गये।" शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "वह सोच भी नहीं पाये थे कि मैं नेहरूजी के मुंह पर इस तरह से कह दूंगा। बाहर आकर बोले—'शिव, तुम तो देखता हूँ, बड़ी खरी सुनानेवाले हो।' मैंने कहा—'सर, नंगे को किसकी शरम है ! मेरा है ही क्या, जो मैं कहने में डरूँ ? मैं मिनिस्टर भी नहीं हूँ, कांग्रेस का भी कोई नहीं हूँ। पार्टी से अपना नाम कट जाने का भी मुझे डर नहीं है। मैं कहने से क्यों चूकूँ ?"

अखिल बाबू ने कहा, "आप इतनी बार पंडित नेहरू से मिलते हैं, और हम लोगों की बात एक बार भी नहीं कही ?"

"आप लोगों की कौन-सी बात ?"

"वही जो आपसे कही थी। पेंशन-होल्डर लोगों का मामला। चीज़-वस्तुओं के जो बाबा मोल-दाम बढ़ रहे हैं; जबकि हम लोगों के लिए न डियरनेस एलाउंस है, न और कुछ ही है। वही एक फिक्स्ड पेंशन है—इस बारे में भी तो कोई नहीं सोच रहा।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अरे, आप लोग तो जनाब फिर भी मजे में हैं ! लेकिन जरा ऑर्डिनरी लोगों की हालत सोचकर देखिये, जो आधा पेट खाकर रहते हैं ! मैं तो रात को सोते-सोते चौंक उठता हूँ। फिर और नहीं सो पाता। सारी रात पड़ा-पड़ा सोचता हूँ। देश कहाँ जा रहा है ? इस तरह चलते रहे तब तो ये जेनरेशन बिलकुल खत्म हो जायेगी। नेहरूजी तो कहते हैं, आराम हराम है। लेकिन सरकार के मुखिया लोग आराम छोड़कर और क्या कर रहे हैं ! आज यह कांफ्रेंस, कल वह कांफ्रेंस ! हम लोगों के ज़माने में इतनी कांफ्रेंस नहीं होती थीं। सिर्फ़ काम होता था। रॉयट के समय मैं और श्यामाप्रसाद बाबू किसी-किसी दिन तो खाना भी नहीं खा पाते थे। और आज कांफ्रेंस से पहले मिनिस्टर साहब को कौन-सी 'डिश' अच्छी लगती है, इसी का इन्तजाम करते-करते लोगों का बुरा हाल हो जाता है। अगर हालत यही रही तो कम्युनिस्ट पार्टी को कितने

दिन दबाकर रखेंगे ?"

"नेहरूजी से आपने यह कहा ?"

"नहीं, नेहरूजी से नहीं कहा, डॉ० राय से कहा। कहा, 'आपने ही तो कम्युनिस्टों को इतना बढ़ावा दिया है ! जरा अतुल्य बाबू के हाथ में छोड़ दीजिये। सब ठंडा कर देंगे।' डॉ० राय तो समझ नहीं पा रहे। लेकिन देखिये हमारे पास में चीन है। इतना बड़ा कम्युनिस्ट देश। आज भले ही वेरी फ्रेंडली है, लेकिन कब क्या होगा, कुछ कहा जा सकता है ?"

अविनाश बाबू—"आप कह क्या रहे हैं, शिवप्रसाद बाबू, चाऊ-एन-लाई ? चाऊ-एन-लाई कभी भी ख़राब काम कर सकता है ?"

शिवप्रसाद बाबू—"नहीं, चाऊ-एन-लाई को तो खराब नहीं कह रहा। चाऊ-एन-लाई तो बहुत ही अच्छा है, बिलकुल नेहरूजी के पर्सनल फ्रेंड की तरह। लेकिन चाऊ-एन-लाई तो हमेशा नहीं रहेगा। चाऊ-एन-लाई के मर जाने पर फिर कौन आयेगा, उसकी क्या पॉलिसी होगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। तब इन्हें कौन रोकेगा ? पता है इसी कलकत्ता में ये लोग क्या कर रहे हैं ? अरे जनाब, बस्तियों में जा-जाकर शरणार्थियों को उकसा रहे हैं, और गवर्नमेंट के अगेन्स्ट···"

गाड़ी घर के सामने पहुँचते ही सदाव्रत अवाक् रह गया। पिताजी आ गये हैं।

कुंज भी देख रहा था। सदाव्रत ने कहा, "कुंज, लगता है पिताजी आ गये हैं।"

तभी अचानक बद्रीनाथ कमरे में आया। शिवप्रसाद बाबू उसकी ओर देखते ही सब समझ गये। उठ खड़े हुए।

बोले, "शायद आपकी पूजा का समय हो गया ?"

"हाँ, अब उठूं।"

"दिल्ली में रहते समय टाइम मिलता था ?"

शिवप्रसाद बाबू हँस पड़े। बोले, "एक दिन तो ऐसे ही हुआ। लालबहादुर शास्त्री मेरे यहां आये थे। बात हो रही थी। तभी मैं उठ खड़ा हुआ। पूजा के समय पंडित नेहरू कोई नहीं हैं, लालबहादुर शास्त्री भी कोई नहीं हैं, इंडिया गवर्नमेंट भी कुछ नहीं है। सबके ऊपर है मेरी माँ !"

सदाव्रत जिस समय अन्दर आ रहा था, सभी बाहर निकल रहे थे—बंकू बाबू, अविनाश बाबू, अखिल बाबू, सब। सदाव्रत उन लोगों की बग़ल से अन्दर चला गया।

□ □ □

दो दिन हो गये, फिर भी नयी लड़की की हिचक नहीं छूटी। पता नहीं कहाँ बालेश्वर जिले या मयूरभंज स्टेट में घर था। बाप दूसरे के खेतों में काम करता था। एक बार सूखा पड़ने पर गाँव के पटेल से कर्ज़ लिया। लेकिन समय पर सूद भी नहीं दे पाया। इसके बाद शुरू हुए तगादे। घर, ज़मीन, जो कुछ था पटेल ने ले लिया। इतने पर भी जब कर्ज़ नहीं उतरा तो लड़की और बहू को भी ले लिया। वे लोग काम करके कर्ज़ अदा करेंगी। उसी पटेल के यहाँ कुसुम अब तक काम करती रही। गाय के लिए कुट्टी काटती, चारा देती, बरतन माँजती, गोबर पाथती। खिला चेहरा, चढ़ती उम्र। उसके बाद ही एक दिन न कहना न सुनना, रात को सोते से उठाकर पटेल ने ही एक अनजान आदमी के साथ रेलगाड़ी पर चढ़ा दिया। और उसके बाद ही यहाँ। इस कलकत्ता में।

शुरू-शुरू में तो यहाँ का सिलसिला बड़ा अजीब-सा लगा। फिर सब ठीक हो गया। कहाँ वह जंगल, और कहाँ यह शहर। लेकिन कुसुम ने शहर देखा ही कहाँ? उस दिन जो यहाँ आयी, तो फिर नहीं निकल पायी। सड़क की ओर वाले दूसरी मंजिल के बरामदे में जब सब सज-धजकर खड़ी होतीं, तो फिर पद्मरानी उसे भी सजा देती।

पद्मरानी कहती, "पहनो बेटा, यह साड़ी पहनो!"

पद्मरानी शुरू-शुरू में सबके लिए अपनी गाँठ से साड़ी खरीद देती, गिलट के गहने पहनने को देती, दूध-घी खाने को देती। अपने पेट की लड़की की तरह ख़ातिर करती। साथ लेकर सोती। कुसुम के साथ भी वैसा ही करने लगी। बड़ी डरपोक लड़की है। प्यार पाते ही पसीज जाती और आदमी देखते ही सिहर उठती।

ये चिह्न अच्छे हैं। ऐसी ही लड़कियाँ बाद में पक्की होती हैं। इस लाइन में जिन्होंने नाम कमाया है, उन सभी का पहले का इतिहास यही है। सभी आदमियों की नज़रों से डरनेवाली थीं। बाद में उन्होंने ही 'डाकसाइट' कहलाकर नाम कमाया।

ठगनलालजी को आने में दो-चार दिन की देरी हुई। शेयर मार्केट की सबसे बड़ी मछली थे सेठ ठगनलाल। सेठ ठगनलाल एक हाथ से खरीदते और एक हाथ से बेचते। जमा नाम की चीज़ ज़िन्दगी में नहीं जान पाये। रुपया कभी भी इकट्ठा नहीं करना चाहिए। उससे रुपये की भी इज्ज़त जाती है और रुपयेवाले की भी इज्ज़त जाती है। रुपया सिर्फ़ इन्वेस्टमेंट

के लिए है। एक शेयर में कुछ रुपये लगाकर कुछ प्रॉफिट खाकर फिर वही रुपया और ज़्यादा डिवीडेंड के शेयरों में खर्च करो। रुपये से केवल अण्डे पैदा कराओ। रोककर रखने से रुपया बाँझ औरतों की तरह बेकाम हो जाता है। आज ऑयरन, कल कॉपर, परसों स्टील, उसके बाद ऐल्यूमिनियम। १९४७ के बाद से इंडिया में इंडस्ट्री बढ़ रही है। पहले तो गोरे साहबों की वजह से इन्वेस्ट करना ही मुश्किल था। सब शेयर, सब डिवीडेंड तब इंग्लैंड चला जाता था। आज इंडिया में चलने के लिए विलायती कम्पनी को फिफ्टी परसेंट शेयर इंडियन लोगों के हाथों बेचने होते हैं। उससे डालर-मार्केट में इंडिया की इज्ज़त बढ़ेगी। ग़रीब इंडियन लोग खा-पहन सकेंगे। इसी से सेठ ठगनलालजी के पौ बारह हैं। इसीलिए सेठजी इस मुहल्ले में पहले की तरह नहीं आ पाते। आज हांगकांग जा रहे हैं, कल सिंगापुर, परसों बम्बई। सारी दुनिया में कारबार फैला है। मोटर-कार के पार्ट्स बाहर से आ रहे हैं। ठगनलालजी के पास उसी मोटर-कम्पनी के शेयर हैं। परमिट की बात करने के लिए दिल्ली सेक्रेटेरियट जाते हैं। और जब पार्ट्स बाहर से आते हैं तो उन पार्टों के साथ क्या-क्या आता है, इसका हिसाब कस्टम ऑफ़िस के खाते में नहीं है। वैसे बाहर से गोल्ड नहीं लाया जा सकता। लाने पर ड्यूटी देनी होती है। जबकि ड्यूटी देने पर मजूरी ज़्यादा पड़ जाती है। स्मगिलग बड़ा मुश्किल काम है। यह काम किसी और के ज़िम्मे नहीं छोड़ा जा सकता है। सारी लिखा-पढ़ी अपने-आप करनी होती है। इसीलिए सब ख़ुद देखना पड़ता है। यह सब करते-करते ही कितने दिनों से इस ओर नहीं आ पाये।

इस बार सनातन से ख़बर मिलते ही पद्मरानी के फ़्लैट में आए।

ठगनलालजी की गाड़ी बहुत बड़ी है। इस गाड़ी के कल-पुर्जे ही अलग हैं। हर ड्राइवर इसे नहीं चला पाता।

फ़्लैट के सामने गाड़ी रुकते ही सुफल ने देख लिया। पीछे ठगनलालजी बैठे हैं और आगे सीट पर सनातन।

और बात करने का मौक़ा नहीं था। मुगलई पराँठे का तवा अँगीठी पर ही छोड़कर सुफल ने एक छलाँग लगायी। फिर गाड़ी के पास पहुँचकर ज़मीन तक झुककर सलाम की। बोला, "सलाम, हुज़ूर !"

सनातन ने तब तक उतर 'हुज़ूर' के लिए दरवाज़ा खोल दिया था।

'हुज़ूर' सड़क पर पाँव रखते ही सुफल को पहचान गये। फिर सुफल की पीठ पर एक ज़ोर का मुक्का लगाया।

बोले, "क्यों रे, सुफल, क्या हाल है ?"

सुफल ने कहा, "हुज़ूर, क्या हम लोगों को भूल गये ? कितने ही दिनों से इधर पैरों की धूल नहीं पड़ी।"

"पड़ेगी-पड़ेगी ! अब पैरों की धूल पड़ेगी। हाँ तो, आज क्या बनाया है ? कलेजी बनी ?"

"कितनी प्लेट लाऊँ, हुकुम दीजिये न, हुज़ूर ! बड़ी जायकेदार बनी है। पटनाई बकरे की कलेजी, सब भेज दूँ ? किसके कमरे में बैठ रहे हैं ?"

सनातन ने जवाब दिया। बोला, "तू रुक तो ! आइये सेठजी, चले आइये ! काम-काज के वक्त इन लोगों को दिल्लगी सूझती है।"

सेठजी के बदन पर फिन्ले मिल की महीन धोती और बन्द गले का कोट। पाँवों में चमचमाता 'मेंकासिन'। हाथ में सिगरेट का टीन। सनातन खींचता-खींचता सामने की ओर लिवा चलने लगा। सुफल भी पीछे-पीछे आ रहा था।

सेठजी ने सुफल को देखते ही कहा, "तेरी तो सूरत ही बदल गयी है, सुफल ! लगता है खूब माल उड़ा रहा है ?"

सुफल ने सिर झुकाकर कहा, "हुज़ूर की नेक नज़र पड़ती तो सूरत और भी बदल जाती !"

सेठजी ने अभयदान देते हुए कहा, "ठीक है, तू कुछ फ़िक्र मत कर, तू जा ! तुझे बुलवाऊँगा !"

तब तक शायद सारे फ़्लैट में ख़बर फैल चुकी थी। सभी दौड़कर बरामदे में आ गयीं। रेलिंग के सहारे झुककर देखने लगीं। ज़ोर-ज़ोर से खिलखिलाने लगीं। सभी सेठजी की देखी हुई हैं। सभी के कमरे में सेठजी बैठ चुके हैं। पहले किसी-किसी दिन खूब लीला करते थे सेठजी। उस समय उम्र भी कम थी। उन दिनों ठगनलालजी के पिता सेठ चमनलाल ज़िन्दा थे। तब बेटा बाप के पैसे पर गुलछर्रे उड़ाने इस मुहल्ले में आता था। सारी रात इस पद्मरानी के ही फ़्लैट में हुल्लड़बाज़ी होती। कभी-कभी रातभर के लिए पूरा फ़्लैट ही खुद किराये पर ले लेते। उन दिनों की बात और थी। इसी सुफल की दूकान से एक के बाद एक प्लेटें आतीं। गोश्त आता, कलिया और कलेजी आती। कोई चूल्हा नहीं जलता। सब पेट-भर शराब पीते। ठगनलाल की नज़र से कोई भी बच नहीं पाती। गेट पर दरबान ताला लगा देता और अन्दर ठगनलालजी खुद कृष्ण बनते और लड़कियों को गोपियाँ बनाकर, रासलीला करते। दरबान को वे सारी बातें आज भी

याद हैं। इतनी मोटी बख़्शीश पाकर याद रहने की ही बात थी।

सेठजी को देखकर दरबान ने भी एक लम्बी सलाम ठोकी। उसकी ओर बिना देखे सेठजी ने रेलिंग की ओर नज़र फेंकी। लड़कियाँ ठगनलाल की नजर में पड़ने के लिए सीढ़ी के सिरे पर आ खड़ी हुईं।

ठगनलाल ने अचानक कहा, "अरे, दुलारी है न ?"

दुलारी राजपूताना की लड़की है। खिलखिलाती हुई बोली, "हम लोगों को अब क्यों पहचानने लगे ? अब तो सेठ जी हो गये हैं !"

"तू तो बिलकुल दुबली-पतली थी। ऐसी खुदाई कैसे हो गयी ? शायद ख़ूब देशी उड़ा रही है !"

दुलारी खूब बंगला सीख गयी है। बोली, "विलायती के लिए पैसे कहाँ मिलेंगे जो विलायती खाती ?"

"क्यों ? तेरा बाबू नहीं है ? उस मल्लिक बाबू का क्या हुआ ? उड़ गया क्या ?"

बगल से वासन्ती ने कहा, "सेठजी, हम लोगों पर तो नज़र ही नहीं डाल रहे हैं। हम लोग बूढ़ी हो गयी हैं न !"

बात सुनकर ठगनलाल ने वासन्ती के फूले गालों की चुटकी भर ली।

"ओ माँ, लग रही है ! छोड़ो, सेठजी, छोड़ो !"

"और बोलेगी ? तेरी यह नथ किसने दी, बोल ? बोल तू ! बिना कहे नहीं छोड़ूँगा !"

तब तक पद्मरानी कमरे से निकलकर बरामदे में आ गयी। साथ में थी बिन्दू। बिन्दू ने ही पद्मरानी को ख़बर दी थी।

बोली, "अरी लड़कियो, मैं कहती हूँ तुम लोगों में अक्ल नाम की चीज़ नहीं है क्या ? तुम लोग क्या लड़के को फाड़कर खाओगी ?"

पद्मरानी को देखकर ठगनलाल ने भी वासन्ती को छोड़ दिया। लेकिन असल में वासन्ती को अच्छा ही लग रहा था। वह अभी तक खिल-खिल कर रही थी। पद्मरानी की आवाज सुनकर दूसरी लड़कियाँ भी एक ओर हट गयीं।

ठगनलाल ने सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते कहा, "वासन्ती क्या कह रही है, सुना पद्म बीबी। कहती है मैं इन लोगों को पहचान नहीं पा रहा।"

"तुम बेटा, इन बातों पर कान मत दो। तुम ऊपर आओ। ओ बिन्दू, लड़के के लिए कुर्सी ला, बेटा !"

ठगनलालजी ऊपर चले आये। लेकिन कमरे में आकर कुर्सी पर नहीं

बैठे। एकदम पद्मरानी के पलंग पर पैर समेटकर बैठ गये।

पद्मरानी भी विस्तरे पर एक ओर बैठकर बोली, "तुम तो बेटा, अब इस ओर आते ही नहीं हो। तुम्हें पता नहीं, आदमी देखकर आजकल मेरी लड़कियाँ ऐसे ही करती हैं।"

ठगनलाल कमरे में चारों ओर देख रहे थे। बोले, "क्यों, इतनी लोनी कैसे लग गयी ?"

"और क्या, बेटा ! दिनों का फेर है। आजकल तो घर पर चील-कौवे भी आकर नहीं बैठते।"

ठगनलालजी फिर भी नहीं समझ पाये। बोले, "क्यों ? पहले तो एक भी कमरा ख़ाली नहीं रहता था।"

"वे सब दिन भूल जाओ। अब तो लगता है, धन्धा समेट काशी जाकर धरम करना होगा। पहले अच्छे-अच्छे भले घर के लड़के यहाँ आते थे। बिना किसी डर के रात बिताकर घर लौट जाते थे। इतने दिन कभी भी किसी से कड़ी बात नहीं सुननी हुई। अब तो मुहल्ला खाली हो गया है, एकदम खाली। तुम ज़रा एक चक्कर लगा आओ न। इतने दिन बाद आये हो। एक बार सनातन को लेकर जाओ न बेटा, मुहल्ले का हाल-चाल देख आओ न। जा न सनातन, सेठजी को ज़रा दिखला ला न !"

सनातन पास ही खड़ा था। उसने भी पद्मरानी की बात पर सिर हिलाया, "हाँ हुज़ूर, माँ जो कुछ भी कह रही हैं ठीक ही कह रही हैं ! पुलिस की वजह से हम लोगों का कारोबार अब और नहीं चल पायेगा।"

"पुलिस !"

ठगनलाल हैं-हैं करके हँस दिये। बोले, "चल हट, बेकार की बात सुनाकर मेरा समय ख़राब कर रहा है। काम की बात कर, काम की !"

पद्मरानी ने कहा, "नहीं बेटा, सनातन आज चालीस साल से दलाली कर रहा है। वह ठीक ही कहता है।"

"तो कौन-सी पुलिस, कहो न ? किस थाने से ? यहीं तुम्हारे टेलीफ़ोन पर ही कह देता हूँ। सभी तो खाते हैं—कहो न कौन-सा थाना ? किसे पकड़ा है ? किसे, किसे ? अविनाश बाबू न ?"

पद्मरानी बोली, "दुःख की बात किसके आगे रोऊँ ? क़ानून जिसने बनाया है, जैसा क़ानून बनाया है, सुना तुमने ?"

सेठ ठगनलाल ने ज़िन्दगीभर कभी क़ानून की परवाह नहीं की। बोले, "अरे छोड़ो, तुम सेठ ठगनलाल को क़ानून सिखला रही हो ? ठगनलाल

सेठ के बाप चमनलाल ने कभी क़ानून माना है ? क़ानून की परवाह करने से गवर्नमेंट चलेगी ? तुम इतने दिन से इस मुहल्ले में धन्धा कर रही हो, तुमने कभी क़ानून माना है ? क़ानून तो कहता है रात के साढ़े आठ बजने के बाद कोई भी शराब नहीं बेचेगा। तुम रात के तीन बजे मेरे साथ आओ, तुम्हें पीपे-के-पीपे शराब खरीदवा दूँ। कलकत्ता के जिस मुहल्ले से कहो—तुम्हें कितनी शराब चाहिए ?"

पद्मरानी ने कहा, "शराब की बात नहीं हो रही है। लड़कियों के धन्धे की बात हो रही है। क़ानून बना है लड़कियों का धन्धा और नहीं चलेगा।"

सेठ ठगनलाल वहाँ भी पीछे नहीं हैं। बोले, "अरे, रहने दो, क़ानून भी हुआ और हमने मान भी लिया। मेरे लिए तो कोई भी देश देखना बाकी नहीं है। लन्दन, पेरिस बर्लिन, सिंगापुर, बर्मा सभी जगह तो जाता हूँ, सभी जगह तो लड़कियाँ मिलीं, बिना लड़कियों के खाऊँगा क्या ? सिर्फ़ दूध और रोटी ? पद्म बीबी, तुम्हीं कहो न ?"

इसके बाद एकाएक इतना समय बेकार की बातों में निकल गया, ऐसा भाव दिखलाकर कहा, " हाँ, खाली पेट कब तक रखोगी ?"

पद्मरानी समझ गयी। पल्ले से बँधी चाबी खोलकर बिन्दू को दी। बोली, "जा तो बेटा, एक अच्छी-सी देखकर निकाल ला।"

फिर ठगनलाल की ओर घूमकर बोली, "कसम से ठगन, मैं झूठ नहीं बोलती। माँ काली की सौगन्ध खाकर कह रही हूँ, ये लोग बड़ा तंग कर रहे हैं। देख न, मेरी दो लड़कियों को पकड़कर पुलिस ले गयी है।"

"क्यों ? ले क्यों गयी ?"

"मेरी टगर, और जूथिका को तो तुम जानते ही हो ? उन दोनों को पकड़कर ले गयी है। जूथिका माना कि यहाँ रहती है, लेकिन मुझे टगर की फ़िक्र है, बेटा। बड़ी अच्छी लड़की है। कह रही थी बाप बहुत बीमार है। सुना है, उन लोगों का घर भी ज़मींदार तोड़ देगा। बस्ती है न ?"

"लेकिन उन लोगों ने किया क्या था ?"

"मुँहजले कहते हैं, सड़क पर खड़ी आदमियों को बुला रही थी। मुँहजलों की बात सुनी ? टगर को तो देखा है तुमने ! वह क्या आदमियों को बुलानेवाली लड़की है ? कहती थी, बाप की बीमारी की वजह से आ नहीं पाती। मैं उसे कह-कहकर बुलाती हूँ। वह आदमी बुलाएगी ? टगर को तो तुम जानते होगे, ठगन !"

ज़िन्दगी में कितनी टगर देखीं और कितनी टगर के यहाँ रात

काटी हैं, यह सब याद रखनेवाले आदमी नहीं हैं सेठ ठगनलाल। बोले, "उन सब बातों को तुम गोली मारो, टगर क्या कलकत्ता में एक है ? हाँ तो, उसका क्या हुआ ? पुलिस ने थाने में बन्द कर रखा है ? अभी अविनाश बाबू को फ़ोन किये देता हूँ।"

कहकर टेलीफ़ोन का रिसीवर उठाने जा रहे थे कि पद्मरानी बोली, "ओ राम, तुम्हें यह भी नहीं मालूम, अविनाश बाबू की तो बदली हो गयी है ! अविनाश बाबू होते तो मुझे किस बात की फ़िक्र थी ? अविनाश बाबू को क्या मैं तुमसे कम जानती हूँ ?"

"तब कौन है उसकी जगह ?"

अचानक बिन्दू गिरती-पड़ती कमरे में आयी। बिन्दू चाबी लेकर भण्डार से बोतल लाने गयी थी। आते ही पद्मरानी की ओर आँखें फैलाकर बोली, "गजब हो गया, माँ !"

"क्या हुआ री ? गजब क्या ? कहाँ ?"

पद्मरानी झटपट बिस्तरे से उठ खड़ी हुई। फिर बात का तार लिये ही बिन्दू के पीछे-पीछे बाहर आयी। उधर बासन्ती वगैरह भी अपने-अपने कमरों से निकल आयी थीं। सत्रह नम्बर कमरे के आगे ही सब जमा थे। कमरा अन्दर से बन्द था। पद्मरानी खिड़की से अन्दर झाँकते ही चौंक उठी।

इसके बाद और वहाँ खड़ी नहीं रह पायी। पुकारा, "दरबान कहाँ है ? दरबान ! दरबान !"

दरबान के सामने आते ही पद्मरानी ने हुक्म दिया, "दरवाज़ा बन्द करके ताला लगा दो, दरबान !"

और साथ-ही-साथ पूरा फ्लैट निर्जीव हो गया। और पद्मरानी, जो हजार मुश्किल में भी मिजाज़ ठंडा रखती, वह भी जैसे गम्भीर हो गयी। बोली, "जाओ बेटी, तुम लोग अपने-अपने कमरों में जाओ ! यहाँ भीड़ मत करो। जाओ !"

सेठ ठगनलाल ने पद्मरानी के कमरे में अभी बोतल खोली ही थी। सनातन ने बड़े यत्न के साथ गिलास में ढालकर सोडा मिला दिया। गिलास आगे बढ़ाकर बोला, "लीजिये, हुज़ूर !"

ठगनलाल ने गिलास हाथ में ले होठों से लगाया। बोले, "तूने ली ?"

सनातन के धँसे चेहरे पर हँसी खेलने लगी। बोला, "ओ..."

ठगनलाल ने झिड़की लगायी, "अच्छा, ज़्यादा शराफत छोड़, ले, सोनागाछी में सब समान हैं। यहाँ कोई ग़रीब-अमीर नहीं है। ले, ढाल !"

सनातन जैसे ज़बर्दस्ती गिलास में ढालने जा रहा था, तभी बुझा चेहरा लिए पद्मरानी ने कमरे में कदम रखा। जैसे हाँफ रही थी। "गज़ब हो गया, बेटा ठगन, कुसुम ने गले में फाँसी लगा ली।"

"कुसुम ? कुसुम कौन ?"

"वही जिसके लिए तुम्हें बुलाया था। शाम तक भी मुझे पता नहीं था। अपने हाथ से मैंने बाल सँवार दिये थे, फिर साबुन लगाकर बदन धोया। तुम आनेवाले थे, सजाकर तैयार कर रखा था इधर···"

बात पूरी नहीं हो पायी। सेठ ठगनलाल उठ खड़े हुए।

"तुम चले मत जाना। ज़रा देर बैठो। तुम्हारे रहने से ज़रा तसल्ली होती है। तुम्हारी तो फिर भी थाने के दारोग़ा से जान-पहचान है। अब क्या करूँ, बोलो ?"

लेकिन सेठजी का नशा तब तक हिरन हो चुका था। अब खड़े होने का समय नहीं था। जल्दी से बिस्तरे से उतरकर जूता पहनना शुरु कर दिया। कहा, "लेकिन मैं तो चाबी भूल आया हूँ।"

"किस चीज़ की चाबी ?"

"अपनी गद्दी की चाबी। बिना चाबी लिए मुनीम दरवाज़ा बन्द नहीं कर पायेगा। मैं अभी आया। चाबी लेकर अभी आया। तुम ज़रा फिक्र न करो, पद्म बीबी !" कहकर सीधे नीचे उतर गये। दरबान ने तब तक दरवाज़े में ताला लगा दिया था। सेठ ठगनलाल ने वह ताला भी खुलवाया। सनातन पीछे-पीछे आ रहा था। आज साला नसीब ही ख़राब है ! पीछे से ही बोला, "हुज़ूर !"

हुज़ूर को तब बात करने की फुरसत कहाँ ! जाकर गाड़ी में बैठ गये।

सुफल देखते ही दौड़ा-दौड़ा आया, "हुज़ूर, आप तो जा रहे हैं ! आपके लिए कलेजी..."

लेकिन सुफल की बात कान में जाने से पहले ही सेठ ठगनलाल की अमेरिका-मेड गाड़ी अँधेरे में खो चुकी थी। सुफल ने सनातन की ओर देखा। सनातन ने मुँह की अधजली बीड़ी निकालकर सड़क पर फेंक दी। मन-ही-मन कहा, "जा स्साला ! सारा दिन मिट्टी हुआ !"

शिवप्रसाद बाबू को वैसे भी ज़्यादा वक़्त नहीं मिलता। काम-काजी आदमियों को वक़्त कहाँ ! शाम के वक़्त किसी-किसी दिन गप्प चलती। वही उनका आराम था। वह भी रोज़ नहीं। महीने में पन्द्रह दिन आस-पास

के बूढ़े आकर लौट जाते। किसी दिन पता लगता मीटिंग में गये हैं, किसी दिन मालूम होता दिल्ली गये हैं, या फिर पता लगता कि अभी तक ऑफ़िस से ही नहीं लौटे। बड़े मेहनती आदमी। इतनी उम्र हो गयी, फिर भी कामकाज में कमी नहीं। गृहस्थी कैसे चल रही है, जानने की ज़रूरत नहीं। व्यापार कैसा चल रहा है, वह भी देखने की ज़रूरत नहीं। देश-सेवा ही जैसे सब-कुछ है।

कभी-कभी कहते, "और काम भी क्या एकाध है, रोज़ जैसे बढ़ता ही रहता है।"

हिमांशु बाबू कहते, "इतनी मेहनत करने से काम कैसे चलेगा? ज़रा ख़ुद को भी तो देखिये!"

"अपनी ओर! कोई भी तो काम का नहीं है। किसी पर भी काम सौंपकर तसल्ली नहीं होती। सब मुझे ही देखना होगा।"

छब्बीस जनवरी को क्या प्रोग्राम होगा, इसकी फ़िक्र भी उन्हीं को। हाज़रा-पार्क में गोआ पर मीटिंग होगी, यह भी उन्हें ही ठीक करना है। कलकत्ता में ख्रुश्चेव आयेंगे, यह भी उन्हीं का सिरदर्द है। उनके बिना कोई भी मीटिंग कम्प्लीट नहीं हो सकती। इसके अलावा लौकिक और सामाजिक सम्बन्ध हैं, किस मिनिस्टर के यहाँ मातृश्राद्ध है, वहाँ शिवप्रसाद बाबू का होना लाज़िमी है। किस पार्लमेंटरी सेक्रेटरी के लड़के की शादी है, वहाँ भी उनका होना ज़रूरी है। सोशल वर्क बिना किये भी काम नहीं चलता। सबको ग़लतफ़हमी होती है—उसके घर गये थे, मेरे यहां नहीं आये। आजकल कहीं खाते-पीते नहीं हैं।

अकसर कहा करते, "मैं तो भाई, कहीं खाता-पीता नहीं। हाँ, खिलाना ही चाहते हो तो मेरे ड्राइवर को खिला दो। मैं घर चलूँ!"

उस दिन हिमांशु बाबू से पूछा, "क्या हाल है? सदाव्रत को कामकाज समझा दिया?"

"जी, छोटे बाबू बड़े इन्टेलीजेन्ट हैं! उन्हें क्या समझाता, उन्होंने ख़ुद ही सब-कुछ समझ लिया।"

"किस तरह?"

"जी, फ़ाइलें देखते-देखते सब क्लीयर हो गया। मुझे कुछ भी बतलाना नहीं हुआ।"

"बैलेन्स-शीट? बैलेन्स-शीट दिखलायी?"

"बैलेन्स-शीट ही पहले देखी। पूछ रहे थे, 'मैनेजिंग डायरेक्टर का

एलाउन्स सिर्फ़ साढ़े चार सौ रुपये ही क्यों है ?"

"अच्छा ! यह पूछ रहा था ?"

अपने लड़के की बुद्धि पर जैसे मन-ही-मन गौरवान्वित हुए।

फिर जैसे अचानक याद आया। बोले, "पार्क-स्ट्रीट की प्रॉपर्टी के बारे में और कोई क्वेरी आयी थी क्या ?"

"जी, आयी थी। मैंने कह दिया, आपके दिल्ली से लौटने के पहले कुछ भी नहीं हो सकता।"

"अच्छा, जरा वह फ़ाइल मुझे दो तो, और ऑपरेटर से एक बार कांग्रेस ऑफ़िस की लाइन देने को कहो। कहो कि अतुल्य बाबू हैं या नहीं, पता लगाकर मुझे लाइन दे।"

इसके कुछ ही देर बाद फ़ोन की घंटी बज उठी। रिसीवर उठाकर पूछा, "अरे, क्या हाल है···?"

तभी जैसे कुछ सन्देह हुआ। पूछा, "कौन ?"

"मैं शंभू, सदाव्रत है ? सदाव्रत गुप्त ?"

फ़ौरन रिसीवर रख दिया। इसके बाद हिमांशु बाबू को बुलाया। बोले, "अपना ऑपरेटर क्या सोता रहता है ? ऐरे-ग़ैरे का टेलीफ़ोन मुझे दे देता है ! सदाव्रत को कौन खोज रहा था ? शंभू कौन है ? कहाँ का शंभू ? सदाव्रत का दोस्त ? यहाँ बैठा-बैठा यारों को फ़ोन करता था ?"

उधर शंभू ने शिवप्रसाद बाबू की आवाज सुनते ही लाइन काट दी। एक तो वैसे ही लुक-छिपकर फ़ोन कर रहा था, इस पर सदाव्रत के पिताजी के साथ डायरेक्ट कनेक्शन हो गया। मधुगुप्त लेन मुहल्ले के लड़के शुरू से ही शिवप्रसाद बाबू से डरते थे। शिवप्रसाद बाबू के पास जाकर सरस्वती-पूजा का चन्दा माँगने की भी हिम्मत किसी में नहीं थी। शिवप्रसाद बाबू के सामने आना शेर के सामने आना था। असल में शंभू को पता ही नहीं था कि शिवप्रसाद बाबू दिल्ली से वापस आ गये हैं। टेलीफ़ोन कुन्ती के लिए ही किया था।

सब क्लबों में जो होता है, इस क्लब में भी वही हुआ। सदाव्रत के लौट जाने के बाद टैक्सी का किराया लेकर झगड़े के बीच में ही कुन्ती चली गयी थी। कुन्ती के चले जाने के बाद क्लब के अन्दर मीटिंग बैठी।

शंभू और कालीपद दोनों ही उस समय गुस्से से लाल-पीले हो रहे थे। अक्षय ने कहा, "इसीलिए तो बंगालियों के क्लब टिकते नहीं हैं।"

कालीपद ने कहा, "नहीं टिकते हैं तो मैं क्या करूँ ? मेरी क्या ग़लती है ? कुन्ती के सामने मुझे शंभू ने ईडियट क्यों कहा ?"

सदाव्रत को गाड़ी में बैठाकर शंभू फिर क्लब की ओर ही आ रहा था। उसने कहा, "पहले मैंने ईडियट कहा या तूने पहले असभ्य कहा ! यहाँ बैठे सभी गवाह हैं।"

"ईडियट और असभ्य एक ही बात हुई ?"

"एक बात नहीं हुई ? ड्रामा लिख लेता है, तो क्या तू मुझसे अच्छी अंग्रेज़ी जानता है ?"

फिर से शायद झगड़ा शुरू होनेवाला था। सभी ने मिलकर रोका।

अक्षय ने कहा, "इस तरह करने से क्लब कैसे चलेगा ? इसीलिए तो कहीं भी बंगालियों के क्लब टिकते नहीं हैं।"

इसके बाद दोनों के हाथ मिला अक्षय ने कहा, "जो हुआ सो हुआ, अब तुम दोनों हाथ मिला लो। पहले ड्रामा हो जाय, बाद में जितनी इच्छा हो लड़ना। सबसे पहले क्लब से मैं रिजाइन करूँगा। मुझे ख़ूब सबक मिला है।"

हाँ तो, इसी तरह झगड़ा ख़त्म हो गया। इस 'बहूबाज़ार संस्कृति संघ' के लिए ये झगड़े नयी बात नहीं थी। जिस दिन से क्लब बना है, उसी दिन से एक बार झगड़ा होता है, फिर हाथ मिलते हैं।

किसी ने पूछा, "लेकिन कुन्ती तो चली गयी ! उससे तो कुछ कहा भी नहीं गया। कल क्या वह आयेगी ?"

"नहीं आयेगी माने ? मैंने नक़द पचास रुपये एडवान्स दिये हैं। नहीं आयेगी कहने से ही हो गया !"

शंभू ने कहा, "आये तो अच्छा ही है। लेकिन मैं बुलाने नहीं जाऊँगा।"

"बुलाने जाने की क्या ज़रूरत है ? वह ख़ुद ही आयेगी। नहीं आयेगी तो क्या हम छोड़नेवाले हैं ?"

दूसरे दिन शाम को सभी फिर से क्लब में आ जमे। लेकिन कुन्ती नहीं आयी। उसके अगले दिन भी नहीं। उसके अगले दिन भी नहीं।

शंभू ने कहा, "मैंने तो पहले ही कहा था, वह नहीं आयेगी। कालीपद जैसे मुझसे ज़्यादा जानता है !"

कालीपद जरा चिन्तित हो गया। तीन दिन तक जब नहीं आयी तो चिन्ता की बात ही थी। शंभू और नहीं रुक पाया। "इसके माने सदाव्रत के साथ कुन्ती की कोई जान-पहचान है।"

कालीपद ने कहा, "जान-पहचान तो है ही। उस दिन कुन्ती ने अपने मुंह से ही तो कहा था। उसे टैक्सी में बैठाकर कौन-से बगीचे में ले गया था?"

"धत्त! बेकार की बात है। सदाव्रत वैसा लड़का ही नहीं है, तू उसे जानता नहीं है।"

दुलाल दा ने कहा, "नहीं रे, बड़े आदमियों के 'पोष्य-पुत्तरों' के लिए कुछ भी नामुमकिन नहीं है।"

शंभू ने कहा, "तुमने फिर उसे 'पोष्य-पुत्तर' कहा, दुलाल दा! पता है, बेचारे का मन कितना ख़राब हो गया था!"

"अरे, जा! इन लोगों की बात छोड़ दे। ख़ुद ही तो देख लिया। लड़की की बू पाते ही क्लब में आना शुरू कर दिया।"

कालीपद बीच ही में बोला, "नहीं दुलाल दा, तुम उस दिन आये नहीं थे। अपनी कुन्ती को टैक्सी में घुमाने ले गया था। कुन्ती यहाँ सबके सामने कह गयी है।"

शंभू ने कहा, "वह टैक्सी में क्यों जाने लगा? उन लोगों के पास गाड़ी नहीं है? पता है, उन लोगों के पास कितनी गाड़ियाँ हैं?"

दुलाल दा—"अरे बुद्धू, ख़ुद की गाड़ी में कोई लड़कियों को घुमाने ले जाता है! उन लोगों के वक़्त टैक्सी···"

हाँ तो, इन सब बातों का सबूत पाने के लिए ही शंभू ने सदाव्रत के ऑफ़िस फ़ोन किया था। लेकिन वह जैसे शेर के मुंह से वापस आया है। फिर भी कालीपद ने हिम्मत नहीं हारी। इतनी मुश्किल से लिखी उसकी 'मरी मिट्टी', यह मौक़ा फिर नहीं आयेगा। दफ़्तरी की दूकान से उसने 'मरी मिट्टी' की अच्छी तरह से जिल्द बँधवा ली है। प्लान था कि ड्रामा होने से पहले कोई पब्लिशर किताब को छाप डालेगा। एक बार 'मरी मिट्टी' के सक्सेसफुल हो जाने पर वह अपने नेक्स्ट प्ले को स्टेज कराने की आख़िरी कोशिश करेगा। बंगाल बड़ी बुरी जगह है। यहाँ कोई किसी का अच्छा नहीं देख सकता। जो धरा-पकड़ी कर लेता है, जो ऑयलिंग कर पाता है, यहाँ उसी की तूती बोलती है। कालीपद यह सब अच्छी तरह से जानता है। और जानता है इसलिए इतनी इन्सल्ट सहकर भी क्लब को पकड़े बैठा है। एक बार नाम हो जाये, फिर इस क्लब को लात मारकर चल देगा। तब हज़ार ख़ुशामद करने पर भी इन लफंगों के क्लब में पाँव नहीं रखेगा। उसे काफ़ी सबक मिल चुका है। बंगाल की मिट्टी में जब पैदा हुआ है तो यह भी सहना होगा।

क्लब से निकलकर कालीपद घर की ओर न जाकर बस-स्टैण्ड की ओर चल दिया। आज कुछ करना ही होगा, इधर या उधर।

मोड़ से बस पकड़कर सीधे जादवपुर।

बालीगंज के मोड़ पर एक बार और बस बदलनी हुई। सोचा, शरणार्थी लड़की से शरणार्थी का रोल, आखिर में सिलेक्शन अच्छा ही हुआ था। यही आखिरी चांस है! फिर पचास रुपये एडवान्स भी दिये हैं। क्लब में इसका भी तो हिसाब देना होगा।

भरी हुई बस। ढाकुरिया लेक पार कर बस सीधी जा रही थी। इसके बाद दोनों ओर खाली और बंजर ज़मीन थी। कहीं-कहीं दोनों ओर दूकानें थीं। काफ़ी रात हो चुकी थी। कालीपद खड़ा-खड़ा जा रहा था। एक-एक स्टॉपेज आता और एक झुंड लोग उतर जाते।

जादवपुर, जादवपुर!

कालीपद ने खिड़की से बाहर देखा। पिछले दिन भी इसी तरह खड़ा-खड़ा यहाँ आया था। ये ही दूकानें, उस दिन भी ऐसी ही भीड़ थी। फिर भी आज रात हो गयी थी। इसलिए ज़रा सूना-सूना लग रहा था।

अचानक एक जगह बस के रुकते ही कालीपद चीख उठा, "रोक के, रोक के!"

पहले तो कालीपद पहचान नहीं पाया। उस दिन तीसरे पहर आया था और आज रात हो गयी थी। 'मरी मिट्टी' नाटक में इसी ओर का सीन है। हीरोइन 'शान्ति' इसी जगह से बस में चढ़कर चौरंगी की ओर जाती है। वहाँ जाकर घूमती। इसके बाद कोई ग्राहक मिल जाने पर उसके साथ टैक्सी में बैठती।

"हाँ साहब, यहाँ शरणार्थियों की कॉलोनी किस ओर है?"

"किस कॉलोनी में जायेंगे? जतीन कॉलोनी या नेताजी कॉलोनी?"

कालीपद नाम नहीं जानता था। बोला, "नाम तो ठीक से पता नहीं है।"

"किसके घर जायेंगे? उनका नाम क्या है?"

कालीपद ने कहा, "मनमोहन गुहा, फरीदपुर में घर है, यहाँ उनकी लड़की कुन्ती गुहा ड्रामे में एक्टिंग करती है।"

और कहना नहीं हुआ। बाप के नाम से बेटी का नाम ही ज़्यादा मशहूर था।

"ओ समझ गया, उस ओर नयी कॉलोनी में, उसका अभी नाम नहीं

है, सामने मैदान से पगडण्डी है, चले जाइये।"

कालीपद ने उस ओर देखा। रात के अँधेरे में जगह एकदम और तरह की दिखलायी दे रही थी। भायँ-भायँ करता अँधेरा। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। कुन्ती इस रास्ते से रात को अकेली कैसे लौटती होगी! कालीपद को ही डर लग रहा था। काफ़ी दूरी पर कुछ छोटे-छोटे दीये टिमटिमा रहे थे। कालीपद ने उस रोशनी की ओर ही पाँव बढ़ाये। आस-पास कोई नहीं था।

चलते-चलते कालीपद को एकाएक लगा जैसे काली छायामूर्ति की तरह के कुछ लोग घूम रहे हैं। बदन काँपने लगा। और उसके बाद ही जैसे अचानक कहीं से हो-हल्ला शुरू हो गया। दूर से कितने ही लोगों के चीखने की आवाज़ आ रही थी। कालीपद एक बार तो चौंककर खड़ा हो गया। सुनसान मैदान की उस ओर से जैसे कितने ही लोगों के आर्तनाद की आवाज़ आ रही थी। अँधेरे में कुछ भी पता नहीं लग रहा था। कुछ लोग जैसे इस ओर से उस ओर दौड़ रहे थे। भारी-भारी पैरों की आहट। सब-कुछ जैसे रहस्यमय लग रहा था।

कालीपद को लगा अब और आगे बढ़ना ठीक नहीं होगा। वहीं खड़ा हो गया।

तभी सामने ज़ोर की आग भड़क उठी। जैसे घरों में आग लगी हो। सामने के टिमटिमाते दीयों से लाख-लाख शिखाएँ जैसे आसमान की ओर लपलपा रही थीं।

कालीपद लौट रहा था। पीछे-पीछे पता नहीं कौन दौड़ा-दौड़ा आ रहा था। खड़े होते ही और भी आवाजें सुनायी देने लगीं। काफ़ी लोगों की भीड़ थी। कम-से-कम दो-सौ, तीन-सौ होंगे। औरतों के गले की आवाज़ भी जैसे सुनायी दे रही थी। भीड़ कालीपद के एकदम पास आ पहुँची। पास आते ही उन लोगों की बातें सुनायी दीं।

"मारो सालों को, मारो!"

"क्या हुआ, साहब?"

तभी एक आदमी चीखा, "पुलिस, पुलिस!"

कालीपद ने फिर पूछा, "वहाँ क्या हुआ है, साहब?"

"अरे साहब, कुछ पूछिए नहीं, कॉलोनी पर कब्ज़ा करने आये हैं। गुण्डे लगाकर आग लगवा दी है।"

"किसने? किसने गुण्डे लगवाए हैं?"

"ज़मींदार, ज़मींदार के आदमी !" कहते-कहते भाग गये। और नहीं रुके। उनके पीछे भी बहुत से आदमी आ रहे थे। साथ में औरतें थीं। गोद में बच्चे। रोते हुए। कालीपद ने उन लोगों से भी पूछा। लेकिन उन लोगों की हालत उस समय जवाब देने लायक नहीं थी। धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ रही थी। आवाज़ें भी तेज़ हो रही थीं। चीख़ें, गाली-गलौज और रोने की आवाज़ें। कालीपद की वहाँ और रुकने की हिम्मत नहीं हुई। शायद अभी-अभी पुलिस आ जायेगी। शायद गोली चलना भी शुरू हो जाये। शायद सभी को पकड़कर ले जाये। रॉयट के समय भी कलकत्ता में यही हुआ था। लड़ाई के दिनों मिलिटरी लॉरियाँ जलाने के बाद भी यही हुआ था। बाम-लॅरी ऑफ़िस के कैश डिपार्टमेंट के क्लर्क कालीपद ने यह सब काफ़ी देखा-सुना है। लेकिन इतने दिनों बाद फिर से वही हो सकता है, उसने नहीं सोचा था। शरणार्थी फिर से बे-घरबार होंगे, इस वेस्ट बंगाल से भगाये जायेंगे, यह कालीपद ही क्यों, किसी ने भी नहीं सोचा था।

कालीपद जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता फिर उसी रास्ते से लौटने लगा; 'मरी मिट्टी' की जैसे एक और मौत हो गयी।

□ □ □

इस ओर उस समय भी दिन था। इस चितपुर में। यहाँ अब भी घर्र-घर्र करती ट्राम, बसें और टैक्सियाँ चल रही थीं। फुटपाथ की भीड़ में साड़ी पहने किसी को देखते ही लोग मुड़-मुड़कर उसका चेहरा देखने की कोशिश करते। सड़क पर भी बड़ी सावधानी से चलना होता, नहीं तो सिर पर पान की पीक आकर पड़ती। इस ओर मलाई-कुलफी की वैरीटोन आवाज़ की बड़ी क़द्र है। वे लोग रात के दो-दो बजे तक सप्लाई नहीं कर पाते। और मटन करी, कलेजी !

दूर से सुफल की दूकान की रोशनी टिमटिमाती दिखलायी देती। काँच के केस से लाल-लाल तले हुए अंडे और कॅकड़े पहचानने में रसिक लोगों को मुश्किल नहीं हो रही थी।

लेकिन दूकान बन्द देखकर जूथिका को पता नहीं कैसा सन्देह हुआ।

"अरे, सुफल की दूकान तो बन्द लगती है ? क्या हुआ, भाई ?"

कुन्ती ने भी देखा। थाने से निकलकर दोनों पैदल आ रही थीं। दो रात हवालात में रहने से चेहरा एकदम सूख गया था। सच ही तो सुफल की दूकान बन्द थी। तभी पीछे से किसी ने सीटी दी।

"मर नासपिटे, भूख के मारे जान निकली जा रही है, मरे को रंगबाज़ी

है, सामने मैदान से पगडण्डी है, चले जाइये।"

कालीपद ने उस ओर देखा। रात के अँधेरे में जगह एकदम और तरह की दिखलायी दे रही थी। भायँ-भायँ करता अँधेरा। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। कुन्ती इस रास्ते से रात को अकेली कैसे लौटती होगी! कालीपद को ही डर लग रहा था। काफ़ी दूरी पर कुछ छोटे-छोटे दीये टिमटिमा रहे थे। कालीपद ने उस रोशनी की ओर ही पाँव बढ़ाये। आस-पास कोई नहीं था।

चलते-चलते कालीपद को एकाएक लगा जैसे काली छायामूर्ति की तरह के कुछ लोग घूम रहे हैं। बदन काँपने लगा। और उसके बाद ही जैसे अचानक कहीं से हो-हल्ला शुरू हो गया। दूर से कितने ही लोगों के चीख़ने की आवाज़ आ रही थी। कालीपद एक बार तो चौंककर खड़ा हो गया। सुनसान मैदान की उस ओर से जैसे कितने ही लोगों के आर्तनाद की आवाज़ आ रही थी। अँधेरे में कुछ भी पता नहीं लग रहा था। कुछ लोग जैसे इस ओर से उस ओर दौड़ रहे थे। भारी-भारी पैरों की आहट। सब-कुछ जैसे रहस्यमय लग रहा था।

कालीपद को लगा अब और आगे बढ़ना ठीक नहीं होगा। वहीं खड़ा हो गया।

तभी सामने ज़ोर की आग भड़क उठी। जैसे घरों में आग लगी हो। सामने के टिमटिमाते दीयों से लाख-लाख शिखाएँ जैसे आसमान की ओर लपलपा रही थीं।

कालीपद लौट रहा था। पीछे-पीछे पता नहीं कौन दौड़ा-दौड़ा आ रहा था। खड़े होते ही और भी आवाज़ें सुनायी देने लगीं। काफ़ी लोगों की भीड़ थी। कम-से-कम दो-सौ, तीन-सौ होंगे। औरतों के गले की आवाज़ भी जैसे सुनायी दे रही थी। भीड़ कालीपद के एकदम पास आ पहुँची। पास आते ही उन लोगों की बातें सुनायी दीं।

"मारो सालों को, मारो!"

"क्या हुआ, साहब?"

तभी एक आदमी चीखा, "पुलिस, पुलिस!"

कालीपद ने फिर पूछा, "वहाँ क्या हुआ है, साहब?"

"अरे साहब, कुछ पूछिए नहीं, कॉलोनी पर कब्ज़ा करने आये हैं। गुण्डे लगाकर आग लगवा दी है।"

"किसने? किसने गुण्डे लगवाए हैं?"

"ज़मींदार, ज़मींदार के आदमी !" कहते-कहते भाग गये। और नहीं रुके। उनके पीछे भी बहुत से आदमी आ रहे थे। साथ में औरतें थीं। गोद में बच्चे। रोते हुए। कालीपद ने उन लोगों से भी पूछा। लेकिन उन लोगों की हालत उस समय जवाब देने लायक नहीं थी। धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ रही थी। आवाज़ें भी तेज़ हो रही थीं। चीखें, गाली-गलौज और रोने की आवाज़ें। कालीपद की वहाँ और रुकने की हिम्मत नहीं हुई। शायद अभी-अभी पुलिस आ जायेगी। शायद गोली चलना भी शुरू हो जाये। शायद सभी को पकड़कर ले जाये। रॉयट के समय भी कलकत्ता में यही हुआ था। लड़ाई के दिनों मिलिटरी लॉरियाँ जलाने के बाद भी यही हुआ था। बाम-लॅरी ऑफ़िस के कैश डिपार्टमेंट के क्लर्क कालीपद ने यह सब काफ़ी देखा-सुना है। लेकिन इतने दिनों बाद फिर से वही हो सकता है, उसने नहीं सोचा था। शरणार्थी फिर से बे-घरबार होंगे, इस वेस्ट बंगाल से भगाये जायेंगे, यह कालीपद ही क्यों, किसी ने भी नहीं सोचा था।

कालीपद जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता फिर उसी रास्ते से लौटने लगा; 'मरी मिट्टी' की जैसे एक और मौत हो गयी।

□ □ □

इस ओर उस समय भी दिन था। इस चितपुर में। यहाँ अब भी घर्र-घर्र करती ट्राम, बसें और टैक्सियाँ चल रही थीं। फुटपाथ की भीड़ में साड़ी पहने किसी को देखते ही लोग मुड़-मुड़कर उसका चेहरा देखने की कोशिश करते। सड़क पर भी बड़ी सावधानी से चलना होता, नहीं तो सिर पर पान की पीक आकर पड़ती। इस ओर मलाई-कुलफी की बैरीटोन आवाज़ की बड़ी क़द्र है। वे लोग रात के दो-दो बजे तक सप्लाई नहीं कर पाते। और मटन करी, कलेजी !

दूर से सुफल की दूकान की रोशनी टिमटिमाती दिखलायी देती। काँच के केस से लाल-लाल तले हुए अंडे और केंकड़े पहचानने में रसिक लोगों को मुश्किल नहीं हो रही थी।

लेकिन दूकान बन्द देखकर जूथिका को पता नहीं कैसा सन्देह हुआ।

"अरे, सुफल की दूकान तो बन्द लगती है ? क्या हुआ, भाई ?"

कुन्ती ने भी देखा। थाने से निकलकर दोनों पैदल आ रही थीं। दो रात हवालात में रहने से चेहरा एकदम सूख गया था। सच ही तो सुफल की दूकान बन्द थी। तभी पीछे से किसी ने सीटी दी।

"मर नासपिटे, भूख के मारे जान निकली जा रही है, मरे को रंगबाज़ी

सूझ रही है !"

"सुफल की दूकान तो बन्द है, अब खायेगी क्या ? उधार और कौन खिलाएगा ?"

लेकिन पद्मरानी के फ़्लैट के सामने पहुँचते ही और भी आश्चर्य हुआ। जूथिका भी अवाक् रह गयी। कुन्ती भी देखती-की-देखती रह गयी।

जूथिका ही कुन्ती को ज़बर्दस्ती घसीट लायी थी। नहीं तो कुन्ती आना नहीं चाहती थी। उसे घर की फ़िक्र थी। पिताजी को दमा का दौरा था। अकेली छोटी बहन पता नहीं क्या कर रही होगी। घर से बाहर आज तक कभी रात नहीं काटी थी। घर पहुँचकर क्या सफ़ाई देगी, यही सोच रही थी। लेकिन यहाँ आते ही जैसे चौंक पड़ी।

फ़्लैट के सामने पुलिस के दो सिपाही खड़े थे। कुछ राहगीर भी जमा हो गये थे।

पुलिस के सिपाही से ही पूछा, "यहाँ क्या हुआ है, दीवानजी ?"

पास खड़े एक आदमी ने उत्तर दिया, "उधर मत जाइए, चले आइए।"

"क्यों ? आख़िर हुआ क्या है, कुछ कहिए न ?"

"अन्दर एक जनाना ने गले में फाँसी लगा ली है।"

सुनते ही कुन्ती थर-थर काँपने लगी। इसके बाद जूथिका का हाथ पकड़ दो कदम पीछे हट आयी। फाँसी लगा ली ? किसने ? गुलाबी ? वासन्ती ? दुलारी या बिन्दू ? या···और कोई ?

□ □ □

उसी दिन शाम से ही सबको सन्देह हो रहा था। कॉलोनी के आस-पास कुछ अनजान आदमी घूम रहे थे। ऐसे अनजानों को देखते ही न जाने क्यों सन्देह होता था। शरणार्थियों के बस जाने के बाद से तरह-तरह के लोग आते-जाते रहते थे। ईश्वर कयाल जिस दिन पहली बार स्यालदा स्टेशन से सभी लोगों को यहाँ लाया था, उसी दिन से।

रास्ते में किसी अनजान को देखते ही पूछते, "इधर क्या है ? किससे मिलना है ?"

"जी, ऐसे ही घूम रहे हैं।"

"घूम रहे हैं, माने ? घूमने की और कोई जगह नहीं है ? कलकत्ता में इतना बड़ा मैदान पड़ा है वहाँ नहीं जाते, यहाँ क्या देखने आये हैं ?"

तभी से लोग सावधान हो गये थे। काफ़ी बड़ी कॉलोनी बन गयी थी। रमेश काका ने ही ईश्वर कयाल को बुलाकर यहाँ बसाया था। फरीदपुर

गाँव उजड़ने पर सीधे यहाँ आकर जमे थे। नाम का ही कलकत्ता। कलकत्ता का कुछ भी तो नहीं। जीवन सामन्त, विष्टु सान्याल, सभी पिताजी को जानते हैं।

छोटे भाई के लिए ही ज़्यादा फ़िक्र थी। सो वह यहाँ आते ही मर गया था। उस दिन कुन्ती ख़ूब रोयी थी। पिताजी उसे विशु कहकर पुकारते थे। असली नाम था विश्वनाथ। तो उस विशु के मर जाने के बाद से ही मनमोहन बाबू का शरीर और मन दोनों ही टूट गये थे। रातोंरात जैसे बूढ़े हो गये थे। नशैयों की तरह बैठे-बैठे तम्बाकू पीते और खाँसते। खाँसते-खाँसते सामने आँगन में थूकते।

पुकारते, "बूड़ी, ओ बूड़ी !"

छोटी लड़की का नाम नहीं रखा था। इस बूड़ी के होने के बाद ही मनमोहन बाबू की पत्नी मर गयी थी। मनमोहन बाबू सोचते, जिस लड़की ने पैदा होते ही माँ को खा लिया उसका नाम रखना-न रखना बराबर है। इसी से वह बिना नाम की ही रह गयी। फिर भी पुकारने के लिए कोई नाम तो होना ही चाहिए। इसीलिए सहज और पुकारने में सीधा नाम रख दिया गया था। उसी बूड़ी ने अपनी दीदी की तरह ही बड़ा होना शुरू कर दिया है। दीदी की ही तरह शायद एक दिन बूढ़े बाप को खिलाएगी। और फिर ? मनमोहन बाबू उसके बाद की बात नहीं सोच पाये।

कहते, "उसके बाद तो मैं रहूँगा नहीं।"

विष्टु सान्याल पूछता, "रहोगे नहीं माने ?"

"रहूँगा नहीं माने रहूँगा नहीं। एक दिन आँखें उलटकर चित् पड़ जाऊँगा। और फिर—फिर चंडीतला के श्मशान में जलकर राख हो जाऊँगा। मुझे कन्धे पर ले जाकर फूँकने का वक़्त भी शायद तुम लोगों को नहीं मिलेगा, विष्टु।"

कॉलोनी के दिन इसी तरह कटते। बूढ़ों में से कोई-कोई शतरंज की फड़ जमाते। और जवान लड़के इधर-उधर धन्धे की फ़िक्र में घूमते। कभी राइटर्स बिल्डिंग, कभी कार्पोरेशन ऑफ़िस—कोई भी जगह नहीं छोड़ते। उसके बाद रिफ़्यूजियों को लोन देने का क़ानून पास हुआ। जो लोग पाकिस्तान छोड़कर वेस्ट बंगाल आये हैं, वे लोग जिससे घर बसा पाएँ, दूकान वगैरह करके पेट पाल सकें, उनके लिए रुपये की मंजूरी हुई। उस रुपये के पीछे झगड़ा-फसाद, मारपीट, सभी कुछ हुआ। एक-दो रुपये नहीं, हज़ारों रुपये। किसी को चार हज़ार, किसी को दस हज़ार रुपये मिले। मनमोहन बाबू

बूढ़े आदमी ठहरे। और सभी की तरह ही मनमोहन बाबू ने भी फ़ार्म पर दस्तखत कर दिये। जिस लड़के ने दस्तख़त कराये, वह बोला, "पन्द्रह दिन के अन्दर ही रुपये मिल जायेंगे। पन्द्रह दिन ही नहीं, पन्द्रह महीनों के बाद भी रुपया नहीं आया। गुप्तापाड़ा के हरिपद गुप्ता, उत्तरपाड़ा के साधू सामन्त, विष्टु सान्याल—सभी को रुपया मिल गया। लेकिन मनमोहन बाबू के रुपये का कोई पता नहीं।

हरिपद गुप्ता ने कहा, "तुम एक बार खुद जाओ, मनमोहन, रुपये-पैसे के मामले में कहीं खुद गये बिना काम होता है ?"

आखिर में मनमोहन बाबू ख़ुद ही गये। कुन्ती को साथ ले गये थे। ऑकलैंड हाउस, काफ़ी भटकने के बाद जब पहुँचे तो वहाँ के बड़े बाबू ने कहा, "आपको तो रुपया दिया जा चुका है। यह देखिये, आप यहाँ सही करके रुपये ले गये हैं।"

उसी दिन पहली बार कुन्ती का किसी बाहरी आदमी के साथ सरोकार पड़ा था। विशाल जगत् से प्रथम साक्षात्कार। उसी दिन जान पायी, उसके पास रूप है, उसे देख लोग सुखी होते हैं। उसके हँसने पर लोग खुश होते हैं। उसे देखकर लोग बैठने को चेयर देते हैं। उसी के लिए उसके बाप को भी बैठने के लिए कुर्सी मिली। उसे खुश करने के लिए दोनों को चाय पिलाई गयी।

बड़े बाबू ने पूछा था, "यही शायद आपकी लड़की है ?"

मनमोहन बाबू ने कहा, "इन बाल-बच्चों की वजह से बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। अकेला आदमी। इन लोगों की माँ भी नहीं है।"

बड़े बाबू के मुँह से 'आह' निकली। सहानुभूति की कितनी ही बातें निकलीं। वक़्त कितना ख़राब आ गया है, इस पर भी चर्चा हुई। बाप के दिमाग़ में लेकिन कुछ भी नहीं आया। सोचा, गवर्नमेंट ऑफ़िस में इतने अच्छे लोगों के होते हुए वह बेकार ही परेशान हुए। पहले से मालूम होता तो फरीदपुरवासी मनमोहन बाबू यहीं धरना देते।

मनमोहन बाबू ने पूछा, "तब फिर कब आऊँ ?"

बड़े बाबू की उम्र कोई खास ज़्यादा नहीं थी। कोट-पैंट-टाई लगाये तीस-पैंतीस के बीच होंगे। बोले, "अरे क्यों, इस उम्र में आप क्यों तकलीफ़ करते हैं ? और कोई नहीं है जो आ सके ?"

कुन्ती ने कहा, "मैं आ सकती हूँ। मेरे आने से काम चलेगा ?"

बड़े बाबू खूब खुश हुए। "ज़रूर-ज़रूर ! क्यों नहीं ! यही तो होना

चाहिए। आपकी लड़की बड़ी हो गयी है। वही आपके लड़के का काम करेगी। आपकी लड़की की उम्र कितनी होगी ?"

मनमोहन बाबू—"इस बार तेरहवाँ शुरू हुआ है।"

"नहीं पिताजी, इस अगहन में मैं सोलह की हो गयी हूँ।"

तो सोलह ही सही। बूढ़े बाप ने लड़की की उम्र कुछ कम करनी चाही। लेकिन अगर ज़्यादा उम्र होने से काम निकलता है, गवर्नमेंट रुपया देती है, तो सोलह ही सही, नुक़सान क्या है ? उसी सोलह साल की कुन्ती की ओर वह आदमी आँखें गड़ा-गड़ाकर देख रहा था। फिर कहा, "और क्या, बूढ़े बाप के लिए क्या इतना भी नहीं कर पायेगी ?"

मनमोहन बाबू एहसान से जैसे पानी-पानी हो गये थे।

कुन्ती को आज भी वे सारी बातें याद हैं। कुन्ती की ज़िन्दगी में इस लाइन पर यही शुरुआत थी। तभी से रुपये लाने का नाम कर ऑकलैंड-हाउस जाती। फिर वहाँ से रेस्टराँ, सिनेमा, न्यू-मार्केट। फिर तो एक सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते जैसे एकदम स्वर्ग में जा पहुँची। नीचे उतरना भी कहा जा सकता है। उतरते-उतरते एकदम नरक में आ गिरी। उस रुपये लेने जाने के बाद से ही कुन्ती के बदन पर सिल्क की साड़ी आयी, होंठों पर लिपस्टिक लगी, सिर पर डोनॉट जूड़ा दिखलायी दिया। कुन्ती के इस अचानक रूपान्तर ने कॉलोनी के महिला-मंडल को चौंका दिया। उन्हें भी घर में बैठे रहना भारी हो गया। वे लोग भी कलकत्ता शहर में निकल पड़ीं। कलकत्ता शहर में रूप और जवानी हो तो और क्या चाहिए !

घर आते ही कुन्ती बाप के हाथ में रुपये रखती। किसी दिन बीस, किसी दिन तीस, किसी दिन दस ही। किसी दिन पचास भी होते।

बाप कहता, "वे लोग इस तरह किश्तों में क्यों दे रहे हैं ? एक साथ सब रुपये नहीं दे सकते ?"

कुन्ती कहती, "दे रहे हैं यही क्या कम है, न देते तो क्या कर लेते !"

बाप भी कहता, "सो तो है ही—दे रहे हैं यही क्या कम है !"

लेकिन कुन्ती का नसीब ख़राब था। सुख के दिन देखते ही जैसे सामने आयी थाली हटा ली गयी। ऑकलैंड हाउस के बड़े बाबू पकड़े गये और साथ ही कुन्ती के सिर पर जैसे बिजली गिरी।

बाप ने पूछा, "पुलिस ने पकड़ा क्यों ? क्या किया था ?"

"पकड़े नहीं जायेंगे ? दुनिया में भले लोगों को कोई देख सकता है!"

"तब बाकी रुपयों का क्या होगा ?"

"उन वाकी रुपयों के लिए ही तो अब रोज़ जाना पड़ता है।"

हाँ तो, ऑकलैंड हाउस के बड़े बाबू पकड़े गये तो बला से ! कुन्ती तब तक कलकत्ता शहर को घोलकर पी चुकी थी। कलकत्ता का कोना-कोना उसकी अँगुलियों पर था। किस सड़क के किस मोड़ पर किस समय खड़े होने पर कौन पीछा करता है, यह भी मालूम था। ड्रामे के रिहर्सल के नाम पर वे लोग क्या चाहते हैं, यह भी उससे छुपा नहीं था। और कलकत्ता की किस गली में एक घंटे के लिए कितने किराये पर एक कमरा मिलता है, यह भी उसकी ज़बान पर था।

तो उस ऑकलैंड हाउस के बड़े बाबू के पास पट्टी-पूजा होकर यहाँ पद्मरानी के फ़्लैट में दीक्षा हुई। लेकिन पद्मरानी के फ्लैट में वह इतने अरसे से आ रही है, इस तरह कभी भी पुलिस की हवालात में नहीं रहना हुआ। इसी से शुरू-शुरू में ज़रा डर लगा। पुलिस की बन्द काली गाड़ी। उसी के अन्दर उसे और जूथिका को ठूँस दिया गया।

जूथिका इस लाइन में मँजी हुई है। पहले हाड़काटा गली में थी। अब पद्मरानी के फ़्लैट में आ गयी है। उसे उतना डर नहीं लगता। इस तरह कई बार उसे हवालात में रहना पड़ा है। कभी शराब पीकर सड़क पर ऊधमबाज़ी करने के लिए तो कभी ख़ून के जुर्म में। हर बार ही एक-दो दिन रहकर छूट आयी।

वह कहती, "पगली, पुलिस से क्या डरना ? पुलिस क्या शेर है ?"

कुन्ती कहती, "वे लोग अगर जेल में बन्द कर दें !"

"तो कर दें। पाँव पर पाँव रखकर आराम से खायेंगे और सोयेंगे !"

जूथिका इसी लाइन में जन्मी, इसी में पली। यहीं उसका कर्म-जीवन शुरू हुआ। उसकी माँ भी इसी लाइन की औरत थी। सब उसका देखा हुआ है। हवालात भी देखी है और जेलख़ाना भी। इमली का पानी पिलाकर कितने ही दिन उसने अपनी माँ का नशा तोड़ा है। कितनी ही बार उसकी माँ के कमरे में शराबियों के बीच ख़ून-ख़राबा हुआ है। छुरे चले हैं। ये सब बचपन की बातें हैं। कितनी ही बार माँ के साथ उसे भी पकड़कर जेलख़ाने ले गये। हाड़काटा गली में माँ पैरों के पास लैम्प रखकर सड़क की ओर ताकती खड़ी रहती थी। एक-एक नशेबाज़ निकलता और माँ उसकी ओर उत्सुकता से देखती खड़ी रहती। बाद में माँ की उम्र ढलने लगी। कमरे में कोई भी नहीं आता था। तब माँ चेहरे पर और भी ज़्यादा पाउडर लगाती, और भी ज़्यादा क्रीम चुपड़ती, और भी ज़्यादा पान खाकर

होंठ लाल करती ! किसी-किसी दिन छिपकर ख़ूब रोती। जूथिका को सब याद है।

कुन्ती ने पूछा था, "लेकिन तू क्यों आ फँसी इस लाइन में ?"

जूथिका ने कहा, "मेरी माँ ही तो मुझे ले आयी भाई, नहीं मैं तो एक मोटर-ड्राइवर के साथ भाग गयी थी। उसने मुझसे शादी की थी।"

"फिर ?"

"इसके बाद मुक़दमा चला। माँ मुक़दमा करके मुझे छुड़ा लायी। लाकर एक किराये के कमरे में रख दिया। बोली, 'बुढ़ापे में मैं खाऊँगी क्या ?' "

पर जूथिका थी, इसी से दो दिन-रात किसी तरह कट गये। जूथिका पुलिस से भी नहीं डरती, न दारोग़ा से। सारे थाने को चीख़-पुकार मचाकर सिर पर उठा लेती। हर किसी से जूझ पड़ती। ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ बकती।

दारोग़ा बाबू पूछते, "इतनी चीख़-पुकार क्यों मचा रही हो ? क्या हुआ है ? चुप हो जाओ !"

जूथिका भी कम नहीं है। कहती, "ख़ूब चिल्लायेंगे ! पुलिसवालों का हम क्या लेते हैं ? हमें गाली क्यों देंगे ?"

"तुम्हें कब गाली दी ?"

"गाली नहीं दी ? हमें छिनाल नहीं कहा ? हम छिनाल हैं ? हम लोग अगर छिनाल हैं तो तेरी माँ भी छिनाल, तेरी औरत भी छिनाल, तेरी चौदह पीढ़ी की सब छिनाल !"

उस अँधेरी हवालात में भी जूथिका जैसे शेरनी हो रही थी। लेकिन और ज़्यादा ज़बाँ-दराज़ी नहीं चल पायी। पुलिस कान्स्टेबल ही जूथिका को पकड़कर मारते-पीटते कहाँ ले गये, काफ़ी देर तक पता नहीं चला। जिस समय लौटी थाने की घड़ी में टन-टन तीन बजे थे। मार-मारकर जूथिका को पीठ का भुरता बना दिया था। सारी पीठ में काले-काले दाग़ पड़ गये थे। कुन्ती ने हाथ लगाकर देखा।

कुन्ती ने पूछा, "किस चीज़ से मारा ?"

"देखना, हरामज़ादों को कैसा मज़ा चखाती हूँ ? हैं किस होश में ? माँ के पास तो जाना ही होगा ! मुँहजले माँ से कितने रुपये खाते हैं, मुझे क्या मालूम नहीं है ? अपने मुहल्ले में लड़की या शराब के लिए क्या आयेंगे नहीं ? तब मुँह झुलसकर छोड़ूँगी ? मैं भी रंडी की बेटी हूँ, मेरे बदन पर

हाथ उठाया ?''

क्या अजीब लड़की है ! कुन्ती की किसी ने बेइज्ज़ती नहीं की, फिर भी कुन्ती को लग रहा था जैसे उसी की पीठ पर चाबुक पड़े हैं। उसकी पीठ को चाबुक की मार से दाग़ी कर दिया है। जबकि जूथिका को जैसे परवाह ही नहीं थी। उसी हालत में खुर्राटे भरने लगी। इसके दूसरे दिन सुबह जो कुछ उलटा-सीधा मिला भरपेट खा लिया। और उसी दिन रात के समय लोहे के किवाड़ खोलकर कहा, ''जाओ, भाग जाओ !''

उन्हें अन्दर क्यों बन्द किया था, और क्या उनका कसूर था, यह भी नहीं बतलाया।

कहा, ''जाओ, भागो ! बाहर जाओ !''

दोनों थाने से बाहर आ गयीं। वहाँ पद्मरानी के फ़्लैट के सामने आकर देखा। वहाँ भी पुलिस मौजूद है। किसी ने फाँसी लगा ली है।

जूथिका ने कहा, ''चल, मयनादी के घर चलें।''

''मयनादी कौन ?''

''पहले यहाँ थीं। अब खुद के तीन मकान हैं। ख़ूब पैसा कमा रही है। चल, वहाँ कई कमरे हैं। भरपेट खाने को मिलेगा, चिन्ता की कोई बात नहीं है।''

कुन्ती ने कहा, ''नहीं, तू जा भाई। पिताजी की हालत ख़ूब ख़राब है, मेरे लिए परेशान हो रहे होंगे।''

कुन्ती अकेली ही बस में चढ़ गयी। अपनी पूरी ज़िन्दगी की तसवीर जैसे सिनेमा की तरह आँखों के सामने घूम रही थी। उस दिन की बात भी याद आयी––ऑकलैंड हाउस के उसी बड़े बाबू की। उस आदमी ने कितने सब्ज़बाग़ दिखलाये थे ! आश्चर्य की बात है, आज कुन्ती को उसका नाम भी याद नहीं है। कितनी बार कितने कमरे किराये पर लिये थे। उस आदमी के तीन लड़कियाँ और एक लड़का था। घर में बहू थी। फिर भी जैसे लड़कियों का नशा था। उसी ने तो सब सिखलाया। उसी ने तो शुरू-शुरू में कहा था, ''कुन्ती, तुम्हारे पास रूप है, तुम माथा ठंडा रखकर चलो।''

शुरू-शुरू में उसी ने तो सावधान कर दिया था—''कलकत्ता सीधा-सादा शहर नहीं है, कुन्ती। यहाँ धान बोने पर सरसों निकलती है। यहाँ की मिट्टी में नमक है। जिसने इस मिट्टी को छुआ, वही खारा हो गया। उसका और कुछ भी नहीं होगा।''

कुन्ती ने उसकी कितनी ख़ुशामद की थी, ''मेरी पढ़ने-लिखने की बड़ी

इच्छा है, बड़े बाबू। मुझे लिखना-पढ़ना सिखला दीजिये न। और लड़कियों की तरह मैं भी आपके ऑफ़िस में नौकरी करूँगी।"

बड़े बाबू शायद उसे लिखना-पढ़ना सिखलाते। सचमुच बड़े बाबू उसको खूब प्यार करते थे। कहते थे, "उसके साथ शादी कर कलकत्ता शहर से बहुत दूर जाकर गृहस्थी बसायेंगे।" उस समय कुन्ती ने बड़े बाबू की सारी बातों का यकीन किया था। लेकिन अचानक ऐसी बढ़िया नौकरी हाथ से निकल जायेगी, किसे पता था!

चार नम्बर बस छोड़कर दूसरी बस पकड़कर जादवपुर जाना होता है। धर्मतल्ले के मोड़ पर कुन्ती दूसरी बस पकड़ने के लिए खड़ी थी। अचानक पास से किसी ने पुकारा।

"कौन ? तुम ?"

वही, शंभू बाबू !

शंभू भी अवाक् रह गया। कुन्ती भी अवाक् रह गयी।

"तुम्हें ढूँढते-ढूँढते कालीपद ने सारा कलकत्ता छान मारा। उस दिन तुम्हारे घर गया था। आजकल तुम लोग कहाँ हो ? कौन-से मुहल्ले में ?"

कुन्ती ने कहा, "आप लोगों का प्ले तो अब होगा नहीं।"

"क्यों ? तुमसे किसने कहा ?"

"उस दिन तो आप लोगों ने मारपीट शुरू कर दी थी! इस तरह करने से मैं वहाँ कैसे आ सकती हूं, आप ही कहिये ? आपके दोस्त ने आपके सामने ही तो इतना अपमान किया ! इसके बावजूद आप मुझसे वहाँ जाने को कह रहे हैं ?"

"लेकिन इस समय कहाँ से आ रही हो ?"

कुन्ती ने कहा, "प्ले था।"

"कहाँ पर ?"

कुन्ती ने बिना किसी सोच-विचार के कहा, "आसनसोल !"

"इसी से चेहरा बड़ा सूखा-सूखा लग रहा है। कौन-सा प्ले था ?"

"सिराजुद्दौला।"

कहकर कुन्ती रास्ते की ओर देखती रही।

शंभू ने कहा, "हम लोगों के ऑफ़िस के क्लब में भी 'सिराजुद्दौला' स्टेज करने की इच्छा थी। लेकिन बाद में कैंसिल कर दिया। मन के मुताबिक 'आलिया' नहीं मिली। अच्छा, तुम श्यामली को पहचानती हो ? तुम लोग तो बकुलबागान क्लब में एक साथ प्ले करती थीं। उसी को 'आलिया'

का पार्ट दिया गया था। उसके लड़का होनेवाला है…"

कुन्ती ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया।

शंभू ने कहा, "तुम अगर काम चला दो तो कहो, फिर से करेंगे ?"

"फिर कभी बात करूँगी। सारे दिन रेलगाड़ी में सफ़र किया है। सिर फटा जा रहा है। लगातार तीन नाइट प्ले करते-करते टायर्ड हो गयी हूँ।"

"बाद में कब मुलाकात करूँ ? कब और कहाँ मिलोगी ? बताओ !"

"क्यों ? मेरा क्या घर-बार नहीं है ? घर आकर ही मिलियेगा, सुबह के समय आने से ठीक रहेगा।"

"तब अपना नया पता दे दो।"

"नया पता माने ! मैं जहाँ रहती थी, वहीं हूँ। कालीपद बाबू तो मेरे घर जा चुके हैं।"

"अरे वाह ! कालीपद तुम्हारे घर गया था। वह तो कह रहा था कि तुम लोगों का घरबार तोड़-फोड़कर मैदान कर दिया है।"

"तोड़कर मैदान कर दिया है ? किसने ?"

शंभू को और भी आश्चर्य हुआ। बोला, "तुम्हें कुछ भी पता नहीं है? तुम आसनसोल कब गयी थीं ? उसने तो कहा कि वहाँ के शरणार्थियों की बस्ती तोड़कर गुंडों ने मिट्टी में मिला दी है। तुम्हें पता नहीं है ? कुछ भी नहीं सुना ?"

कुन्ती भी जैसे आसमान से गिरी।

शंभू ने फिर कहा, "उसके दूसरे दिन सुबह कालीपद दुबारा वहाँ गया। वह देख आया है। वहाँ झुंड-की-झुंड पुलिस के सिपाही जमा थे। पुलिस के पहरे में चहारदीवारी चिनी जा रही थी।"

कुन्ती के ऊपर जैसे बिजली गिरी। तब उसके पिताजी ? बूड़ी ? वे लोग कहाँ गये ? उसी दिन तो डेढ़ सौ रुपये ख़र्च कर टीन का छप्पर डलवाया था। पिताजी को दमा ! वैद्यजी के यहाँ से जो दवा लायी थी उसमें कितने रुपये लगे थे ! घर टूटने पर वे लोग कहाँ हैं ? और विष्टु काका, साधू काका, वे लोग…

अचानक जादवपुर की एक बस आते ही कुन्ती उसमें चढ़ गयी। इसके बाद उससे और नहीं सुना गया।

शंभू भी हट आया। आजकल की छोकरियाँ बड़ी चालाक हो गयी हैं। हर ओर से कॉल मिल रहा है न ! दोनों हाथ रुपये लूट रही हैं। और उन लोगों का भी अजीब हाल है। लड़कियों के बिना प्ले ही नहीं होगा। तभी

तो साँप के पाँच पैर देखने पड़ रहे हैं। ये लड़कियाँ !

शंभू और नहीं रुका। उसकी भी बस आ गयी थी।

□ □ □

उसी विनय से फिर मुलाक़ात हो गयी।

"क्यों भाई सदाव्रत, क्या हाल है ?"

"विनय !" सदाव्रत ने ब्रेक लगाकर गाड़ी रोक ली। विनय पास आ खड़ा हुआ। सदाव्रत ने पूछा, "कहाँ जा रहा है? नौकरी मिल गयी क्या?"

विनय कोट-पैंट पहने था। टाई लगा रखी थी। चमचमाता जूता। पिछले दिन बदन पर धोती और शर्ट थी। बोला, "आज एक जगह इण्टरव्यू है, भाई ! ज़रा मुझे अपनी गाड़ी से छोड़ देगा ?"

विनय गाड़ी में बैठ गया। बोला, "डलहौज़ी के मोड़ पर उतार देने से काम चलेगा। तू कहाँ जा रहा है, ऑफ़िस ?"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, तू मेरा एक काम करेगा ? कोई मकान बतला सकता है ? दो कमरे होने से ही काम चलेगा।"

"तुझे मकान की क्या ज़रूरत आ पड़ी ?"

सदाव्रत ने कहा, "अपने लिए नहीं। मेरे एक प्राइवेट ट्यूटर थे, उन्हीं के लिए चाहिए।"

विनय ने कहा, "अरे, छोड़ भी। भगवान की ज़रूरत हो तो मिल सकते हैं—मकान कहाँ मिलेगा ? लेकिन तेरा तो ख़ुद का मकान है !"

विनय पहले कितना अच्छा लड़का था ! आश्चर्य की बात है, वह भी बेकार है। सदाव्रत गाड़ी चलाते-चलाते ही विनय की बातें सुन रहा था। एक दिन यह विनय ही कॉलेज में जैसे छाया रहता था। कितनी बार यूनियन के इलेक्शन में खड़ा हुआ। प्रेसिडेंट या वाइस-प्रेसिडेंट, जाने क्या बना था। उसी बहाने परिचय हुआ था और उसी बहाने पहचानता था। तब सभी को विनय का भविष्य उज्ज्वल ही दिखलायी देता था। फ़ाइनल के समय रिज़ल्ट भी अच्छा ही रहा। अब बुझा-बुझा-सा लगता है। बीच-बीच में सड़क या रास्ते पर मुलाक़ात होने पर ऐसा ही लगता है।

विनय ने कहा, "साढ़े दस बजे इण्टरव्यू शुरू होगा। इस समय साढ़े नौ बजे हैं।"

तभी फिर अचानक बोला, "तू मज़े में है। तुझे ऑफ़िस भी नहीं जाना होता। ऑफ़िस जाने की ज़रूरत भी नहीं है।"

"यह तेरे मन का ख़याल है। इस दुनिया में कोई भी सुखी नहीं है।

कम-से-कम इस कलकत्ता में कोई सुखी नहीं है।"

"तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

सदाव्रत ने कहा, "तू अगर यह नौकरी पा जाये तो तुझे पता लगेगा कि मैं झूठ कह रहा हूँ या सच। देखेगा नौकरी पाने से पहले जो हालत थी बाद में भी वही रहेगी। काफ़ी देखने के बाद मैं यह बात कह रहा हूँ।"

"तेरा मतलब है, तुम लोग सुखी नहीं हो ?"

"सिर्फ़ मैं ही क्यों, कोई भी सुखी नहीं है। यह ज़माना आराम का नहीं है।"

विनय ने शायद यह सब पहले कभी नहीं सोचा था। इसीलिए थोड़ा अवाक् हुआ। हमेशा मन लगाकर कॉलेज की टेक्स्ट-बुक्स पढ़ता। सबक याद करता। नोट पढ़ता। प्रोफ़ेसर के मुँह से निकली वाणी को एकाग्र-चित्त होकर निगलता। परीक्षा की कॉपी में उगल देने के लिए सब-कुछ महीनों तक जबानी याद किया ! विनय को नहीं मालूम कि गाड़ी, नौकरी, इस सूट और टाई से मन का न्यूट्रिशन नहीं होगा।

"तब क्या कहना चाहता है कि दोनों ओर जो ये लम्बी-लम्बी गाड़ियाँ खड़ी हैं इनके मालिक सुखी नहीं हैं ?"

सदाव्रत ने कहा, "हो सकता है कि वे लोग डनलपिलो के गद्दे पर सोते हों। हो सकता है कि सारे दिन दसियों नौकर उनकी सेवा करने को हाथ बाँधे खड़े रहते हों। हो सकता है कि तीन करोड़ रुपया उनका बैंक-बैलेन्स हो। कोई आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन पता लगाकर देखो तो मालूम होगा कि बिना स्लीपिंग पिल्स खाये उन्हें नींद नहीं आती। रेफ्रिजरेटर में रखे पपीते को खाने पर भी उन्हें खट्टी डकारें आने की शिकायत रहती है।"

"यह तो जिन लोगों के पास कुछ नहीं है, उनके लिए कन्सोलेशन है। यह सोचकर ही तो ग़रीब जिन्दा रहते हैं। इसी से उन्हें शान्ति मिलती है।"

सदाव्रत तनिक विमन-सा बोला, "ग़रीब लोगों के लिए तो शान्ति है ही नहीं। उन लोगों की तो बात ही छोड़ दे।"

"तब तेरे पिताजी ? तेरे पिताजी भी अनहैपी हैं ?"

सदाव्रत हँसने लगा। बोला, "जीवन में एम्बीशन होने पर हैपीनेस तो आ ही नहीं सकती।"

विनय ने भी बात हँसकर उड़ा दी। बोला, "तू फिलॉसफ़ी लेकर एम० ए० करता तो शायद ज़्यादा अच्छा होता।"

"खूब कहा। पता है, मॉडर्न वर्ल्ड के लिए फिलॉसफी की सख्त ज़रूरत है ?"

विनय को यह प्रसंग खास अच्छा नहीं लग रहा था। बोला, "ये सब बातें जाने दे। मैं कैसा लग रहा हूँ, कह ? स्मार्ट लगता हूँ या नहीं ?"

सदाव्रत ने घूमकर विनय को सिर से पैर तक देखा। बोला, "कहाँ ! कुछ भी तो नहीं देख पा रहा ?"

"यह नया सूट बनवाया है, इण्टरव्यू के लिए।"

"अच्छा !"

सदाव्रत ने सूट को लेकर कभी भी सिर नहीं खपाया। हमेशा से सीधी-सादी पोशाक ही पहनता आया है।

विनय ने अचानक पूछा, "क्या भाव का होगा कह तो ?"

सदाव्रत ने फिर से एक बार देखकर कहा, "क्या पता, होगा यही कोई चार-पाँच रुपये गज़ !"

"हट, तुझे कुछ भी आइडिया नहीं है। तेईस रुपये गज़ है !"

सदाव्रत के लिए जैसे तेईस रुपये वैसे ही चार-पाँच रुपये। पूछा, "कुल मिलाकर कितना पड़ा ?"

"मेकिंग चार्ज मिलाकर डेढ़ सौ। पर मेरा एक पैसा भी नहीं लगा।"

सदाव्रत अवाक् रह गया। डेढ़ सौ रुपये की चीज़ विनय को ऐसे ही मिल गयी ! पूछा, "क्यों ? पैसा क्यों नहीं लगा ?"

विनय ने गर्व से कहा, "एक धेला भी खर्च नहीं हुआ। एकदम फ्री !"

"इसके माने ? किसी ने दिया है ?"

"अरे नहीं, इंस्टालमेंट में लिया है। हर महीने पाँच-पाँच रुपये देने होंगे। मतलब एकदम फ्री !"

असल में फ्री नहीं है। सदाव्रत को लगा, असल में फ्री नहीं, उधार। मन-ही-मन हँसने पर भी सदाव्रत हँसा नहीं। विनय की बात सुनकर सदाव्रत हँसे या उस पर दया करे, कुछ भी तय नहीं कर पा रहा था।

विनय का डलहौजी स्क्वायर मोड़ आ गया था। वह उतर गया। उतरने के बाद विनय के लिए शुभेच्छा करना उचित था। उसे नौकरी मिलेगी। कितनी आशा के साथ बेचारा इण्टरव्यू देने जा रहा है। उसे उत्साहित करना भी ज़रूरी था। उसके सूट, उसकी टाई, उसके जूते देखकर प्रशंसा करनी चाहिए थी। लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। विनय की बात से ही उसे एक बात याद आयी। आज का कलकत्ता भी जैसे उधार लिया

हुआ है। और सिर्फ़ कलकत्ता ही क्यों ? जो कुछ भी आँखों के सामने है, सभी-कुछ फ़्री है, सभी-कुछ उधार का है। इसी उधार या लोन के सहारे ही तो इंडिया टिका है। किसी ने अमेरिका से उधार लिया है तो किसी ने रूस से। सभी जैसे उधार का जीवन और उधार का यौवन लिये घूम रहे हैं। सामने एक लड़की ऑफ़िस जा रही थी। जल्दी-जल्दी सड़क पार कर रही थी।

सदाव्रत ने ब्रेक लगाकर स्पीड कम कर दी।

आश्चर्य ! सदाव्रत ने उसे सिर से पाँव तक अच्छी तरह देखा। सब-कुछ उधार। सिर का जूड़ा उधार का लिया, होंठों की लाली उधार की, छाती का उभार भी उधार लिया। जिस दिन यह उधार चुकाना होगा इन लोगों के पास बाकी बचेगा ही क्या ? इनके पास कौन-सा कैपीटल रहेगा?

सदाव्रत ने फिर से एक्सीलेटर दबाया। गाड़ी ने फिर स्पीड ली।

□ □ □

जिस समय फड़ेपुकुर पहुँचा, सदाव्रत तब तक नहीं जानता था। लेकिन गाड़ी रोककर दरवाज़े पर नज़र जाते ही देखा।

दरवाज़े पर एक बड़ा ताला झूल रहा था।

केदार बाबू ने क्या मकान छोड़ दिया है ? घर छोड़कर चले गये ?

सड़क पर खड़ा-खड़ा सदाव्रत इधर-उधर देखने लगा। मुहल्ले के किसी आदमी से पूछने पर शायद पता लगेगा कि ये लोग कहाँ गये हैं। सड़क पर सब ऑफ़िस जानेवाले लोग थे। सदाव्रत पड़ोस के एक मकान का दरवाज़ा खटखटाने लगा। शायद मकान-मालिक ने भगा दिया होगा।

"कौन ?"

एक बूढ़े-से आदमी के आते ही सदाव्रत ने पूछा, "सामने के इस मकान में केदार बाबू रहते थे। वे लोग कहाँ चले गये हैं ?"

उस आदमी को शायद पहले से ही अच्छा नहीं लग रहा था। इस पर इस सवाल से जैसे और भी चिढ़ गया। बोला, "नहीं साहब, मुझे नहीं मालूम। और किसी से पूछिये !"

कहकर शायद दरवाज़ा बन्द करने जा रहा था, तभी सदाव्रत की गाड़ी पर नज़र पड़ी। इसके बाद उसने सदाव्रत को अच्छी तरह से देखा। पूछा, "यह गाड़ी क्या आपकी है ?"

"जी हाँ !"

"तब बाहर क्यों खड़े हैं ? छिः-छिः ! अन्दर आइये न ! मेरी आँखें

ज़रा कमज़ोर हैं न !"

फिर अन्दर की ओर किसी को सम्बोधन कर चिल्लाने लगे, "अरे कार्तिक, यहाँ की चेयर कहाँ गयी ? चेयर ले आ !"

सदाव्रत को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। गाड़ी का मालिक है, इसलिए इतनी ख़ातिर ! उसने कहा, "किस गाड़ी की बात कर रहे हैं ?"

"वही जो सामने खड़ी है ?"

"मैं जो बात पूछ रहा हूँ उसका जवाब दीजिए न ! गाड़ी मेरी है या और किसी की, यह जानकर आप क्या करेंगे ?"

"गाड़ी आपकी नहीं है ? मैंने सोचा था···"

नौकर तब तक चेयर लेकर आ पहुँचा था। लेकिन उन सज्जन ने और वक़्त बरबाद करना ठीक नहीं समझा। धड़ाम से दरवाज़ा बन्द कर दिया। ऐरे-गैरे लोग जब-तब आकर दरवाजा खटखटायेंगे और उन्हें आकर खोलना होगा ! नौकर से कहा, "देख, कोई ऐसा-वैसा आदमी दरवाजा खटखटाये तो खोलना मत ! सावधान, आदमी देख-सुनकर दरवाज़ा खोलना। समझा ?"

□ □ □

कई दिनों से सदाव्रत पिताजी के साथ कुछ बातें करने की कोशिश कर रहा था। शिवप्रसाद बाबू को इन दिनों जैसे बात करने की फ़ुरसत ही नहीं थी। घर आते, फिर निकल जाते। न जाने कहाँ-कहाँ जाते। और अगर घर में होते भी तो टेलीफ़ोन ! पूजा करते समय भी टेलीफ़ोन आता, खाना खाते समय भी टेलीफ़ोन। किसी-किसी दिन तो ऑफ़िस भी नहीं जा पाते। ऑफ़िस पहुँचते ही उसी समय गाड़ी लेकर निकल जाते। चारों ओर फ्लड आया है। आरामबाग़, बर्दवान, सब बाढ़ में डूब चुके हैं। सोशल वर्कर लोग सेवा करने में जुटे हैं। आसाम, वेस्ट बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश—कोई भी जगह बाकी नहीं थी। अगले साल ही इलेक्शन हैं। पिताजी के कामों का जैसे अन्त नहीं है।

शिवप्रसाद बाबू खाना खाने उसी ठाठ के साथ बैठते।

इसी एक माने में शिवप्रसाद बाबू शौकीन आदमी हैं। खायेंगे अकेले ही, लेकिन आस-पास सभी को होना चाहिए। उनके लिए पूजा करना अगर जीवन का ज़रूरी काम था तो खाने के मामले में भी वही हाल था। खाना खूब ज्यादा खाते हों यह बात नहीं थी। लेकिन खाते समय हाजिर रहना सभी के लिए ज़रूरी था।

"यह किस चीज़ की तरकारी है ?"

वैकुण्ठ महराज तैयार ही बैठा होता, कहता, "जी, लौकी की !"

सब तरकारियाँ चखना ज़रूरी था। चारों ओर कटोरियाँ सजी होनी चाहिएँ। और लाऊँ या नहीं, यह भी बीच-बीच में पूछते रहना चाहिए।

मन्दा कहती, "लौकी की तरकारी दूँ ज़रा-सी ?"

लेकिन काफ़ी देर तक जवाब देने की फुरसत नहीं होती। खाने की जगह के पास ही बद्रीनाथ टेलीफ़ोन की लाइन फिट कर देता। खाते-खाते ही रिसीवर उठा लेते। कहते, "इस समय कौन है रे बाबा !"

बस खाना पड़ा रहता और बातें चलती रहतीं। बात करते बीच-बीच में चिल्ला पड़ते, कभी हँसते, तो कभी सिर्फ 'हूँ-हाँ' करके ही रह जाते। दाएँ हाथ को तरह-तरह से हिलाते। कोई कुछ भी नहीं समझ पाता। कहाँ की कांग्रेस, कहाँ की फ्लड रिलीफ कमेटी, कहाँ की मीटिंग, कहाँ के सब बड़े-बड़े लोगों के नाम। मन्दाकिनी, वैकुण्ठ, सभी चुपचाप खड़े रहते। शिवप्रसाद बाबू कब टेलीफ़ोन रखें, इसी की इन्तज़ार में।

लेकिन एक बार रुकने पर क्या फिर ठीक से खाना खाया जाता ! उठ खड़े होते।

मन्दा पूछती, "यह क्या, खाओगे नहीं ?"

शिवप्रसाद बाबू खड़े होकर कहते, "खा तो लिया। काफ़ी खाया है, और क्या खाऊँगा !"

सब लोग समझ जाते शिवप्रसाद बाबू इस समय कुछ सोच रहे हैं। कुछ भी नहीं सुनेंगे। बद्रीनाथ भी रेडी रहता। कई काम निबटाने होंगे। जल्दी से टेलीफ़ोन का प्लग निकालकर मालिक के कमरे में लगा आता, उसे बहुत काम करना होगा। मालिक की फ़ाइलें, कागज़ वगैरह बाँधकर ले जाने होंगे।

शिवप्रसाद बाबू कहते, "कुंज से गाड़ी बाहर करने को कह, बद्रीनाथ, ज़रा जल्दी !"

तब मन्दाकिनी आकर कमरे में खड़ी होती। इधर-उधर की छोटी-मोटी चीज़ें ठीक करना, कपड़े पहनना, इसी के बीच दो-चार बातें। शिवप्रसाद बाबू के साथ बात करने का और वक़्त नहीं मिलेगा। कई दिनों से यही चल रहा है। शिवप्रसाद बाबू की उम्र जैसे-जैसे बढ़ रही है, वक़्त उतना ही कम हो रहा है।

जल्दी-जल्दी ऑफ़िस पहुँचते ही हिमांशु बाबू की पुकार होती। फ़ाइलें

लिये हिमांशु बाबू शायद पिछले दिन से ही रेडी रहते।

"और वे ब्लू-प्रिण्ट्स ?"

वे भी हिमांशु बाबू के हाथ में ही थे। आगे बढ़ा दिये।

"गोलक बाबू किस समय आयेंगे ?"

"वह चले गये हैं। आपके लिए वहीं प्रतीक्षा करेंगे।"

सारे कागज़ और फ़ाइलें लेकर शिवप्रसाद बाबू उठ खड़े होते। बद्रीनाथ भी तैयार रहता। उसे भी साथ जाना है। अचानक कोई बात याद आती। पूछते, "और उन लोगों की कोई ख़बर मिली ?"

इतना इशारा काफ़ी होता। हिमांशु बाबू कहते, "जो ख़बर मिली है, वह तो फेवर में नहीं लगती। आज का 'स्वाधीनता' देखा है ?"

"हाँ, देखा है। तुम्हें उन लोगों का कुछ पता लगा या नहीं, यह बताओ ?"

"जी, वे लोग तो सब छिटककर इधर-उधर हो गये हैं; लेकिन उन लोगों के पीछे काफ़ी लोग हैं। इधर डॉ० विधानचन्द्र राय के पास दरख़ास्त गयी है। एक कॉपी सुना है, पंडित नेहरू के पास भी भेजी है।"

"लेकिन लोकल थाने की पुलिस का कहना क्या है ?"

"वे लोग षड्यंत्र कर रहे हैं। सब मिलकर हम लोगों के वहाँ हमला करने की तैयारी कर रहे हैं। सुना है, बिना ख़ून-ख़राबी किये नहीं छोड़ेंगे।"

शिवप्रसाद बाबू कुछ देर चुप रहे। पता नहीं मन-ही-मन क्या सोचने लगे। खद्दर की चद्दर कन्धे से खिसक रही थी, उसे कन्धे पर ठीक किया। बोले, "इधर मिस्त्रियों का काम कहाँ तक बढ़ा ?"

"वे लोग तो रात-दिन काम कर रहे हैं। काम में कमी नहीं है। दिन के वक़्त एक ग्रुप, फिर रात को दूसरा। चारों ओर की कम्पाउंड-वॉल कल तक पूरी हो जायेगी।"

शिवप्रसाद बाबू ने अचानक पूछा, "हाँ तो, इन लोगों ने डॉ० राय के पास दरख़ास्त भेजी है। तुम्हें ठीक-से मालूम है ?"

"जी हाँ। डॉ० विधान राय को दरख़ास्त भेजी है, और उसकी नक़ल पंडित नेहरू के पास दिल्ली भेजी है।"

"अच्छा, जरा डॉ० राय की लाइन देने को कहो !"

कहकर रिसीवर उठाने जा ही रहे थे कि उससे पहले ही टेलीफ़ोन की घंटी बज उठी। शिवप्रसाद बाबू ने रिसीवर उठाकर कहा, "हलो !"

उस ओर की आवाज़ सुनते ही बोल उठे, "अरे गोलक बाबू, मैं रेडी हूँ। अभी आ रहा हूँ। पेपर्स साथ ही ला रहा हूँ, समझा, समझा।"

कहकर रिसीवर रख दिया। फिर कहा, "रहने दो। डॉ० राय की लाइन की अब ज़रूरत नहीं है। मैं जा रहा हूँ। बद्रीनाथ !"

बद्रीनाथ ने सामने आकर कहा, "जी, हुजूर !"

"कुंज कहाँ है ? उसे कहा है ?"

"कुंज तो गाड़ी लिए खड़ा है।" बद्रीनाथ ने कहा।

शिवप्रसाद बाबू और नहीं रुके। ऑफ़िस से निकलकर लिफ्ट की ओर जल्दी-जल्दी बढ़ने लगे।

☐ ☐ ☐

सुफल की दूकान के पटरे फिर से खुल गये। सिर्फ़ एक ही दिन का झमेला था। सही माने में एक रात का ही। पुलिस और दारोग़ा हड़बड़ाते हुए आये। पद्मरानी ने ही ख़बर दी थी।

पद्मरानी ने कहा था, "अरे, सुख क्या सबसे सहा जाता है ? नहीं सहा जाता। कहाँ किस गाँव में पड़ी थी। गोबर पाथना पड़ता था। बरतन माँजने पड़ते थे। मैंने पहनने को साड़ी दी। अपने कमरे में पास सुलाया। लेकिन नसीब ही खोटा हो तो मैं क्या कर सकती हूँ। मैं जितना कर सकी, मैंने किया।"

पद्मरानी के फ़्लैट की लड़कियों से ये सब बातें कहना बेकार है। पुलिस का आना भी उनके लिये नयी बात नहीं है। पुलिस आती। किसी-किसी को पकड़ ले जाती। दो दिन हवालात में रखती। फिर छोड़ भी देती। क्यों पकड़ती और क्यों छोड़ती, यह उन लोगों को नहीं मालूम। यही नियम था। जाने कब से यह नियम चला आ रहा है। जब यह गुलाबी नहीं थी, यह जूथिका नहीं थी; यह बिन्दू, टगर, दुलारी, बासन्ती कोई भी नहीं थी; तब भी कोई-कोई दिन पुलिस और दारोग़ा आते। आकर छापा मारते।

यहाँ तफरीह करने आए बाबू लोग भी नज़रबन्द होते। उस समय यहाँ गुण्डों का और भी ज़्यादा दबदबा था। न कहना, न सुनना। भले घर के लड़कों को पकड़ ले जाते। फ्लैट के पिछले हिस्से में एक दरवाज़ा है। पद्मरानी उन लोगों को वहीं से गायब कर देती। बेचारे चोरी-छिपे आये होते। अचानक शोरगुल सुनकर डर जाते। एक बार बात फैल जाने पर उन लोगों के सिर पर भी कलंक और पद्मरानी के फ्लैट की भी बदनामी। पद्मरानी दरवाज़ा खोलकर कहती, "तुम लोग यहाँ से निकल जाओ, बेटा, इस गली से निकलकर बायीं ओर सड़क मिल जायेगी।"

असल में कोई कसूरवार हो या न हो, चार पैसे देते ही सब ठीक हो जाता। रुपये में चवन्नी उन लोगों की बँधी थी।

यह रकम यहाँ के थानेदार की ऊपरी आमदनी थी। जो दारोग़ा एक बार इस मुहल्ले में आता है वह और कहीं भी ट्रांसफर नहीं कराना चाहता—असिस्टेंट कमिश्नर या डिप्टी कमिश्नर बनाने पर भी। इस थाने में एक-एक दारोग़ा आता और पाँच-सात साल के अन्दर कलकत्ता शहर में तीन-चार मकान खड़े कर लेता। बहू के बदन पर गहनों का पहाड़ लद जाता। ज़मीन-जायदाद खरीदकर वे लोग लखपति हो गये और बाद में नौकरी भी छोड़ दी।

पद्मरानी ने ऐसे कितने ही दारोग़ा देखे हैं। थाने और पुलिस भी देखी है। इसलिए उसके लिए डरने की बात नहीं है। डरती भी नहीं है। पुलिस के आते ही ज़ोर-ज़ोर से रोना-पीटना शुरू कर दिया।

पुलिसवालों ने कितने ही सवाल किये। कुसुम का नाम और पता नोट किया। और भी कितनी ही पूछताछ की। कुसुम की उम्र कितनी थी—अठारह या सत्रह? सिर के ऊपर एक कड़े में इलेक्ट्रिक पंखा लटक रहा था। उसी से बिस्तरे की चादर बाँधकर गले में फाँसी लगा ली थी।

दारोग़ा ने पूछा, "उसके कमरे में आज कोई आया था? आज दोपहर के समय?"

"नहीं भाई! इसके कमरे में मैं किसी को घुसने नहीं देती थी।"

"क्यों? घुसने क्यों नहीं देती थी?"

"नहीं भाई! उसने कहा था, वह इस लाइन में नहीं रहेगी, शादी करेगी। सभी को क्या यह सब अच्छा लगता है? किसी-किसी को तो शादी करके गृहस्थी बसाने की इच्छा होती ही है!"

"कल कोई आया था?"

"नहीं, छुटपन से आज तक किसी के भी साथ मेरी लड़की ने रात नहीं बितायी थी। मैंने बिताने ही नहीं दी। कहा था—तुझे मैं बड़े घर में ब्याहूंगी। अरे बेटा, मैं तो उसके लिए लड़का ढूंढ रही थी।"

"पर इतनी लड़कियों के रहते उसी की शादी क्यों करना चाहती थीं?"

"वह अच्छी लड़की जो थी, बेटा! जिस घर में जाती उसे रोशन कर देती।" इसके बाद पुलिस ने पूछा, "उसके माँ-बाप कोई है? अपना कहने को उसका कोई है?"

"अपना कहने को तो एक मैं ही थी। उसके बाप-माँ अगर होते तो फिर क्या चिन्ता थी।"

"उसके अपने माँ-बाप कहाँ हैं?"

"अरे राम, मुझे यही मालूम होता तो उनके पास ही न भेज देती!"

"तब वह आपके पास कहाँ से आयी?"

पद्मरानी बात करते-करते रोने लगी। अब की बार वह अपने को और नहीं रोक पायी। साड़ी के पल्ले से आँखें पोंछते हुए कहा, "हतभागिनी इसी पापपुरी में पैदा हुई थी।"

"इसके बाद?"

मुँह और नाक से एक अजीब-सी आवाज़ करते हुए पद्मरानी कहने लगी, "इसके बाद और क्या! बाल-बच्चा होने पर तो धन्धा ठीक से चलता नहीं है। इसलिए इस हतभागिनी को मेरे पास छोड़कर कहाँ गायब हुई, आज तक पता नहीं चला। तभी से उसे पाल रही हूँ। उसे मेरे अपने पेट की ही लड़की समझ लो। कहने को मैंने उसे सिर्फ नौ महीने पेट में ही नहीं रखा। नहीं तो वह मेरी ही लड़की है। मैं ही उसकी माँ-बाप सब कुछ हूँ, बेटा। मेरी छाती कैसी फटी जा रही है अगर तुम लोग देख पाते, बेटा! पता है, आज उसकी वजह से कुछ भी नहीं कर पायी हूँ।"

कहते-कहते पद्मरानी जैसे और भी कातर हो गयी। दारोग़ा बाबू ने पद्मरानी को और परेशान करना ठीक नहीं समझा। दूसरी लड़कियों से भी तो जिरह की थी। दुलारी भी यही कह रही थी। उसने भी कहा था, "कुसुम की शादी करने की बड़ी इच्छा थी। शादी करके घर बसाना चाहती थी। माँ उसके लिए लड़का ढूंढ रही थी। लगता है अभी तक शादी नहीं हो पाने के कारण ही आत्महत्या कर ली।"

वासन्ती ने भी यही कहा।

गुलाबी ने भी ऐसे ही कुछ कहा। सिन्दू, बिन्दू, महराज, दरबान— सभी एक ही बात कह रहे थे।

किसी की बात से दूसरे की बात कटी नहीं। इस तरह उस रात पद्मरानी के फ्लैट में एक इन्सान की अकाल मौत पर झूठ का परदा पड़ गया। इस कलकत्ता शहर के ऊपर भी हुआ एक और यवनिका का पतन। जीवन-मृत्यु, दुःख-कष्ट, सच-झूठ सब जैसे एकाकार हो गये। लाखों बार के लिए एक बार फिर साबित हो गया—सबके ऊपर इन्सान ही सच है। महारानी विक्टोरिया के समय से प्रजावर्ग के कल्याण के लिए इतने जो कायदे-क़ानून

बने, पुलिस-दारोग़ा, मिनिस्टर-गवर्नर इतने दिनों क़ानूनी तौर पर शासन चला रहे थे, आज़ादी के बाद जैसे फिर उसी की पुनरावृत्ति हुई। स्वर्णाक्षरों में एक बार फिर घोषित हुआ, 'सत्यमेव जयते'। सिर्फ एक सत्य की ही जय अवश्यंभावी है। पद्मरानी के फ्लैट की पद्मरानी से लेकर थाने के दारोग़ा तक सभी ने एक आवाज से सत्य और न्याय को फिर एक बार इज़्ज़त बख़्शी। ऊपरी हलकों में रिपोर्ट गयी : 'केस ऑफ़ नॉर्मल सुसाइड'। न्याय-दण्डधारी के लिए कुछ करने को नहीं था।

सच के लिए कभी कुछ करने को रहता भी नहीं। कुछ रहना भी नहीं चाहिए। करने पर बहुत-कुछ किया जा सकता था। तब गुलाबी को शाम के समय पति और बाल-बच्चों को खिला-पिलाकर यहाँ आना नहीं होता। वासन्ती को भी पटलडांगे का घर छोड़कर यहाँ किराये पर नया कमरा नहीं लेना होता। कुन्ती को भी टगर नाम रखकर रुपया कमाने के लिए यहाँ नहीं आना होता। सचमुच हो बहुत-कुछ सकता था। लेकिन वह करने पर कितने ही लोगों की रोटी जायेगी। कितने ही लोगों का नशा और पेशा जायेगा। कितनों ही की भरी थाली में मिट्टी पड़ जायेगी।

इतिहास के पन्नों से कितने ही लोगों का मान-सम्मान पुंछ जायेगा। पद्मरानी का फ्लैट बन्द होने पर कितनों ही की गाड़ी का पेट्रोल ख़त्म हो जायेगा, रेफ्रिजरेटर नीलाम हो जायेगा, रेडियोग्राम चुप हो जायेगा। उससे तो यही ठीक है। इसी तरह लिपा-पुती चलती रहे। मधुगुप्त लेन के लड़के ड्रामों और आवारागर्दी में वक्त काटते रहते हैं, काटते रहें। जादवपुर के शरणार्थी डलहौजी स्क्वायर के सामने जाकर जैसे हो-हल्ला करते हैं, वैसे ही करते रहें। फड़ेपुकुर स्ट्रीट के केदार बाबू मानव-जाति के आदर्श की कल्पना करते लोभ-मोह-क्रोध आदि से दूर रहें। तब तक हम और भी पैसा कमायें। डिप्टी मिनिस्टर से मिनिस्टर होने का रास्ता निकालें, इसके बाद अगर एक डेली न्यूज-पेपर चला लें तब तो एकदम सुपरमैन। तब तो हम सब-कुछ हैं। तब जो भी प्रेसिडेंट हो, जो भी प्राइम मिनिस्टर हो, हम ही डिक्टेटर हैं !

लेकिन ये सब बाद की बातें हैं। इसके पहले पद्मरानी के फ्लैट के बारे में और भी बहुत-कुछ कहना है।

वह रात कब और कैसे बीत गयी, इसका कहीं कोई हिसाब नहीं रहा। भूल से उस दिन भी कई जान-पहचान वाले ग्राहक आये। जेब में रुपये भरे वे लोग और दिनों की तरह सुख खरीदने आये थे। उस दिन भी बेल-फूल

वाला आया, मलाई-कुलफीवाला भी आया, आलू-टिकिया और चाटवाला भी आया। लेकिन आकर देखा सुफल की दूकान बन्द है। देखा पद्मरानी के फ़्लैट का बड़ा दरवाज़ा बन्द है। बड़ी डरावनी रात थी। और दिनों की तरह कोई भी सजा नहीं, माथे पर कुंकुम की बिन्दी नहीं लगायी, पैरों में किसी ने घुँघरू नहीं बाँधे। बदन धोना, साबुन लगाना, कुछ भी नहीं हुआ। पद्मरानी के फ्लैट में उस रात पूरा उपवास चला। किसी भी कमरे से हारमोनियम के साथ आवाज़ नहीं आयी—'चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछे नैनों से न देख।'

बीच-बीच में ऐसा होता था।

फिर भी पद्मरानी सभी को अभय देती, "डरने की कोई बात नहीं है, बेटा, मैं तो जिन्दा हूँ! मैं तो अभी तक मरी नहीं हूँ। जिस दिन मरूँगी उस दिन ऊपरवाले को बतलाकर मरूँगी।"

बिन्दू बोली, "सब कह रही हैं कि सभी आज एक साथ एक कमरे में सोयेंगी।"

"तो सोओ न! बिना भरतार फूल-सेज का शौक क्यों?"

यह मज़ाक का समय नहीं था। फिर भी सारी लड़कियाँ खिलखिला उठीं।

हँसी सुनकर पद्मरानी ने कहा, "हँसो मत, बेटा। इतनी उम्र हो गयी है, बहुत-कुछ देखकर ही कह रही हूँ। भरतार रोटी नहीं देगा, रोटी देगी यह देह। देह होने पर बहुत-से भरतार आ जुटेंगे। बहुत-कुछ मिलेगा।"

ज़रा रुककर फिर कहा, "हाँ, तुम लोनों ने खाना क्या पकाया है?"

वासन्ती ने जवाब दिया, "आज कुछ भी नहीं पकाया, माँ!"

"क्यों बेटी, खाने के साथ कैसा गुस्सा? इस मरे पेट के लिए ही तो रोटी है, बेटा। नहीं तो क्या रोटी पेट ढूंढने निकलेगी?"

एक ही तो रात। लेकिन उस एक ही रात को गुज़ारने के लिए जैसे नये सिरे से सब-कुछ हुआ। सारे फ़्लैट की धुलाई-पुँछाई हुई। दरवान ने फिर से दरवाज़ा खोला। सुफल ने पता नहीं कहाँ रात काटी थी। फिर आ पहुँचा। दरबान से पूछा, "क्यों रे जग्गू, मुर्दा ले गये कि पड़ा है?"

हठात् पीछे घूमकर देखा, जूथिका! वह भी आ पहुँची थी।

सुफल ने पूछा, "सब सुना न?"

सारी रात मयनादी के घर सोयी थी। एक दिन वह इसी वातावरण में पैदा हुई थी। यहीं पली, बड़ी हुई। पुलिस के नाम से भी डरती नहीं।

ख़ून-ख़राबी भी उसके लिए नयी चीज़ नहीं है। फिर भी डर गयी। फिर अगर किसी झमेले में फँस जाये ! पूछा, ''कौन मर गया है रे, सुफल ?''

पद्मरानी ने ऊपर से देख लिया। उसे देखते ही जवाब के लिए और नहीं रुकी। सीधी माँ के पास जा पहुँची।

''हरामज़ादों ने कब छोड़ा तुझे ?''

''कल रात को।''

''उस हरामज़ादे दारोग़ा की नौकरी खाकर तब पानी पीऊँगी मैं। लेकिन टगर ? टगर कहाँ गयी ? वह नहीं आयी ?''

''वह तो अपने घर चली गयी, माँ, उसका बाप बीमार है। मैं और कहाँ जाती, इसी से मयनादी के घर सोने चली गयी।''

''तो हवालात में हरामज़ादे ने तेरे साथ क्या किया ?''

जूथिका ने साड़ी हटाकर पीठ दिखायी। पद्मरानी ने देखा, लेकिन बोली कुछ नहीं। इसके बाद सीधे खाट पर जाकर टेलीफ़ोन का चोंगा उठाया। पता नहीं, किससे क्या-क्या कहा।

पद्मरानी ने रिसीवर उठाकर कहा, ''लेकिन ये लोग मुझे हमेशा ऐसे ही तंग करते हैं। यह हालत रहेगी तो मैं कैसे काम चलाऊँगी ? मेरी लड़कियों ने क्या कसूर किया है ? सोनागाछी में तो और भी कितने ही फ्लैट हैं। ऐसी अच्छी लड़कियाँ कहाँ मिलेंगी ? कोई कह दे कि मेरी किसी लड़की ने सड़क पर खड़े होकर किसी की ओर आँख भी उठायी हो ! मैं उसे चीरकर न फेंक दूँगी !''

फिर कुछ देर चुप रही।

फिर कहने लगी, ''मैं कहती हूँ मेरे थाने में ऐसे लोगों को रखते ही क्यों हो ? उसकी बदली नहीं कर सकते ?''

पद्मरानी टेलीफ़ोन पर बात कर रही थी और बाहर खड़ी-खड़ी सभी सुन रही थीं। पद्मरानी को इतनी कड़ी बातें बोलते पहले किसी ने भी नहीं सुना था।

''लेकिन अविनाश बाबू को क्यों हटाया ? अविनाश बाबू तो बड़े भले आदमी थे। नौकरी में तरक्की हुई तो जितना कूड़ा-करकट मेरे सिर पर। वह नहीं कहूँगी ? टेलीफ़ोन पर इतनी बातें ठीक नहीं हैं। अगर कोई सुन ले ! लेकिन मेरी लड़कियों को कैसा मारा है, ज़रा आकर देख जाओ न ! ख़ुद अपनी आँखों से देखो न !''

क्या पता टेलीफ़ोन पर पद्मरानी किसके साथ बात कर रही थी।

आँगन-फ़र्श सब धुल-पुँछ चुके थे। पद्मरानी जिस समय टेलीफ़ोन छोड़कर उठी, पसीने से नहा चुकी थी। कुछ दिनों ऐसे ही चला। पद्मरानी के फ़्लैट में दूसरे दिन से ही रोशनी होने लगी। जग्गू दरवान फिर से सदर दरवाज़ा खोलकर खड़ा होने लगा। सुफल भी फिर से कमरे-कमरे मुगलाई-पराँठा सप्लाई करने लगा। इस मकान में जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो। जैसे कुसुम नाम की कोई लड़की ही यहाँ नहीं आयी थी। बालेश्वर ज़िले या मयूरभंज की किसी भी जवान लड़की को जैसे कोई स्मगल करके पद्मरानी के फ़्लैट में नहीं लाया था। जिस कमरे में उसने फाँसी लगायी थी वह अब पहचाना ही नहीं जाता था। एक दूसरी लड़की ने उसे किराये पर भी ले लिया। उसी कमरे में उसी कड़े के नीचे फिर सुफल की दूकान से मुगलाई-पराँठे और केंकड़े की भुनी टाँगें आने लगीं। उसी बिस्तरे पर बेला-फूल की माला टुकड़े-टुकड़े होकर मसली जा चुकी थी। उसी शीशे में फिर से पाउडर से पुते मुँह की छाया पड़ने लगी। और उसी कमरे में फिर से हारमोनियम के साथ आवाज़ गूँजने लगी—'चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछे नैनों से न देख।"

लेकिन पद्मरानी के चेहरे का भारीपन अभी तक कम नहीं हुआ था। कम उस समय हुआ जब ख़बर आयी कि थाने के दारोग़ा की ऊपर से बदली हो गयी है।

तभी पद्मरानी के चेहरे पर फिर से हँसी फूटी। बोली, "कहते हैं न—चावल की क़ीमत कितनी है, नहीं, मामा के साथ में हूँ। दारोग़ा का भी वही हाल है। वह अगर नहीं हटता तो मैं उसका खाना हराम न कर देती! पद्मरानी को मुँहजले ने अभी तक पहचाना नहीं है!"

□ □ □

तो ठीक उसी समय एक दिन कुन्ती आ पहुँची।

"अरे टगर, तू? कहाँ थी इतने दिन? कैसी सूरत बना रखी है?"

कुन्ती के बाल रूखे, दोनों गाल जैसे धँस गये थे। दोनों आँखें गढ़ों में घुस गयी थीं। ख़बर पाते ही जो जहाँ थी चली आयी—वासन्ती, जूथिका, सिन्दू, गुलाबी, दुलारी, सभी। कुन्ती का हाल देखकर वे भी अवाक् रह गयीं।

"सुना तो, बेटी! उस मुँहजले दारोग़ा को यहाँ से बदली करके तब छोड़ा है! मेरे साथ चालबाज़ी करने आया था! एकदम दसभुजा दिखला दीं। तो तुझे भी क्या हरामजादों ने मारा था, जैसे जूथिका को मारा?"

बिन्दू पास खड़ी थी, बोली, "चाय बनाऊँ, माँ?"

अचानक सुफल कमरे में आया। उसने भी कुन्ती को देखा। पद्मरानी की ओर देखकर बोला, "अण्डे की तरकारी बनायी है। बड़ी जायकेदार बनी है। लाऊँ क्या, माँ ?"

कुन्ती ने कहा, "नहीं माँ, मेरे पिताजी मर गये हैं।"

"ओ माँ ! बूढ़ा कैसे मर गया ? दमा से ?"

"नहीं, गुंडों ने लाठी से पीटकर मार दिया !"

"काहे ? बूढ़े को किसलिए मारा ? तेरे बाप ने क्या किया था ?"

कुन्ती का गला शायद भर आया था। उससे जैसे खड़े भी नहीं रहा जा रहा था। चट से कुर्सी पकड़ ली। फिर बोली, "हम लोगों की बस्ती, घरबार जलाकर राख कर दिया है, माँ। कहीं रहने की भी जगह नहीं है।"

"तब आजकल है कहाँ ?"

"बेहाला में। लेकिन लगता है वहाँ भी ज़्यादा दिन रहना नहीं होगा, कालीघाट आने की कोशिश कर रही हूँ। देखो, अगर कमरा मिल जाये।"

"क्यों ? यहीं चली आ न ! यहीं आकर रह न ! मेरा ऐसा अच्छा घर छोड़कर और कहाँ भटकती फिरेगी ?"

"मेरी बहन बूड़ी भी तो है।"

"तो उसकी उमर कितनी हुई ?"

"यही तेरह-चौदह।"

पद्मरानी ने कहा, "तो यही तो उमर है। शुरू से ही यहाँ रहेगी तो ठीक रहेगा। मैं ठगनलाल से कहकर उसकी नथ खुलवा दूँगी। हाथ में कुछ रुपये आ जायेंगे। दोनों बहनें मौज़ करना। फिर तो ज्वार और कितनी देर रुकता है ? जा सुफल, मेरे लिए एक प्लेट करी ले आ, बेटा !"

सुफल ने तब भी पूछा, "और टगर दी ? टगर दी नहीं खायेगी ?"

पद्मरानी खोंखा उठी, "चल, मरे ! सुना नहीं उसका बाप मर गया है ! अभी सूतक चल रहा है। ऐसे में कोई अण्डा खाता है ? तुझे खाली पैसा, पैसा और पैसा ! जा, मेरे लिए ले आ। बिन्दू, चाय ले आ ! जा!"

सुफल फटकार खाकर चला गया। बिन्दू भी चली गयी। नीचे आँगन में शायद दो-एक लोगों ने आना शुरू कर दिया था। उनकी आवाज़ कान में जाते ही वासन्ती वगैरह भी बाहर निकल आयीं।

अकेला पाते ही कुन्ती ने कहा, "तुम्हें रुपये नहीं दे पा रही हूँ, यही कहने आयी थी।"

पद्मरानी कुन्ती के दोनों गाल पकड़कर मुसकरा उठी।

बोली, "चल, पगली ! तेरा बाप मर गया है और इस समय रुपये की बात करूँगी ? मुझे क्या वैसी ही माँ समझा है ? तुझे अगर रुपयों की ज़रूरत हो तो कह, मैं देती हूँ।"

"और रुपये लेकर उधार बढ़ाना नहीं चाहती।"

"तो क्या तेरे बाप के सराद करने में रुपया नहीं लगेगा ? कुछ भी नहीं तो कम-से-कम तीन बामन तो जिमाने ही होंगे। पुरोहित को नये कपड़े, गमछा, कुछ 'सीधा' देना होगा। कहाँ से आयेगा सब ? मुहल्ले में चार भले आदमी भी तो होंगे ? वे लोग क्या कहेंगे ? ले, रुपये ले जा !"

कहकर लोहे की आलमारी खोलकर एक गड्डी नोट निकाले, फिर गिन-गिनकर कुन्ती की ओर बढ़ाये। "ले, बेटी ! यह सौ रुपये दे रही हूँ। बैग में अच्छी तरह से रख ले।"

कुन्ती फिर भी ले नहीं रही थी। बोली, "मगर···"

पद्मरानी ने कहा, "यह अगर-मगर छोड़। तू रुपये रख, टगर। माँ अपने हाथों से दे रही है। ले-ले ! ना नहीं करते। मेरे भी तो बाप था, बेटा। अपने बाप का 'सराद' अच्छी तरह से नहीं कर पायी थी। हाथ में रुपये नहीं थे। वह सब आज भी नहीं भूल पाती। ले, बैग में रख ले।"

तभी सुफल कमरे में आया। हाथ में गरम धुआँती 'करी' की प्लेट थी।

पद्मरानी ने कहा, "मसाला डाला है न ? खराब हुई तो पैसे नहीं मिलेंगे ! कह रखती हूँ।"

"नहीं माँ, मैं खड़ा हूँ, मेरे सामने चखकर देखिये।"

तभी विन्दू भी चाय का कप लिये आ पहुँची।

कुन्ती और नहीं रुकी। उसकी आँखों के सामने कैसी एक धुन्ध-सी छायी थी। यह मुहल्ला, यह पद्मरानी ! विभूति बाबू एक दिन उसे यहीं ले आये थे। वही ऑकलैंड ऑफ़िस का बड़ा बाबू। यहीं एक घंटे के लिए कमरा किराये पर लिया। काफ़ी दिन पहले की बात है। फ्रॉक छोड़कर साड़ी पहनना शुरू ही किया था। उसी समय की बात है। इसके बाद कितनी बार, कितनी जगह गयी, कितने लोगों के सम्पर्क में आयी। वह कलकत्ता भी पिछले दिनों में कितना बदल गया है। लेकिन आखिर में इस पद्मरानी के फ़्लैट में आकर जैसे गाड़ी रुकी। कहाँ है वह विभूति बाबू और कहाँ हैं पिताजी ! आज यह अण्डे की तरकारी खाने के पीछे पद्मरानी की जो तसवीर देखी, उसे देखकर कुन्ती जैसे चकित रह गयी थी।

एक ट्राम आते ही साड़ी को बदन पर अच्छी तरह लपेटकर चढ़ गयी।

इसके बाद चलती ट्राम की खिड़की से काफ़ी देर बाहर की ओर ताकती रही।

☐ ☐ ☐

उस दिन पूरे कलकत्ता में छुट्टी थी। १५ अगस्त, १९४७ के बाद से कलकत्ता की ज़िन्दगी में इतनी बड़ी घटना कभी नहीं हुई। कलकत्ता के इतिहास में वह एक स्मरणीय दिन था। शायद ख़ुद कलकत्ता ने भी अपनी ज़िन्दगी में कभी इतने आदमियों को एक साथ नहीं देखा। जिधर देखो, सिर्फ़ आदमी, सिर्फ़ आदमियों के सिर। चार-पाँच सौ बीघा के मैदान में तिल धरने की भी जगह नहीं थी। पेड़ों के ऊपर, मोनूमेंट की छत पर, सड़क के दोनों ओर, खिड़कियों पर, ट्राम-बस; हर कहीं आदमी और आदमी। सभी मैदान की ओर जा रहे थे। सारे रास्ते आकर आज ब्रिगेड परेड ग्राउंड में मिल रहे थे। यह अलेक्ज़ैंडर की दिग्विजय का उत्सव नहीं था, यह स्वामी विवेकानन्द का इंडिया लौटना नहीं था, राजा होने के बाद पंचम जार्ज का अपनी अच्छा प्रजा को दर्शन देना नहीं था। जो लोग परेड ग्राउंड तक नहीं पहुँच पाये वे विक्टोरिया मेमोरियल लेन पर ही दरी बिछाकर बैठ गये थे। पति-पत्नी, बाल-बच्चे, सभी के साथ महफ़िल जमी थी। फ़्लास्क में चाय थी, काजू-बादाम के पैकेट थे और थे सैंडविच। पेड़ की डाल से एरियल लगाकर महापुरुषों का भाषण सुनेंगे। मूंगफलीवालों के लिए भी बड़ा अच्छा दिन था। वे लोग पूरी तरह सप्लाई नहीं दे पा रहे थे। मैदान में कम्युनिस्ट-साहित्य की किताबों की दूकान लग गयी थी। छः आने में रेक्सीन की जिल्दवाली 'वी० आई० लेनिन।'

कलकत्ता के लोगों ने रास देखे हैं, रथ की भीड़ देखी है, आज़ाद हिन्द फौज की कतारें देखी हैं। भीड़ देखने के लिए पहले भी कितनी बार यहाँ के लोगों ने भीड़ की है। सड़क के किनारे बन्दर का नाच देखने के लिए भी कभी भीड़ की कमी नहीं हुई। लेकिन यह दूसरी ही भीड़ थी। यह भीड़ दुनिया के इतिहास में अनोखी थी। यह राजनीति थी। यह डिप्लोमेसी थी। राजनीति के इतिहास में इस भीड़ को इकट्ठा कर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जैसे सभी को अँगूठा दिखलाया था।

शिवप्रसाद बाबू एक दिन पहले से व्यस्त थे। पिछले दिन ही राजभवन में 'इन्वीटेशन' था। राष्ट्र-अतिथियों के स्वागत के लिए कलकत्ता के ख़ास-ख़ास आदमियों को कार्ड भेजे गये थे। प्रोलिटेरिएट लोगों के नेताओं के स्वागत के लिए इंडियन प्रोलिटेरिएट लोगों को कोई स्थान नहीं मिला था।

इन्कम-टैक्स की लिस्ट देख-देखकर निमन्त्रित लोगों की लिस्ट तैयार हुई थी। प्रोलिटेरिएट लोगों के लिए सूखा दर्शन था। जवाहरलाल नेहरू का मास्को में ज़ोरदार स्वागत हुआ था। अब उन लोगों का स्वागत करने की बारी थी। इस बार मास्को से ख्रुश्चेव आये हैं, बुल्गानिन आये हैं।

अचानक विनय दीख गया।

"क्यों रे, तू ?"

विनय भी सदाव्रत की तरह मीटिंग में आया था। बोला, "देखने चला आया, भाई ! इतनी भीड़ की तो कल्पना नहीं की थी।"

"तुझे वह नौकरी मिली ? उस दिन इण्टरव्यू देने जा रहा था न ?"

"नहीं रे, नहीं मिली।"

"क्यों ?"

लेकिन उत्तर सुनने से पहले ही जैसे दूर पर मन्मथ दीख गया। मन्मथ, वही केदार बाबू का छात्र। वह भी आया है ! जल्दी से मन्मथ को जाकर पकड़ा। मन्मथ के साथ भी यार-दोस्त थे। सदाव्रत को देखकर वह भी खड़ा हो गया।

"केदार बाबू के बारे में कुछ जानते हो ? बागमारी का पता बतला सकते हो ?"

"बागमारी में नहीं हैं मास्टर साहब। आजकल वह बागबाज़ार में हैं।"

"क्यों ?"

"वहाँ एक भुतहे मकान में जा पहुँचे थे। आस-पास कोई नहीं था। चारों ओर दलदल, कीचड़ और बड़े-बड़े फूलदार पौधे। वहाँ पहुँचकर बुखार में पड़ गये। अन्त में मैं जाकर यहाँ ले आया था। अब बागबाज़ार में हैं।"

"पता बतला सकते हो ? मैं एक बार मिलने जाऊँगा।"

उधर अचानक ख़ूब शोरगुल होने लगा। पंडित नेहरू, डॉक्टर विधान राय, ख्रुश्चेव, बुल्गानिन—सभी ऊँचे मंच पर आये। पीछे से बहुत-से सफ़ेद कबूतरों को आसमान में उड़ाया गया। हठात् पीछे से भीड़ का ज़ोर बढ़ा और खड़ा रहना मुश्किल हो गया।

सदाव्रत जल्दी से नोटबुक में पता नोट कर पीछे सरक आया। उस समय पंडित नेहरू भाषण दे रहे थे।

इसी कलकत्ता में आज ऐसी भी जगह है, जहाँ मुर्गी पालने पर मुर्गी मर जाती है; लेकिन इन्सान मज़े से रहते हैं। जहाँ जाने में मक्खी भी

घबराती है, लेकिन इन्सान वहाँ भी आराम से खुर्राटे भरकर सोते हैं। वहीं मज़े से गृहस्थी चलती है, आबादी बढ़ती है। मर्द ऑफ़िस जाते हैं, फिर लौटकर ताश खेलते हैं, औरतें हर साल एक के बाद एक बच्चे पैदा करती हैं।

सदाव्रत को कम-से-कम इस ओर आने पर यही लगा।

मास्टर साहब बीमार थे। फिर भी सदाव्रत को देखकर उन्होंने उठने की कोशिश की।

"शशिपद बाबू से तुम्हारे बारे में ही बात कर रहा था। गवर्नमेंट ऑफ़िसर होने से क्या होगा, बड़े सीधे-सादे आदमी हैं। मुझे जो सब बतलाया, मैं तो सुनकर हैरान रह गया।"

"शशिपद बाबू कौन ?"

"मन्मथ के पिता ! लगभग हज़ार रुपये महीना तनख्वाह पाते हैं। उस दिन मुझे सब बतलाया। बोले, 'बड़ी बुरी बात ! कहीं सुना है कलकत्ता में आजकल लड़कियों को लेकर नाटक होते हैं। असल में नाटक-ड्रामा कुछ भी नहीं, बात और ही है।' मैं तो सुनकर अवाक् रह गया, सदाव्रत !"

"क्यों, आपको मालूम नहीं था ?"

"मुझे कहाँ पता था कि नाटक के नाम पर यहाँ और ही कुछ होता है!"

"क्या ?"

"वह सब सुनने की ज़रूरत नहीं है, बड़ी ख़राब बात है। शशिपद बाबू कह रहे थे : गवर्नमेंट चाहती है कि यह सब चलता रहे, पता है ? यह तो बड़ी ख़राब बात है।"

तभी जैसे याद आया।

"अरे, तुम खड़े क्यों हो ? बैठो-बैठो ! मेरे तख़्तपोश पर ही बैठ जाओ। लगता है एक-दो चेयर-वेयर खरीदनी होंगी। लोगों के आने पर बैठाने की भी जगह नहीं है।"

सदाव्रत ने कहा, "मैं आपको ढूँढने एक दिन बागमारी गया था, लेकिन घर ही नहीं मिला।"

"अरे राम-राम, तुम ढूँढोगे कैसे ? वह तो बागमारी नहीं है, बागमारी से भी काफ़ी दूर। एकदम समुद्र के बीच कहना ठीक होगा।"

"आप वहाँ गये ही क्यों ? मैंने तो तभी कहा था। दस रुपये में तीन कमरे, वह कभी अच्छा मकान हो ही नहीं सकता।"

केदार बाबू ने कहा, "मैं तो फिर भी रहता, लेकिन शैल एक दिन डूब गयी।"

"डूब गयी माने ?"

"हाँ, घाट पर बासन माँजने गयी थी। बरतन धोते-धोते एकदम डूब ही गयी। वह तुम शैल के ही मुँह से सुनो।"

कहकर पुकारने लगे, "शैल, ओ शैल !"

फिर बोले, "शैल यहाँ से सुन नहीं पायेगी, काफ़ी दूर है न। शैल दूसरे मकान में है। तुम उस दरवाज़े के पास जाकर 'शैल, शैल' कहकर ख़ूब ज़ोर से आवाज दो—पुकारो, ख़ूब ज़ोर से ! यहाँ रसोईघर नहीं है न। मकान-मालिक के आँगन में जाकर खाना पकाना होता है। तुम आवाज़ दो न—तुम उस नाले के पास जाकर पुकारो न !"

सदाव्रत क्या करे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था। बोला, "रहने दीजिये। उसे बुलाकर क्या होगा !"

"अरे नहीं, तुम उसी के मुँह से सुनो न! डूबकर एकदम मर ही जाती। अन्त में अस्पताल ले जाकर वहाँ पम्प से सारा पानी निकलवाया। तब जाकर कहीं बच पायी। समझे ! उस दिन शैल सच ही मर जाती। उसे तैरना तो आता नहीं है। तभी तो मन्मथ ज़बर्दस्ती यहाँ खींच लाया। नहीं तो क्या मैं आता यहाँ पर ?"

"लेकिन यहाँ भी कैसे रह रहे हैं ? बदबू से भरा यह नाला !"

केदार बाबू ने इस बात पर कान नहीं दिया। बोले, "ऐसी कोई ज्यादा बदबू तो नहीं है। रात के समय ज़रा लगती है। तो तुम नाक पर रूमाल लगाकर जाओ न, जाकर बुलाओ न ! उसी से सुनो कैसी डुबकी खायी थी। जाओ, पुकारो न ! जाओ ! पॉकेट में रूमाल तो होगा ही ? सोच क्या रहे हो, रुमाल नहीं है ?"

"मैं इस तरह से नहीं पुकार पाऊँगा, मास्टर साहब ! उस ओर बहुत-सी औरतें हैं।"

"औरतें हैं तो क्या हुआ ? एक मकान में हम सात किरायेदार रहते हैं, औरतें नहीं होंगी ? तुम जाकर पुकारो तो। अगर अन्दर नहीं जाना चाहते तो यहीं से पुकारो।"

अचानक बाहर से शैल की आवाज़ आयी, "काका, तुम्हारी धोती नहीं धुलेगी क्या ?"

कमरे में आते ही सदाव्रत को देखकर अपने को सम्हाल लिया। शायद कपड़े धोते-धोते ही चली आयी थी। हाथ में तब भी साबुन के झाग लगे थे। साड़ी का पल्ला कमर में खोंसा हुआ। सिर पर रूखे बिखरे बाल।

एकदम अस्त-व्यस्त। सदाव्रत को देखकर पहले तो ज़रा सकपका गयी। फिर साड़ी को सम्हालकर कहा, "आप कब आये ?"

"अरे शैल, तू पानी में डूबी थी न ! कैसे डूबी थी, जरा सदाव्रत को बतला ! तूने कैसे डुबकियाँ खायी थीं, ज़रा उसे सुना ! वह तेरे मुँह से सुनना चाहता है।"

सदाव्रत जैसे संकोच से दबा जा रहा था। रोककर बोला, "अरे, नहीं-नहीं। मैं क्यों सुनना चाहूँगा ? यह आप क्या कह रहे हैं ? मैंने यह कब कहा ?"

"तुम सुनो न उसके मुँह से ! बड़ी मज़ेदार बात है। एक बदमाश दलाल के चक्कर में फँसकर बागमारी गया था। बेकार में इतने रुपये खराब हुए। और तो और, शैल के प्राणों तक पर बन आयी थी।"

सदाव्रत ने शैल की ओर देखकर कहा, "मैं तुम लोगों को ढूँढने बागमारी गया था।"

शैल अवाक् रह गयी।

"बागमारी गये थे ?"

"हाँ, ज़िन्दगी में पहले कभी उस ओर नहीं गया था, तुम लोगों का पता भी नहीं मालूम था। तुम्हारे मुहल्ले का कोई भी आदमी तुम लोगों का पता नहीं बतला पाया। वहाँ पहुँचकर एकऔरआफ़त खड़ी हो गयी।"

"आफ़त ! आफ़त कैसी ?" शैल ने पूछा।

"गाड़ी घुमाते-घुमाते मैं भी शायद मोटर के साथ ही डूब जाता।"

"कहते क्या हो ? तुम भी डूब जाते ?" केदार बाबू बीमारी में भी उत्तेजना से उठ बैठे।

शैल ने कहा, "आप हैं न कुछ देर ? काका के लिए साबू चढ़ाया है, वह उतारकर चाय बना लाऊँ।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, तुम्हें इसकी फ़िक्र नहीं करनी होगी, कल अचानक मन्मथ से तुम्हारा पता चला। सुना मास्टर साहब बीमार हैं, इसी से चला आया। लेकिन यहाँ आकर जो देख रहा हूँ, लगता है तुम लोग खूब आराम से ही हो।"

"इस मकान का किराया भी तो बीस रुपया है।"

"लेकिन फड़ेपुकुर स्ट्रीटवाला मकान छोड़ने की ही क्या ज़रूरत थी ! मकान-मालिक ने पानी बन्द कर दियाऔर तुम लोग डरकर भाग आये ?"

केदार बाबू ने कहा, "यही तो ग़लती हो गयी। मैंने वायदा जो कर

लिया था !"

"इसीलिए उस दिन कहा था, कुछ दिन मेरे घर रहिये। वहाँ चले आने पर मास्टर साहब भी बीमार नहीं होते, तुम भी पोखर में नहीं डूबतीं।"

फिर ज़रा रुककर कहा, "अगर बीस रुपये देकर जब यहाँ रह रहे हैं तो तीस रुपये खर्च कर कालीघाट में इससे अच्छा कमरा मिलेगा। वहाँ चलिये न ! पक्का मकान, गार्डर पड़ी छत, अलग नल, बाथरूम !"

केदार बाबू ने कहा, "आँगन में तो खाना नहीं बनाना पड़ेगा ?"

"वह सब मैं ठीक करके आप लोगों को बतला जाऊँगा।"

"तब आज ही ठीक कर आओ तुम !"

शैल ने कहा, "लेकिन यहाँ हम लोगों ने एक साथ दो महीने का एडवान्स किराया जो दे दिया है, इसका क्या हो ? बेकार जायेंगे ?"

"तुम इसकी फ़िक न करो।"

"हाँ-हाँ, तू इसकी फ़िक्र मत कर ! नुक़सान होगा तो होगा ! बाद में वह मकान अगर न मिले ? और यहाँ इतनी दूर खाना बनाने जाने में तुझे क्या तकलीफ़ नहीं होती ? देख तो ज़रा क्या सूरत हो गयी है ! क्यों सदाव्रत, शैल पहले से कमज़ोर नहीं हुई है ? देख न, गले की हड्डी कैसी निकल आयी है ?"

शैल ने साड़ी से अपना गला और भी अच्छी तरह लपेट लिया।

"मुझे इसी की चिन्ता है, जानते हो, सदाव्रत, नहीं तो मेरा क्या है ? मेरा काम तो पेड़ के नीचे भी चल जायेगा—अकेला आदमी ! मेरे विद्यार्थी अगर ठीक से आदमी बन जाएँ तो मुझे और क्या चाहिए !"

"तब मैं चलूं, मास्टर साहब !"

"वह मकान ठीक करके खबर देना।"

सदाव्रत और नहीं रुका। धीरे-धीरे नाला पार कर घर के बाहर आ गया। आते समय कहाँ-कहाँ से होकर यहाँ आया था, उसे याद नहीं था। बागबाज़ार में गली के अन्दर गली। उसमें भी गली। उसके बाद पैदल रास्ता। दोनों ओर दीवारों से घिरा टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता। उस रास्ते के सिरे पर पहुंचकर सदाव्रत किस ओर जाये, सोचने लगा।

"सुनिये !"

सदाव्रत ने पीछे घूमकर देखा। शैल उसी को बुला रही थी। चेहरा एकदम बदला हुआ लग रहा था।

"आप कहीं सचमुच फिर से मकान की कोशिश न करियेगा, यही

बात कहने के लिए आयी हूँ।"

"क्यों ?"

"नहीं ! मैं कह रही थी मैं चला नहीं पाऊँगी। तीस रुपये किराया देना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। काका चाहे जो कुछ कहें।"

"लेकिन इतनी दूर रसोई, बदबूभरा नाला। यहाँ बीमार पड़ जाओगे !"

"बीमारी और क्या होगी ? पता है, मेरे काका को टी० बी० हो गयी है, जिसे यक्ष्मा कहते हैं !"

"क्या कह रही हो !" सदाव्रत जैसे आसमान से गिरा।

शैल ने कहा, "हाँ, काका को पता नहीं है। डॉक्टर ने मुझे बतलाया है। दूध, मक्खन, अण्डा, माँस यही सब खाना होगा और दवाइयों की जो फ़हरिस्त दी है, उसे खरीदने में कितने रुपये लगेंगे, भगवान ही जाने।"

इस पर सदाव्रत क्या कहे कुछ समझ नहीं पा रहा था। उसके पाँवों तले से जैसे धरती निकल गयी थी। पूछा, "तब क्या करोगी ?"

"वह जो करना होगा मैं करूँगी। आपको यह सब लेकर चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है।"

"लेकिन यह सुनने के बाद भी तुम चिन्ता करने को मना कर रही हो ?"

"तब आप चिन्ता करिए। उधर काका का साबूदाना जलकर राख हो गया होगा। मेरे पास समय नहीं, मैं जा रही हूँ। अगर चिन्ता करने से ही कोई उपाय निकलता तो अब तक काका अच्छे हो गये होते। काका को यह रोग भी नहीं होता। नहीं तो क्या मैं अपनी मर्ज़ी से डूबने गयी थी ? अगर मर जाती, तब ही शायद अच्छा होता। मुझे मरण भी नहीं है।"

"यह क्या ? तुम क्या आत्महत्या करने गयी थीं ?"

लेकिन शैल के पास खड़े-खड़े गप लड़ाने का वक्त नहीं था। वह तब तक जा चुकी थी। सदाव्रत उसके भाग जाने को खड़ा-खड़ा देखता रहा।

□ □ □

उस दिन शाम को रोटेरी क्लब में ज़बरदस्त मीटिंग थी। स्विट्ज़रलैंड से फूड-स्पेशलिस्ट आये थे। उन्हीं को रिसेप्शन दिया जाना था। कॉफ़ी, काजूनट, कोकाकोला का इन्तज़ाम था। वेस्ट बंगाल के फूड मिनिस्टर भी आये थे। कलकत्ता के खास-खास रोटेरियन थे। शिवप्रसाद गुप्त भी थे।

सभी वेल-फेड थे। जिन्हें अच्छा खाने को मिलता है, दुनिया की फूड-प्रॉब्लम को लेकर सिर खपाने का वक्त उन्हीं के पास है। इसीलिए ये लोग सिर खपा रहे हैं।

मीटिंग के वाद शिवप्रसाद गुप्त का भाषण खत्म होते ही पटापट तालियाँ पिटने लगीं।

वाहर गाड़ी में आकर वैठने के वाद भी कानों में जैसे तालियों की आवाज़ सुनायी दे रही थी।

स्पेशलिस्ट को जो बोलना था उसने कहा। आदमी को ज़िन्दा रहने के लिए कितने कैलोरी फूड की जरूरत है, उसी की स्टैटस्टिक्स। इंडिया की तरह अन्डेवेलप्ड कंट्री में क्या करने से फूड-प्रॉडक्शन वढ़ सकता है। फूड़ के साथ पॉपुलेशन की भी बात थी। सात हज़ार मील दूर से आकर स्पेशलिस्ट साहव ने काफ़ी कष्ट और अनुग्रह के साथ अच्छे-अच्छे उपदेश दिये। जिस देश के लोग अपने यहाँ का फूड खाकर खत्म नहीं कर पाते, और अपने घर के पालतू कुत्ते की खूराक के लिए पचासों रुपये महीना खर्च करते हैं, कुत्ते का पेट खराब होने पर जहाँ के लोग पचास रुपये फीस देकर डॉक्टर को दिखलाते हैं, स्पेशलिस्ट साहव उसी देश के रहनेवाले थे। एफ्रोएशियन अन-फेड लोगों के लिए फूड की गवेषणा करने के लिए ही उनकी नौकरी थी। बड़ा ज़ोरदार भाषण दिया। रोटेरियन लोगों ने काजू टूँगते-टूँगते उनका भाषण सुनकर, उनका पांडित्य देखकर दाँतों तले अँगुली दवा ली।

इसके वाद उठे वेस्ट वंगाल के फूड-मिनिस्टर। उन्होंने भी कितनी ही वातें वतलायीं। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'वोधोदय' में जो-जो सदुपदेश हैं, उन्हीं का उपदेश दिया।

उन्होंने कहा, "हम लोगों को खाने की हैबिट ही वदलनी होगी। हमारी फूड-हैबिट ही हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। हम लोग भात खाते हैं। क्यों, भात खाने से क्या होता है ? सिर्फ़ तोंद निकलने के सिवाय और क्या फ़ायदा है ? आप लोग रोटी नहीं खा सकते ? सूखी, हाथ की बनी गरम-गरम रोटियाँ, गाय का घी चुपड़कर खाइये, स्वास्थ्य के लिए वह कितनी फ़ायदेमन्द है, यह डॉक्टरोंसे पूछिये। आज वंगालियोंका जो स्वास्थ्य खराव रहता है, इसी भात की वजह से। वह भी भात का माँड़ फेंककर। थोड़ी घास खाना और भात खाना एक ही वात है। इसके वाद मछली को लीजिये। हम लोग कस्वे-गाँव के रहनेवाले हैं। वचपन से मछली खा रहे हैं। लेकिन वह क्या यह वर्फ़ में रखी मछली है, जो आप लोग खाते हैं ? वाज़ार में वर्फ़ की रखी बड़ी-बड़ी रोहू मछली विकती है। आप लोग साढ़े पाँच-छः रुपये देकर वही खरीदते हैं। लेकिन मेरी बात मानकर एक वार ताज़ा पूँटी, खलसा, मोरला, चाँद, वेला—यह सब मछलियाँ खाकर

देखिये। इससे काफ़ी फायदा होगा। फिर एक बात और है, जिसे कहे बिना दिल नहीं मानता। आजकल देखता हूँ लड़के-लड़कियों में चॉप-कटलेट खाने का रिवाज़ बढ़ गया है। इससे स्वास्थ्य ख़राब होता है, पैसा ख़राब होता है। इससे तो अच्छा है आप लोग फल खायें। फल माने अंगूर, सेब और अनार नहीं बल्कि अपने बंगाल के फल। यही, जैसे खीरा, केला, पपीता, नारियल, यही सब खाइये। आप लोग सरकार के हाथ में खाद्य-समस्या छोड़कर निश्चिन्त होकर नहीं बैठिये। सरकार तो जो करना है सो कर ही रही है।"

अचानक कुंज ने गाड़ी रोक दी।

"रोकी क्यों? क्या हुआ है यहाँ?"

कुंज ने कहा, "छोटे बाबू!"

"छोटे बाबू माने? सदाव्रत? कहाँ है?"

शिवप्रसाद बाबू मीटिंग की बातें सोचते-सोचते ही आ रहे थे। सब उलट-पलट हो गया। देखा, सच ही चौरंगी के मोड़ पर सदाव्रत खड़ा था। इस समय यहाँ!

बोले, "बुलाओ तो कुंज, ज़रा बुलाओ तो!"

अचानक नज़र पड़ी। सदाव्रत के पास एक लड़की खड़ी है। उसी से बात कर रहा है।

कुंज के बुलाते ही गाड़ी के पास आया।

"यहाँ क्या कर रहे हो? घर चलना है?"

"मुझे ज़रा देर होगी।"

इसके बाद शिवप्रसाद बाबू जाने को ही थे, लेकिन अचानक पूछ बैठे, "किसके साथ बात कर रहे थे? वह कौन है?"

सदाव्रत ने कहा, "वह केदार बाबू की भतीजी है।"

"केदार बाबू? केदार बाबू कौन हैं?" शिवप्रसाद बाबू को याद ही नहीं आया। पूछा, "केदार बाबू कौन हैं?"

"मुझे पढ़ाते थे। मेरे मास्टर साहब!"

"लेकिन उनकी भतीजी के साथ तुम्हें क्या काम है?"

"वह दवा खरीदने आयी है। केदार बाबू बहुत बीमार हैं।"

शिवप्रसाद बाबू फिर भी जैसे सूत्र नहीं पकड़ पाये।

बोले, "वह अपने काका के लिए दवा खरीदने आयी है तो तुम्हें क्या? तुम क्या अब भी उनके साथ मुलाक़ात करते हो? तुम वहाँ जाते हो?"

सदाव्रत चुप रहा। इस बात का उत्तर ही क्या होता !

शिवप्रसाद बाबू ने फिर पूछा, "क्या बीमारी है ?"

"टी० बी०। सस्पेक्टेड टी० बी०। डॉक्टर ने जो मेडिसन प्रेसक्राइब की है, वह बाजार में मिल ही नहीं रही। इधर घी, मक्खन, अण्डे, माँस, सब खाने को कहा है।"

शिवप्रसाद बाबू और नहीं रुके। इशारा करते ही कुंज ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। वह फिर सोचने लगे। कल सुबह अखबारों में रिपोर्ट आयेगी। फूड-मिनिस्टर के लेक्चर के बारे में ही ज़्यादा होगा, उनका कुछ भी नहीं होगा। शायद उनका नाम भी नहीं हो। जबकि ये लोग जो कुछ भी अंट-संट बक देंगे उसी को निकालने में एडीटर पूरी ताक़त लगा देगा। हालाँकि फूड-मिनिस्टर होने पर भेजे में इतनी भी बुद्धि नहीं है कि आजकल इस तरह के लेक्चर नहीं चलते। लोग काफ़ी सयाने हो गये हैं।

मिनिस्टर का भाषण तब भी जैसे हवा में गूंज रहा था—

"हम चाहते हैं कि भारतवर्ष के साढ़े सात लाख गाँव के लोग अपनी समस्या अपने-आप सुलझा लें। हम लोग पक्की सड़क बना देंगे, आप सब लोग मिलकर उस सड़क के दोनों ओर फलों के पेड़ लगा दें। देश की खाद्य-समस्या को मिटाने का भार आप लोगों पर है। तालाब-पोखरों में मछली पैदा करिये, खेतों में धान रोपिये, खाने और कपड़े की समस्या आप लोग ज़रा-सी कोशिश करें तो हल हो सकती है। छोटी-छोटी बातों के लिए सरकार को परेशान न करें। सरकार और भी बड़े कामों में लगी है। पिछले कुछ ही सालों में सरकार ने क्या-क्या किया, आप लोग जानते ही हैं। डी० वी० सी० बाँध बनाया है। मयूराक्षी बाँध बाँधा है, भाखड़ा-नंगल बाँध भी बना जा रहा है। यह भाखड़ा-नंगल दुनिया का सबसे बड़ा बाँध होगा। अमेरिका का हूवर बाँध ऊँचाई में सात सौ बीस फुट है, और अपना भाखड़ा-नंगल सात सौ साठ फुट है। उसी दिन तो ख्रुश्चेव और बुल्गानिन आकर देख गये हैं। अगले साल हम लोगों ने भारत आने के लिए चाइना के प्राइम मिनिस्टर चाऊ-एन-लाई को निमन्त्रित किया है—वह भी देख जायेंगे।"

"कुंज !"

गाड़ी में बैठे-बैठे ही कहा, "ज़रा एलिगन रोड की ओर मोड़ !"

कुंज ने पुतले की तरह गाड़ी घुमा ली।

फूड-मिनिस्टर ने बैठते ही धीरे से पूछा, "कैसा लगा मेरा लेक्चर ?"

शिवप्रसाद बाबू और क्या कहते ! बोले, "बहुत अच्छा—मेरा ?"

गाड़ी तब तक मिस्टर बोस के बंगले पर पहुँच चुकी थी।

* * *

"वह कौन थे ?"

सदाव्रत ने कहा, "मेरे पिताजी। घर चलने को कह रहे थे। मैंने कह दिया अभी नहीं आऊँगा, ज़रा देर बाद।"

"आप चले क्यों नहीं गये ? मैं अकेली चली जाती।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं-नहीं, चलो, मैं तुम्हें घर छोड़ आऊँ।"

"लेकिन आप क्या फिर से अब बाग़बाज़ार जायेंगे ? आपका सारा दिन ही तो बेकार गया।"

तभी सदाव्रत की ओर देखा। पूछा, "क्या सोच रहे हैं ?"

"सोच रहा हूँ, दवा जब मिली ही नहीं, तब एक बार फ़िर से डॉक्टर के पास चलें तो कैसा रहेगा ! जो दवा मिलती ही नहीं, उसका प्रेसक्रिप्शन करने की क्या ज़रूरत थी ? और किसी दूकान में देखें ?"

"चलिये !"

सदाव्रत चलने लगा। साथ-ही-साथ शैल भी। बोली, "लेकिन मेरे पास ज़्यादा रुपये नहीं हैं।"

इस बात का जवाब दिये बिना सदाव्रत ने कहा, "जानती हो आजकल सभी किस तरह ज़्यादा रुपया कमाया जाय, इसी की चिन्ता में लगे रहते हैं, जबकि इन्हीं मास्टर साहब ने मेरे पिताजी के पास जाकर एक दिन फीस के रुपये कम कर देने को कहा था।"

शैल चुपचाप चलती रही।

"सब देख-सुनकर लगता है, इस दुनिया में इतना अच्छा होना भी ठीक नहीं है। शायद अपनी पृथ्वी एब्सोल्यूट ट्रुथ को सह नहीं पाती। सॉक्रेटीज़ को भी नहीं सह सकी। क्राईस्ट को भी नहीं सह पायी। अपने महात्मा गांधी को भी इसीलिए नहीं सह सकी।"

"आप काका से कहीं यह सब न कह बैठियेगा !"

"क्यों ?"

"मैंने कहा तो फटकार खानी पड़ी। बोले कि दो मुट्ठी अन्न के लिए बेकायदा बात कहूँगा ? जबकि दूसरे लोग अगर ठगें तो कुछ नहीं। कितने ही छात्र काका को फीस नहीं देते। कहते ही नाराज़ हो जाते हैं। गृहस्थी तो मुझे ही चलानी होती है। मैं कहाँ से लाऊँ ?"

सदाव्रत ने पॉकेट से मनीबेग निकाला। बोला, "तुम मना न करना,

मेरे पास इस समय बीस रुपये हैं। यह तुम ले लो।"

अचानक शायद ठोकर खाकर शैल आगे की ओर झुक गयी। सदाव्रत ने जल्दी से उसका हाथ पकड़ लिया।

"क्या हुआ ?"

और ज़रा होने पर शैल फुटपाथ पर ही गिर जाती । एक पत्थर निकला हुआ था, उसी से ठोकर लगी थी।

"पैर में लगी क्या ?"

शैल ने तब भी कुछ नहीं कहा। नीचे की ओर देखने लगी।

"चप्पल टूट गयी क्या ?"

शर्म से शैल जैसे सिमटी जा रही थी। एक चप्पल का स्ट्रेप टूट गया था। काफ़ी दिनों की चप्पल है। चप्पल का भी कोई कसूर नहीं है। फुटपाथ के पत्थर का भी कसूर नहीं है। टूटी चप्पल को ही घिसटा-घिसटाकर चलने की कोशिश की। फिर दोनों चप्पलों को हाथ में उठाने जा रही थी। सदाव्रत ने कहा, "लाओ, वह मुझे दो।"

"नहीं-नहीं, आप क्यों लेंगे ? मैं ही ले चलती हूँ।" कहकर शैल आगे बढ़ने लगी।

"इससे तो एक नयी चप्पल क्यों नहीं खरीद लेतीं ! पास में ही तो जूते की दूकान है।"

"नहीं, चलिये, अगर कहीं मोची मिल जाये तो देखें।"

□ □ □

जार्ज टॉमसन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के ऑफ़िस में उस समय रिहर्सल चल रहा था। जार्ज टॉमसन कम्पनी के बड़े साहब विलायत में रहते हैं। इंडिया उनके लिए फॉरेन लैंड है। लेकिन बैलेन्स शीट इंडिया में ही तैयारी होती है। कम्पनी के स्टाफ़ के रजिस्टर में जिन लोगों का नाम है वे लोग एपाइण्टमेंट पाते हैं इंडिया में, लेकिन स्टाफ़ पॉलिसी ठीक होती है इंग्लैंड में । वहाँ से कॉन्फ़ीडेंशियल नोट आता है—किसको प्रमोशन देना है और किसे डिस्चार्ज करना है । कौन प्रो-कम्युनिस्ट है और कौन प्रो-ब्रिटिश । उनकी कॉन्फ़ीडेंशियल डिस्पैच भी यहीं से जाती । पहले इंग्लैंड के बड़े साहब लोग इन बातों पर सिर नहीं खपाते थे । उस समय वे लोग सिर्फ़ एक चीज़ जानते थे, वह थी प्रॉफ़िट। लेकिन अब कुछ शेयर इंडियन लोगों के हाथों बेचने पड़े हैं। अब ऑफ़िस में यूनियन बन गयी है। अब स्टॉफ़ एमिनिटी के साथ कम्पनी के प्रॉफ़िट की बात भी सोचनी होती

है ! स्टाफ़ को अगर कम्पनी नहीं देखेगी तो स्टाफ़ भी कम्पनी को नहीं देखेगा। इस समय उन लोगों को सिर्फ़ बोनस देकर भी खुश नहीं किया जा सकता। वे लोग प्रॉफ़िट में से भी परसेंटेज चाहते हैं। इसीलिए उन लोगों की मिज़ाजपुर्सी के लिए वेल्फ़ेयर ऑफ़िसर की नयी पोस्ट क्रिएट की गयी है। रिक्रिएशन क्लब बने हैं। लाइब्रेरी बनीं है। लिटरेरी सेक्शन खुला है। ड्रामेटिक सेक्शन बना है। ड्रामेटिक सेक्रेटरी भी है। लिटरेरी सेक्शन को लेकर ज्यादा खींचतान नहीं होती। कम्पनी किताबें खरीदने के लिए कुछ रुपये दे देती है। लेकिन ड्रामा में ही लोगों का जोश ज्यादा है।

दुलाल सान्याल ने कहा, "हम लोगों का यही पहला ड्रामा है। समझ रही हैं न। इसीलिए रिहर्सल पक्का होना चाहिए।"

सिर्फ़ कुन्ती ही नहीं, श्यामली चक्रवर्ती, वन्दना दास को भी दुलाल सान्याल ने इकट्ठा किया है। दुलाल सान्याल पक्का आदमी है। अमल घोष, उसका भी उत्साह कम नहीं है, और है संजय।

लड़कियों के लिए क्लब के ख़र्च पर चॉप, कटलेट, पान जर्दा—सभी कुछ आया था।

कुन्ती ने कहा, "मेकअप का भार किसे दिया है ? मेकअप के लिए अच्छा आदमी होना चाहिए।"

वन्दना—"बैठकखाने में डी-प्रामाणिक है। उससे करा सकते हैं।"

कुन्ती—"ड्रेस के लिए डी-दास है बहूबाज़ार में। वहाँ हर साइज की साड़ी-ब्लाउज़ मिल जायेंगी। बदन पर फ़िट होंगी।"

दुलाल सान्याल ने कहा, "आप जिसे कहेंगी उसे ही देंगे। हमें फ़र्स्ट क्लास माल चाहिए। हमारे जनरल मैनेजर प्रिसाइड करेंगे। सीन-सिनेरी, ड्रेस, मेकअप परफ़ेक्ट नहीं होने पर बड़ी बदनामी होगी।"

अमल घोष ने पूछा, "ड्रामा कैसा लगा ? यह मैंने लिखा है।"

कुन्ती—"रिहर्सल के बिना ड्रामा कैसा है, पता नहीं लगता।"

दुलाल सान्याल ने कहा, "ठीक कह रही हैं। एकदम सच बात।"

संजय अब तक चुप था। बोला, "आप ही की वजह से हमारा क्लब इतने दिनों से बन्द था। आपको पता है ?"

"क्यों ?"

"हाँ, काफ़ी दिनों पहले स्टार में आपका एक पार्ट देखा था। बड़ा अच्छा लगा था। उसके बाद से ही आपको खोज रहे हैं, लेकिन किसी भी तरह आपका पता नहीं लगा। सुना था, आप जादवपुर में रहती हैं।

वहाँ भी गया था। जाकर देखता हूँ कॉलोनी के सारे घर टूटे पड़े हैं। वहाँ पक्की चहारदीवारी खड़ी हो रही है।"

दुलाल सान्याल ने कहा, "इसके बाद तीनों एक साथ मिलकर···अरे राम !"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"अरे, आपको ढूँढते-ढूँढते चितपुर के एक कोठे में जा पहुँचे। चकले का नाम शायद पद्मरानी का फ़्लैट या ऐसा ही कुछ था।"

कुन्ती पहचान नहीं पायी।

"पद्मरानी का फ़्लैट ? वह कहाँ है ? यह पता कहाँ से मिला ?"

संजय ने कहा, "इस लाइन में कितनी तरह के लोग हैं। जिसके मन में जो आता है, कह जाता है। हम लोगों का तो बुरा हाल हो गया। एक झुंड लड़कियों ने हमें घेर लिया। कह रही थीं—हम भी प्ले करेंगी !"

"ओ माँ, यह बात ! फिर क्या हुआ ?"

कहकर कुन्ती, श्यामली, वन्दना सभी ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगीं।

"आख़िर हम लोग क्या करें, बड़ी मुश्किल में पड़े। कितने सब तरह-तरह के नाम थे—टगर, गुलाबी, वासन्ती, दुलारी, सारा घर भरा था। हम लोगों के पहुँचते ही समझीं कि ग्राहक आये हैं।"

कुन्ती वगैरह चाय पी चुकी थीं। बोलीं, "चलें फिर, दुलाल बाबू !"

"कल किस समय आ रही हैं ?"

"जिस समय कहें !"

बाहर आने पर ही पीछे-पीछे जार्ज टॉमसन कम्पनी के लड़के आ रहे थे। लड़कियों ने और एक बार नमस्कार किया। फिर भी कोई साथ छोड़ने को तैयार नहीं था। इसके बाद तीनों बस पर चढ़ गयीं। पीछे से सभी ने कहा, "नमस्कार !"

वन्दना ने कहा, "मैं तो ज़रा धर्मतल्ला जाऊँगी। छोटी बहन के लिए ऊन खरीदनी है।"

चारों ओर भीड़ थी। ऑफ़िसों में छुट्टी हुए काफ़ी देर हो चुकी थी। हरेक सड़क पर बत्ती जल रही है। इसी देश की छाती पर न जाने कब इन लोगों का जन्म हुआ था। अब तो जैसे इनके पर निकल आये हैं। चुग-चुगकर खाना शुरू कर दिया है। इस समय ये ही इस नागरिक संस्कृति की उत्तराधिकारिणी हैं। बस इसीलिए उन्हें ले जा रही थी।

□ □ □

बाग़बाज़ार गली के अन्दर उस समय केदार बाबू बड़ी बेचैनी से छटपटा रहे थे। लगता था, सारा बाग़बाज़ार धूल और धुआँ। शैल ने सोचा भी नहीं था कि उसे लौटने में इतनी देर हो जायेगी।

आते समय शैल ने कहा था, "तुम फिर से उठ-बैठ मत करना, काका! मैं जाऊँगी और आऊँगी!"

उसी फुटपाथ पर मोची की दूकान के सामने खड़ा सदाव्रत चारों ओर आदमियों की भीड़ को देख रहा था। इतने सारे आदमी! इतने आदमी कहाँ जा रहे हैं? किस काम से? फुटपाथ के ऊपर ही दूकान सजाकर फेरीवाले बैठ गये थे। छुटपन का वही कलकत्ता धीरे-धीरे दिन-रात की परिक्रमा करते-करते जैसे और भी जन-कलरव से भर उठा। और भी मकान, और भी गाड़ियाँ, और भी भीड़। कलकत्ता दिनोंदिन ऐश्वर्यमयी प्रसादपुरी बन गया था। धन, जन-ग़रीबी, रोग, दुःख, शोक से भर उठा। अजीब इतिहास हो उठा है। यहाँ इसी शहर में केदार बाबू जैसे लोग रहते हैं, और शम्भू जैसे लोग भी रहते हैं। कुन्ती गुहा भी रहती है और शैल भी रहती है। यहाँ एक ज़रूरी दवा पैसों से भी नहीं मिलती, और पैसे ख़र्च कर टिकट कटाने के लिए यहाँ लोग घंटों तक लाइन लगाये खड़े रहते हैं। यहाँ इतना काम है, फिर भी विनय-जैसे लड़के काम पाने के लिए रास्ता नापते फिरते हैं।

मोची मशगूल होकर जूते की सिलाई कर रहा था। शैल उसी ओर देख रही थी।

काम पूरा होने पर सदाव्रत ने पूछा, "कितना देना होगा?"

अचानक पीछे से जैसे भीड़ का धक्का लगा। ज़रा ज़ोर का धक्का होने से शैल गिर पड़ती।

"देखकर नहीं चल पातीं?"

कहकर सदाव्रत जैसे चौंक गया। अचानक इस तरह मुलाक़ात हो जायेगी, उसने नहीं सोचा था। कुन्ती के साथ और भी दो लड़कियाँ खड़ी थीं।

सदाव्रत ने बात कहकर अपने को सम्हाल लिया था। लेकिन कुन्ती चुप नहीं रही। बोली, "क्या कहा?"

इस बार शैल ने ही जवाब दिया, "ज़रा-सा और होने पर मैं गिर जाती न!"

कुन्ती ने शैल को सिर से पैर तक अच्छी तरह से देखा। फिर सदाव्रत की ओर देखकर कहा, "इसे कहाँ से पकड़ लाये? मुझे छोड़कर लगता है

अब इसे फँसाया है ? इस तरह आपके पास कितनी हैं ?"

सदाव्रत और नहीं रोक पाया। बोला, "किससे क्या कह रही हो ?"

कुन्ती ने मुँह बनाकर कहा, "क्यों ? पकड़े गये, इसलिए शायद शर्म लग रही है ? एकदम रंगे हाथों पकड़े गये ! बड़े आदमी हैं, इसलिए सोचते होंगे, आप जो कुछ भी करेंगे सबको सहना होगा ! हम लोगों का घरबार मिटाकर भी शायद आपका मन भरा नहीं ! एक और लड़की के पीछे लगे ! इसने शायद अभी तक आपका असली रूप नहीं देखा है !"

आस-पास काफ़ी लोग जमा हो गये। उन लोगों ने कौतूहलपूर्वक पूछा, "क्या हुआ ? क्या हुआ, जनाब ?"

लेकिन कुन्ती फिर कहने लगी, "लेकिन यह मत सोचियेगा कि मैं आपको इतने सस्ते में छोड़ दूँगी। आपने मेरे पिताजी का ख़ून किया, यह बात क्या मैं भूल जाऊँगी ?"

एक अजीब हालत हो गयी थी। उस दिन उसी रास्ते पर कितने ही राह चलते आदमियों ने सदाव्रत पर प्रश्नों की झड़ी लगाकर जैसे उसे छलनी कर दिया।

आख़िर कुन्ती ही चली गयी। लेकिन तब भी सदाव्रत का सिर जैसे फटा जा रहा था। मोची के पैसे चुकाकर दोनों जब टैक्सी में आकर बैठ गये तो काफ़ी देर तक सदाव्रत के मुँह से कोई बात नहीं निकली। कुन्ती के पिता को किसने मारा ? बात ज़रा और बढ़ जाने पर शायद रास्ते पर ही कोई दुर्घटना हो जाती। अपने को बड़ी मुश्किल से सम्हाला था। लेकिन सिर के अन्दर जैसे दुनिया की सारी आग एक साथ ही भभक उठी थी।

पास ही शैल बैठी थी चुपचाप। टैक्सी दौड़ रही थी।

शैल ने एक बार पूछा, "वह लड़की कौन थी ?"

सदाव्रत के अन्दर जैसे जवाब देने की भी हिम्मत नहीं थी।

शैल ने ज़रा देर चुप रहकर फिर पूछा "आप उसे पहचानते हैं ?"

सदाव्रत इस बात का भी कोई जवाब नहीं दे पाया। टैक्सी बाराबाज़ार की ओर दौड़ी जा रही थी।

सदाव्रत उस दिन ख़ुद की चोट से ख़ुद ही तिलमिला उठा था। उसने ऐसी चोट पहले कभी नहीं खायी थी। शायद कभी मौक़ा ही नहीं पड़ा था। ज़िन्दगी में सहयोग की जितनी जरूरत नहीं होती, उससे ज्यादा शायद आघात की भी ज़रूरत होती है। आघात के समय दुःख की अनुभूति तीव्र रहती है। इसीलिए आघात का महत्त्व मालूम नहीं होता। लेकिन जिसको

बड़ा होना है, जिसे महान् होना है, जिसे रोज़-रोज़ के इन झंझटों से ऊपर उठना होगा, उसके लिए इसे छोड़कर कोई उपाय भी नहीं था। इसीलिए शैल ने चाहे जितनी बार प्रश्न किये उसके मुंह से कोई उत्तर नहीं निकला।

शैल ने पूछा, "क्या हुआ, आप उत्तर नहीं देंगे ?"

सदाव्रत ने कहा, "उत्तर चाहती हो या कैफ़ियत ?"

"छिः !"

शैल ने कहा, "आपसे कैफ़ियत माँगने का मुझे क्या अधिकार है ? मैंने तो सिर्फ़ जानना चाहा था, वह कौन है ? उस लड़की ने आपका इस तरह अपमान क्यों किया ? आपने भी उसकी बातों का उत्तर क्यों नहीं दिया ?"

सदाव्रत अपराधी की तरह चुप रहा, जैसे किसी ने उसकी उत्तर देने की ताक़त ही छीन ली हो।

"जाने दीजिये, आपको इस बात का जवाब नहीं देना होगा, मैं समझ गयी हूँ।"

"क्या समझ गयी हो ?"

टैक्सी तब तक घर के सामने आ गयी थी। सदाव्रत भी शैल के पीछे-पीछे बाहर आ रहा था। शैल ने कहा, "आपको अन्दर आने की ज़रूरत नहीं है।"

सदाव्रत ने कहा, "मास्टर साहब से कह आऊँ !"

"क्या कहेंगे ?"

"यही कि तुम्हें लेकर इतनी देर तक कहाँ गया था। लौटने में इतनी देर कैसे हुई !"

शैल ने कहा, "काका पागल आदमी हैं। सभी की बातों का यकीन करते हैं। किसी के झूठ बोलने पर भी कभी अविश्वास नहीं करते। लेकिन इसकी ज़रूरत नहीं है, मैं जाकर सच बात ही कह दूँगी।"

सदाव्रत ने आगे बढ़कर कहा, "तब यह बात भी कह देना कि सड़क पर जिस लड़की ने तुम्हारे सामने मेरा अपमान किया, उसके साथ मैंने ऐसा कोई खराब व्यवहार नहीं किया था, जिसकी वजह से वह इतनी बुरी तरह से पेश आयी !"

"इसका मतलब आप स्वीकार करते हैं कि आप उसे जानते हैं ?"

सदाव्रत—"तुम्हें जितना जानता हूँ, उसे भी ठीक उतना ही जानता हूँ, ज़रा भी ज़्यादा नहीं। तुम मुझे कहीं ग़लत न समझ लेना।"

शैल मुसकराने लगी।

"वाह, आप तो लगता है मेरे सामने कैफ़ियत पेश कर रहे हैं। मैंने क्या आपसे कैफ़ियत माँगी है? मैं आपसे कैफ़ियत माँगनेवाली हूँ ही कौन!"

सदाव्रत और भी आगे बढ़ आया। बोला, "फिर भी तुम्हारा सुनना लाज़िमी है। मेरे बारे में किसी को ग़लतफ़हमी हो, यह मैं नहीं चाहता। मैं तुमसे भी सब खोलकर कहता हूँ।"

"लेकिन मुझे क्या और कोई काम नहीं है। खड़ी-खड़ी आपकी बेकार की बातों को सुनने से क्या काम चलेगा?"

"नहीं सुनना चाहतीं तो मत सुनो, लेकिन दया करके एकतरफा बात सुनकर ही कुछ आइडिया न बना लेना। उससे बेइन्साफ़ी होगी।"

आस-पास में मुहल्ले के लोग आ-जा रहे थे। गली में अँधेरा हो गया था। दो-एक ने शैल की ओर चुभती नज़रों से देखने की कोशिश भी की। दोनों की बातों में ज़रा बाधा-सी हुई।

सदाव्रत ने कहा, "मैं कल दूकान में फिर से एक बार पूछूँगा, दवा मिलेगी या नहीं।"

अचानक फिर से काका का ख़याल आते ही जैसे शैल को होश आया। बोली, "अच्छा, मैं चलूँ!"

अँधेरे में ही किसी ने शैल को देखकर कहा, "अरे शैल, तुम कहाँ थीं अब तक?"

"क्यों, मौसी?"

"तुम्हारे काका बुखार में बेहोश पड़े कब से पानी-पानी चिल्ला रहे हैं, और तुम यहाँ खड़ी-खड़ी गप्पें लड़ा रही हो!"

शैल और कुछ नहीं कह पायी। अन्दर घुस आयी। सदाव्रत भी पीछे-पीछे अन्दर आ गया।

जाते समय इन्हीं मौसी से देखभाल करने को कह गयी थी। वह ही शायद एक लालटेन जलाकर रख गयी थीं। तख़्तपोश के ऊपर एक ओर पड़े-पड़े केदार बाबू 'माँ-माँ' कर रहे थे।

शैल ने पास जाकर सिर पर हाथ रखा, "काका!"

केदार बाबू ने जैसे देखने की कोशिश की।

"मैं हूँ, काका। खूब तकलीफ़ हो रही है?"

काका के मुँह से तब आवाज़ नहीं निकल रही थी, हालाँकि बात करने की कोशिश कर रहे थे। माथा बुखार से एकदम तप रहा था। जल्दी से थर्मामीटर लेकर शैल काका का बुखार देखने लगी।

सदाव्रत ने पूछा, "इस समय कितना बुखार है ?"

"एक सौ चार डिग्री। एक बार डॉक्टर को बुलाना होगा।"

"मैं जा रहा हूँ।"

शैल ने कहा, "सड़क के किनारे ही डॉक्टर की डिस्पेंसरी है।"

सदाव्रत और नहीं रुका। अँधेरी गली से टेढ़े-मेढ़े रास्ते को पार कर सड़क पर आना होता है। मोड़ पर ही एक पहचाना-पहचाना-सा चेहरा दीख गया। मन्मथ !

"अरे सदाव्रत दा, कहाँ जा रहे हो ?"

सदाव्रत ने कहा, "मास्टर साहब की तबीयत बहुत खराब है। तुम चलो, मैं डॉक्टर को लेकर आ रहा हूँ।"

"लेकिन दो-एक दिन पहले ही तो हालत काफ़ी ठीक थी। मैं मंगलवार को ही तो देख गया हूँ।"

"आज दोपहर को अचानक बहुत ख़राब हो गयी है। तुम चलो।"

सदाव्रत बाग़बाज़ार स्ट्रीट के मोड़ पर आ डॉक्टर की दूकान खोजने लगा।

□ □ □

'जीवन के बहुत से सत्यों में से एक महान् सत्य यह है जो सबसे सहज है और वह उतने सहज रूप में सामने नहीं आता। शुरू-शुरू में लगता है, यह रात कैसे कटेगी, यह समुद्र कैसे पार होगा। लेकिन हिम्मत करके आगे बढ़ने पर सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं। सारे डर मिट जाते हैं। तब सारे काँटे फूल बनकर खिल उठते हैं। उस समय स्वयं को ही हँसी आती है। यही मैं, सदाव्रत गुप्त, एक दिन साधारण को असाधारण समझकर हताश हो गया था। फिर भी अभी तक ज़िन्दा हूँ, गाड़ी चलाते हुए कलकत्ता की सड़क पर जा रहा हूँ।

'सिर्फ़ एक दिन नहीं। सिर्फ़ एक दिन की ज़िन्दगी नहीं। हो सकता है, मुझसे पहले भी जो लोग पृथ्वी पर आये, वे भी इसी तरह हर रोज़ मौत के मुँह पर खड़े हुए हों। मैं, मेरे पिताजी, शंभू, केदार बाबू, शैल, मन्मथ, जिनको नज़रों के सामने देखता हूँ, वे ही तो सिर्फ़ इस दुनिया के आदमी नहीं हैं। हमसे पहले भी अनगिनत लोग इस दुनिया में रह चुके हैं; रहकर जीवन से प्यार कर गये हैं, जीवन से घृणा कर गये हैं, जीवन को अभिनन्दित कर गये हैं, जीवन को धिक्कार भी गये हैं। वे सब लोग आज कहाँ गये ?'

गाड़ी मिस्टर बोस के बंगले पर जाकर रुकी।

शिवप्रसाद बाबू ने कह दिया था, "ठीक सुबह नौ बजे पहुँच जाना, एक मिनट भी देरी न करना।"

मिस्टर बोस ख़ुद पंक्चुअल आदमी हैं। पंक्चुएलिटी पसन्द करते हैं। चुरुट पीते-पीते बोले, "सो यू आर जूनियर गुप्त ?"

सदाव्रत ने पहले ही परिचय दे दिया था। पिताजी ने पहले से ही पक्की व्यवस्था कर रखी थी। पसन्द करने का यहाँ सवाल नहीं है। सिलेक्शन का भी झमेला नहीं है। दस जगह दरख़ास्त करने पर एक जगह भी इण्टरव्यू नहीं मिलता। सब जगह इसी तरह का सिस्टम है। मैनेजिंग डाइरेक्टर का ख़ुद का केन्डीडेट होने पर उसे लेना ही होगा।

"अच्छा, एक बात। अख़बार तो ज़रूर ही पढ़ते होगे ?"

सदाव्रत ने कहा, "हाँ।"

"ऐसे ही पढ़ना नहीं। मेरा मतलब इन-बिटवीन-लाइन्स से है।"

सदाव्रत—"हाँ !"

"तो ह्वाट इज योर ओपीनियन एबाउट दिस ?" कहकर जैसे कुछ सोचने लगे।

सच ही अजीब सब सवाल थे उनके भी। "बुल्गानिन और ख़्रुश्चेव के बारे में तुम्हारी क्या ओपीनियन है ?"

"वे हम लोगों के स्टेट गेस्ट हैं, अतिथि हैं।"

"लेकिन तुम्हें क्या लगता है कि उन लोगों को इंडिया में इन्वाइट कर हम लोगों का कुछ उपकार होगा ?"

"यह तो डिप्लोमेसी है ! फ्री कन्ट्री होने पर इस तरह एक्सचेंज़ ऑफ़ गेस्ट्स होता ही है।"

"इससे अपने देश का कुछ लाभ होगा ?"

सदाव्रत मि० बोस की ओर देखने लगा। चुरुट पीते मुँह का सवाल। अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के सवालों का उत्तर जैसे एक तीसरे आदमी से पूछ रहे थे। उनकी अपनी भी एक ओपीनियन है। मि० बोस जानना चाहते हैं, अपने कानों सुनना चाहते हैं कि उनके अपने जवाब के साथ सदाव्रत का जवाब मिलता है या नहीं। भविष्य में और किसी मामले पर दोनों की राय एक होगी या नहीं। सदाव्रत ने एक सेकंड सोचा। पिताजी ने उसे पहले से कुछ भी नहीं बतलाया था। नहीं बतलाया था कि सदाव्रत को ऐसे कड़े-कड़े सवालों का जवाब देना होगा।

"ब्रिटेन और फ्रांस ने ईजिप्ट पर जो घेरा डाला है, डू यू सपोर्ट इट?"

सदाव्रत ने देखा सवाल करने के बाद ही टेबल के ऊपर चुरुट की राख गिर गयी।

"वेरी गुड! नाऊ, एबाउट पाकिस्तान! तुम क्या समझते हो कि इंडिया और पाकिस्तान फिर से एक हो जायेंगे?"

मि० बोस काफ़ी बड़ी कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। साल में साठ लाख रुपये से ज़्यादा का तो गवर्नमेंट ऑर्डर ही होता है। फिर लोकल और इण्टर-स्टेट मार्केट है। इसमें भी लाखों की सेल-गारण्टी है। वास्तव में फैन-मैन्यूफ़ैक्चरिंग के लिए 'सुवेनीर इंजीनियरिंग' की मोनोपॅली है। लेकिन इलेक्ट्रिक पंखों के साथ राजनीति का क्या रिश्ता है, यह समझ में नहीं आया। इण्टरनेशनल राजनीति के साथ क्या इन सब बातों का इतना गहरा सम्बन्ध है?

"अच्छा, डॉक्टर राय के इस बिहार-वेस्ट बंगाल मर्जर के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं?"

इसके बाद सवालों की झड़ी लग गयी। एक के बाद एक कितने ही सवाल! कम्युनिज़्म, कैपिटलिज़्म, यू० एन० ओ०, पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना, दलाई लामा, रिफ़्यूजी प्रॉब्लम—कुछ भी नहीं बचा।

"तुम चाय पिओगे?"

जवाब की राह देखे बिना शायद टेबल के नीचे बटन दबा दिया था। बेयरा आया, चाय आयी। मिस्टर बोस और भी घनिष्ठ हो उठे। चाय पीते-पीते और भी फ्रैंक हो गये। गले की टाई ढीली कर दी।

"देखो, तुम लोगों की जेनेरेशन को मैं ठीक से समझ नहीं पा रहा, सदाव्रत! मिस्टर गुप्त और मैं दोनों एक ही आइडिओलोजी में पले हैं। हम लोग मनुष्य की इन्टेग्रिटी में विश्वास करते हैं। हम लोगों की धारणा है, सभी लोग एक-जैसी इन्टेग्रिटी लेकर पैदा नहीं होते। आदमी-आदमी में जो फ़र्क है वह सिर्फ़ गॉड का डिस्क्रिशन ही नहीं है। वह लॉ ऑफ़ नेचर है। एक को मारकर दूसरे को ज़िन्दा रहना होगा। सभी को समान करने की कोशिश में सभी मरेंगे। दुनिया में फिर वही डिल्यूज़ हो जायेगी। हम फिर उसी स्टोन-एज में लौट जायेंगे! तुम लोग क्या वही चाहते हो?"

"लेकिन महात्मा गांधी ने तो रामराज्य के लिए कहा था?"

"वह भूल जाओ! गांधीजी जिस समय थे, उस समय थे। इंडिया की हिस्ट्री में गांधीजी जैसे लोगों की ज़रूरत थी, इसलिए हम लोगों ने एक

डमी गॉड को गढ़ लिया था। ज़रूरत पूरी होने के साथ ही हमने उसे हटा दिया। सोचो, आज अगर गांधीजी होते तो कितनी मुश्किल होती ? क्वीन विक्टोरिया के ज़्यादा दिन ज़िन्दा रहने से एडवर्ड सेवन्थ की कितनी दुर्दशा हुई थी ? किसी भी परिवार को लो। बूढ़ा बाप अगर ज़्यादा दिन ज़िन्दा रहता है तो क्या उस परिवार में शान्ति रहती है ? बुरा मत मानना। गांधीजी के ऊपर मेरी श्रद्धा तुमसे कम नहीं है। सच मानो, मैं तो 'हिस्ट्री क्रिएटेड हिम, ही डिड नॉट क्रिएट हिस्ट्री'। इतिहास के साथ ही एक-एक आदमी की, एक-एक प्राइम-मिनिस्टर के भी बदलने की ज़रूरत होती है। इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस—हर सभ्य देश में वही हुआ, और तुम लोगों के स्वर्ग सोवियत रूस में आज क्या हो रहा है, उसे जानने का तो कोई रास्ता ही नहीं है। स्टालिन को हटाने के लिए कितने हज़ार लोगों का ख़ून हुआ है, कौन जानता है ? लेकिन बाद में कभी यह ख़बर निकल भी सकती है।''

'सुवेनीर इंजीनियरिंग' के मैनेजिंग डायरेक्टर साधारण आदमी नहीं हैं। सिर्फ आठ साल में कम्पनी और इतनी बड़ी फैक्टरी बनाकर दो हज़ार आदमियों के अन्नदाता बन गये हैं। ख़ुद का बंगला बनवाया है, एल्गिन रोड के रईसी इलाके में। कलकत्ता के नये व्यवसायी समाज में नाम लिखाया है। इतना करने के बाद मिस्टर बोस जो भी फ़तवा देंगे, वही वेद है। वही क़ुरान है। वही बाइबिल है। सक्सेसफुल आदमी जो कुछ भी कहे, उसका विरोध नहीं करना चाहिए। वे विरोध सहन नहीं कर पाते।

चाय पीना हो चुका था। मिस्टर बोस ने रिस्टवाच देखी।

''ऑल राइट, सदाव्रत !''

सदाव्रत भी उठ खड़ा हुआ। समझ गया, उसका काम हो गया है। सीढ़ी से उतरकर गाड़ी के पास आया। गाड़ी स्टार्ट की। उसके समाज में बँधे हुए नियमों से काम होता है। उस समाज में समय का मूल्य नाम की एक चीज़ है। अब उसे भी अपने इस समाज के नियमों को मानकर चलना होगा, शिवप्रसाद बाबू यही चाहते हैं। सदाव्रत विनय नहीं है। सदाव्रत शंभू नहीं है। केदार बाबू भी नहीं है। सदाव्रत शिवप्रसाद बाबू का लड़का है। शिवप्रसाद गुप्त ! इस कलकत्ता के जैसे दो भाग हों। एक 'हैव' वालों का, दूसरा 'हैव नॉट' वालों का। सारी कोशिश के बावजूद भी सभी को 'हैव' वालों के भाग में नहीं बैठाया जा सकता। कोशिश करके भी उन सभी के लिए फ़्लैट नहीं दे सकते। उनके मुँह में फूड नहीं डाल सकते। इतिहास में वह कभी भी नहीं हुआ, कभी होगा भी नहीं। एक शासक होगा और

दूसरे को शासित होना ही होगा। जिस तरह सभी को पढ़ा-लिखाकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर नहीं बना सकते उसी तरह सभी को समान फैसिलिटी देकर शिवप्रसाद गुप्त भी नहीं बनाया जा सकता। यह इन्टेग्रिटी का सवाल है। वह इन्टेग्रिटी तुम्हारे पास है, क्योंकि तुम शिवप्रसाद गुप्त के लड़के हो। जिन मिस्टर बोस के पास दूसरे लड़के हज़ार कोशिशों के बावजूद पहुँच भी नहीं पाते, तुम एक बात पर पहुँच गये। तुम सदाव्रत गुप्त हो, कलकत्ता यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट। तुम्हें अभी दो हज़ार रुपया महीना की नौकरी मिल जायेगी। कारण, तुम हमारे समाज में पैदा हुए हो। तुम अपने पिताजी की बदौलत हमारी सोसायटी में आये हो! तुम्हें प्रोवाइड करना हमारी ड्यूटी है। तुम हम लोगों के ग्रुप के हो। हम लोगों के ग्रुप में अगर कोई अनएम्प्लायेड है, तो हम उसे एम्प्लायमेंट देंगे। हम अपना खुद का स्वार्थ देखेंगे। और रोटेरी क्लब या यू० एन० ओ० में लेक्चर होगा तो ज़रूरत के मुताबिक बोलेंगे। उस समय ग़रीबों के दुःख और उनकी दुर्दशा की बातें करेंगे। त्याग की बातें करेंगे। कल्याण की बातें करेंगे। उस समय स्वामी विवेकानन्द के उपदेश याद करेंगे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बात करेंगे। गीता और उपनिषद् के उपदेश सुनायेंगे। धर्म, ईश्वर और आत्मा की बातें करेंगे। उन सब मौक़ों के लिए हमारे पास रेडीमेड लेक्चर तैयार रहता है।

इसी तरह कलकत्ता के ऊपर से सूर्य और भी कितनी ही बार परिक्रमा कर गया। लेकिन फिर भी सदाव्रत जैसे चंचल मन लिये सारे शहर में चक्कर काटता रहा।

घर लौटते ही मन्दाकिनी पूछती, "क्यों रे, तुझे क्या हुआ है? सारे दिन कहाँ रहता है?"

सदाव्रत के पास उत्तर देने को कुछ नहीं होता। इसीलिए चुप रहता। कैसे कहता कि वह कहाँ रहता है? कैसे कहे, वह किसके साथ सारा दिन काटता है? असल में वह कहीं भी नहीं जाता। किसी के साथ मुलाक़ात नहीं करता। उधर केदार बाबू का बुख़ार भी बढ़ गया होगा। उस दिन डॉक्टर को लेकर गया। फिर उस ओर जा नहीं पाया। शायद उन लोगों को उसकी ज़रूरत भी नहीं है। मन्मथ है ही। वही देख-भाल कर लेगा। और वह सदाव्रत गुप्त! वह मास्टर साहब की जिन्दगी से शायद मिट ही जायेगा। इसके बाद से रोज़ सुबह वह गाड़ी लेकर 'सुवेनीर इंजीनियरिंग फ़ैक्टरी' के ऑफ़िस में जाकर बैठेगा। एयर-कंडीशन्ड कमरा। उसी के

अन्दर सुबह का सूर्य शाम को पश्चिम में जाकर छिप जायेगा। और हर महीने उसे मिलेंगे दो हज़ार रुपये। किसी की चूँ करने की हिम्मत नहीं होगी। किसी में बदला लेने की हिम्मत नहीं होगी। कारण, सदाव्रत गुप्त 'सुवेनीर इंजीनियरिंग' का परचेज़िंग ऑफ़िसर। मिस्टर बोस का भावी जमाई। मिस्टर बोस की लड़की का पति। मिसेज़ मनिला गुप्ता का हसबैंड।

मन्दाकिनी ने पूछा, "अरे हाँ, सुनो, यह कैसा नाम? इस नाम का मतलब क्या होता है?"

शिवप्रसाद बाबू, "क्यों?"

"माने, मलिना सुना है, लेकिन मनिला तो सुना नहीं।"

"अगर कभी नहीं सुना तो अब सुन लोगी। नाम, नाम ही है, नाम का मतलब होना ही चाहिए, यह किसी ने लिख दिया है क्या? क्यों, सदाव्रत कुछ कह रहा था?"

"अरे नहीं, वह क्या कहेगा? तुम जो अच्छा समझोगे वही होगा।"

शिवप्रसाद बाबू—"अरे, उस दिन देखा न! इसीलिए चटपट ठीक कर दिया। मिस्टर बोस तो कब से कह रहे थे, मुझे ही समय नहीं मिल रहा था। इसीलिए ज़रा देरी हो गयी। लेकिन उस दिन का हाल देखकर..."

"क्या देखा? मुझसे तो कुछ नहीं कहा?"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "रोटेरी क्लब की एक मीटिंग से आ रहा था। अचानक देखता हूँ चौरंगी के फ़ुटपाथ पर खड़ा एक लड़की से बात कर रहा है।"

"कौन? अपना सदाव्रत?"

"यह सब देखकर चार भले आदमी क्या कहेंगे, तुम्हीं कहो! मुझे जो पसन्द नहीं है, देखता हूँ वही हो रहा है। रास्ते में हर मोड़ पर देखता हूँ ट्राउज़र और हवाई-शर्ट पहने यंग छोकरे गप्प लगा रहे हैं। या चाय की दूकान पर बैठे-बैठे सारा दिन काट देते हैं। और जानती हो, मैं जब दिल्ली गया था, दो-चार दिन वह ऑफ़िस गया था। लेकिन वहाँ बैठकर कुछ काम-काज नहीं देखता था, सिर्फ़ यार-दोस्तों को टेलीफ़ोन किया करता था।"

शिवप्रसाद बाबू को ज्यादा बात करने का समय नहीं रहता। "लड़के की ओर इतने दिन नज़र नहीं रखी थी। एकदम हाथ से निकलने ही वाला था। बाद में पता नहीं कब क्या कर बैठे? कलकत्ता का कुछ भी ठीक नहीं है। हम लोग जो पब्लिकमैन हैं, दिन-रात हर समय काम-काज ही लिए

रहते हैं। लड़के-लड़कियों और बीवी को कब देखें ! तब तो देश का काम छोड़-छाड़कर ऑफ़िस से आकर बच्चों को पढ़ाने बैठ जाना चाहिए। या बीवी को लेकर सिनेमा दिखलाने ले जाना चाहिए। वह सब बाबुओं के लिए ही ठीक है। मेरे ऑफ़िस के बाबू लोग भी वही करते हैं। यह उन लोगों को ठीक भी लगता है।"

हिमांशु बाबू को सब-कुछ पता रहता था। बोले, "मुझे तो इतना पता नहीं था। तभी उस दिन छोटे बाबू सब खोद-खोदकर पूछ रहे थे।"

"सदाव्रत ? वह ऑफ़िस कब आया था ?"

"यहीं, आप जब नहीं थे ! मुझसे सब पूछने लगे—जादवपुर की अपनी कॉलोनी में शरणार्थियों की कोई कॉलोनी थी या नहीं ! हम लोगों ने गुंडे लगवाकर कॉलोनी तहस-नहस करवा दी है या नहीं !"

"इसके बाद ? और क्या पूछा ?"

"कोई बूढ़ा आदमी मर गया है या नहीं, यहीं सब !"

"तो तुमने क्या कहा ?"

"हम लोग तो किसी को मारना नहीं चाहते थे। हम लोगों ने तो सबसे चले जाने को ही कहा था। इस पर भी अगर कोई मर गया हो तो उसकी मरने की उम्र हो गयी थी। हम इतने निर्मम नहीं हैं कि किसी को जानकर मार डालें।"

"ठीक कहा तुमने। यह सुनकर उसने क्या कहा ?"

"छोटे बाबू की उम्र कम है। सुनकर पूछने लगे, 'कोई कम्पन्सेशन देने की व्यवस्था हुई है या नहीं ?' मैंने कहा, 'एक्सिडेंट इज़ एक्सिडेंट !"

"यह क्यों नहीं कहा कि रॉयट के दिनों में हज़ारों आदमी मारे गये, तब क्या उन सभी को कम्पन्सेशन मिलना चाहिए ?"

इसके बाद अचानक बात बदलकर बोले, "जाने दो, ये सब बातें सुनकर तुम्हें कुछ भी जवाब देने की ज़रूरत नहीं है। इन्हीं सब कम्युनिस्टों के साथ रहते-रहते ये सब फ़िज़ूल के आइडिया हो गये हैं। मैंने इस बार दूसरा ही इन्तज़ाम कर दिया है। अगर इस बार आये तो ऐसी बातों का कोई जवाब मत देना। और…"

टेलीफ़ोन के बजते ही बात रुक गयी। रिसीवर उठाकर बात शुरू करते ही चेहरा खिल गया।

बोले, "अरे, क्या खबर है ? आपके बारे में ही सोच रहा था। नोमीनेशन निकल गया है। सुना है न ?"

उधर से मिस्टर बोस ने कहा, "अच्छा? मेरी कन्स्टीट्यूएंसी से पार्लामेंट में कौन जा रहा है ?"

"अरे, आपको अभी तक पता नहीं है ?"

मिस्टर बोस—"लेकिन मिस्टर साहा ने इतना चन्दा दिया है !"

"कहाँ चन्दा दिया ?"

"अरे वाह, आपको नहीं मालूम क्या ? फ़्लड रिलीफ़ फंड में मिस्टर साहा ने फॉर्टी थाउजेंड रुपीज डोनेशन दिये हैं। और नॉमीनेशन देने के वक्त···हाँ, तो सी० पी० आई० का कैंडीडेट कौन है ?"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "टेलीफ़ोन पर सब बातें कहना ठीक नहीं होगा। मैं आपको सब बतलाऊँगा। सेन्टर ने इस बार वेस्ट बंगाल के हाथ काट दिये हैं।"

"किस तरह ?"

"अरे, आपको पता नहीं है ? दिल्ली से नेहरूजी का डायरेक्टिव आया है। किसी भी कैंडीडेट को इलेक्शन में लूज़ करने पर बैक-डोर से कैबिनेट में नहीं लिया जायेगा।"

"यह बात है ?"

"हाँ, इसीलिए तो इतनी स्क्रूटनी चल रही है !"

मिस्टर बोस ने बीच में ही कहा, "अरे हाँ, एक बात ! मनिला कह रही थी···"

"मनिला ?"

"हाँ, कह रही थी सदाव्रत के साथ एक बार इण्ट्रोड्यूस्ड होना चाहती है···एक चाय की पार्टी में।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "बड़ी अच्छी बात है। ज़रूर-ज़रूर !"

"माने लाइफ़-पार्टनर को एक बार ज़रा देखना चाहती है। वैसे मैंने उसे अच्छी तरह से ही टेस्ट कर लिया है, पता है ? सदाव्रत बड़ा ही इन्टेलिजेण्ट लड़का है। मैंने जो भी क्वेश्चन किये, सबके सेटिस्फ़ैक्टरी आन्सर दिये। लेकिन आजकल के लड़कों में जो होता है, ज़रा प्रो-रेड लगा।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "नहीं-नहीं, असल में मैंने भी पहले यही सोचा था। मतलब मुझे भी यही सन्देह था। मैंने एक दिन उससे काफ़ी देर तक बात की। देखा, सदाव्रत प्रो-कम्युनिस्ट भी नहीं है। एंटी-कम्युनिस्ट भी नहीं है।"

"तब फिर क्या है ?"

"असल में तरह-तरह का लिटरेचर पढ़ा है न। और इस समय कलकत्ता में तरह-तरह के एलिमेंट्स भरे पड़े हैं। वह असल में नॉन-कम्युनिस्ट है।"

मिस्टर बोस ने कहा, "लेकिन प्रो-कम्युनिस्ट ही हो या एंटी-कम्युनिस्ट ही हो, इट मैटर्स वेरी लिटिल टू मी! मैं उसको रेजिमेण्टेशन करके ठीक कर लूँगा।"

"तो कब रख रहे हैं ?"

मिस्टर बोस ने कहा, "वह मैं ठीक करके आपको बतला दूंगा। कुछ ही दिनों में मेरे स्टाफ का एक फंक्शन है। 'फाउन्डर्स-डे' की ख़ुशी में हम लोगों के ऑर्गनाइज़ेशन की ओर से एक फंक्शन होनेवाला है। उसी दिन मिलें तो कैसा रहेगा ?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। जिस किसी दिन भी आप ठीक समझें।"

"ठीक है। आप रहिएगा। आपकी मिसेज़ भी रह सकती हैं, और मनिला और मैं तो रहेंगे ही। और सदाव्रत। और किसी को आप रखना चाहते हैं ?"

"नहीं-नहीं, बड़ा अच्छा आइडिया है।"

"उसी दिन दोनों एक-दूसरे को जानेंगे। हम लोगों के समय में जो हुआ सो हुआ, आजकल, आप जानते ही हैं, ज़माना बदल गया है। लाइफ़-पार्टनरों को एक-दूसरे को समझ लेना चाहिए बिफोर दे मैरी।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "यू आर एब्सोल्यूटली करेक्ट, मिस्टर बोस! आपके साथ कम्प्लीटली सहमत हूँ।"

कहकर शिवप्रसाद गुप्त ने फ़ोन रख दिया।

□ □ □

इंडिया गवर्नमेंट भी बैठी नहीं थी। सेकंड फाइव-इयर प्लान तैयार हो गया था। सिर्फ़ सुवेनीर इंजीनियरिंग ही नहीं, इंडिया में और भी बहुत-सी हैवी इन्डस्ट्री तैयार करनी होगी। सेकंड-फाइव-इयर प्लान में मुख्य बात यही थी। इस प्लान के बाद नेशनल इन्कम ट्वेन्टी-फाइव परसेंट बढ़ जायेगी। हर आदमी की इन्कम एट्टीन परसेंट बढ़ जायेगी। जबकि फर्स्ट फाइव-इयर प्लान में सिर्फ़ टेन परसेंट ही बढ़ी थी। इस बार अस्सी मिलियन पाउन्ड खर्च करके दुर्गापुर में ब्रिटिश फ़र्म के साथ एक स्टील प्लान्ट तैयार होगा।

कलकत्ता भी जगमगा रहा है। अढ़ाई हज़ार वर्ष के बाद बुद्ध का

'महापरिनिर्वाण जयन्ती' उत्सव मनाया गया है। दलाई लामा और पंचन लामा कलकत्ता आये हैं। और आये हैं चाऊ-एन-लाई, चाइना के प्राइम-मिनिस्टर। इंडिया के सारे शहरों में बड़े समारोह के साथ उनका स्वागत होगा। सबसे ज़्यादा तैयारियाँ कलकत्ता में हुई हैं। कलकत्ता के लोग ही शायद उसके भक्त ज़्यादा हैं। अखबारों में बड़े-बड़े फोटो छापे गये। चाऊ-एन-लाई नेहरूजी के जन्मदिन पर उपहार देने के लिए एक शीशी भरी गोल्डफिश, लाल-नीली रंग-विरंगी मछलियाँ और एक मृगछौना लाये हैं। फोटो देखकर सभी खुश हुए। पंडित नेहरू के चेहरे पर भी मुसकराहट थी और चाऊ-एन-लाई के चेहरे पर भी हँसी जैसे रुक नहीं रही थी।

रिक्रिएशन क्लब के अन्दर भी काफ़ी शोरगुल हो रहा था। कम्पनी ने स्टाफ़-रिक्रिएशन के लिए तीन हज़ार रुपये सेंक्शन किये हैं। सभी ऑफ़िसों में यही हाल है। जिस कलकत्ता में कभी सिर्फ़ दो या तीन थियेटर हाउस ही चलते थे, वहीं मुहल्ले-मुहल्ले में थियेटर हैं। मण्डप लगाकर, पाल टाँगकर मैदान के बीच नहीं। हॉल किराये पर लेकर। अब तीन घंटे के लिए पब्लिक स्टेज का किराया होता है तीन-चार सौ रुपये। लगता है तो लगे। मिस्टर बोस जैसे लोग देंगे। एक-एक आर्टिस्ट दस-दस जगह दसियों क्लबों में रिहर्सल करके भी डिमाण्ड पूरी नहीं कर पाता। यही बड़ा नगर, इसके बाद अगले ही साल भवानीपुर। सिर्फ़ क्या कलकत्ता में ही ? कलकत्ता के बाहर भी यही हाल है। उन सब पार्टियों के आने पर कुन्ती कहती, "नहीं साहब, इतनी दूर जाने का वक़्त मेरे पास नहीं है।"

पार्टी कहती, "आपको गाड़ी से ले जायेंगे, फिर पहुँचा भी देंगे।"

कुन्ती गुहा कहती, "माफ़ करिये, मेरे भी तो शरीर नाम की कोई चीज़ है या मैं पत्थर हूँ !"

इसी तरह कितने ही लौट जाते। वे लोग कितनी मुश्किल से पता लगाते-लगाते आते और उन्हें सूखे मुँह लौट जाना होता।

कुन्ती कहती, "यही तो चार दिन हैं। उमर ज़्यादा होने पर तो कोई बुलाने आयेगा नहीं।"

वन्दना कहती, "तब माँ और बुआ का पार्ट करने बुलायेंगे !"

श्यामली भी होती। तीन फ़ीमेल रोल जहाँ भी होते तीनों की मुलाक़ात हो जाती। रिहर्सल के समय एक साथ चाय पीतीं, बातें करतीं। रिहर्सल के बाद एक साथ फिर किसी दूसरे क्लब में रिहर्सल के लिए जातीं। इसी तरह सारे कलकत्ता में घूमतीं।

श्यामली और वन्दना दोनों ही उस दिन अवाक् रह गयीं।

वन्दना ने कहा, "उस आदमी से तू इतनी बुरी तरह क्यों पेश आयी थी ? वह कौन है ? जानती है क्या ?"

कुन्ती—"जानती नहीं हूँ ? वह एक दिन मेरे पीछे लगा था !"

"इसके माने ?"

"मेरे साथ दोस्ती करने का भाव लिये क्लब के रिहर्सल में जा बैठता था। टैक्सी में ले जाकर घुमाना चाहता था। असल में ऐसे लड़कों का उद्देश्य अच्छा नहीं होता।"

वन्दना बोली, "मेरे पीछे भी इसी तरह एक लड़का लगा था।"

"तूने क्या किया ?"

"मैं काफ़ी दिनों तक उससे मिलती रही। रोज़ मुझे सिनेमा दिखलाता, रेस्टोरेंट में ले जाकर खिलाता। आख़िर एक दिन मैंने कहा, मुझे अपने घर ले चलो। अपनी माँ और पिताजी से मिला दो। सो नहीं।"

कुन्ती—"यही तो मज़ा है। सभी दस-बारह रुपये में मज़ा लूटना चाहते हैं। चाय पिलायेंगे, टैक्सी में घुमायेंगे, कभी-कभी साड़ी-गहने भी खरीद देंगे और शादी की बात उठते ही हवा! आजकल इस क्लास के लड़के कलकत्ता में बहुत हो गये हैं।"

लड़कियों में से कोई रहती बेहाला, कोई टालीगंज और कोई ठेठ बहूबाज़ार में। सभी अपनी-अपनी समस्याएँ लिये रहतीं। फिर क्लब के रिहर्सल में ही मुलाक़ात होती। तब एक-दूसरे के डिब्बे से पान लेतीं, ज़र्दा खातीं। इसके बाद एक दिन स्टेज पर जाकर रंग-पाउडर, मैक्स फैक्टर पुतवाकर परचुला का जूड़ा लगाकर 'प्ले' कर आतीं। फिर कुछ दिन किसी से मुलाक़ात नहीं होती।

मि० बोस उस दिन काफ़ी देर तक अपने चैम्बर में बैठे थे। दिल्ली की कितनी ही करॅसपॉन्डेंस बाकी पड़ी थी। उसको निबटाया। स्टेनोग्राफर को बुलाकर एक नोट देकर काम खत्म। फैक्टरी के एक कोने में स्टाफ-टिफिन-रूम है। वहाँ की आवाज़ कुछ-कुछ सुनायी देती थी। छुट्टी के बाद वे लोग रिहर्सल कर रहे थे।

"डैडी !"

टेलीफ़ोन उठाते ही लड़की की आवाज़ सुन मि० बोस नरम पड़ गये।

"मनीला ! तुम कहाँ से ? न्यू एम्पायर से ? यहीं चली आओ, एक साथ क्लब चलेंगे। आई एम रेडी ! वह कौन ?"

उधर शायद रिहर्सल भी हो चला था। कुछ ही दिनों बाद प्ले होगा! एक महीने से 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के स्टाफ थियेटर का रिहर्सल चल रहा है। कम्पनी ने रिक्रिएशन के लिए तीन हजार रुपये सैंक्शन किये हैं। इसी में स्पोर्टस् हैं, इनडोर गेम्स हैं, फैन्सी फेयर है और है ड्रामा। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग' के 'फाउन्डर्स-डे' के मौक़े पर यह फंक्शन हमेशा होता आया है।

मिस्टर वोस ने कहा था, "मुझे प्रेसिडेंट क्यों बनाया है? तुम लोग किसी साहित्यिक-वाहित्यिक को क्यों नहीं पकड़ लाते?"

सेक्रेटरी ने कहा, "नहीं सर, साहित्यिक लाने पर अखबारों में फ़ोटो नहीं छपेगी। इससे तो अगर किसी डेली-पेपर के एडीटर को चीफ़ गेस्ट···"

ठीक है। वही इन्तज़ाम हो गया। मिस्टर वोस के एक टेलीफ़ोन से ही काम हो गया। कुन्ती वगैरह इसीलिए रात-दिन लगकर रिहर्सल कर रही थीं। उस दिन भी रिहर्सल के बाद कंकरीट विछे लम्बे रास्ते से सभी बाहर आ रहे थे। कुन्ती गुहा, वन्दना, श्यामली चक्रवर्ती और दूसरे को-एक्टर्स। सभी प्ले करेंगे। सामने ही गेट था। गेट बन्द था। गेट पार करते ही ट्राम-रास्ता है। वहीं से ट्राम में बैठकर कुन्ती गुहा, श्यामली, वन्दना—सभी अपने-अपने घर चले जायेंगे। सभी ड्रामे के बारे में ही बातें कर रहे थे। ड्राप सीन उठने के बाद से लाल फ़ोकस कुन्ती के ही चेहरे पर पड़ेगा। कुन्ती सिर उठाये उसी ओर ताकती रहेगी। हाथ जोड़े एक श्लोक पढ़ेगी।

संस्कृत श्लोक। इसके बाद बैक-ग्राउन्ड से वॉयलिन पर एक सैड-ट्यून बज उठेगी।

"यह तो मैनेजिंग डायरेक्टर की गाड़ी आ रही है!"

"बड़े साहब इतनी देर तक ऑफ़िस में थे?"

कुन्ती गुहा, वन्दना, श्यामली ने भी पीछे मुड़कर देखा। कंकरीट के रास्ते से एक लम्बी ऑटोमोबाइल जैसे गिजाई की तरह रेंगती उन लोगों की ओर आ रही थी। अन्दर रोशनी थी।

कुन्ती वगैरह सड़क छोड़कर खड़ी हो गयीं।

अन्दर थे मैनेजिंग डायरेक्टर और उनकी लड़की। लड़की ही ज़्यादा देखने के काबिल थी। गोरा-चिट्टा रंग। क़ीमती प्योर सिल्क की पीली साड़ी, जिस पर तोते के रंग का हरा चौड़ा बॉर्डर। सिर पर बड़ा-सा स्काई-स्क्रेप का जूड़ा।

सभी सहमकर रास्ता छोड़ खड़े थे। गाड़ी के सर-सर करते गेट के

बाहर निकलते ही फिर से सब सड़क पर आ गये।

कुन्ती ने पूछा, "साथ में शायद आपके बड़े साहब की लड़की थी ?"

"हाँ, मनिला बोस। उनकी माँ मेनिला बोस कहकर पुकारती हैं।"

कुन्ती, वन्दना, श्यामली जैसे अपनी ही नज़रों में अचानक बड़ी छोटी हो गयीं। एक छोटी-सी घटना ने जैसे तीनों को बहुत छोटा कर दिया था। एक मिनट भी नहीं लगा।

सेक्रेटरी ने कहा, "जल्दी ही उनकी शादी होनेवाली है न ! इसी से आज ख़ूब सजी हैं।"

श्यामली ने पूछा, "शादी कहाँ हो रही है ?"

"बहुत बड़े आदमी के साथ ! बालीगंज में एक पॉलिटिकल सफरर हैं। शिवप्रसाद गुप्त नाम है। उन्हीं के लड़के के साथ।"

कुन्ती के सिर पर जैसे किसी ने पत्थर मार दिया।

"शिवप्रसाद गुप्त के लड़के के साथ ? क्या नाम है ?"

सेक्रेटरी—"सदाव्रत गुप्त !"

बात जैसे कान के अन्दर नहीं जा पायी। सिर, नाक, कान—सब जैसे झन-झन करने लगे।

सेक्रेटरी तब भी कहे जा रहे थे, "वही सदाव्रत गुप्त ही तो आजकल अपने परचेजिंग ऑफ़िसर होकर आये हैं। दो हज़ार रुपये सैलेरी है।"

□ □ □

इतने दिन तक कुन्ती ने कलकत्ता शहर को एक तेज़ धारवाले औज़ार की तरह व्यवहार किया था। कलकत्ता के जुलूस, कलकत्ता की अपनी भूख, कलकत्ता का अपना पाप, कलकत्ता का अपना इतिहास सभी कुन्ती के लिए औज़ार थे। उन्हीं औज़ार या यूँ कहिये हथियारों से वह कलकत्ता को जीतने निकली थी। यह जैसे ख़ुद के ही खिलाफ़ लड़ाई थी। कुन्ती का ख़याल था यह कलकत्ता उसका अपना ही है। वह जिस तरह भी चाहे अपनी मरज़ी के मुताबिक इससे काम लेगी। वह कलकत्ता का भोग करेगी, कलकत्ता को प्यार करेगी। और ज़रूरत होने पर कलकत्ता को लात भी मारेगी। बहुत दिन पहले ऑकलैंड हाउस के बड़े बाबू ने ही इसका श्रीगणेश कराया था। उन विभूति बाबू ने ही शुरू-शुरू में उसकी आँखें खोली थीं। कहा था—'अख़बारों में, किताबों में, सभी जगह लिखा पाओगे, कलकत्ता के लोग ग़रीब हैं। यहाँ के लोग अधखाये सोते हैं। लेकिन वास्तव में इतना ब्लैक रुपया इंडिया में और कहीं भी नहीं है।'

कुन्ती तभी पहली बार ब्लैक शब्द का मतलब समझी थी। ब्लैक रुपया किसे कहते हैं, कैसे कमाया जाता है, फिर किस तरह वह ब्लैक रुपया खर्च किया जाता है, वह सब भी सीखा।

उन्हीं विभूति बाबू ने ही कहा था, "वर्ल्ड में जितना सब ब्लैक रुपया है, यहाँ—इस कलकत्ता में इकट्ठा होता है।"

कुन्ती ने आश्चर्य से पूछा, "क्यों, यहाँ इस कलकत्ता में क्यों आता है?"

"आता है, क्योंकि इंडिया में यहीं सोने का दाम सबसे ज़्यादा है।" तभी तो काली मन्दिर के पण्डों की खोलियों में, या फिर पद्मरानी के फ़्लैट में कुन्ती ने उस कलकत्ता को देखा था। न किसी का नाम जानती थी, न किसी का नाम जानने की कोशिश ही की। सिर्फ़ पास में सोने के लिये घंटे-भर में सौ-दो-सौ रुपये तक कमा लेती। वह रुपया गाढ़ी कमाई का रुपया होता। एड़ी-चोटी का पसीना एक करके कमाई का होता। यह उसने कभी उन लोगों से नहीं पूछा।

सोना बेचकर रुपया कमाया है या सुपारी बेचकर कमाया, यह उसने कभी भी नहीं जानना चाहा। रुपया पाते ही कुन्ती खुश होती आयी है। रुपये की जाति के बारे में कभी सिर नहीं खपाती। जब रुपया ही चाहिए तो जैसे हो रुपया कमाना चाहिए—वह ब्लैक रुपया हो या ह्वाइट। तुमने क्लर्की करके रुपया कमाया है, या शराब का धन्धा करके कमाया, इससे उसे कोई मतलब नहीं है। रुपये पर तीन सिंह खुदे होना ही काफ़ी है।

इतने दिन यही मानकर कुन्ती ने कलकत्ता की छाती पर राज किया। कभी चेहरे बेचकर राज किया था तो कभी चेहरा उधार देकर। लेकिन शायद आज ही पहली बार उसे अपनी ज़िन्दगी से घृणा हुई। किसी एक मनिला बोस को देख अपने ऊपर घृणा हुई।

कुन्ती शायद थोड़ी देर के लिए नर्वस हो गयी। पूछा, "लड़की शायद काफ़ी पढ़ी-लिखी है?"

स्टाफ के लोगों को सब-कुछ मालूम है। वे लोग मिस्टर बोस की नस-नस जानकर बैठे हैं। उन्हीं लोगों ने बताया, "दार्जिलिंग के मिशनरी स्कूल में पढ़ती थी। वहाँ से पास करके हाल ही कलकत्ता आयी है।"

"मिस्टर बोस का घर कहाँ है?"

"घर माने?"

"माने कलकत्ता का पता?"

उन लोगों ने कलकत्ता का पता भी बतला दिया। कुन्ती ने मन-ही-मन एल्गिन रोड का पता याद कर लिया।

"क्यों ? मिस्टर बोस का पता जानकर क्या करेंगी ?"

कुन्ती ने कहा, "ऐसे ही, ज़रा जान रखने की इच्छा हुई।"

जिस समय कुन्ती घर लौटी रात के बारह बजे थे। कालीघाट की ओर वाली सड़क सुनसान पड़ी थी। इस नये मुहल्ले में आने के बाद से रात को देरी हो जाने पर उसे डर नहीं लगता। पद्मरानी के फ़्लैट से रात को एक बजे निकलने पर भी रिक्सा-टैक्सी सब-कुछ मिल जाता।

मकान-मालकिन ताई विधवा औरत थी। गोद की लड़की को लिये विधवा हुई थी। उस लड़की की शादी हो चुकी है। अब जमाई ससुराल आकर रहता है। विधवा को देख-भाल करने वाला मिल गया। पास का जो कमरा खाली था, वही कुन्ती को उठा दिया है।

ताई किसी-किसी दिन पूछती, "हाँ, बेटी, इतनी रात तक कहाँ थी ?"

"नाटक था न !"

"तो नाटक क्या इतनी रात तक होता है ? रात के एक बजे तक ?"

कुन्ती कहती, "नाटक तो रात के साढ़े दस बजे ही पूरा हो गया था, ताई ! लेकिन हम लोगों को तब भी काफ़ी देर तक रुकना होता है। नाटक पूरा होते ही चट से तो आ नहीं पाते। हम लोगों को ड्रैस वगैरह सम्हाल कर हिसाब मिल जाने पर तब कहीं जाकर छुट्टी मिल पाती है।"

उस दिन सुनसान रात थी। कुन्ती अपने घर के दरवाज़े पर आकर खटखटाने लगी, "बूड़ी, ओ बूड़ी !"

कुन्ती को जैसे अजीब लग रहा था। अन्दर जैसे कोई बोल रहा था। इतनी रात तक जागकर क्या बूड़ी पढ़ रही है। लेकिन अन्दर तो अँधेरा है।

"बूड़ी, दरवाजा खोल ! ओ बूड़ी !"

अचानक एक घटना हो गयी। आधी रात के उस अँधेरे में धड़ाक से दरवाज़ा खुला और अन्दर से हड़बड़ाता कोई चेहरा ढँके निकला और फिर कुन्ती को धकेलकर अँधेरे में ग़ायब हो गया।

यह सब पलक झपकते हुआ। लेकिन उतनी ही देर में कुन्ती सब-कुछ समझ गयी।

"कौन ? कौन ? कौन ?"

कुन्ती की एक बार चीखने की इच्छा हुई। लेकिन कुछ सोचकर अपने को रोक लिया। कमरे के अन्दर अँधेरे में ज़रूर ही सन्नाटा मारे सो रही होगी। कुन्ती जैसे उसके साँस लेने की आवाज़ भी सुन रही थी।

कुन्ती अपना दिमाग़ और ठीक नहीं रख पायी। जल्दी से अँधेरे में ही स्विच दबाकर रोशनी करते ही देखा, सामने ही बिस्तरे के पास खड़ी बूड़ी काँप रही थी।

"कौन था वह, कह ? बोल जल्दी से ! बाहर कौन गया ?"

बूड़ी दीदी के सामने सिर नीचा किये अभी तक थर-थर काँप रही थी। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। बिस्तरा अस्त-व्यस्त हो रहा था।

कुन्ती ने आगे बढ़कर बूड़ी के बालों को मुट्ठी में कस लिया।

"अब कह मुँहजली, किसको घुसा रखा था कमरे में ? बिना जवाब दिये मैं नहीं छोड़ूँगी ! बोल !"

इस पर बूड़ी रोने लगी।

"तेरे रोने से डरनेवाली नहीं हूँ ! तूने किसे कमरे में घुसा रखा था, पहले कह ? तुझे कहना ही होगा ! तुझे आज ज़िन्दा नहीं छोड़ूँगी !" कहकर पता नहीं कमरे में क्या ढूँढने लगी। इसके बाद एक कोने में रखा तरकारी काटने का दराँता उठा लायी।

"ओ दीदी, मारो मत ! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मारो मत, और नहीं करूँगी !"

"तो कह, क्यों मुँह जलवाने मरी थी ? इतनी रात के समय किसे कमरे में घुसा रखा था, बोल ?"

बूड़ी फिर चुप ! दीदी के पैर पकड़कर सिर छुपाकर रोती रही।

"बोल न, मुँहजली ? तू बोलेगी नहीं !"

कुन्ती और गुस्सा नहीं रोक पायी। एकदम सिर तक उठाकर दराँता बूड़ी की खोपड़ी पर दे मारा। बूड़ी ज़ोर की चीख मारकर चुप हो गयी।

ताई ने शायद अन्दर से सुन लिया था। उनकी आवाज़ भी सुनायी दी। गले की आवाज़ इसी ओर आ रही थी, "ओ लड़की ! अरी, क्या हुआ ? उसे इतना मार क्यों रही है ? ऐसा क्या हो गया था? अरी लड़की !"

ताई शायद इसी ओर आ रही थीं। लेकिन कुन्ती का उस ओर ध्यान नहीं था। तब भी कहे जा रही थी, "उठ, मुँहजली, उठ, उठकर खड़ी हो !"

ताई कमरे में आयीं। बोलीं, "बूड़ी को मार क्यों रही हो, बेटी ? उसने क्या किया है ?"

"देखो न ताई, मैं रात-दिन मेहनत कर उसे आदमी बनाना चाहती हूँ, खून-पसीना एक कर पैसा कमाती हूँ, यह नालायक अन्दर-ही-अन्दर···"

"लेकिन इतना मार क्यों रही हो ? मर जायेगी ! उठो बेटी, तुम उठो ! दीदी मेहनत करते-करते पागल हो रही है, तुम्हें भी ज़रा समझना चाहिए।"

कुन्ती—"बाईस रुपये खर्च करके उस दिन इसके लिए किताबें खरीदीं। दो महीने की फीस देकर हेड मिस्ट्रेस के पाँव पकड़कर इसे स्कूल में भर्ती कराया। और यह···"

"अरे, छोटी है। इतनी देर तक जागी रह सकती है ? सारे दिन खाना-वाना बनाने के बाद आँख लग गयी होगी। लेकिन तुमने मुझे क्यों नहीं बुला लिया ? बुढ़ापे का शरीर है, नींद ही नहीं आती। मैं तो सारी रात पड़ी-पड़ी तारे गिना करती हूँ। मुझे पता होता तो मैं ही दरवाज़ा खोल देती।"

"तुम्हें पुकारने क्यों जाऊँगी, ताई ? इतनी बड़ी धींगड़ी लड़की के रहते तुम्हें तकलीफ़ दूँगी ? और सब मैं ही करूँ ? वह कुछ भी नहीं करेगी ? मैं खाना तक बनाकर रख गयी थी जिससे उसकी पढ़ाई का हर्ज न हो। अगर इतना भी नहीं कर सकती तो क्या करेगी ? सारा दिन आवारागर्दी करती फिरेगी ? तो मैं किसके लिए मरूँ ? अपने लिए ?"

कहते-कहते जैसे कुन्ती का गला भर आया। एक दिन बूड़ी की ही तरह कुन्ती ने भी बाहर निकलना शुरू किया था। वह तब जादवपुर कॉलोनी में रहती थी। इसके बाद सड़कों पर चक्कर काटते-काटते क्रमशः यहाँ आ पहुँची है। कोई आशा नहीं है, कोई भविष्य नहीं है। आज यहाँ, कल वहाँ करके किसी तरह चल रहा है। लेकिन एक आशा थी, बूड़ी आदमी बनेगी। बूड़ी को वह इस लाइन में नहीं आने देगी। बूड़ी को पता भी नहीं चलेगा। दीदी ने किस तरह इतना अपमान सहकर अपने पाँवों पर खड़े होने की कोशिश की है, वह सोच भी नहीं पायेगी। जिस समय 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' ऑफ़िस के बड़े साहब की लड़की को कुन्ती ने देखा था, उस समय भी उसे अपने ऊपर इतनी घृणा नहीं हुई थी। लेकिन घर आकर जो कुछ देखा, उसके बाद तो जैसे होश ही नहीं रहा।

कुन्ती ने कहा, "जाओ ताई, तुम सोओ जाकर, जागकर तुम क्यों परेशान होती हो ?"

"इन मरी आँखों में क्या नींद आती है ! नींद अगर आती तो फिर बात ही क्या थी !"

"नहीं ताई, तुम जाओ। कल सुबह उठकर तुम्हें फिर से गृहस्थी का काम करना होगा। तुम जाओ।"

कह-सुनकर कुन्ती ने ताई को अन्दर भेज दिया। आँगन पार करके ताई फिर अपने कमरे में चली गयी। बूड़ी तब भी कुन्ती के पास उलटी पड़ी थी।

ताई के जाते ही कुन्ती ने गुस्से में आकर कहा, "उठ, मुँहजली, उठ! यह ढोंग और किसी को दिखलाना। उठ!"

लेकिन बूड़ी ने फिर भी उठने का नाम नहीं लिया। कुन्ती ने अभी तक हाथ का बैग भी नहीं रखा था। वह टेबल पर रखकर कुन्ती कपड़े बदलने लगी। इसी साड़ी को पहनकर कल फिर निकलना होगा। सिर्फ़ तीन साड़ियाँ हैं। इन्हीं को अदल-बदलकर धोकर, इस्त्री करके पहनना होता है। साड़ी-ब्लाउज़ बदलते-बदलते बोली, "उठ, मैं कह रही हूँ, अब उठ भी! इसी उमर में तुम्हारी यह हिम्मत हो गयी है। मैंने जो सोचा भी नहीं था, वही हुआ। मैं सोचती हूँ बूड़ी बैठी-बैठी स्कूल का पाठ याद कर रही होगी, और देवीजी यहाँ अन्दर-ही-अन्दर मेरा मुँह झुलसवाने का इन्तज़ाम कर रही हैं!"

इसी के बाद घर के कोने की ओर देखा। रोज़ की तरह खाना ढँका रखा था। ढँकना हटाते ही देखा, दो थाली खाना था। बूड़ी ने भी नहीं खाया था।

"यह क्या, तूने खाना नहीं खाया, बूड़ी? यह क्या तमाशा है?" कहती-कहती फिर बूड़ी की ओर गयी—"अरे, उठ, खाना क्यों नहीं खाया, तुझे हुआ क्या है? उठ, फिर बदमाशी!"

कहकर बूड़ी का हाथ पकड़कर झटका देते ही चौंककर दो कदम पीछे हट आयी। जैसे साँप ने काट लिया हो। इसके बाद फिर से बूड़ी के बदन को छूकर देखा। पुकारा, "बूड़ी, ओ बूड़ी!"

झटका देते ही बूड़ी उलट गयी। सारा बदन बर्फ़ की तरह ठंडा पड़ गया था। गाल के ऊपर से होकर खून बह रहा था। कुन्ती के सिर पर जैसे बिजली गिरी। एक दिल दहलानेवाली चीख़ जैसे अन्दर से बाहर आने का रास्ता न पाकर छटपटाने लगी। बूड़ी के मुँह के पास मुँह लाकर कुन्ती पुकारने लगी, "बूड़ी, ओ बूड़ी!"

बूड़ी के मुँह, आँख, बदन, पैर—कहीं भी जान नहीं थी। कुन्ती उसी अँधेरे सुनसान कमरे में जैसे बिलकुल टूट गयी। क्या करे, समझ नहीं पा रही थी। चारों ओर देखा। कोई भी कहीं नज़र नहीं आ रहा था। बाहर उस समय दुनिया चुपचाप सो रही थी। बूड़ी को उसी हालत में छोड़ कुन्ती उठ खड़ी हुई। फिर दूसरा कोई चारा न देख ताई के कमरे की ओर ही

गयी। आगे के कमरे में ताई रहती है, और बगलवाले में लड़की-जमाई।

कुन्ती ताई के कमरे के दरवाज़े पर टोका लगाने लगी।

बूढ़े आदमियों को वैसे ही नींद नहीं आती। तिस पर दरवाज़े की आवाज़ सुनते ही हड़बड़ाती हुई उठ बैठी। बाहर आकर आश्चर्य से पूछा, "क्या बात है ? क्या हुआ ?"

"ताई, बूड़ी बोल नहीं रही।"

कहते-कहते गला भर आया।

"बोल क्यों नहीं रही ? क्या हुआ ? बात क्यों नहीं कर रही ? गुस्सा हो गयी है ?"

कुन्ती से खड़े नहीं रहा जा रहा था। बोली, "नहीं ताई, मुझे डर लग रहा है···"

ताई तब तक समझ गयी थी। कुन्ती के पीछे-पीछे अपना बूढ़ा शरीर लिये दौड़ती-भागती आयी। वहाँ आकर रुकी नहीं। सीधे जमाई के कमरे के सामने जाकर पुकारने लगी, "हरिपद, ओ हरिपद !"

लड़की-जमाई कब के सो चुके थे। पुकार सुनकर दोनों की नींद टूट गयी। वे लोग भी सब देखकर खड़े-के-खड़े रह गये।

□ □ □

तुम इस कलकत्ता में ही पैदा हुए हो। इस कलकत्ता की मधुगुप्त लेन के साधारण आदमियों के बीच पले हो, बड़े हुए हो। आज वंश-कौलीन्य की सीढ़ी लगाकर एक दूसरे समाज में घुस रहे हो। अब तुम्हें उस शंभू को भुला देना होगा। विनय, केदार बाबू—सभी को भूलना होगा। आज तुम शिवप्रसाद गुप्त के समाज के हो, मिस्टर बोस की सोसाइटी के मेम्बर हो। अब तुम्हारी निजी चिन्ता-समस्या सभी तुम्हारे समाज को लेकर है। आज अगर रिफ़्यूजियों का हाल देखकर दुःखी होगे तो अपनी उन्नति में ख़ुद ही रुकावट बन जाओगे। अब अगर केदार बाबू की भतीजी को साथ लिये दूकानों पर दवा खरीदते फिरोगे, केदार बाबू की टी० बी० को लेकर अपनी नींद ख़राब करोगे तो तुम्हें भी टी० बी० होगी। पहले अपने को देखो, फिर अपने समाज को। यहीं अपनी ख़ुशी और जोश की ख़ुराक ढूँढने की कोशिश करो। यहीं पर तुम्हें अपने अस्तित्व की सार्थकता मिलेगी। अच्छी तरह से आँखें खोलकर देखो, यहाँ डिनर है, यहाँ पार्टी है, यहाँ कॉस्मेटिक्स से छिपे चेहरे में भी प्रेम नाम की चीज़ है। यहाँ का सब-कुछ ही नाटक मत समझो। ये लोग भी रोते हैं, भूख लगने पर ये लोग भी सैंडविच

कुतरते हैं। परदे, गलीचे, सूट-टाई, रेडियोग्राम, टेलीविज़न के पीछे यहाँ भी आदमी मिलेंगे। इतनी-सी बात ध्यान रखो। यहाँ आकर तुम्हें लाभ ही लाभ है, नुक़सान नहीं है। यहाँ आने पर राजभवन, यहाँ आने पर है प्रेसिडेंट-एवार्ड, यहीं पर है पद्मश्री, पद्मभूषण और भारतरत्न !

सारा कलकत्ता घूमकर भी जैसे मन की हलचल का अन्त नहीं था।

सड़क पर रुकी गाड़ी में पीछे से कोई हाथ घुसा देता, "साहब, एक पैसा !"

फिर चलते-चलते एकदम सीधे जेस्सर रोड पकड़कर आसमान में खो जाता। अगर इसी तरह अचानक यहाँ से भाग पाता। गुण्डे अगर कॉलोनी को तहस-नहस कर डालें, तो रिफ्यूजियों को कॅम्पनसेशन दिये बिना भी काम चलता है। केदार बाबू की अगर अण्डे, मछली, गोश्त खरीदने की सामर्थ्य नहीं है तो स्टेट का उसमें क्या कसूर है ! सदाव्रत यहाँ क्यों पैदा हुआ ? इस हर तरह के दुःख-ग़रीबी, बेइन्साफ़ी और अत्याचार के इस अड्डे में !

उस दिन शंभू ने देख लिया। गाड़ी रुकते-रुकते भी काफ़ी दूर जाकर रुकी। सड़क के किनारे गाड़ी खड़ी करके सदाव्रत उतर पड़ा।

दूर से चप्पल फटकारता-फटकारता शंभू दौड़ा आ रहा था।

पास आते ही बोला, "तेरी ख़बर सुनकर बड़ी ख़ुशी हुई। हमारे क्लब में तुझे लेकर बात हो रही थी।"

"बात क्या है ? मुझे लेकर कौन-सी बात ?"

शंभू ने कहा, "तुझे दो हज़ार रुपये की नौकरी मिली है न !"

सदाव्रत अवाक् रह गया।

"किसने कहा ?"

"सुना है। बात सच है न ?"

"लेकिन तुझे किसने बतलाया ? तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

शंभू ने हँसते-हँसते कहा, "कुन्ती, कुन्ती गुहा की याद है ? अपने क्लब की वही लड़की !"

"हाँ, याद है, लेकिन उसे कैसे मालूम हुआ ?"

शंभू—"अरे, उसे सब मालूम रहता है। वे लोग तो सारा दिन घूमती-फिरती हैं। तरह-तरह के लोगों से मिलती हैं। वही कह रही थी। हम लोग तो कभी दो हज़ार रुपये का स्वप्न भी नहीं देख पायेंगे। सुनकर ही ख़ुश हो लेते हैं। एक ख़बर और भी सुनी।"

"कौन-सी ?"

"सुना, शादी हो रही है। बहू बड़ी ही सुन्दर है। सच, सुनकर बड़ी खुशी हुई, इसीलिए दुलाल दा से कह रहा था, हम लोग तो खाली घास काटने आये हैं, घास ही काटते रहेंगे। जिन्हें उठना था, ठीक उठ रहे हैं। देख, तूने मन लगाकर पढ़ाई की, हम लोगों की तरह आवारागर्दी नहीं की। तेरी उन्नति नहीं होगी तो क्या हम लोगों की होगी ?"

बाद में ज़रा देर रुककर कहा, "देख भाई, बुढ़ापे में बाल-बच्चे होने पर नौकरी के लिए तुझे ही पकड़ूँगा।"

सदाव्रत को ये सारी बातें अच्छी नहीं लग रही थीं। लग रहा था, जैसे उसे पकड़कर कलकत्ता के लोग चाबुक से मार रहे हैं। सभी को पता लग गया है कि उसने सभी के साथ दगाबाज़ी की है। सभी जान गये हैं कि इस दल को छोड़कर वह चुपचाप उस दल में जा मिला है। कॉलेज में पढ़ते समय केदार बाबू से जो कुछ सीखा था, उसे भुलाने की कोशिश कर रहा था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द के बारे में निबन्ध लिखकर वह क्लास में फर्स्ट होता आया है। आज जैसे वही ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और स्वामी विवेकानन्द उस पर हँस रहे हैं। सामने खड़े उसे चोर, झूठा, क्विज़लिंग कहकर अँगुली दिखला रहे हैं—वह देखो, इसी लड़के ने एक दिन इम्तहान की नोटबुक में लिखा था—'ग़रीबों से घृणा मत करो। ध्यान रखना, ये करोड़ों भारतवासी तुम्हारे भाई हैं। मनुष्य के कल्याण के लिए जो अपना जीवन निछावर करता है, वही आदर्श पुरुष है।'

उस ओर सामने की दीवार पर मोटर की हैडलाइट की रोशनी पड़ते ही सदाव्रत की नज़र उधर गयी। बड़ा-सा विज्ञापन लगा हुआ था। आँखों के सामने बड़े-बड़े अक्षर—'राष्ट्र की सेवा में हमारे प्रसिद्ध चाँदमार्का वनस्पति के पचीस साल।'

राष्ट्र की सेवा ही तो है। सदाव्रत मन-ही-मन हँस पड़ा।

राष्ट्र की सेवा के लिए ही 'सुवेनीर इंजीनियरिंग' की स्थापना हुई थी। राष्ट्र की सेवा के उद्देश्य से ही उसने दो हज़ार रुपये की नौकरी मंजूर की है। राष्ट्र की सेवा के लिए ही वह परचेज़िंग ऑफ़िसर हुआ है। सभी तो राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं। इंडिया के प्रेसिडेंट से लेकर सदाव्रत तक।

"तू हँस रहा है ? हम लोगों का हाल देखकर तो तुम लोगों को हँसी ही आयेगी !"

सदाव्रत ने बात काटी।

"तुम लोगों के क्लब का क्या हाल है ?"

शंभू—"क्लब के लिए ही तो कुन्ती गुहा के पास गया था।"

"लेकिन कुन्ती गुहा को छोड़कर क्या कलकत्ता में और आर्टिस्ट नहीं है ? सुना है, और भी तो दो-तीन सौ लड़कियाँ हैं।"

"लेकिन कालीपद ने तो कुन्ती को ही सिलेक्ट किया है। 'मरी मिट्टी' की 'शान्ति' के पार्ट के लिए कुन्ती को छोड़कर और कोई ठीक नहीं जमती। मैंने तो कुन्ती से यही कहा। लेकिन वह इस समय बड़ी मुश्किल में पड़ी है।"

"कैसी मुश्किल ?"

"उसकी एक छोटी बहन है। शायद मर ही जाती। उसी को लेकर कई दिनों से अस्पताल और घर एक किये है। एकदम मरने-मरने को थी। इन कुछ ही दिनों में सूरत बदल गयी है। उसी से तो तेरी नौकरी के बारे में सुना।"

सदाव्रत ने शंभू के चेहरे की ओर देखा। ऊपर से ख़ुश दीखने पर भी अन्दर से शंभू ख़ुश नहीं था। सदाव्रत अब उससे काफ़ी ऊँचाई पर है—शंभू आदि की पहुँच के बाहर। हज़ार कोशिश के बावजूद भी शंभू सदाव्रत तक नहीं पहुँच सकता।

इसी तरह शायद आदमी-आदमी में दूरी बढ़ती है। एक ही भौगोलिक सीमा में विभिन्न श्रेणियों को जन्म मिलता है। आदमी ख़ुद ही खाक़ा बनाकर बीच-बीच में लाइन खींच देता है। और आदमी ही कहता है कि लाइन के इस पार जो लोग हैं, वे हमारे दोस्त हैं, और जो दूसरी ओर हैं, वे दुश्मन हैं। वे और हम एक नहीं हैं।

अचानक उस ओर की फुटपाथ पर नज़र पड़ते ही सदाव्रत देखता रह गया। पहचाना-पहचाना-सा चेहरा था। सदाव्रत ने फिर अच्छी तरह से देखा। मन्मथ और शैल पास-पास चल रहे थे। सदाव्रत ने ठीक देखा न ? नहीं, ग़लत नहीं है। उसने ठीक ही देखा था। वे लोग सदाव्रत को नहीं देख पाये। दोनों बातें करते-करते चले जा रहे थे। दुनिया की किसी भी चीज़ का जैसे उन दोनों को होश नहीं था।

"मन्मथ ! मन्मथ !"

सदाव्रत ने एक बार बुलाने की भी कोशिश की। लेकिन फिर कुछ सोचकर नहीं पुकारा। हो सकता है आज भी दवा खरीदने निकली हो। हो सकता है केदार बाबू की बीमारी और भी बढ़ गयी हो। उस दिन डॉक्टर को पहुँचाने के बाद फिर कहाँ जा पाया ! जाने लायक उसके मन की हालत

भी नहीं थी। सच ही इसी तरह दिनों-दिन कितनी ख़राब बातें ज़िन्दगी में घर कर लेती हैं। कम-से-कम इस मुश्किल के समय उसे दूसरे ही दिन जाना चाहिए था। और यह भी हो सकता है कि उसके न जाने से किसी को कोई भी तकलीफ़ न हुई हो। तकलीफ़ नहीं हुई, आज मन्मथ का साथ होना इस बात का सबूत था। केदार बाबू की भतीजी अकेली भले ही कुछ न कर पाये, उसकी सहायता करनेवाला और भी एक है। इसलिए उसके बिना गये भी काम चलेगा। सदाव्रत ने मन्मथ को न बुलाकर अच्छा ही किया। वे लोग बातें करते हुए जा रहे हैं, जायँ। वह जाकर क्यों दाल-भात में मूसरचन्द बने !

घूमकर देखा, शंभू नहीं था। शंभू कब चला गया ? हो सकता है, जाते समय कहकर ही गया हो। सदाव्रत को ही ध्यान नहीं था। सदाव्रत ने गाड़ी में आकर इंजिन स्टार्ट किया। आज वह अकेला है। आज वह दूसरों सभी से ऊँचा उठकर उनसे अलग हो गया है। आज वह अपने दल से ठुकराया हुआ है।

□ □ □

अचानक पद्मरानी के फ़्लैट के सामने शोरगुल शुरू हो गया। पद्मरानी के फ़्लैट के सामने ही क्यों ! असल में पद्मरानी के फ़्लैट के अन्दर ही से शोरगुल की शुरूआत हुई थी।

ऐसा शोरगुल इस ओर रोज़ ही होता रहता है। या तो आदमी के ख़ून को लेकर, नहीं तो गाली-गलौज या मार-पीट लेकर। कुछ-न-कुछ लगा ही रहता। पद्मरानी की जगह अगर कोई ऐसी-वैसी औरत होती, तो कब की अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर काशी की राह पकड़ती।

कहीं कुछ भी नहीं। अचानक मार-पीट शुरू हो जाती। दो पार्टियाँ तफ़रीह करने आतीं। सारे दिन महफ़िल जमेगी सोचकर ही लड़कियों को किराये पर ठीक किया जाता। शराब मँगायी जाती, गोश्त आता, गाने के साथ तबला बजाने के लिए तबलची बुलाया जाता। ऐश करते-करते अचानक मार-पीट शुरू हो जाती। आलमारी, शीशा, टेबल, चेयरों की तोड़-फोड़ शुरू होती। सोडावाटर की बोतलें और काँच के गिलासों की फेंका-फेंकी शुरू होती। मार-पीट जब तक पूरी होती महफ़िल लड़ाई के मैदान में बदल चुकी होती। फिर पुलिस और दारोग़ा आते। उन्हें घूस देकर मामला दबाया जाता। तब पद्मरानी मुआवज़े के रुपये वसूलती। नकद रुपये। जहाज़ी बाबू लोगों के हज़ारों रुपये एक ही दिन में उड़ जाते।

इस बार कोई जहाज़ी नहीं था।

कानपुर, बनारस या इलाहाबाद—कहीं से एक छोकरा कलकत्ता आया था। इरादा था कलकत्ता देखेगा। बाप की राइस-मिल थी। धन्धा अच्छा चल रहा था। सी० पी० से राइस खरीदकर मिल में साफ़ कराकर गवर्नमेंट को सप्लाई किया जाता। लड़के की उम्र कम ही थी। पहली बार हाथ में पैसा आया था। बम्बई देख आया है। दिल्ली देख चुका है। सिर्फ़ कलकत्ता देखना बाकी था।

इसके बाद पता नहीं कैसे रास्ते में कुन्ती गुहा के साथ मुलाक़ात हो गयी। दोपहर को दोनों बड़ेबाज़ार की धर्मशाला से निकलकर टैक्सी में चिड़ियाखाना देखने गये। बॉटेनीकल गार्डन गये। वहाँ पहुँचकर दोनों ख़ूब घूमे। वहाँ से निकल किसी अकेली जगह की ज़रूरत महसूस हुई।

त्रिलोकनाथ ने कहा, "चलो, किसी होटल में कमरा ले लें।"

कुन्ती ने कहा, "होटल में कमरा लेने में काफ़ी रुपये लगेंगे।"

त्रिलोकनाथ ने कहा, "रुपया मेरे पास है। काफ़ी रुपया है।"

तो वहाँ से कुन्ती त्रिलोकनाथ को सीधे यहाँ ले आयी थी।

पद्मरानी अवाक् रह गयी। बोली, "अरे, टगर ! कहाँ से ?"

टैक्सी में सारे दिन कहाँ-कहाँ घूमी थी। आँख-मुँह जैसे एकदम लाल हो रहे थे।

'तेरी बहन का क्या हाल है, बेटी ?"

इतनी बातें करने का वक्त कुन्ती के पास नहीं। कहाँ से किस बाबू को लाकर घर में बैठाया है, वह भी ठीक से बतलाने का वक्त नहीं था। और पद्मरानी को भी इन बातों से कोई वास्ता नहीं था। लड़कियाँ कहाँ से किसे पकड़ लाती हैं, इससे उसे क्या मतलब ?

कुन्ती ने कहा, "एक बड़ी ह्विस्की की बोतल मेरे कमरे में भिजवा दो, माँ ! सुफल की दूकान से पराँठे और मसालेदार 'एग-करी'। ये रुपये !"

कहकर एक सौ रुपये का नोट पद्मरानी के हाथ में पकड़ा दिया। देकर ही अपने कमरे में बाबू को ले जाकर दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया। इसके बाद कमरे के अन्दर दोनों क्या करते रहे, इससे पद्मरानी को कोई मतलब नहीं। टगर ने अन्दर से जो कुछ ऑर्डर किया सिर्फ़ सप्लाई करती रही। कभी सोडा, कभी चाय, कभी पान-तम्बाकू और सिगरेट। एक के बाद दूसरा ऑर्डर। दोपहर के समय घर वैसे भी खाली रहता। उस समय सभी अपने-अपने कमरे में खुर्राटे भरते होते। किसी को पता नहीं चला,

टगर ने कितने रुपये कमाये, और कितने गँवाये।

शाम को पाँच बजे टगर अपने कमरे से निकलकर सीधी पद्मरानी के पास आ खड़ी हुई।

पद्मरानी ने पूछा, "क्यों बेटी, और कुछ चाहिए क्या ? एक छोटी ह्विस्की और भेजूँ ?"

उस समय कुन्ती का बुरा हाल था। जो आदमी तफ़रीह करने आया है, वह क्या यों ही छोड़नेवाला था ? चूसकर-चबाकर कुन्ती को बेहाल कर तब कहीं छोड़ा था।

कुन्ती ने कहा, "नहीं-नहीं, और कुछ नहीं चाहिए। मैं जा रही हूँ।"

"लेकिन तू तो चल दी, और तेरा बाबू कहाँ है ?"

"वह अभी तक सो रहा है। अभी तक उसका नशा नहीं उतरा है। मुझे एक बार अस्पताल जाना है, और नहीं रुक पाऊँगी।"

"तेरे बाबू के सोकर उठने पर क्या कहूँ ?"

"कहोगी क्या ? कह देना मैं चली गयी हूँ। मेरी बहन को आज ख़ून दिया जायेगा। ये रुपये ले जाकर दूँगी तब इंजेक्शन दिया जायेगा। छः बजे से पहले रुपये नहीं पहुँचाने पर अस्पताल बन्द हो जायेगा।"

कुन्ती जा ही रही थी—पद्मरानी ने पीछे से पुकारकर कहा, "बाकी रुपये नहीं लेगी ?"

कुन्ती—"बाद में हिसाब करूँगी, माँ। इस वक्त फ़ुरसत नहीं है।"

"उठकर अगर तेरा बाबू तुझे पूछे ?"

"कहना, मैं यहाँ नहीं रहती। मेरा नाम पूछने पर मत बतलाना।"

इसके बाद कुन्ती और नहीं रुकी। लेकिन शाम को साढ़े पाँच बजे ही त्रिलोकनाथ की नींद टूट गयी। उठकर देखा, कोई कहीं नहीं है। कमीज़ में सोने के बटन नहीं हैं। हाथ की रिस्टवाच भी ग़ायब है। पॉकेट का मनिबैग भी खाली है। खुदरा कुछ रुपये छोड़कर सौ-सौ रुपये का एक भी नोट नहीं है। नशा तब तक कम हो चुका था। क़ीमती असली ह्विस्की का नशा एकदम काफूर हो चुका था। त्रिलोकनाथ हाय-तोबा करने लगा। त्रिलोकनाथ की हाय-तोबा सुनकर गुलाबी, दुलारी, वासन्ती, बिन्दु, जो जहाँ थीं, दौड़ी आयीं।

पद्मरानी ने कहा, "तुम्हारे सोने के बटन, घड़ी और रुपये कहाँ गये, हम लोगों को क्या मालूम, बेटा ?"

त्रिलोकनाथ ने तरह-तरह से साबित करने की कोशिश की, कि उसके

सोने के वटन, रिस्टवाच और दो हज़ार रुपये लेकर छोकरी भाग गयी है।

पद्मरानी ने कहा, "लेकिन तुम लड़की लेकर मज़ा लूटने आये थे तो क्या वेहोश हो गये थे ? रुपया पास होने पर क्या इस तरह वेख़बर होते हैं, बेटा ?"

त्रिलोकनाथ फिर भी हाय-तोबा मचा रहा था।

पद्मरानी ने कहा, "देखो, वेटा, यहाँ तो हल्ला मचाओ मत। यहाँ मेरी लड़कियाँ रहती हैं। मैं तुम्हें यहाँ पर गोलमाल नहीं करने दूँगी। कलकत्ता में थाना है, पुलिस है। वहाँ जाओ न, बेटा। वहाँ जाकर कहो न कि लड़की को लेकर तफ़रीह करने पर तुम्हारा यह हाल हुआ है ! वे लोग तुम्हारी वात सुनेंगे। जाओ न, वेटा, वहाँ जाओ न !"

चीख़-पुकार सुनकर फ़्लैट का दरबान अन्दर आ गया। उसे देखकर शायद त्रिलोकनाथ थोड़ा डर गया। इसके बाद बाहर निकल गया। वाहर आकर लोग इकट्ठा करने की कोशिश की। अपना दल भारी करने की कोशिश करने लगा।

कलकत्ता के लोग। ख़ासकर चितपुर और सोनागाछी के लोग। वात-की-वात में भीड़ इकट्ठी हो गयी। पूछने लगे, "क्या हुआ, जनाव ?"

त्रिलोकनाथ ने अपनी जान में वहुत थोड़े में अपनी कहानी सुनायी। सव लोगों की सहानुभूति पाने की कोशिश की। सभी हँसते-हँसते वेहाल हो रहे थे।

"रंडीवाज़ी में रुपये गँवाकर अव वेहया की तरह चिल्ल-पों मचा रहे हैं ! अरे जनाव, सस्ते छुट गये। अभी तक जान बची हुई है ! और हँसी मत उड़वाइये। ठंडे-ठंडे खिसकिये !"

त्रिलोकनाथ ने देखा, अजीब शहर है। यह बनारस, दिल्ली, कानपुर, इलाहावाद, बम्वई या अहमदावाद नहीं है। यह कलकत्ता है। ऐसा अजीब शहर त्रिलोकनाथ ने सारी ज़िन्दगी में नहीं देखा था। सड़क पर लोगों की हँसी के सामने खड़ा नहीं रह पाया। भागकर जान वचायी।

अस्पताल का वार्ड बन्द होने ही वाला था।

कुन्ती जल्दी से अस्पताल के वार्ड-मास्टर के कमरे के सामने जाकर खड़ी हुई।

वार्ड-मास्टर ड्यूटी पर ही था। पूछा, "रुपये लायी हैं ?"

"हाँ," कहकर कुन्ती गुहा ने बैग खोलकर उसमें से सौ रुपये का एक नोट निकालकर दिया, "इससे काम चलेगा न ?"

वार्ड-मास्टर ने कहा, "फ़िलहाल इसी से चलेगा। बाद में जो लगेगा, आपको बतलाऊँगा।"

रसीद लेकर कुन्ती ने पूछा, "रोगी का इस समय क्या हाल है, बता सकते हैं ?"

"अभी तक अनकॉन्शस ही है। ब्लड देने पर लगता है, सब ठीक हो जायेगा। असल में काफ़ी वीक हो गयी थी न। एकदम ठीक होने में थोड़ा समय लगेगा। आप देख आइये न !"

"मुझे देखने देंगे ?"

"हाँ, जाइये न, छः बजने में तो अभी देर है।"

कुन्ती ज़ीने से ऊपर चढ़ने लगी।

□ □ □

तुम अपना काम किये जाओ और मैं अपना काम करूँगी। सभी लोग अगर काम को इसी तरह बाँटकर करें तो ज़रा भी मुश्किल नहीं होगी। मास्टर मन लगाकर लड़कों को पढ़ायें, लड़के भी मन लगाकर लिखा-पढ़ी करें। और लड़कों के गार्जियन नियमित रूप से फीस देते रहें। समाज एक इंजिन की तरह है। इंजिन के एक पुर्जे के साथ दूसरा पुर्जा इस तरह जुड़ा है कि एक भी पुर्जा अगर काम बन्द कर दे तो साथ-ही-साथ दूसरा भी बेकार हो जायेगा। इंजिन तब चलेगा ही नहीं, रुक जायेगा।

केदार बाबू कहते, "सोसायटी का भी तो वही हाल है, रे ! अगर मैं लड़कों को ठीक से नहीं पढ़ाऊँगा तो मेरे विद्यार्थी फेल हो जायेंगे। वे लोग आदमी नहीं बन पायेंगे। ऐसा होने पर देश रसातल में जायेगा न !"

मन्मथ कहता, "मास्टर साहब, आपकी तरह कितने लोग सोचते हैं। सभी रुपये लेते हैं और बस। लड़के पास हों या फेल, आदमी बनें या नहीं, उनकी बला से !"

"तुम चुप रहो !"

केदार बाबू नाराज़ हो जाते। कहते, "मैं अच्छा मास्टर हूँ, और सभी खराब हैं, यही कहना चाहते हो न ? खुशामद करने को तुम्हें और कोई जगह नहीं मिली ? तुम सोचते होगे, मैं तुम्हारी खुशामद में आ जाऊँगा ? मुझे वैसा ही आदमी समझा है ? मुझे बनाने चले हो ?"

गुस्से से केदार बाबू जैसे पागल हो जाते।

कहते, "तुम निकल जाओ, मेरे घर से निकल जाओ !"

मन्मथ जितना ही समझाने की कोशिश करता, "नहीं, मास्टर साहब,

मैंने ऐसा तो नहीं कहा। मेरा मतलब था सभी धोखा देते हैं।"

"सब लोग धोखा देते हैं और मैं सिन्सियरली काम करता हूँ न ? मैं धोखा नहीं देता ? यही आजकल जो बीमार पड़ा हूँ, लड़कों को देख रहा हूँ ? तुम्हारी ही पढ़ाई क्या ठीक से करा पा रहा हूँ ? उस दिन तुम्हारे पिताजी ने मेरी फीस भेजी। मैंने ली नहीं ? मैंने धोखा देकर पैसा नहीं लिया ?"

मन्मथ ने कहा, "लेकिन बीमारी में आप कैसे पढ़ायेंगे ? आप बीमार जो हैं।"

"बीमार, सिर तुम्हारा ! मैं तो ठीक हो गया हूँ।"

"लेकिन मास्टर साहब, आपका शरीर अभी भी कमज़ोर है। आपको अभी लेटे रहना चाहिए।"

केदार बाबू और नहीं रोक पाये। जल्दी से बिस्तरा छोड़कर उठ खड़े हुए। और भी आश्चर्य की बात। उठकर अलगनी से कुर्ता उतारकर पहन लिया, पैरों में चप्पल डाल लीं। इसके बाद छतरी लेने कमरे के कोने की ओर जाने लगे।

मन्मथ ने जल्दी से जाकर छतरी उठा ली। बोला, "आप क्या कर रहे हैं, मास्टर साहब ? आपका क्या दिमाग़ ख़राब हो गया है ?"

"...दिमाग़ मेरा खराब है या तुम लोगों का? तुम्हीं लोग तो 'बीमार-बीमार' कहकर मुझे ज़बर्दस्ती बिस्तरे पर सुलाए रखते हो। मैं क्या समझता नहीं हूँ ? तुम क्या यही चाहते हो कि लड़कों का साल ख़राब हो ? ग़रीब हैं, इसलिए वे लोग पढ़ेंगे-लिखेंगे नहीं ? छोड़ो, छतरी छोड़ो !"

और कोई रास्ता न देख मन्मथ ने अचानक बाहर आकर आवाज़ दी, "शैल, शैल, यह देखो मास्टर साहब बाहर जा रहे हैं !"

केदार बाबू शायद मन्मथ को ढकेलकर ही निकल जाते, लेकिन तब तक शैल आ पहुँची थी।

"क्या हुआ, काका ? तुम कहाँ जा रहे हो ?"

शैल को देखकर केदार बाबू ज़रा ढीले पड़ गये। बोले, "यहीं, ज़रा गुरुपद को पढ़ा आऊँ।"

"गुरुपद ?"

"हाँ, गुरुपद। जियोग्राफी में ज़रा कमज़ोर है। मैंने गुरुपद की माँ से वायदा किया था, गुरुपद को मैं पास करा दूँगा। अब अगर जाता नहीं हूँ तो बात टूटती है।"

केदार बाबू के हाल पर शैल हँसे या रोये, ठीक नहीं कर पा रही थी। काका को इतने दिनों बाद भी जैसे ठीक से समझ नहीं पायी थी।

केदार बाबू शैल की ओर देखकर विनती-भरे स्वर में बोले, "तू ज़रा भी फ़िक्र न कर, बेटी! मैं अब बिलकुल ठीक हूँ। मैं जाऊँगा और आऊँगा। नहीं तो तू समझती ही है, गुरुपद को सिफर ही मिलेगा। उसे देखनेवाला कोई नहीं है। बहुत ग़रीब है, बेटी!"

शैल ने गम्भीर होकर कहा, "तो गुरुपद को देखनेवाला कोई नहीं है, वह बड़ा ग़रीब है। और तुम्हें देखनेवाले लोग हैं? तुम बड़े रईस हो न?"

"अरे हट, तू मज़ाक कर रही है, मैं समझ गया हूँ!"

शैल का चेहरा वैसे ही गम्भीर रहा। बोली, "एक बार मैं बागमारी में पानी में डूबने गयी थी। उस दिन लोगों ने देखकर मुझे बचा लिया। लेकिन इस बार इस तरह मरूँगी, किसी को कानोंकान ख़बर भी नहीं मिलेगी। कोई भी नहीं जान पायेगा, कहे देती हूँ।"

"ऐं! तू जान-बूझकर डूबने गयी थी?"

केदार बाबू इतने दिन बाद जैसे आसमान से गिरे।

"तूने मुझे तो बतलाया नहीं, बेटी! मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं था। क्यों मन्मथ, तुम जानते थे?"

मन्मथ ने उस बात का कोई जवाब नहीं दिया। उसने कहा, "हम लोग सब जानते हैं, मास्टर साहब! आप अब सो जाइए। यह बीमारी का शरीर लिए बाहर मत निकलिए।"

"तो गुरुपद का क्या होगा?"

"गुरुपद के लिए गुरुपद सोच लेगा। आप क्या उसकी चिन्ता में अपना शरीर सुखा डालेंगे?"

केदार बाबू ने कहा, "तब ज़रा दूर चलकर वापस लौट आऊँगा—क्या कहती हो, बेटी? बस ज़रा दूर! यही आधा घंटे के लिए! क्यों री, बोल नहीं रही है? जाऊँ?"

शैल ने इस पर भी कोई जवाब नहीं दिया। केदार बाबू मन्मथ की ओर देखकर बोले, "तुम ज़रा समझाओ न, बेटा। तुम अगर समझाकर कह दोगे तो शैल मुझे जाने देगी। उसके कहे बिना मैं कैसे जा सकता हूँ!"

शैल ने कहा, "मुझे क्यों बदनाम कर रहे हो, काका? मैं कौन हूँ? मैं अगर मर भी जाऊँ तो तुम्हारा क्या जाता है? तुम्हें मेरी ज़रा भी परवाह है? तुम अपने विद्यार्थियों के बारे में जितना सोचते हो, उसका सौवाँ भाग

भी क्या मेरे बारे में सोचते हो ?"

केदार बाबू ने कहा, "यह देख, मन्मथ, शैल क्या कह रही है। मुझे उसकी ज़रा परवाह नहीं है। उसकी बातें सुनीं ?"

मन्मथ ने कहा, "शैल कुछ ग़लत तो नहीं कह रही है, मास्टर साहब! आप तो हम लोगों के बारे में ही ज़्यादा सोचते हैं। मैं भी तो आपका विद्यार्थी हूँ, मुझे मालूम है।"

"यह देखो, तुम भी मुझ पर गुस्सा हो। अब तुम सब लोग अगर गुस्से होकर बैठ जाओगे तो उन बेचारे ग़रीब लड़कों का क्या होगा ? वे लोग कहाँ जायेंगे ? उनके पास पैसा भी नहीं, इसी से क्या वे घूरे पर से उठकर चले आये हैं ? उन लोगों को गवर्नमेंट नहीं देखेगी, स्कूल-कॉलेजवाले नहीं देखेंगे, देश के लोग भी उन बेचारों को नहीं देखेंगे, तो वे लोग जायँ कहाँ ! कहो न, तुम्हीं बताओ ?"

शैल ने मन्मथ की ओर देखकर कहा, "मन्मथ दा, तुम क्यों पागल आदमी से बहस करते हो ! मेरा तो दिमाग़ ख़राब हो ही गया है, अब तुम्हारा भी ख़राब होगा।"

केदार बाबू ने भतीजी की बात को अनसुना करके कहा, "तो तुम लोगों का कहना है कि मैं न जाऊँ ? तुम लोग जो कहोगे, अब मैं वही करूँगा। बोलो, क्या करूँ ? मैं जाऊँ नहीं न ?"

शैल ने कहा, "क्यों, जाओगे क्यों नहीं ? तुम हम लोगों की बातें क्यों सुनोगे ? हम लोग तुम्हारे कौन हैं ? तुम्हारे विद्यार्थी ही तो तुम्हारे सब-कुछ हैं। उन लोगों का भला देखो न ! हम लोगों के बारे में सोचने को किसने कहा है ? कहाँ से, कैसे घर चल रहा है, कैसे तुम्हारा इलाज चल रहा है, वह भी जानने की तुम्हें ज़रूरत नहीं है ! तुम जाओ न ! बाद में जब सिर चकराकर सड़क पर गिर पड़ोगे, उस समय मैं तो हूँ ही। सारी रात जागकर मैं तुम्हारे सिर पर बर्फ़ की थैली रखूँगी, तुम्हारी सेवा करूँगी। तुम मुझे खिला रहे हो, पहना रहे हो ! तुम जाओ, दे दो न, मन्मथ दा, छाता दे दो। उन्हें जाने दो !"

केदार बाबू खड़े-खड़े क्या करें, ठीक नहीं कर पा रहे थे। आख़िर जैसे हताश होकर बोले, "लेकिन क्या करूँ ? मेरी बीमारी ठीक क्यों नहीं होती? मुझमें पहले-जैसा ज़ोर क्यों नहीं है ? यह मुझे क्या हो गया है ? डॉक्टर मेरी बीमारी क्यों दूर नहीं कर पाते ?"

कहते-कहते जैसे अपनी ही हालत पर तरस खाते केदार बाबू तख़्तपोश

पर बैठ गये।

कहते रहे, "यह मुझे क्या हुआ ? यह मेरा क्या हुआ ? मेरा सिर क्यों घूम रहा है ? मेरे दोनों पाँव काँप क्यों रहे हैं ?"

मन्मथ अब तक चुपचाप खड़ा था। उसने जाकर केदार बाबू के दोनों हाथ पकड़ लिये।

लेकिन शैल नहीं रुकी। वह कहती गयी, "सिर घूमेगा क्यों नहीं? पाँव क्यों नहीं काँपेंगे ? तुम्हें क्या दूध दे पाती हूँ पीने के लिए ? माँस, मछली, अंडा खाने को दे पाती हूँ ? डॉक्टर जो-जो दवा लिखता है, वही क्या सब खिला पाती हूँ ? तुम बीमार नहीं होगे तो कौन होगा ?"

"मास्टर साहब !"

सदाव्रत की आवाज़ सुनकर तीनों ही अवाक् रह गये। तीनों ने ही जैसे वहाँ उसकी आशा छोड़ दी थी।

"सदाव्रत, तुम आये हो ?"

केदार बाबू के एकदम नज़दीक आकर सदाव्रत ने पूछा, "आपकी तबीयत कैसी है, मास्टर साहब ?"

केदार बाबू की आँखों और चेहरे पर जैसे चमक आ गयी। बोले, "मैं अच्छा हो गया हूँ, सदाव्रत। तुम्हें दो हज़ार रुपये की नौकरी मिली है, सुनकर मेरी सारी बीमारी दूर हो गयी है। जानते हो, मैंने शशिपद बाबू को तभी कहा था। कहा था, देख लेना मेरे लड़कों में सदाव्रत एक दिन उन्नति करेगा। क्यों मन्मथ, मैंने कहा नहीं था ? बचपन से ही पढ़ा रहा हूँ। हमेशा देखता आया हूँ, वह इन्टेलिजेन्ट है।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, मास्टर साहब, इन्टेलिजेन्ट होने की वजह से नौकरी नहीं मिली है।"

"क्या कहते हो तुम, सदाव्रत ! दो हज़ार रुपये तुम्हारी सूरत देखकर तो नहीं देंगे ? ज़रूर ही तुम्हारे अन्दर ऐसा कोई गुण पाया, जिसकी वजह से दे रहे हैं। क्यों, कलकत्ता में तो कितने ही आदमी हैं। उन्हें तो कोई पाँच सौ रुपये की भी नौकरी नहीं देता, तो तुम्हें क्यों देते हैं ? बोलो, तुम्हें क्यों देते हैं ?"

सदाव्रत ने शैल की ओर देखा। शैल चुप खड़ी थी। मन्मथ भी आज काफ़ी गम्भीर दीख रहा था। जैसे किसी को उसका वहाँ आना पसन्द नहीं आया। सदाव्रत इतने दिनों से मास्टर साहब के पास आ रहा है, लेकिन किसी ने आज तक उसकी ओर इस तरह से नहीं देखा। आज क्या वह यहाँ

भी अवांछित है ? इन लोगों को भी क्या उसके बारे में पता है ? नौकरी के बारे में जब पता है तो बाकी ख़बर भी जानते ही होंगे । इतने मेल-जोल के बाद भी ये लोग उसे पराया समझ रहे हैं !

शैल धीरे-धीरे चुपके से कमरे से निकल गयी ।

सदाव्रत भी उसके पीछे-पीछे कमरे से बाहर आया । बरामदा पार करने के बाद नाला था । जल्दी से नाला पार कर गली के छोर पर पकड़ लिया । बोला, "सुनो !"

शैल पीछे घूमकर खड़ी हो गयी । सदाव्रत ने कहा, "मैंने ऐसा क्या किया है, जिसकी वजह से मुझसे बिना बात किये ही चली आयीं ?"

शैल शायद और कुछ कहने जा रही थी, लेकिन वह न कहकर सिर्फ़ इतना ही कहा, "मुझे रसोई में काम है ।"

"यही क्या तुम्हारे दिल की बात है ?"

"हाँ ।"

"तुम सच कह रही हो न ! या दो हज़ार रुपये की नौकरी पा जाने से अचानक तुम लोगों के लिए पराया हो गया, कुछ समझ नहीं पा रहा । काफ़ी दिनों से सोचते-सोचते मैं पागल ही हो गया था, इसीलिए आ नहीं पाया । तुम लोग क्या इसीलिए गुस्सा हो ?"

शैल ने सिर्फ़ कहा, "नहीं ।"

"तब मेरे अन्दर आते ही तुम लोग चुप क्यों हो गये ? मैंने क्या किया है ? यह बात नहीं है कि मैं मास्टर साहब की बीमारी की बात भूल गया हूँ । तुम्हारे बारे में भी सोचता रहा । अपनी हालत के बारे में भी सोच-सोचकर बेचैन हो गया हूँ । जब इस तरह कुछ भी ठीक नहीं कर पाया तो तुम लोगों की ओर चला आया । यहाँ आकर देखता हूँ, तुम्हारा चेहरा भारी है । अब मैं क्या करूँ, तुम्हीं बतलाओ ?"

शैल—"काका की बीमारी, घर की यह हालत, इस पर भी मेरा चेहरा भारी रखना क्या गुनाह हो गया ?"

"लेकिन मन्मथ तो है । वह तो तुम लोगों की काफ़ी सहायता कर रहा है ।"

शैल ने सिर उठाया । बोली, "मैंने क्या कहा है कि मन्मथ दा सहायता नहीं कर रहे ?"

इसके बाद क्या कहे सदाव्रत समझ नहीं पा रहा था । पूछा, "तब ?"

शैल ने कहा, "मन्मथ दा हम लोगों की सहायता कर रहे हैं, यह क्या

आपको बुरा लगा है ?"

"तुम क्या कह रही हो ?"

"तब उस दिन रास्ते में मिलने पर भी तो आपने बुलाया नहीं। आप एक दोस्त के साथ बात कर रहे थे। हम लोगों को देखकर भी आपने न देखने का वहाना किया।"

इसके बाद सदाव्रत के पास जवाब देने को कुछ भी नहीं था।

लेकिन शैल ने ही बचा दिया। बोली, "आप जाकर काका के पास बैठिये। मैं आ रही हूँ। उस दिन आप बीस रुपये उधार दे गये थे, लेकर तब जाइयेगा।"

कहकर सदाव्रत को उसी हालत में छोड़कर शैल अन्दर आँगन की ओर ग़ायब हो गयी।

☐ ☐ ☐

कमरे में आते ही केदार बाबू ने उत्सुकता से सदाव्रत की ओर देखा। बोले, "क्यों सदाव्रत, शैल तुम्हें बाहर बुलाकर तुमसे क्या कह रही थी ? मेरी ख़ूब शिकायत कर रही थी न ?"

सदाव्रत की चोट अभी कम नहीं हुई थी। उसने सिर्फ़ कहा, "नहीं।"

"तब ? इतनी देर तक तुमसे क्या बात कर रही थी ? मेरे ऊपर ख़ूब गुस्सा है, यही बात है न ? मैं गुरुपद को पढ़ाने जा रहा था तो मुझसे जो जी में आया कहा।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, यह बात भी नहीं है।"

केदार बाबू अवाक् रह गये। "वह भी नहीं, यह भी नहीं ! तब ?"

इसके बाद मन्मथ की ओर देखकर कहा, "तुमने तो देखा न, शैल कैसी गुस्से हो गयी थी। मेरे ऊपर गुस्से नहीं हुई थी ?"

मन्मथ ने कोई जवाब नहीं दिया। केदार बाबू जैसे मन-ही-मन कहने लगे, "इसका बाप भी बड़ा गुस्सैल था। जानते हो सदाव्रत, आख़िर गुस्से के ही कारण मर गया। सिर की नस फट गयी थी। मैं तो इसीलिए कहता हूँ—इतना गुस्सा क्या अच्छी बात है, बेटी ! इस दुनिया में तो सभी जैसे तुम्हें गुस्सा दिलाने के लिए कमर कसे बैठे हैं। लेकिन तुम गुस्सा क्यों होओगी ! जो गुस्साया वही हारा। पता है, हिटलर बड़ा गुस्सेबाज़ था। इसलिए कितनी गड़बड़ कर गया। हिस्ट्री में एक और गुस्सैल हुआ है, नाम था लार्ड···"

सदाव्रत ने बात के बीच में ही कहा, "आजकल आप कैसे हैं ?"

"मैं एकदम ठीक हो गया हूँ। अब मुझे कोई तकलीफ़ नहीं है। सिर्फ़ सिर घूमता है और दोनों पाँव काँपते हैं। डॉक्टर का कहना है, अगर अच्छी तरह से खाऊँ-पीऊँ तो सब ठीक हो जायेगा और एक बार चेन्ज पर जाने के लिए कह रहा है।"

"चेन्ज ?"

"लेकिन चेन्ज पर जाऊँ तो जाऊँ कैसे ? इम्तहान सामने हैं। मेरा तो यह हाल है और उन लोगों का क्या हाल है, उनका क्या होगा, डॉक्टर इस बारे में तो कुछ सोच ही नहीं रहा ?"

मन्मथ ने कहा, "देखा सदाव्रत दा, मैंने यही बात कह दी थी। इसलिए मुझसे गुस्से होकर मास्टर साहब गुरुपद को पढ़ाने जा रहे थे।"

सदाव्रत ने कहा, "आप चेन्ज के लिए ही जाइये, मास्टर साहब ! जो खर्च लगेगा मैं दूँगा।"

केदार बाबू सदाव्रत की ओर झुके। बोले, "क्यों ! शैल क्या तुमसे रुपये उधार माँग रही थी ? रुपये दे दिये ? कितने दिये ?"

सदाव्रत ने पॉकेट से मनिबैग निकालकर कहा, "नहीं, शैल को मैंने उधार रुपये नहीं दिये। आपको दे रहा हूँ। बाद में और भी दूँगा। आज रुपये कम ही हैं। यह दो सौ रुपये आप रखिये।"

"रुपये शैल के हाथ में ही दो न ! वह खूब खुश होगी। वही तो मेरा घर चला रही है !"

"न, शैल रुपये नहीं लेगी।"

"अगर उसने पूछा तो मैं क्या जवाब दूँगा ?"

"आपको कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है।"

"यह कहने से तो वह सुननेवाली नहीं है।"

"तब कहियेगा, गुरुदक्षिणा के रुपये हैं। आपने मुझे इतनी अच्छी तरह से पढ़ाया, इसीलिए तो यह नौकरी मिली है! आपके आशीर्वाद से ही तो सब हुआ। पिताजी आपको पचास रुपये महीना देते थे। एक दिन आपने खुद कहकर दस रुपये कम करवा लिये थे। वह मुझे याद है, मास्टर साहब ! हमेशा याद रहेगा। आपकी बीमारी के लिए मैं कुछ भी नहीं कर पाया। यह दे रहा हूँ। बाद में और भी दूँगा। आपके चेन्ज पर जाने का ख़र्च मैं अकेला ही दूँगा। मैं अब चलूँ, मास्टर साहब ! आप शैल को समझाकर कह दीजियेगा। वह गुस्सा न हो।"

कहकर जल्दी से उठ खड़ा हुआ। इसके बाद बिना और कुछ कहे

दरवाज़े से निकल नाले को पार कर नज़रों से ओझल हो गया।

और साथ-ही-साथ शैल कमरे में आयी। "सदाव्रत बाबू कहाँ गये ?"

"अभी-अभी गये हैं।"

"चले गये ?"

केदार बाबू ने पूछा, "क्यों ? तुम्हें कुछ ज़रूरत थी क्या ? बाहर ले जाकर चुपके-चुपके रुपये माँग रही थी न ? देख न, इसीलिए मुझे रुपये दे गया है।"

शैल का चेहरा लाल हो गया। "मैं ? मैंने रुपये माँगे ? यह बात कह गये हैं ?"

केदार बाबू—"नहीं-नहीं, सो कैसे हो सकता है ? सदाव्रत क्या ऐसा लड़का है ! मेरी बीमारी के लिए दो-सौ रुपये दे गया है। कह गया है—और भी दूँगा। तू ही तो कह रही थी, डॉक्टर ने अंडे, माँस, मछली खाने को कहा है। इन रुपयों से जितनी मर्ज़ी आये खिला मुझको ! तुझे चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है। यह ले।"

केदार बाबू ने एक-एक सौ के दो नोट शैल की ओर बढ़ा दिये।

शैल का शरीर उस समय थर-थर काँप रहा था। बोली, "रखो अपने रुपये ! ये रुपये मैं छूना भी नहीं चाहती !"

शैल की हालत देखकर केदार बाबू अवाक् रह गये। मन्मथ को भी बड़ा अजीब लगा।

केदार बाबू ने कहा, "तुझे रुपये की ही तो ज़रूरत थी, तू ही तो कह रही थी कि घर नहीं चला पा रही हूँ। अब गुस्सा दिखलाने से क्या होगा ?"

शैल—"खबरदार काका, तुम ये रुपये नहीं ले सकते !'

"क्यों री, रुपयों में क्या खराबी है ?"

शैल—"वह तुम नहीं समझोगे। मैं मरकर भी इन रुपयों को हाथ नहीं लगाऊँगी।"

केदार बाबू ने कहा, "लेकिन यह तो उधार नहीं है। एकदम से दे गया है। बाद में और भी रुपये देगा। यह दान है, गुरुदक्षिणा। सदाव्रत खुद अपने मुँह से कह गया है। इसका सूद भी नहीं लगेगा। सदाव्रत झूठ बोलने-वाला लड़का नहीं है।"

शैल ने कहा, "तुम यही सोचते रहो, काका ! मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया है कि तुम्हारा वह अच्छा शिष्य वास्तव में है क्या !"

केदार बाबू—"क्यों ? वह क्या ख़राब लड़का है ? तूने कुछ सुना है क्या ?"

शैल—"उस सबसे तुम्हें कोई मतलब नहीं है। मन्मथ दा, तुम जाओ। ये रुपये तुम सदाव्रत बाबू को दे आओ। काका, वे रुपये तुम मन्मथ दा के हाथ में दे दो। तुम किसी भी तरह यह रुपया नहीं ले सकते। मैं तुम्हें यह रुपया नहीं लेने दूँगी। दे दो !"

शैल की यह दृढ़ता देखकर केदार बाबू और अवाक् रह गये। शैल ऐसा तो करती नहीं थी।

शैल कहे जा रही थी, "तुम्हें शायद याद नहीं होगा काका, लेकिन मुझे सब याद रहता है। एक दिन हम लोगों को ले जाकर अपने घर रखना चाहते थे तुम्हारे यही सदाव्रत बाबू ! आज समझ पा रही हूँ, इसके पीछे क्या मतलब था !"

मन्मथ कुछ कहने जा रहा था, लेकिन शैल ने उसे रोका। बोली, "तुम चुप रहो ! अभी जाओ उसके घर, जाकर रुपये लौटा आओ ! मुझे और ज़्यादा सोचना ख़राब लग रहा है।"

केदार बाबू ने कहा, "लेकिन वह क्या समझेगा, ज़रा यह भी तो सोच।"

शैल—"तो सोचे ! ये बीस रुपये भी ले जाओ, ये दो सौ बीस रुपये दे आना। कहना कि फिर कभी रुपये देने के बहाने भी इस घर में पाँव न रखे !"

मन्मथ ने रुपये ले लिये। इसके बाद केदार बाबू की भौंचक नज़रों के सामने ही बाहर निकल गया। केदार बाबू ने पहले कभी भी शायद अपनी भतीजी को इस तरह गुस्सा करते नहीं देखा था। लेकिन मन्मथ के कमरे से जाते ही शैल भी अन्दर चली गयी। केदार बाबू ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाने लगे। उनके दिमाग़ में शैल की बातों का कोई भी सिर-पैर नहीं घुस रहा था।

□ □ □

सदाव्रत ने अपने पिता के आफ़िस में बैठकर वहाँ का हाल देखा हैं। लेकिन 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के क़ायदे-क़ानून तो और ही हैं। वह ऑफ़िस था और यह फैक्टरी है। सदाव्रत का अपना अलग चैम्बर, अलग चपरासी। एयर-कंडीशन्ड चैम्बर के अन्दर बैठे सदाव्रत को बड़ा अजीब लगता। अंग्रेज लोग कब के इंडिया छोड़कर जा चुके हैं। समुद्र पार चले

गये हैं। लेकिन जाकर भी जैसे वे लोग अन्दर-ही-अन्दर और भी जकड़कर बैठे हैं। ये ट्राउज़र, कोट, शर्ट, नेकटाई, मुँह पर थैंक्यू कहकर अन्दर-ही-अन्दर गाली देना और पौंड, शिलिंग, पैंस से आदमी की इज़्ज़त ठीक करना।

'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' असली विलायती फ़र्म है। सिर्फ़ प्रोप्राइटर देसी हैं। सुबह से शाम तक कमरे में बैठे-बैठे कितने लोगों को 'विश' करना होता है, इसका ठीक नहीं है।

"गुड-मार्निंग, सर !"

सदाव्रत देखता रहा। सामने के स्विंग-डोर से न जाने किसने झाँककर वह कहा था। अनजान चेहरा। सदाव्रत ने सोचा, शायद किसी काम से आया होगा। लेकिन नहीं, 'गुड-मार्निंग' कहकर ही निकल गया। इसी तरह पन्द्रह-बीस बार रोज़ होता। सजा हुआ अप-टु-डेट कमरा। पॉलिश की हुई चमचमाती टेबल। कॉल-बेल। कहीं भी कोई कमी नहीं। चैम्बर के बाहर बोर्ड लगा था—एस० गुप्त, परचेज़िंग ऑफ़िसर। कमरे के बाहर यूनीफ़ॉर्म पहने चपरासी पॉलिश की हुई स्टूल पर सीना फुलाए तनकर बैठा रहता। प्राइवेट सेक्टर में सभी सीधे बैठकर ही काम करते। सरकारी ऑफ़िस में यह क़ानून नहीं है। वहाँ अख़बार, चाय, गपशप वग़ैरह के बाद भी अगर कुछ वक़्त रह जाता तो उसमें काम होता। और यहाँ सब टिप-टॉप, डिसिप्लिन्ड। हर मिनट कीमती है, हर सैकंड की कीमत है, मिस्टर बोस खुद डिसिप्लिन पसन्द करते हैं। इसलिए उनका स्टाफ़ भी डिसिप्लिन में चले, उनकी यही इच्छा है। गेट के दरबान से लेकर पिनकुशन तक सब-कुछ नियमानुसार होना चाहिए। आउटपुट देखकर ही स्टाफ़ का प्रमोशन होता है। वहाँ धोखाधड़ी नहीं होती। फ़र्म में बड़े-बड़े ओहदेवाली हमेशा कुछ पोस्टें तैयार रहतीं। वे ऑफ़िस की शोभा थीं। सिर्फ़ शोभा ही नहीं—एकदम ज़रूरी शोभा ! जैसे वेलफेयर ऑफ़िसर, केयर-टेकर, बिल्डिंग सुपरिन्टेन्डेंट, ऑर्गेनाइज़र—ऐसे ही कितनी ही। इनमें से कोई चीफ़ मिनिस्टर का भानजा, कोई गवर्नर का लड़का, कोई होम मिनिस्टर का भाई तो कोई चीफ़ सेक्रेटरी की पहली औरत का लड़का होता था। ये लोग काम करें या न करें, उससे फैक्टरी के प्रॉडक्शन का कुछ भी नहीं बनता-बिगड़ता। ये सभी गैबरडिन और टैरिलिन पहने कार ड्राइव करके ऑफ़िस आते हैं। गाड़ी गैरेज़ में छोड़कर बायें हाथ में सिगरेट का टीन और माचिस लिए फटाफट ज़ीना फलांगते अपने-अपने एयर-कंडीशन्ड चैम्बरों में घुस जाते। एक बजे ये लोग लंच लेते। दो बजे लुक-छिपकर रेसकोर्स की बुकलेट

पढ़ते। दोपहर तीन बजे आफ्टरनून कॉफी पीते। पाँच बजे गाड़ी निकालकर साउथ क्लब पहुँच जाते। वहाँ पहुँचकर मेम्बरों के साथ 'किटी' खेलते। बाद में तीन पैग रम चढ़ाकर घर वापस आकर डिनर लेते। इतनी मेहनत के बाद हर महीने किसी को दो हज़ार रुपये मिलते तो किसी को अढ़ाई हज़ार। इंडिया गवर्नमेंट को 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के फैनों की इतनी जो डिमाण्ड रहती है, यह इन लोगों की एफिसिएन्सी की वजह से ! इनमें से किसी की नौकरी जानी नहीं चाहिए, इसीलिए इनकी नौकरी जाती नहीं है। इनकी नौकरी जाने पर गवर्नमेंट ऑर्डर कैंसिल हो जायेगा। कोई नया गवर्नमेंट ऑर्डर पाने के लिए नयी पोस्ट क्रिएट करनी होगी। वह पोस्ट किसी मिनिस्टर के रिलेटिव को देनी होगी। उसे भी हर महीने दो हज़ार रुपये देने होंगे। शेयर-होल्डर लोगों का इसी में फायदा था। उनका डिविडेंड भी बढ़ेगा और इंडिया का सेकंड फाइव-इयर प्लान भी सक्सेसफुल होगा।

सदाव्रत कुछ ही दिनों में यह सब समझ गया।

इतने दिन सदाव्रत जिस दुनिया में रहता आया था, यहाँ आकर पाया कि उसकी ख़बर भी कोई नहीं रखता। यही है सच्चे मानो में रिअल इंडिया। आज़ादी मिलने के बाद अगर किसी को लाभ हुआ है तो वह इन्हीं लोगों को। ये ही असली इंडियन हैं। तभी तो छब्बीस जनवरी या पन्द्रह अगस्त के दिन जब राजभवन में पार्टी होती है तो इन लोगों की बुलाहट होती है। गवर्नर साहब की जिस दिन इंडियनों के साथ लंच या डिनर खाने की इच्छा होती है, तब इन लोगों की बुलाहट होती है।

"गुड-मार्निंग, सर !"

वह स्विंग-डोर पर सिर नीचा किये सलाम बजाकर जा ही रहा था कि सदाव्रत ने बुलाया, "सुनिये !"

वह आदमी रुक गया, फिर धीरे-धीरे नज़दीक आया। सदाव्रत ने अच्छी तरह से उसकी ओर देखा। दाढ़ी अच्छी तरह से नहीं बनायी गयी थी। साबुन से धुला लाँग क्लाथ का कुर्ता। हाथ में टिफिन का डिब्बा। रूमाल में बँधा। ब्राउन रंग का कैनवेस जूता।

"आप कौन हैं ?"

"जी, मैं यहाँ के रेकार्ड सेक्शन का बड़ा बाबू हूँ।"

"आपकी तनख़्वाह कितनी है ?"

आदमी घबरा गया। डरता-डरता बोला, "सर, एक सौ चालीस रुपये

"...और चालीस रुपये डियरनेस एलाउन्स।"

उमर काफ़ी हो चुकी थी। शायद मास्टर साहब जितनी होगी। हो सकता है हालत भी मास्टर साहब जैसी ही हो। घर में शायद बाल-बच्चे और बीवी होंगे। मकान का किराया भी देना ही पड़ता होगा। सदाव्रत उस आदमी से और भी बात करना चाह रहा था। घर में खानेवाले कितने लोग हैं, मकान का किराया कितना देना होता है। कभी टी० बी० हुई थी या नहीं। लेकिन कुछ भी कह नहीं पाया।

"आप सब लोग रोज़ मुझे 'गुड-मार्निंग' क्यों करते हैं?"

वह घबरा गया।

"रोज़-रोज़ मुझे 'गुड-मार्निंग' किसलिए करते हैं?"

उस आदमी ने ज़रा हिचकते हुए कहा, "जी, ऑफ़िस ऑर्डर है।"

"ऑर्डर! ऑर्डर माने?"

"जी, हम सभी को बड़े साहब का ऑर्डर है, कि ऑफ़िस आते ही ऑफिसरों को गुड-मार्निंग करें। यही हम लोग जो बड़े बाबू हैं।"

सदाव्रत ने ज़रा देर सोचा। फिर कहा, "कल से मत करियेगा। बड़े साहब का ऑर्डर हो या किसी का, मुझे यह सब पसन्द नहीं है। जाइये, आप जाइये। सभी से कह दीजियेगा। कोई भी मुझे गुड-मार्निंग न करे।"

बेचारे बड़े बाबू की जान बच गयी।

लेकिन उस दिन मिस्टर बोस ख़ुद ही चुरुट पीते-पीते चैम्बर में आये। इससे पहले दिन वह ही सदाव्रत को इस चैम्बर में बैठाने आए थे। सभी के साथ परिचय करा दिया था। उसके बाद और मुलाक़ात नहीं हुई। इसके कुछ ही दिनों बाद ऑफ़िस का 'फाउन्डर्स-डे' था। उसी दिन सब लोगों के साथ अच्छी तरह से परिचय होगा। ख़ासकर मिसेज़ बोस, मिस बोस वगैरह से।

"काम कैसा चल रहा है? एनी डिफिकल्टी?"

मिस्टर बोस को अच्छी तरह से पता है, किसी का रेज़िमेंटेशन करने के लिए डराना नहीं चाहिए। शुरू-शुरू में हँसकर बात करनी चाहिए। हर तरह की फेसिलिटी देनी चाहिए। इसके बाद धीरे-धीरे प्रेशर शुरू करना चाहिए।

बोले, "एनीहाऊ, तुम्हारे उस क्लब में भर्ती होने का क्या हुआ?"

"क्लब!" सदाव्रत क्लब की तो बात ही भूल गया था। कुछ दिन पहले मिस्टर बोस ने कलकत्ता के क्लबों का मेम्बर बनने को कहा था। यही 'थ्री हन्ड्रेड क्लब' या 'कैलकटा क्लब', या 'बंगाल क्लब', या 'साउथ क्लब।'

"हम इंडियनों में यह क्लब-हैबिट नहीं है। उनका मेम्बर होना ज़रूरी है। तुम्हें इसकी यूटिलिटी समझनी चाहिए। एक-एक क्लब की एडमीशन फी डेढ़ हज़ार रुपये, दो हज़ार रुपये। एक-एक क्लब के मेम्बर होने के लिए दो-दो साल, तीन-तीन साल वेटिंग लिस्ट में रहना होता है। वह होगा, लेकिन पता है, एक बार मेम्बर होने पर कितनी सुविधाएँ मिलती हैं ? मुझे ही देखो, मैं क्या मेम्बर था ? मेरी यह फ़र्म ही आज नहीं होती अगर मैं 'थ्री हन्ड्रेड क्लब' का मेम्बर न होता ! क्लब में ही तो सेलिब्रिटि के साथ परिचय हुआ। नहीं तो कौन मुझे पहचानता था और मैं ही किसे पहचानता था। बिना क्लब का मेम्बर हुए तुम लाइफ के बैटल-फ़ील्ड में विनर नहीं हो सकते। हमेशा के लिए अननोन और अनऑनर्ड हुए पड़े रहोगे।"

"मुझे कितने क्लबों का मेम्बर होना होगा ?"

मिस्टर बोस—"सब का ! रोज़ जाओ या मत जाओ, मेम्बर हर क्लब का होना होगा। इन्हीं क्लबों में जान-पहचान की सीढ़ी से होकर सोसाइटी में ऊपर उठना होगा।"

"लेकिन पिताजी तो किसी क्लब के मेम्बर नहीं हैं !"

"मिस्टर गुप्त की बात और है। वह तो पॉलिटिकल सफरर हैं। उनका कैपिटल वही है, लेकिन जिनके पास यह कैपिटल नहीं है, उनके लिए क्लबों का मेम्बर होना एसेंशियल है। अपनी मनिला सब क्लबों की मेम्बर है।"

इसके बाद और कोई बात नहीं चली।

मिस्टर बोस ने कहा, "तुम आज ही मेरे साथ साउथ क्लब में चलो। एडमीशन-फी दे आयें। मैं ही तुम्हें इन्ट्रोड्यूस कर दूँगा।"

"आज ?"

"हाँ, आज ही। वैसे ही काफ़ी देर हो चुकी है। यूज़अली दो-तीन साल तक वेटिंग-लिस्ट में रहना होता है, फिर भी मैं कोशिश करूँगा, जिससे तुम्हें जितनी जल्दी हो सके, मेम्बर बनवा सकूँ। आजकल मारवाड़ी लोग इस फ़ील्ड में आ गये हैं न। जिधर देखो उन्हीं की भीड़। मैं फोरकास्ट किये देता हूँ, एक दिन वे लोग ही क्लब-लाइफ लीड करेंगे।"

तुम सदाव्रत गुप्त हो। तुम अपनी पास्ट-लाइफ भूल जाओ। अब से मिस्टर बोस ही तुम्हारे आदर्श हैं। तुम इनके पैरों में दो हज़ार रुपये का रुक्का लेकर बैठे हो। अब पीछे हटने से काम नहीं चलेगा। तुम मिस्टर बोस के जमाई हो। मिस बोस के वुड-बी हसबैंड।

शाम को मिस्टर बोस रेडी होकर आये। बोले, "चलो, लैट्स गो

नाऊ। मैंने टेलीफ़ोन कर दिया है।"

सदाव्रत भी टेलीफ़ोन छोड़कर उठा। कोट पहन लिया।

"कौन ?"

स्विंग-डोर के बाहर कोई खड़ा था। मिस्टर बोस ने देख लिया। "हू आर यू ?"

"मैं मन्मथ हूँ। सदाव्रत दा हैं ?"

सदाव्रत ने आवाज़ सुन ली। जल्दी से आकर पूछा, "क्या बात है, मन्मथ ? कोई ख़ास खबर ?"

मन्मथ ने कहा, "मास्टर साहब की हालत काफ़ी ख़राब हो गयी है।"

सदाव्रत का चेहरा जैसे सूख गया। बोला, "तो मैं क्या करूँ ? मुझे तुम क्या करने को कहते हो ?"

'कुछ नहीं, ऐसे ही खबर देने चला आया। इस ओर आया था, इसीलिए।"

"लेकिन तुम तो मेरे दिये रुपये लौटा गये। मास्टर साहब को मैं किस तरह मदद करूँ कुछ ठीक नहीं कर पा रहा। इसके बाद भी क्या मेरा उस घर में घुसने का अधिकार है ?"

'यह तो मुझे पता नहीं है। मैंने सोचा कि तुम्हें ख़बर देनी चाहिए, इसी से चला आया।"

फ़िर ज़रा देर रुककर कहा, "अच्छा, तो मैं जा रहा हूँ।"

मन्मथ चला गया। मिस्टर बोस अभी तक सब सुन रहे थे। पूछा, "हू' ज़ दैट हैगर्ड बॉय ? लड़का कौन है ? तुम उसे जानते हो क्या ? क्या कह गया ? कौन बीमार है ?"

□ □ □

यह एक और ही दुनिया है। इतने दिनों तक ब्रिटिश गवर्नमेंट थी। वे लोग जहाँ पहुँचे, वहाँ के लोगों पर हुकूमत की। अदालत में, कचहरी में, ऑफिस में, हर जगह। वे लोग राजा की जात के थे। प्रजा के साथ मेल-जोल बढ़ाना उन्हें पसन्द नहीं था। दूर-ही-दूर रहते थे। पास-पास रहने से डर नहीं रहता। इसलिए फ़ासला रखकर चलते। सिपाही-म्यूटिनी के समय से ही उन लोगों की समझ में यह बात आ गयी थी। इसीलिए तभी से वे लोग जहाँ भी रहे अपने मिलने-जुलने के लिए क्लब बना लिये। वहाँ जाकर वे लोग मेमों को लेकर ऐश करते, नाचते-कूदते और जो मर्जी में आता करते। यहाँ तक कि कभी-कभी तो एक-दूसरे की बहू को लेकर मार-पीट और ख़ून-ख़राबी तक हो जाती। लेकिन वह सब उन लोगों तक ही

था। इस सवसे प्रजा का कोई मतलव नहीं था।

अव वे लोग चले गये हैं। लेकिन क्लब छोड़ गये हैं। क्लव के अन्दर जो-जो पहले होता था, अव भी होता है। इससे इज़्ज़त बढ़ती है, मर्यादा बढ़ती है, आदमी ऊपर उठता है।

और लोगों के साथ मनिला भी खेल रही थी। वैसे 'किटी' खेलना सचमुच खेल ही है। लेकिन वावन पत्तों में इतना जादू है, यह वात जो लोग ताश नहीं खेलते, वे लोग नहीं जान सकते। लेकिन किसी-किसी दिन कोई ऐसी अड़चन आ जाती कि हज़ार कोशिशों के वावजूद वक़्त से नहीं पहुँच पाते। दूसरे पार्टनर नाराज़ हो जाते।

पार्टनर के न होने से जो लोग खेलना शुरू नहीं कर पाते, उनका त पारा ज़्यादा चढ़ता। सारे दिन में अगर ताश खेलना न हुआ तो क्लव किस वात का! सिर्फ़ लड़कियाँ ही नहीं, लड़के भी आते। गाड़ी ड्राइव करते सीधे चले आते। आते ही पूछते, "मिस वोस आया, वैरा ?"

वैरे लोग ही क्लव के मूलधन होते हैं! कोई-कोई बैरा तो बीस-बीस और तीस-तीस साल से एक ही क्लव में नौकरी कर रहा है। कितने ही उतार-चढ़ाव इन वैरों ने देखे हैं। कितने साहब और मेमसाहबों के असतर्क क्षणों के वे गवाह हैं। लेकिन अगर पत्थर बोल नहीं सकता तो ये लोग भी नहीं वोल सकते। उनकी यूनिफॉर्म, पगड़ी के नीचे उनके चेहरे पर कोई भी परिवर्तन नहीं होना चाहिए। साहब के हँसने पर भी उन्हें हँसना नहीं है, साहव के गाली देने पर भी उन्हें नाराज़ नहीं होना है। उनकी डिक्शनरी में एक ही शब्द है। वह है—जी हाँ। गुस्सा, दुःख, आनन्द, विस्मय--जीवन की सारी अनुभूति, सारे भावों के लिए यही एक शब्द है।

अब आये हैं नेटिव साहब-मेम। नेटिव राजा-रानी। जो चेन्ज हुआ है, इन्हीं राजा-रानी में। क्लब के नियम-क़ानूनों में कोई रद्दोबदल नहीं हुई है। वैरा, खानसामा और चपरासियों का एकमात्र सम्बल यह शब्द भी नहीं बदला।

किसी ने बदलना भी नहीं चाहा।

कम से-कम मिस्टर बोस ने तो नहीं चाहा। जिस तरह चलता आया है, चलता रहे। यह जो सारे दिन ऑफ़िस और फ़ैक्टरी की मेहनत के बाद एक स्लिप पर साइन कर देने ही से सब-कुछ सामने हाज़िर हो जाता है, इसके कितने ही फ़ायदे हैं। साथ में कैश रुपये की ज़रूरत नहीं है। इसीलिए मिस्टर बोस ने लड़की को भी मेम्बर बनवा दिया था।

"मिस्सी बाबा आया ?"

"जी हाँ !"

दरबान ने लम्बी सैल्यूट झाड़ी। गाड़ी अन्दर आयी। लम्बा लाल बजरी का रास्ता। चारों ओर बाग़। मिस्टर बोस का पहचाना रास्ता। इसी रास्ते से मिस्टर बोस उन्नति के स्वर्ग में पहुँचे हैं। अब सदाव्रत को भी वही रास्ता दिखलाने आये हैं। यह रास्ता सभी को नहीं दिखलाना चाहिए। छाँट-छाँटकर सिर्फ़ कुछ ही लोगों को यह अधिकार देना चाहिए, वे ही ऊपर उठेंगे। वे लोग ही इन-फ्यूचर मिस्टर बोस होंगे। वे ही देश को कंट्रोल करेंगे। वे ही बाद में गवर्नमेंट कंट्रोल करेंगे। यहाँ घुसने का हक़ सिर्फ़ उन्हीं को है।

गाड़ी में बैठने के बाद मिस्टर बोस ने पूछा, "वह लड़का कौन है ?"

सदाव्रत ने जवाब दे दिया। लेकिन मिस्टर बोस को जैसे उससे तसल्ली नहीं हुई। "तुम्हारे फादर खुद पॉलिटिकल सफरर हैं। इसी से तुम्हारी एजूकेशन की ओर ठीक से ध्यान नहीं दे पाये। यही इन लोगों की मुश्किल हो गयी। खुद तो कन्ट्री के लिए जेल काट रहे हैं, पॉलिटिक्स में पड़े हैं; लेकिन अपनी फ़ैमिली, अपने बाल-बच्चे क्या कर रहे हैं, उस ओर ध्यान देने का समय ही नहीं पाते। क्लास-फ्रेंड है या मोहल्ले का दोस्त है ?"

सदाव्रत ने कहा, "बड़ा अच्छा स्टुडेंट है। मुझे ये लोग बहुत मानते हैं।"

"वह होगा ! अच्छे स्टुडेंट्स की तो देश में कमी नहीं है ! उनके लिए स्कूल-मास्टरी, प्रोफ़ेसरी, डॉक्टरी, सब खुली है, लेकिन जो असली चीज़ है, वह भी क्या उनके पास है ?"

सदाव्रत समझ नहीं पाया। पूछा, "वह क्या ?"

मिस्टर बोस ने चुरुट का कश लेते हुए कहा, "बैक ग्राउण्ड !"

सदाव्रत फिर भी नहीं समझ पाया।

"बैक ग्राउण्ड माने ?"

"असल में बैक ग्राउण्ड ही सब-कुछ है। कोई खुद बैक ग्राउण्ड बनाता है और किसी के पास पहले से ही होता है। मैं—मिस्टर बोस और तुम्हारे फादर शिवप्रसाद गुप्त दोनों ने अपने बूते पर अपनी कोशिशों से बैक ग्राउण्ड बनाया है। और तुम या मेरी लड़की मनिला—तुम लोगों को बना-बनाया बैक ग्राउण्ड मिला है। तुम्हारे लिए आगे-आगे बढ़ना आसान है। इसे बेकार मत जाने दो। वह जो लड़का आया था, क्या नाम था उसका ? मन्मथ या

और कुछ। उन लोगों के साथ मिलने-जुलने से तुम्हारा बैक ग्राउण्ड खराब होगा। उन्हें छोड़ दो। भूल जाओ कि एक दिन उन लोगों के साथ तुम्हारी जान-पहचान थी।"

"लेकिन मुझे जो पढ़ाते थे, वह बड़े ऑनेस्ट आदमी हैं।"

मिस्टर बोस ने कहा, "यह ऑनेस्ट शब्द भी एक चीज़ है! मेरी राय में तो इस शब्द को डिक्शनरी से ही निकाल देना चाहिए। ऑनेस्ट के माने क्या हैं? ईमानदारी? तब क्या मैं ऑनेस्ट नहीं हूं? मिस्टर गुप्त क्या ऑनेस्ट नहीं हैं? पंडित जवाहरलाल नेहरू क्या ऑनेस्ट नहीं हैं? हम सभी ऑनेस्ट हैं। तुम्हें पता है, आजकल ऑनेस्टी के माने बदल गये हैं। मेरा तो खयाल है डिक्शनरी भी अब फिर से लिखनी होगी। सब चीज़ों में ही जब रिवोल्यूशन हो रहा है तो डिक्शनरी में ही क्यों नहीं होगा?"

गाड़ी तब तक अन्दर पहुँच चुकी थी।

उस ओर से हँसी की आवाज़ आ रही थी। बग़ीचा जहाँ ख़त्म होता है, वहाँ पोर्टिको है। मार्निंग ग्लोरी और हैंगिंग आर्केड से छिपी जगह लोगों से भरी थी। साड़ियाँ, ब्रॉकेड, डेक्रॉन और टेरिलिन की बहार। कमर-कटी ब्लाउज़ें, सिगरेट, रम, रूज़, लिपस्टिक, क्यूटेक्स। खिल-खिल करती आवाज़ें और इधर से उधर चक्कर काटती देहें। सदाव्रत हैरान रह गया। कलकत्ता जैसे एक और नया रूप लिये सामने आकर खड़ा हो गया। इसका नाम भी तो कलकत्ता है। चारों ओर इतने फूल, इतना स्वास्थ्य, इतनी ख़ुशी, जवानी—सब-कुछ भरा-भरा, पूर्ण। कहाँ की बागमारी, फड़ेपुकुर स्ट्रीट और कहाँ का बाग़बाज़ार। यहाँ खड़े होकर उस कलकत्ता के बारे में सोचना या स्वप्न भी देखना गुनाह है! इंडिया सचमुच ही इंडिपेंडेंट हो गया है।

"डैडी!"

अचानक एक मीठी आवाज़ सुनायी दी। सदाव्रत को लगा जैसे कोई स्वप्न साकार हो उठा हो। सदाव्रत ज़रा सिमटकर एक ओर खड़ा हो गया। लगा जैसे स्वप्न उसकी ओर हाथ बढ़ा रहा था। हवा जैसे एक मधुर गन्ध से भर उठी।

"यह है सदाव्रत गुप्त! शी इज़ मनिला!"

सदाव्रत को आज भी वे क्षण अच्छी तरह से याद हैं। जीवन में कितने ही क्षण आते हैं, जो गुजर जरूर जाते हैं, लेकिन भुलाये नहीं जाते। या भूलने को मन नहीं चाहता। बचपन में मधुगुप्त लेन के घुटे वातावरण से लेकर कितनी ही चोर गली, और रास्ता पार कर यहाँ क्लब में आकर वह

इस तरह रास्ता भूल जायेगा, यह उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। हालाँकि एक दिन आदमी देखने के लिए वह गाड़ी सड़क पर लगाकर इधर से उधर घूमता फिरता था। सदाव्रत को एक दिन कितना लम्बा लेक्चर पिलाया था। शंभू को कितने उपदेश दिये हैं। सदाव्रत ने सोचा था, उसका आदमी देखना शायद पूरा हो गया। कलकत्ता में भी शायद उसके देखने के लिए कुछ नहीं है। एक ओर कुन्ती गुहा वगैरह और दूसरी ओर मास्टर साहब। और सबसे ऊपर हिन्दुस्तान पार्क की सोसाइटी के शिवप्रसाद गुप्त। लेकिन आज वह हैरान रह गया। यह तो एक और ही जगत् है। न्यू क्लास। लगा, जैसे स्वाधीनता वास्तव में इन्हीं लोगों के लिए आयी थी। लॉर्ड माउन्टबैटन शायद इन्हीं के हाथ इंडिया की आज़ादी सौंप गये हैं।

मनिला ने कहा, "आप खेलेंगे ?"

सदाव्रत समझ नहीं पाया। पूछा, "क्या ?"

"ताश !"

मिस्टर बोस ने रोक दिया। बोले, "नो, नो मनिला, तुम सदाव्रत के साथ ज़रा बातचीत करो। तुम लोग पार्क में जाकर बैठो न ! वह नया आया है। तुम्हारे साथ बात करके एट-होम फील करेगा।"

"आइये, मिस्टर गुप्त !"

कहकर मनिला ने बाग़ के अँधेरे की ओर कदम बढ़ाया।

सदाव्रत शायद ज़रा हिचकिचा रहा था। मिस्टर बोस ने बढ़ावा दिया। "जाओ, एन्जॉय योरसेल्फ ! जाओ !"

"देख रहे हैं कैसी क्वाइट जगह है ! मेरे डैडी को देखा न ! ऐसा लविंग फ़ादर मैंने और नहीं देखा।"

कहते-कहते मनिला बाग़ के सँकरे रास्ते से आगे-आगे चलने लगी। सदाव्रत भी पीछे-पीछे चल रहा था। पूरे लॉन में सीज़न-फ़्लॉवर्स की बहार थी।

"कहाँ बैठा जाये, कहिये न ?"

सदाव्रत के कुछ न बोलने से भी अच्छा नहीं लगता। बोला, "मेरी वजह से आपका खेल बिगड़ा न ?"

मनिला की साड़ी हवा से कन्धों पर से बार-बार खिसक रही थी। बोली, "अरे वाह, खेल तो रोज़ ही होता है।"

फिर ज़रा रुककर कहा, "तीन बजे से खेल रही हूँ। और मेरा मन भी

अच्छा नहीं है।"

"क्यों ?"

मनिला ने कहा, "डैडी ने आपसे कुछ कहा नहीं ? कल होल नाइट मुझे नींद नहीं आयी। इस समय भी सिर भारी है। डैडी ने ब्रांडी लेने को कहा था। मैंने सिर्फ़ एक पैग रम ली है। तब भी सिर फटा जा रहा है।"

"तब तो इस समय आपको ज़ोर की नींद लगी होगी !"

"अरे, नहीं-नहीं। नींद आने पर क्या मैं क्लब आती ?"

"सच ही तो बीमार शरीर लेकर क्यों आयीं ?"

"क्लब न आने पर तो और भी ख़राब लगता। दोपहर-भर ज़ोर का सिरदर्द रहा। क्लब आकर इस समय फिर भी थोड़ा कम हुआ है। एक दिन भी बिना किसी क्लब में गये नींद नहीं आती।"

"बड़ी अजीब बात है ! आपको ट्रीटमेंट कराना चाहिए।"

"ट्रीटमेंट कराया है। डॉक्टर क्लब आने को कहते हैं। कहते हैं, रोज़ नियम से क्लब आने पर मेरी हैल्थ ठीक रहेगी। जबकि देखिये कलकत्ता में कोई डॉक्टर ऐसा नहीं है, जिससे मैंने इलाज न कराया हो। मेजर सिन्हा हमारे हाउस-फ़िज़ीशियन हैं। रिटायर्ड आई० एम० एस० हैं। बड़े क्वालीफ़ाइड डॉक्टर हैं। पता है, मेरा मन्थली मेडिकल बिल ही दो-तीन सौ रुपये होता है।"

इसके बाद ही मनिला को जैसे कुछ ध्यान आया। बोली, "अरे, छोड़िये भी। कुछ अपने बारे में कहिये। मेरे डैडी कैसे लगे ? पता है, मेरे डैडी एक जीनियस हैं। ऐसा लविंग फादर मैंने दूसरा नहीं देखा।"

इस बात का कोई जवाब दिये बिना सदाव्रत ने कहा, "आपने क्या चेन्ज पर जाकर देखा है ?"

"चेन्ज से मुझे कुछ नहीं होता। चेन्ज पर जाकर भी ज़्यादा तो रुक नहीं पाती। उस बार डैडी के साथ कॉन्टिनेंट गयी थी। लेकिन वहाँ पहुँचकर कलकत्ता की याद आने लगी।"

"क्यों ? कलकत्ता की याद क्यों आने लगी ?"

मनिला ने कहा, "पेगी की वजह से !"

"पेगी ? पेगी कौन ?"

"मेरा डॉग। आपको कैसे बतलाऊँ कि मेरा पेगी कितना अच्छा डॉग है। उसकी बुद्धि देखकर आप हैरान रह जायेंगे। आप गिलास में पानी दीजिये, वह नहीं पीयेगा। लेकिन फ्रिज का पानी रखिये, चुक-चुक पी

जायेगा। माँ कहती हैं, पेगी पिछले जन्म में तेरा लवर था। सुनकर मुझे हँसी आती है। और कितना शैतान है, पता है !"

कहकर फिर से साड़ी को कन्धे पर सरका लिया। बोली, "और जानते हैं कितना शैतान है, रात को जैसे ही मैं अन्ड्रेस करके बिस्तरे पर लेटूँगी न, वह चुपचाप आकर मेरे पास सो जायेगा। एक दिन डैडी ने पेगी को पकड़ लिया।"

सदाव्रत को लगा जैसे वह परियों की कहानी सुन रहा है। कहाँ गयी रिफ़्यूजी प्रॉब्लम, कहाँ गया इंडिया का फाइव-इयर प्लान, कहाँ गया शंभू का ड्रामेटिक क्लब ! यहाँ मनिला बोस के साथ बात करने पर शायद यह सब भूल जाना होता है।

"हाँ, सच। डैडी ने पेगी को इतना परेशान किया कि क्या कहूँ। सारे दिन गुस्से के मारे पेगी ने मेरे साथ बात ही नहीं की।"

सदाव्रत को हँसी आ गयी। "बात नहीं की माने ?"

स्काई-क्रेपर जूड़ा हिलाते हुए मनिला ने कहा, "हाँ, सच कह रही हूँ। सारे दिन बात नहीं की। लेकिन आप ही कहिये इसमें मेरा क्या दोष है, डैडी की ही तो ग़लती है। डैडी ने ही तो कहा था पेगी को इतना प्यार करना अच्छा नहीं है। शादी हो जाने के बाद तुम्हारे हसबैंड को आपत्ति हो सकती है। आप ही बतलाइए इसमें हसबैंड को आपत्ति क्यों होने लगी ? पेगी क्या उसका राइवल होगा ?"

सदाव्रत क्या जवाब दे यह सोचने का वक़्त दिये बिना ही मनिला ने कहा, "और पेगी मुझे जितना भी चाहे, वह पुअर डॉग के सिवाय तो और कुछ भी नहीं है। है न !"

सदाव्रत ने कहा, "ज़रूर !"

"लेकिन डैडी का भी पता नहीं क्या खयाल है। डैडी का कहना है, "मनिला अब तुम्हारी शादी होगी। अब पेगी को अलग कमरे में सुलाना होगा। बड़ा ऑड लगता है।' कहकर डैडी ने सारी रात पेगी को उसके कमरे में बन्द रखा। उफ़, सारी रात बेचारे पेगी को भी नींद नहीं आयी। मुझे भी नहीं आयी। दोनों ही जागते रहे। आप ही कहिये, इतने दिन की आदत कहीं एक दिन में छोड़ी जाती है ?"

"लगता है आप पेगी को बेहद चाहती हैं !"

"पेगी को बिना चाहे रहा जो नहीं जाता, मिस्टर गुप्त ! अगर आप देखें तो आप भी चाहने लगेंगे, ऐसा अच्छा कुत्ता है। हाँ तो, इसके बाद

क्या हुआ, सुनिये। उसके बाद सुबह उसी हालत में पेगी के कमरे में गयी तो देखती हूँ बेचारे की आँखों से झर-झर आँसू निकल रहे हैं। मैं अपने को और नहीं रोक पायी। दोनों हाथों में पेगी को लेकर 'किस' करने लगी। ओ माँ, किसी भी तरह 'किस' नहीं करने दिया। जितनी बार पेगी को 'किस' करने की कोशिश की, उतनी ही बार मुँह घुमा लिया। पेगी को गुस्सा आने पर किसी बात का होश नहीं रहता।"

अचानक यूनिफॉर्म पहने बॉय आ पहुँचा। हाथ में ट्रे थी। ट्रे में थे दो डिकेन्टर। दोनों डिकेन्टर टेबल पर रखकर बॉय चला गया।

"डैडी ने भेजी है, लीजिये!" कहकर मनिला ने एक उठाकर होंठों से लगा लिया।

सदाव्रत समझ नहीं पाया। पूछा, "यह क्या है?"

"रम! आप रम नहीं पीते हैं?"

"नहीं!"

"तब तो ह्विस्की लाने को कहना था। डैडी को तो पता नहीं होगा। डैडी को मालूम है कि मैं रम पीती हूँ, इसी से रम का ऑर्डर दे दिया। तो आपके लिए ह्विस्की लाने को कहूँ!"

कहकर मनिला बॉय को पुकारने ही वाली थी। सदाव्रत ने कहा, "नहीं, रहने दीजिये!"

मनिला ने कहा, "आप ह्विस्की क्यों पीते हैं? वैसी स्कॉच ह्विस्की तो आजकल मिलती नहीं। ह्विस्की शराबियों का ड्रिंक है। डैडी कॉन्टिनेंट जाने पर ह्विस्की पीते हैं और यहाँ रम। अपने यहाँ की ट्रॉपिकल क्लाइमेट में रम ही हैल्थ के लिए अच्छी है। मेरे साथ-साथ पेगी को भी रम की आदत पड़ गयी है। लेकिन पता है, कितना शैतान है! कोल्ड रम के बिना छुयेगा नहीं। यह क्या, पीजिए न! देसी रम नहीं है। हमारे क्लब में देसी ड्रिंक्स नहीं आते।"

दूर कहीं पर शायद काफ़ी शोरगुल हो रहा था। एक साथ बहुत से स्त्री-पुरुषों की आवाज़ आ रही थी।

"यह किस बात का शोरगुल है?"

मनिला ने सिप लेकर कहा, "खेल का! लगता है रबर हुई है। उन लोगों में दो जने हैं—मिस्टर सान्याल और मिसेज़ भादुड़ी। बिना शोर किये खेल ही नहीं पाते।"

"आपका सिरदर्द ठीक हुआ?"

"ठीक कैसे होगा ?"

"आपने ही कहा था, रम पीने पर सिरदर्द धीरे-धीरे ठीक हो जाता है!"

"लेकिन मैंने तो कहा था, पेगी बीमार है। इसीलिए तो सिरदर्द हुआ।"

"पेगी बीमार है, यह तो सुना नहीं।"

"फिर और क्या सुना ! पेगी के बीमार होने से ही तो सारी मुश्किल हो गयी हैं। आज सुबह उसे ज़बर्दस्ती चार बिस्कुट खिलायीं। वह क्या खाना चाहता था ! इसके बाद सूप दिया, सैंडविच दीं, मिल्क दिया, सब पड़ा रहा। किसी चीज़ में मुँह नहीं लगाया। डैडी को फ़ोन किया। डैडी ने कहा, 'नहीं मनिला, तुम क्लब जाओ। क्लब गये बिना तुम्हारा सिरदर्द ठीक नहीं होगा।' और माँ ने भी कहा, 'मैं पेगी को देखूँगी। तुम क्लब जाओ, मनिला।' आते समय मैं भी पेगी को खूब प्यार करके आयी। कह आयी हूँ—'मेरे अच्छे पेगी, तुम ज़रा देर की तकलीफ़ सह लो। मैं थोड़ी देर को क्लब होकर आ रही हूँ।' लेकिन देखिए, इस समय आपके साथ बात कर रही हूँ, रम भी पी रही हूँ, लेकिन मेरा दिल वहाँ पेगी के पास पड़ा है··· यह क्या ? आप लीजिये न ! आप ले क्यों नहीं रहे हैं ?"

मिस्टर बोस की आवाज़ आयी, "मनिला !"

"अरे, डैडी आ रहे हैं ! मैं यहाँ हूँ, डैडी !"

मिस्टर बोस ने पास आकर कहा, "हाऊ डू यू एन्जॉय, सदाव्रत ? कैसा लग रहा है ?"

मनिला ने कहा, "डैडी, तुमने मिस्टर गुप्त के लिए रम क्यों भेजी ? यह तो ह्विस्की पीते हैं···"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं-नहीं, रम ही ठीक है, रम इज़ ऑल राइट। आप परेशान न हों।"

"चलो, मनिला! चलो, सदाव्रत! वे सब लोग तुम्हें देखने के लिए बड़े ईगर हैं। उन लोगों को पता नहीं था। मैंने ही बतलाया, हमारे परचेजिंग ऑफ़िसर। मनिला की न्यू चॉयस ! मेरे वुड-बी सन-इन-ला। तुम्हारी मेम्बरशिप हो गयी है। फ़िक्र करने की अब कोई बात नहीं है। चलो !"

अन्दर सभी राह देख रहे थे—मिस्टर गुहा, मिस्टर सान्याल, मिस्टर भादुड़ी, मिस्टर हंसराज, मिस्टर भोपतलाल, मिस्टर आहूजा, और भी कितने ही लोग। सदाव्रत आगे-आगे चल रहा था, फिर मनिला, बगल में मिस्टर बोस। मिस्टर बोस ने भी थोड़ी-सी पी थी। लेकिन पूरे सेन्स

में थे। देख रहे थे, रेजिमेंटेशन कैसा हुआ है। गॉड ब्लेस देम ! ग्रेसस गॉड।

☐ ☐ ☐

और दूसरी ओर, उसी समय कलकत्ता नींद पूरी करने के बाद जागा ही था। ख़रीद-फ़रोख़्त अभी शुरू ही हुई थी। सड़क पर बत्तियाँ जल उठी थीं। सनातन-रहीम वगैरह उस समय गली के नुक्कड़ पर पंछी फँसाने की ताक में खड़े थे। खोमचेवालों ने किरोसिन का डिब्बा जला लिया था। आलू-काबुली, गोश्त की घुघनी वाले रात-भर के लिए निकल पड़े थे। ज़रा-सा झुटपुटा होते ही सभी को आशा होने लगती है। इस मोहल्ले में कैसे-कैसे बाबूओं का आना-जाना होता है, यह ख़ुद भगवान भी नहीं बतला सकते। महीने के आख़िरी दिनों में बाज़ार ज़रा मन्दा रहता। उसके बाद तो अगला महीना शुरू होते ही पौ-बारह।

इसीलिए पद्मरानी ने सबको पहले से ही सावधान कर दिया है।

कहा था,

"भाई कहो भरतार कहो, सब सम्पद के साथी।
असमय में, दुष्काल में, गोविन्द ही सहारा है।"

हाँ तो पद्मरानी का भी एक दिन वही हाल था। "आजकल तुम लोग जो 'हाय पैसा, हाय पैसा' करके मरती हो, पहले बेटी ऐसा नहीं था। एक-एक जहाज़ी बाबू आता और दोनों हाथ रुपये लुटाकर चला जाता। वह सब तुम लोगों को कहाँ देखने को मिला? 'जहाँ-जहाँ गयी ऊखा, वहाँ पढ़े सूखा' वाला हाल है।"

अचानक दौड़ता-दौड़ता सनातन आया। एकदम कमरे में आ पहुँचा।

"माँ, सेठ ठगनलाल आये हैं।"

चारपाई पर बैठे-बैठे ही पद्मरानी ने मुँह बिचकाया।

"चल, मुँहजले ! मेरे साथ हँसी ? मैं क्या तेरी यार हूँ ?"

"नहीं माँ, तुम्हारी कसम, सच कह रहा हूँ। कौन साला तुम्हारे साथ हँसी कर सकता है ! मैंने ठगनलालजी की गाड़ी देखी। देखते ही तुम्हारे यहाँ ले आया। सोनागाछी के पुराने इलाके की ओर जा रहे थे।"

सुफल ने भी देखा था। बाहर निकलकर बोला, "सलाम, हुज़ूर !"

ठगनलाल ने एक बार ताककर देखा, "क्यों बे, खूब लाल हो रहा है ! लगता है खूब देसी ढाल रहा है ?"

कहते-कहते सीधे पद्मरानी के कमरे में चले आये।

"ओ माँ, मैं कहूँ, आज किसका मुँह देखकर उठी थी। उसी का मुह देखकर रोज़ उठूँगी। क्यों बेटा ठगन, क्या रास्ता भूल गये ?"

ठगनलाल तब तक पद्मरानी के बिस्तरे पर बैठ चुके थे।

"रास्ता नहीं भूलूँगा तो क्या ? जाने कहाँ का सब पुराना माल भर रखा है। तुम्हारे यहाँ आने को दिल ही नहीं करता। यह सनातन साला खींच लाया। कहता था, पद्मरानी के फ़्लैट में नया माल आया है। मैंने भी कह दिया है, अगर नया माल नहीं दे पाया तो पीठ की खाल उधेड़कर रख दूँगा।"

गाली खाकर सनातन दाँत निपोरकर हँसने लगा।

पद्मरानी ने कहा, "नया माल रहेगा कहाँ से, ठगन ? नया माल क्या इस बाज़ार में पड़ा रहता है ? तुम इस बाज़ार को नहीं पहचानते ? तुम क्या नये आदमी हो ? दो साल में एक बार आओगे और नया माल ढूँढोगे !"

ठगनलाल ने सिगरेट सुलगायी।

"कसम से कह रहा हूँ, पद्मरानी ! कामकाज के झंझट की वजह से नहीं आ पाता। इम्पोर्ट लाइसेंस बन्द कर गवर्नमेंट ने सेठ ठगनलाल की कमर तोड़ दी है—कारोबार देखूँ या तफ़रीह करूँ ?"

फिर ज़रा देर रुककर बोला, "अच्छा, इन सब बातों को गोली मारो। नया कुछ आया है ?"

पद्मरानी हँसने लगी।

"नया नहीं मिले तो क्या बेकार में यह धन्धा चला रही हूँ ?"

"तो सैम्पल दिखाओ। बिना सैम्पल देखे ठगनलाल लेन-देन नहीं करता। उस बार बेकार में बुलाकर हैरान किया।"

पद्मरानी—"साथ में कितना है ?"

"जितना चाहो—हज़ार, दो हज़ार, चार हज़ार एडवान्स दे दूँगा। लेकिन अभी से कहे देता हूँ जूठा माल नहीं छुऊँगा।"

"तो निकालो !" पद्मरानी ने ठगनलाल की ओर हाथ बढ़ा दिया।

ठगनलाल ने कहा, "रुपये तो दे दूँ, फिर ?"

"मैं कहती हूँ, पद्मरानी पर तुम्हें भरोसा नहीं है ? पद्मरानी ने कभी भी तुम्हारे साथ बेईमानी की है ? माँ काली की कसम खाकर छाती पर हाथ रखो !"

ठगनलाल जैसे थोड़ा ढीला पड़ा। फिर पूछा, "उम्र कितनी होगी ?"

"यही चौदह पार कर पन्द्रह में पड़ी है।"

"ठीक है। जात कौन-सी है ?"

में थे। देख रहे थे, रेजिमेंटेशन कैसा हुआ है। गॉड ब्लेस देम ! ग्रेसस गॉड।

□ □ □

और दूसरी ओर, उसी समय कलकत्ता नींद पूरी करने के बाद जागा ही था। खरीद-फ़रोख़्त अभी शुरू ही हुई थी। सड़क पर बत्तियाँ जल उठी थीं। सनातन-रहीम वगैरह उस समय गली के नुक्कड़ पर पंछी फँसाने की ताक में खड़े थे। खोमचेवालों ने किरोसिन का डिब्बा जला लिया था। आलू-काबुली, गोश्त की घुघनी वाले रात-भर के लिए निकल पड़े थे। ज़रा-सा झुटपुटा होते ही सभी को आशा होने लगती है। इस मोहल्ले में कैसे-कैसे बाबूओं का आना-जाना होता है, यह ख़ुद भगवान भी नहीं बतला सकते। महीने के आख़िरी दिनों में बाज़ार ज़रा मन्दा रहता। उसके बाद तो अगला महीना शुरू होते ही पौ-बारह।

इसीलिए पद्मरानी ने सबको पहले से ही सावधान कर दिया है।

कहा था,

"भाई कहो भरतार कहो, सब सम्पद के साथी।
असमय में, दुष्काल में, गोविन्द ही सहारा है।"

हाँ तो पद्मरानी का भी एक दिन वही हाल था। "आजकल तुम लोग जो 'हाय पैसा, हाय पैसा' करके मरती हो, पहले बेटी ऐसा नहीं था। एक-एक जहाज़ी बाबू आता और दोनों हाथ रुपये लुटाकर चला जाता। वह सब तुम लोगों को कहाँ देखने को मिला ? 'जहाँ-जहाँ गयी ऊखा, वहाँ पढ़े सूखा' वाला हाल है।"

अचानक दौड़ता-दौड़ता सनातन आया। एकदम कमरे में आ पहुँचा।

"माँ, सेठ ठगनलाल आये हैं।"

चारपाई पर बैठे-बैठे ही पद्मरानी ने मुँह बिचकाया।

"चल, मुँहजले ! मेरे साथ हँसी ? मैं क्या तेरी यार हूँ ?"

"नहीं माँ, तुम्हारी कसम, सच कह रहा हूँ। कौन साला तुम्हारे साथ हँसी कर सकता है ! मैंने ठगनलालजी की गाड़ी देखी। देखते ही तुम्हारे यहाँ ले आया। सोनागाछी के पुराने इलाके की ओर जा रहे थे।"

सुफल ने भी देखा था। बाहर निकलकर बोला, "सलाम, हुज़ूर !"

ठगनलाल ने एक बार ताककर देखा, "क्यों बे, ख़ूब लाल हो रहा है ! लगता है ख़ूब देसी ढाल रहा है ?"

कहते-कहते सीधे पद्मरानी के कमरे में चले आये।

"ओ माँ, मैं कहूँ, आज किसका मुँह देखकर उठी थी। उसी का मुह देखकर रोज़ उठूँगी। क्यों बेटा ठगन, क्या रास्ता भूल गये ?"

ठगनलाल तब तक पद्मरानी के बिस्तरे पर बैठ चुके थे।

"रास्ता नहीं भूलूँगा तो क्या ? जाने कहाँ का सब पुराना माल भर रखा है। तुम्हारे यहाँ आने को दिल ही नहीं करता। यह सनातन साला खींच लाया। कहता था, पद्मरानी के फ़्लैट में नया माल आया है। मैंने भी कह दिया है, अगर नया माल नहीं दे पाया तो पीठ की खाल उधेड़कर रख दूँगा।"

गाली खाकर सनातन दाँत निपोरकर हँसने लगा।

पद्मरानी ने कहा, "नया माल रहेगा कहाँ से, ठगन ? नया माल क्या इस बाज़ार में पड़ा रहता है ? तुम इस बाज़ार को नहीं पहचानते ? तुम क्या नये आदमी हो ? दो साल में एक बार आओगे और नया माल ढूँढोगे !"

ठगनलाल ने सिगरेट सुलगायी।

"कसम से कह रहा हूँ, पद्मरानी ! कामकाज के झंझट की वजह से नहीं आ पाता। इम्पोर्ट लाइसेंस बन्द कर गवर्नमेंट ने सेठ ठगनलाल की कमर तोड़ दी है—कारोबार देखूँ या तफ़रीह करूँ ?"

फिर ज़रा देर रुककर बोला, "अच्छा, इन सब बातों को गोली मारो। नया कुछ आया है ?"

पद्मरानी हँसने लगी।

"नया नहीं मिले तो क्या बेकार में यह धन्धा चला रही हूँ ?"

"तो सैम्पल दिखाओ। बिना सैम्पल देखे ठगनलाल लेन-देन नहीं करता। उस बार बेकार में बुलाकर हैरान किया।"

पद्मरानी—"साथ में कितना है ?"

"जितना चाहो—हज़ार, दो हज़ार, चार हज़ार एडवान्स दे दूँगा। लेकिन अभी से कहे देता हूँ जूठा माल नहीं छुऊँगा।"

"तो निकालो !" पद्मरानी ने ठगनलाल की ओर हाथ बढ़ा दिया।

ठगनलाल ने कहा, "रुपये तो दे दूँ, फिर ?"

"मैं कहती हूँ, पद्मरानी पर तुम्हें भरोसा नहीं है ? पद्मरानी ने कभी भी तुम्हारे साथ बेईमानी की है ? माँ काली की कसम खाकर छाती पर हाथ रखो !"

ठगनलाल जैसे थोड़ा ढीला पड़ा। फिर पूछा, "उम्र कितनी होगी ?"

"यही चौदह पार कर पन्द्रह में पड़ी है।"

"ठीक है। जात कौन-सी है ?"

"तुम से झूठ नहीं बोलूँगी। बंगाली लड़की को सलवार-कुर्ता पहनाकर राजपूतानी कहकर चलाऊँगी, ऐसी बाड़ीवाली मैं नहीं हूँ। यह सब तुम पुरानी सोनागाछी में पाओगे। वह सब सनातन से पूछो उसे मालूम है। असल में बंगाली है।"

"देखने में कैसी है?"

"मुझे तुमने कभी ऐसा-वैसा माल सप्लाई करते देखा? पसन्द न हो तो रुपये वापस!"

ठगनलालजी खुश हो गये।

"तो कुल कितना पड़ेगा?"

पद्मरानी ने कहा, "पचीस हज़ार रुपये! सबसे मैं पचीस हज़ार रुपये लेती हूँ। जितना गुड़ डालो, उतना ही मीठा! मेरे यहाँ एक रेट है भाई। तुम से कम लेकर नाम डुबोना है क्या!"

"एडवान्स कितना देना होगा?"

"पाँच हज़ार!"

सेठ ठगनलाल चौंक उठे। "पाँच हज़ार रुपये! पाँच हज़ार रुपये में तो हाथी खरीदा जा सकता है।"

पद्मरानी ने कहा, "तुम एडवान्स मुझे तो दे नहीं रहे हो, जिसकी चीज़ है उसी को दोगे। मेरी तो खाली ज़िम्मेदारी रही। जिस दिन माल हाथ में आये पूरे दाम दे देना।"

"ठीक है! रुपये किसे देने होंगे?"

पद्मरानी उठ खड़ी हुई। बोली, "अच्छा, रुको। मैं बुलाती हूँ। तुम बेफ़िकर रहो। तुम्हारे पैसे की ज़िम्मेदारी मेरी रही।"

कहकर कमरे से निकल बरामदा पार कर सीधे सत्रह नम्बर के कमरे के आगे पहुँचकर आवाज़ दी, "टगर, ओ बेटी टगर!"

दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। पद्मरानी ने फिर से पुकारा, "अरे बेटी टगर! सुन रही है?"

काफ़ी देर बाद दरवाज़ा खोलकर कुन्ती बाहर आयी। आज शाम से ही कुन्ती घर सजाकर बैठी थी। बृहस्पतिवार था। इस दिन अमेच्योर क्लब के प्ले नहीं रहते। बृहस्पतिवार, शनिवार और रविवार को यहाँ आकर दो पैसों की आय हो जाती है।

"ज़रा मेरे साथ तो आना, बेटी! एक मिनट के लिए!"

कई दिन से कुन्ती की तबीयत ठीक नहीं चल रही थी। बूढ़ी की बीमारी

की वजह से काफ़ी रुपया उधार हो गया था। बड़ी मुश्किलों से ख़ून देकर उसे बचाया है। उसके बाद भी दवा-दारू और डॉक्टर लगा ही है। दोपहर के समय ही दोनों वक़्त का खाना बनाकर वह पद्मरानी के फ़्लैट चली आयी थी।

पद्मरानी ने फिर कहा, "आज बच्चू को चारों खाने चित् करके छोड़ूँगी ! आ बेटी, आ ! जल्दी कर !"

कुन्ती फिर भी नहीं समझ पायी। बोली, "कमरे में बाबू है।"

"है तो रहने दे न ! पैसा एडवान्स ले लिया है न ? फिर किस बात की फ़िकर ? माल का दाम चुका दिया है न ? आ !"

कहती-कहती पद्मरानी फिर से अपने कमरे की ओर बढ़ने लगी। कुन्ती भी पीछे-पीछे साड़ी ठीक करती हुई चलने लगी।

"यह देखो, ले आयी हूँ ! यह मेरी लड़की टगर है। इसे जानते हो न ? इसके कमरे में तो बैठे हो न तुम ?"

ठगनलाल ने कुन्ती की ओर देखा। कुन्ती ने कहा, "आप तो पुराने आदमी हैं।"

पद्मरानी ने कहा, "लाओ, रुपये निकालो ! इसी टगर की बहन है। देखकर ख़ुश हो जाओगे।"

ठगनलाल ने कुन्ती को कितनी ही बार देखा है। फिर भी जैसे जौहरी की नज़र से तौल रहा था। "देखने में ऐसी ही है ?"

पद्मरानी ने कहा, "हाँ रे, हाँ ! तुम क्या बिना देखे-सुने माल लोगे ? और सोचते क्या हो ! मैं तो हूँ तुम्हारे रुपये की ज़िम्मेदार। तुम्हें क्या मुझ पर भरोसा नहीं है ?"

ठगनलाल फिर भी पता नहीं क्या सोच रहा था। पद्मरानी ने कहा, "पसन्द न हो तो तुम्हारे रुपये वापस कहती हूँ न !"

"माल कब हाज़िर होगा ?"

"समझ लो अगले बृहस्पतिवार को !"

"चलो-चलो, बृहस्पतिवार ड्राइ-डे है ! चाट के बिना माल में मज़ा नहीं आता !"

"ठीक है, शनीचर अच्छा दिन है। पूर्णिमा है। पूर्णिमा भी अच्छा दिन है। तुम्हारी गद्दी भी जल्दी बन्द होगी। दोपहर से ही आ जमना।"

ठगनलाल ने इसके बाद फिर कोई सोच-विचार नहीं किया। जेब से पाँच हज़ार रुपये के नोट निकालकर कुन्ती की ओर बढ़ा दिये। कुन्ती अभी

तक कुछ भी नहीं समझ पायी थी। क्यों, किस बात के रुपये ! यह भी नहीं समझ रही थी। पद्मरानी ने कहा, "गिन ले, बेटी। बात करो सुनकर, पैसा लो गिनकर। मारवाड़ियों के रुपये का भरोसा नहीं है।"

रुपये हाथ में लिये कुन्ती बुद्धू की तरह पद्मरानी की ओर ताकने लगी।

"ये कैसे रुपये हैं, माँ ?"

"तेरी बहन की 'नथ-उतराई' के। ये पाँच हज़ार एडवान्स के हैं। बाद में पूरे मिलेंगे। शनीचर को उसे ले आना। ठगन भी आयेगा। बाकी हाथों-हाथ मिल जायेंगे।

"मुझे और क्या है बेटी, बहन को लेकर तू ही मुश्किल में पड़ेगी। कौन कहाँ से आकर ख़राब कर जायेगा। इससे तो ठगन अपना जाना-सुना आदमी है। हमेशा के लिए एक हिल्ला बैठ जायेगा। और अगर किसी बाबू की नेक नज़र पड़ गयी तो···"

कुन्ती जैसे और नहीं सह सकी। रुपये का बण्डल झपाक से ज़मीन पर फेंक दिया। सनातन उठाने जा रहा था, लेकिन उससे पहले ही कुन्ती ने लात मारकर उसे दूर फेंक दिया।

यह देखकर पद्मरानी तो हैरान रह गयी।

"यह क्या, टगर ? तूने रुपये को ठुकराया ? रुपया लक्ष्मी है, बेटी !"

कुन्ती और ज़्यादा देर चुप नहीं रह पायी। उसका बदन थर-थर काँप रहा था। बोली, "उस रुपये को मैं हज़ार बार लात मारकर ठुकराऊँगी !"

"क्या कहा ?"

"ठीक ही कह रही हूँ।"

"लेकिन तू माँ लक्ष्मी का इस तरह तिरस्कार करेगी ? तू समझती है हमेशा तेरे हाथों में इतनी ही ताक़त रहेगी ? तेरे दाँत नहीं गिरेंगे ? तेरी आँखों में झिल्ली नहीं पड़ेगी ? तेरे बदन में झुर्रियाँ नहीं पड़ेंगी ? तू समझती है, हमेशा तू इसी तरह जवान रही आयेगी ?"

"न रहे। यह ठीक है कि मैंने अपने गले पर छुरी चलायी है, लेकिन इसीलिए क्या मैं अपनी माँ-जायी बहन के गले पर छुरी चलाऊँगी ? तुम कह क्या रही हो ? मैं वेश्या हूँ, इसीलिए क्या अपनी बहन को भी वेश्या बनाऊँगी ? ऐसे रुपये की मुझे ज़रूरत नहीं है, माँ ! ऐसे रुपये पर मैं थूकती हूँ !" कहकर और रुकी नहीं।

कमरे से फट-फट करती निकलकर बरामदे की ओर चली गयी।

ठगनलाल, पद्मरानी, सनातन—सभी टगर का यह व्यवहार देखकर थोड़ी देर के लिए हैरान रह गये।

□ □ □

बाग़बाज़ार की गली में उस समय और भी अँधेरा हो आया था। शुरू-शुरू में कलकत्ता में शायद इसी तरह अँधेरा था। मक्खी और मच्छरों की वजह से कलकत्ता के लोग परेशान हो जाते। नाले और कीचड़ की बदबू से जैसे छठी का दूध याद आ जाता था।

फिर भी उसी आबोहवा और परेशानी में तख़्त पर केदार बाबू गहरी नींद ले रहे थे। उनका गुरुपद, उनका मन्मथ, उनका वसन्त, उनका सदाव्रत—सभी आदमी बन जायँ; आज वह जैसे और कुछ भी नहीं चाहते। वह शायद नहीं देख पायेंगे। हिस्ट्री में १७५७ में ऐसी ही बुरी हालत हुई थी। इसके बाद हुई १८५७ में, फिर १९३९ में। इसके बाद १९४७ से फिर यही हाल चल रहा है। केदार बाबू बीमारी में ही बार-बार काँप जाते हैं। कुछ भी मिल नहीं रहा था। विन्सेंट स्मिथ, कार्ल मार्क्स, टॅयेन्बी, सब की सभी बातें जैसे झूठी हुई जा रही हैं।

शशिपद बाबू देखने आये थे। वह एक बार रोज़ देखने आते हैं। डॉक्टर भी आकर देख जाते। दवा का प्रेसक्रिप्शन लिख जाते।

केदार बाबू बुखार की तेज़ी में एक बार जैसे चिल्ला उठे, "सदाव्रत! सदाव्रत!"

मन्मथ पास ही था। उसने एक बार झुककर देखा। मास्टर साहब फिर से बेहोश हो गये थे।

बाहर के कमरे में उस समय शैल मैले कपड़े से फर्श साफ़ कर रही थी। मन्मथ पास जाकर खड़ा हो गया। बोला, "सुन लिया?"

शैल वैसे ही काम करती रही। कोई जवाब नहीं दिया।

"मैं एक बार सदाव्रत दा के पास जाऊँगा।"

शैल ने काम करते-करते कहा, "नहीं, जाने की कोई जरूरत नहीं है।"

"लेकिन मैं तो एक दिन गया था।"

शैल ने उसकी ओर देखते हुए पूछा, "गये थे माने?"

"तुमने जाने को मना किया था, फिर भी गया था। तुम गुस्सा करो या जो भी करो, मैं बिना गये नहीं रह पाया।"

शैल उठकर खड़ी हो गयी। बोली, "क्यों गये थे तुम? मैंने इतनी बार मना किया, फिर भी तुम गये!"

मन्मथ ज़रा डर गया। बोला, "तुम ज़रा भी फ़िकर मत करो। मास्टर साहब का हाल देखकर ही मैं बिना गये नहीं रह पाया।"

शैल ने कहा, "इस बार मैं कहे देती हूँ, फिर कभी भी मत जाना। काका अगर मर भी जायँ तो भी खबर देने की कोई ज़रूरत नहीं है। काका सभी का विश्वास करते हैं। लेकिन उस विश्वास की क़ीमत समझनेवाले तुम्हारे सदाव्रत दा नहीं हैं।"

कहकर शैल अपना काम करने लगी।

□ □ □

'आइजनहावर' की डॉक्ट्रिन के साथ नया साल शुरू हुआ। इस दुनिया का एक और नया साल। दुनिया की उमर और एक दिन बढ़ी। दुनिया और भी बूढ़ी हुई। मिडिल ईस्ट का कोई भी देश अगर अब हमला करे तो अमेरिका रुपया और आर्मी सब-कुछ देकर सहायता करेगा। ईजिप्ट के ऊपर झपटने को सोवियत ब्लॉक तैयार हो गया है। स्वेज़-कैनाल छोड़कर अंग्रेज़ चले गये हैं। फ्रांस भी चला आया है। सोवियत रूस यह मौक़ा हाथ से नहीं जाने देगा। इसके पहले ही अरबवालों को नमक खिला देना होगा। ईजिप्ट से अमेरिका का गुणगान कराने के लिए जल्दी-से-जल्दी नमक खिलाये बिना चारा नहीं है। इसलिए और भी रुपया बहाओ। चाँदी की बाढ़ में ईजिप्ट, सीरिया और ईराक को डुबो दो। रुपये के बूते पर दुनिया की कौन-सी चीज़ खरीदी नहीं जा सकती! हम लोग तुम्हारे मित्र हैं। हम लोग अनाथों के नाथ हैं, दीनों के भगवान हैं। तुम लोग सोवियत रूस को छोड़कर हम लोगों का ध्यान धरो।

शिवप्रसाद गुप्त यही सब लेकर पिछले कुछ दिनों से व्यस्त थे। पंडित नेहरू हाल ही में अमेरिका से लौटे हैं। सभी सुनना चाहते हैं, आइज़नहावर ने क्या कहा? हमें कुछ देगा क्या? अमेरिका चाहे तो हम लोगों को बड़ा आदमी बना सकता है। चाइना हम लोगों पर भी तो हमला कर सकता है। असल में तो चाइना रूस का ही दोस्त है। हम लोगों को थोड़ी-सी सहायता ही मिल जाये तो हम लोगों के फाइव-इयर प्लान सक्सेसफुल हो जायँ।

अविनाश बाबू वगैरह बूढ़े आदमी हैं। शाम के वक्त एक बार खबर लेते हैं।

गोविन्द के दरवाज़ा खोलते ही पूछते, "क्यों, तुम्हारे बाबू लौट आये?"

'आये नहीं हैं' सुनकर सब वापस लौट जाते। जाकर फिर से पार्क की

बेंच पर बैठ जाते। कार्तिक शुरू होते ही सिर और गले में मफलर पहनना शुरू कर देते। ज़रा ठंड पड़ते ही बूढ़े पैंशन-होल्डर्स की पार्टी होशियार हो जाती। जिन्दगी-भर गवर्नमेंट ऑफ़िस में मोटी तनख्वाह पर नौकरी की है। उस समय ऑफ़िस के बाबू लोग सम्मान करते थे, डरते थे, उठते-बैठते सलाम करते। अब कोई फिरकर भी नहीं ताकता। घर में लड़के-लड़कों की बहुएँ भी अब पहले-जैसी ख़ातिर नहीं करतीं। इसीलिए बूढ़ों की यह पार्टी एक-दूसरे का सुख-दुःख सुनते-सुनाते, और वक्त मिलते ही शिवप्रसाद बाबू की बैठक में जा पहुँचते। इधर काफ़ी दिनों से मुलाक़ात नहीं हुई। वह इन्दौर गये हैं।

अविनाश बाबू ने बात चलायी, "आज का स्टेट्समैन देखा, अनिल बाबू ? रुपये जैसे चारों ओर बिखर रहे हैं !"

अनिल बाबू बोले, "अमेरिका की बात कर रहे हैं न ? देखता हूँ, इतना करोड़ों रुपया आख़िर गुम कहाँ हो जाता है ?"

हृषिकेश बाबू ने कहा, "तब हम लोगों को भी तो कुछ दे सकते हैं, हम लोगों की हालत क्या उन लोगों से ज़्यादा अच्छी है ?"

इसके ज़रा देर बाद बहस और भी दूर चली गयी। अमेरिका किसे रुपया देता है, क्यों देता है। वह रुपया किस तरह ख़र्च होता है। कौन ख़र्च करता है। वैसे रुपये का क्या उपयोग होता है। इस पर भी बहस चलती। अनुमान के आधार पर तर्क भी चलते।

अखिल बाबू—"सुना है, हम लोगों के देश में भी ये लोग रुपये लुटा रहे हैं।"

"यह बात है !"

सभी चौंक उठे। "किसे देते हैं ? किसलिए देते हैं ?"

शाम हो आयी थी। उधर लड़के फ़ुटबाल खेल रहे थे। सड़क पर लड़कियाँ घूम रही थीं। साथ में और लड़के-लड़कियाँ थे।

"सुना है इंडिया को भी काफ़ी रुपया मिल रहा है। लेकिन किसे मिल रहा है, यह नहीं मालूम। वह सब कॉन्फ़ीडेंशियल मामला है।"

षष्ठि बाबू कहते, "अरे, नहीं साहब, अपने ब्रजेन को मिलता था। आजकल नहीं मिलता।"

"ब्रजेन कौन ?"

"मेरे ऑफ़िस में असिस्टेंट था। अचानक एक दिन नौकरी छोड़ दी। छोड़कर एक गाड़ी ख़रीदी। क़ीमती सिगरेट पीने लगा। कहाँ से रुपया

आता था, हम लोग कुछ भी नहीं जानते थे।"

"इतने लोगों के रहते उसे ही रुपये क्यों देते थे ?"

षष्ठि बाबू बोले, "क्या पता साहब, क्यों देते थे। शायद कोई सोर्स रहा होगा। बाद में एक दिन अचानक रास्ते में मुलाक़ात हो गयी। देखा, गाड़ी नहीं थी। पैदल चक्कर काट रहा था। समझ गया रुपया आना बन्द हो गया है।"

सभी बड़े रस से किस्सा सुन रहे थे, "क्यों ? बन्द क्यों कर दिया ?"

"अरे, वही तो, बुल्गानिन और ख्रुश्चेव के आने पर खूब भीड़ हुई थी न। ऐसी भीड़ तो भारत में पहले कभी हुई नहीं थी। यह देखकर ही तो अमेरिका बहुत गुस्सा हो गया। कितनों ही का रुपया बन्द कर दिया।"

अविनाश बाबू ने तर्क दिया, "लेकिन साहब, अकेले अमेरिका को ही दोष देने से कैसे काम चलेगा ? आपका क्या खयाल है, रूस रुपया नहीं दे रहा ? वह भी तो अन्दर-ही-अन्दर रुपये खिला रहा है।"

अखिल बाबू ने कहा, "सो तो है ही। रुपये के बिना कम्युनिस्ट लोग भी आख़िर किस तरह गाड़ी चलायें ? कम्युनिस्ट बेचारे तो घर की रोटी खाकर परायी बकरियाँ चराने नहीं निकलेंगे।"

"सच ही तो ! रुपया लेने में किसे आपत्ति हो सकती है ! रुपये देने में भी कितनों ही को आपत्ति नहीं होती। लेकिन कोई हम लोगों के बारे में तो सोचता नहीं है। यही हम लोग पैंशन-होल्डर्स। हम लोग क्या कुछ भी नहीं हैं, साहब ! आज हम बूढ़े हो गये हैं, रिटायर्ड हैं। हम लोगों की कोई नहीं सुनता। न गवर्नमेंट सुनती है, न पब्लिक ही सुनती है ! हम लोग आख़िर जायँ कहाँ ?"

सदाव्रत को भी यह मालूम है। सिर्फ़ यह क्लब ही तो इंडिया नहीं है। जादवपुर, कालीघाट, फड़ेपुकुर स्ट्रीट अगर इंडिया है, तो बाग़बाज़ार की वह अँधेरी गली भी इंडिया है। यह कलकत्ता भी तो इंडिया है। एक दिन दूसरे साधारण लड़कों और लोगों के बीच ही सदाव्रत भी मधुगुप्त लेन में पला है। वहाँ रहकर वह भी शायद शंभू वग़ैरह की तरह क्लब और ड्रामा लिये मस्त रहता। केदार बाबू के पास रहकर शायद वह भी उस अँधेरी गली के अन्दर ही सभी की भावी मुक्ति का स्वप्न देखा करता। अथवा नेताजी सुभाष रोड पर के अपने पिताजी के लैंड डेवेलपमेंट ऑफ़िस में बैठा-बैठा ही ज़िन्दगी गुज़ार देता। तब यह क्लब देखना भी नहीं होता। इन आदमियों को भी नहीं जान पाता।

ऑफ़िस जाने में सदाव्रत को रोज़ एक घंटा लगता। यह भी मिस्टर बोस की इन्स्ट्रक्शन थी! उपदेश था! लोग जिस तरह विद्यार्थियों को उपदेश देते हैं, मिस्टर बोस भी सदाव्रत को ठीक उसी तरह उपदेश देते हैं। उन्होंने कह दिया था, "रास्ते में या सड़क पर कभी भी पैदल मत चलना। सड़क पर पैदल घूमना डेमोक्रेटिक है। हर समय मुँह में सिगरेट लगाये रहना होगा। कश लगाओ या न लगाओ, होंठों में सिगरेट का होना ज़रूरी है। इससे पर्सनैलिटी-कल्ट बढ़ता है। जो लोग कहते हैं कि सिगरेट पीने से कैंसर होता है, वे ऐण्टी-सोशल हैं। तुम्हें पता है, इस सिगरेट-इंडस्ट्री में करोड़ों डालर लगा है। कितने ही करोड़ों लोग नयी तम्बाकू-फैक्टरियों में काम करते हैं। ज़रा उन लोगों के बारे में सोचो। तुम सिगरेट नहीं पिओगे, तो जिन्होंने सिगरेट कम्पनियों के शेयर खरीद रखे हैं, उनका क्या होगा? इसी नज़र से हमें हर ओर देखना होगा। एक बात और! जो पुअर हैं, जो ग़रीब हैं, जो मध्यम श्रेणी के हैं, उनके साथ मेल-जोल नहीं रखोगे। मेक इट ए पॉइन्ट—उन लोगों से मुलाक़ात होने पर भी उनको पहचानोगे नहीं। हम लोगों ने बचपन में कुछ बातें टेक्स्ट-बुक्स में पढ़ी हैं। जैसे—जीवों पर दया करना। आत्मोत्सर्ग। कभी झूठ न बोलो। परोपकार। निस्वार्थपरता। ऑनेस्टी। दूसरे की ज़रूरत को अपनी ज़रूरत से ज़्यादा समझो। इस तरह की जितनी भी टीचिंग्स हैं, सब भूल जाओ। ये सब झूठ हैं। स्कूल में इन बातों को पढ़ना होता है, इसी से पढ़ा। लाइफ़ के लिए इन बातों की कोई यूटीलिटी नहीं है। तुम और रास्ते के ऑर्डिनरी लोग अगर एक ही जैसी ड्रेस पहनोगे, एक ही साथ एक ही रास्ते पर चलोगे, तो वे लोग तुम से डरेंगे क्यों? तुम पर श्रद्धा क्यों करेंगे? तुम्हें मानेंगे क्यों? इसीलिए तो इंडियन रेलवे में तीन क्लासें हैं—फर्स्ट, सेकंड और थर्ड। यही देखो न, आज अगर प्लेन का किराया कम हो जाये तो सबसे पहले मैं ही आपत्ति करूँगा। देखो न, मेरे घर भी रेडियो है और मेरी फ़र्म के एक क्लर्क के घर पर भी रेडियो-सेट है। दिस इज़ रांग। यह बेइन्साफ़ी है। तब मेरे साथ उन लोगों का डिफरेंस ही कहाँ रहा? मेरी राय में रेडियो-सेट इतना सस्ता नहीं करना चाहिए। रेडियोग्राम भी जिस दिन सस्ता हो जायेगा, रेफ्रिजरेटर भी जिस दिन सस्ता होगा, सबसे पहले मैं ही आपत्ति करूँगा। यह नहीं हो सकता, होगा भी नहीं। रूस ने यह एक्सपेरिमेंट किया था। फेल हुआ। तभी तो आज सब चेन्ज करके वह अमेरिका को फ़ॉलो कर रहा है। दो दिन बाद ही देख पाओगे आइज़न-

हॉवर डॉक्ट्रिन ही सक्सेसफुल हुई है। देखोगे वर्ल्ड अमेरिक्नाइज़्ड हो गयी है। एण्ड आई वाण्ट इट।"

दो हज़ार रुपये। टू-थाऊजेंड रूपीज़। दो हज़ार रुपये महीना देकर मिस्टर बोस ने सदाव्रत को ख़रीद लिया था। केवल दो हज़ार रुपये ही नहीं, मिस मनिला बोस और उसका कुत्ता पेगी भी दिया है। सच ए नाइस डॉग! इतना स्वार्थ त्याग किया है सिर्फ़ एक अच्छा जमाई पाने के लिए!

मिस्टर बोस ने पहले ही दिन पूछा था, "कैसा लगा, मनिला? अपने फ्यूचर हसबैंड को देखा?"

"ओह, मिस्टर गुप्त?"

"डिड यू लाइक हिम? तुम्हें पसन्द है?"

अँधेरे सुनसान रास्ते से मिस्टर बोस की गाड़ी जा रही थी। सरदार ड्राइवर था। मिस्टर बोस ने ज़्यादा नहीं पी थी। तीन पेग पीकर ही बॉय को कह दिया था—बस, दैट्स ऑल। मनिला ने भी दो पेग रम पी थी। दोनों के मन में किसी तरह की अशान्ति नहीं है। आज दोनों ही हैपी हैं।

मनिला ने सिर का जूड़ा ठीक करते हुए कहा, "मेरे पसन्द करने से तो काम चलेगा नहीं न!"

"क्यों? अपना लाइफ़-पार्टनर तुम पसन्द न करोगी तो कौन पसन्द करेगा? मैं तुम्हारी मर्ज़ी के खिलाफ़ शादी नहीं करना चाहता। हम लोग कोई स्टोन-एज़ में तो रहते नहीं हैं। तुम फ्रैंकली बोलो। मैं उसे रिज़ेक्ट कर दूँगा। तुम दोनों ने आज किस विषय पर बात की?"

"साइकोलॉजी।"

"साइकोलॉजी? वेरी गुड सब्जेक्ट! बी० ए० में मेरा सब्जेक्ट था। सदाव्रत क्या साइकोलॉजी समझता है?"

"अरे नहीं, डॉग साइकोलॉजी! मैंने पेगी के बारे में बात की।"

मिस्टर बोस ने कहा, "आई सी! लेकिन तुमने सिनेमा को लेकर बातचीत क्यों नहीं की? तुम तो इस सब्जेक्ट की ऑथेरिटी हो। सदाव्रत कौन-सी फ़िल्में देखता है? लेटेस्ट फिल्म्स देखी हैं?"

"वह तो पूछा नहीं! कल यही सब्जेक्ट उठाऊँगी।"

"हाँ, उठाना। तुम लोगों को एक साथ सारी ज़िन्दगी बितानी है। दोनों के टेस्ट एक-जैसे होने चाहिएँ, नहीं तो मैरीड लाइफ़ में हार्मनी नहीं रहेगी। देखती नहीं, तुम्हारी माँ के साथ मेरी एकदम नहीं पटती।"

मनिला ने कहा, "वह तो मुझे पता है, डैडी! इसीलिए तो मुझे

तुम्हारे लिए अफसोस होता है। आई रियली फील सॉरी फॉर यू।"

मिस्टर बोस को किसी-किसी दिन इसी तरह की आत्मग्लानि होती है। जो खुद भोग रहे हैं, कहीं बेटी को भी न भोगना पड़े। सारी दुनिया को जीतकर वह जैसे अपने घर आकर ही हार गये हैं।

गाड़ी तैरती-सी चल रही थी। उन्होंने कहा, "यही देखो। तुम तो उस दिन टर्फ़ क्लब गयी थीं न ?"

"हाँ, गयी तो थी। तुम्हारी बात मानकर मैंने 'लेडी डायना' पर तीन सौ रुपया लगाया था।"

मिस्टर बोस—"तुमसे 'लेडी डायना' पर लगाने को कहा था, तुमने लगाया। पन्द्रह हज़ार रुपये भी मिले। और तुम्हारी माँ ने किस पर लगाया, पता है ! मैंने उसे भी यही करने को कहा था।"

"माँ ने तो 'ब्लैक प्रिन्स' पर लगाया था।"

मिस्टर बोस ने कहा, "डैम लॉस ! 'ब्लैक प्रिन्स' कहीं 'कैलकटा टर्फ़' जीत सकता है ? 'ब्लैक प्रिन्स' की यह मज़ाल कि कलकत्ता की इस सॉफ़्ट टर्फ़ को जीते ? मैंने इतना कहा, लेकिन तुम्हारी माँ ने नहीं सुना।"

"तुमने किस पर लगाया था, डैडी ?"

मिस्टर बोस—"मैंने ट्रिपल लगायी थी। इसी से कुछ नहीं मिला। लेकिन मेरा कैलकुलेशन तो बेकार नहीं गया। मेरे घोड़े पर बाज़ी लगाने से तुम्हारी माँ को भी पन्द्रह हज़ार रुपये मिले होते !"

फिर जैसे खिन्न होकर बोले, "जाने दो, मनिला, इन सब बातों से क्या फायदा !···हाँ, सदाव्रत तुम्हें पसन्द आया या नहीं, कहो ? तुम्हें अगर पसन्द हो तो आई कैन प्रॉसीड फर्दर !"

"लेकिन मैं फ़ाइनल-वर्ड कैसे दे सकती हूँ ? अगर पेगी को मिस्टर गुप्त पसन्द न आये ?"

"लेकिन पेगी की लाईकिंग-डिसलाइकिंग से क्या आता-जाता है ?"

"वाह, अगर पेगी नाराज़ हो गया, तब ? पेगी अगर मिस्टर गुप्त को मेरे बेड पर न सोने दे, तब ? ऐसे ही देखो न, कोई यंगमैन मेरे साथ बात करता है, तो पेगी पसन्द नहीं करता। मिस्टर जायसवाल से पेगी कितना नाराज़ है, पता नहीं है ? गुस्से के मारे मेरे से बात तक नहीं करता।"

एल्गिन रोड आ गयी थी।

मनिला की गाड़ी के अन्दर घुसते ही पेगी दौड़ता-दौड़ता मनिला की गोद में आ गया। मुँह रगड़-रगड़कर जैसे मनिला को खत्म ही कर देगा,

इतना ख़ुश था। मनिला पेगी का मुँह दोनों हाथों में लेकर चूमने लगी—"ओ माई डार्लिंग, ओ माई···"

□ □ □

कालीघाट का नया मुहल्ला भी पुराना हो आया। अब कुन्ती गुहा को देखकर इस ओर कोई मुँह नहीं सिकोड़ता। रात-दिन, दोपहर, किसी भी समय नयी साड़ी-ब्लाउज़ पहनकर आने-जाने पर कोई गौर नहीं करता। इस इलाके के लड़के सब-कुछ जानते हैं। कुन्ती गुहा उनके मुहल्ले की शान है। स्कूल-कॉलेज में लड़के उसकी बातें करते। कहते—"पता है, मेरे मुहल्ले में भी एक आर्टिस्ट है।"

"हैं! नाम क्या है?"

ये लोग नाम बतलाते, "कुन्ती गुहा···"

नाम कोई खास पॉपुलर नहीं है। ऐसा नाम कि बोलते ही लोग चौंक पड़ें। अखबारों में कुन्ती गुहा की तसवीरें भी नहीं छपतीं। ट्राम-बस पर जाने से अगल-बगल भीड़ भी जमा नहीं होती। फिर भी लड़की तो है ही! और लड़की भी ऐसी, जिसकी उम्र बीस-बाइस के अन्दर है! जिसके सिर पर कोई मर्द गार्जियन नहीं है। एकदम आज़ाद!

"उसके और कौन-कौन हैं?"

"एक बहन और है। स्कूल में पढ़ती है। दोनों में से किसी की शादी नहीं हुई है।"

इन दोनों को लेकर मुहल्ले के नये छोकरों में काफ़ी बहसें होतीं। शुरू-शुरू में कुन्ती को आता-जाता देखकर आँख मारते। दो-एक ने दूर से सीटी भी बजायी। लेकिन कुन्ती ने भी ऐसी फटकार लगायी कि फिर किसी दिन उन लोगों की शैतानी करने की हिम्मत नहीं हुई।

कुन्ती ने एकदम सामने आकर कहा, "सीटी किसने बजायी? जल्दी से बतलाइये!"

जो वहाँ बैठे थे, सभी सन्न रह गये।

"आप लोगों की माँ-बहन नहीं हैं? माँ-बहन की ओर देखकर सीटी नहीं बजाते?"

आते समय धमकी दे आयी थी, "अगर फिर कभी सीटी बजाते सुना तो मैं थाने में जाकर ख़बर कर दूंगी, यह कहे देती हूँ!"

शायद कुन्ती गुहा के चेहरे में कहीं कुछ था, जिसकी वजह से फिर किसी ने पीछे लगने की कोशिश नहीं की। कुन्ती गुहा के दिन मज़े में ही

कट रहे थे। नयी जगह आकर बात फैलने का जितना डर था, उतना नहीं हुआ। समय मिलने पर आस-पास के घरों की बहू-बेटियाँ चली आतीं। वे सभी खाना बनाकर पतिदेव को खिला-पिलाकर ऑफ़िस भेजकर आतीं, और हर साल या दो साल के बाद बच्चे पैदा करतीं। वे लोग खूब ही कुढ़तीं। कहतीं, "तुम मज़े में हो, बहन!"

वे लोग खड़ी-खड़ी साज-सिंगार देखतीं। कैसे घुमा-फिराकर साड़ी पहनती है! कितना अच्छा जूड़ा बाँधती है! पाँव में जूते डालकर किस तरह निकल जाती है। किसी की परवाह नहीं करती। खुद ही कमाती है, खुद ही खर्च करती है। उन लोगों की तरह कोई पूछनेवाला नहीं हैं। एक रुपया इधर-उधर होने पर आदमी हिसाब माँगते।

इसीलिए कुन्ती गुहा से कहतीं, "सच, तुम मज़े में हो। भई, मरकर भी कभी शादी न करना।"

कोई-कोई पूछती, "अच्छा, नाटक और ड्रामों में एक्टिंग करने से कितना रुपया मिलता है?"

सिर्फ़ क्या इतना ही? कोई-कोई तो थियेटर का टिकट भी माँगती। फोकट में नाटक देखने का कार्ड। निमन्त्रण-पत्र। कोई थियेटर में पार्ट करना चाहती। थियेटर में काम करके कुन्ती की ही तरह रुपया कमाना चाहतीं।

कहती, "एक बार मुझे कोई पार्ट दिला दो न!"

कुन्ती कहती, "अरे नहीं, भाभी! तुम्हें कोई झमेला है, ऐसा तो लगता नहीं। बाल-बच्चों के साथ मज़े में तो गृहस्थी चल रही है। तुम इस झमेले में क्यों पड़ती हो?"

"ओ माँ, झमेला किस बात का? तुम्हें तो किसी झमेले में देखती नहीं। तुम तो मज़े में खाती-पीती हो और प्ले करती हो।"

"बाहर से सभी को ऐसा ही लगता है, भाभी! मुझे भी तो लगता है कि आप खूब मज़े में हैं। मज़े से खाती-पीती और सोती हैं। रुपया कहाँ से आ रहा है, आपको इस बात की भी फ़िक्र नहीं है।"

भाभी हँसकर कहती, "यह बात नहीं है, रानी। जो रोटी-कपड़ा दे रहा है, वह क्या बदले में आना-पाई तक वसूल नहीं कर लेता?"

कुन्ती समझ नहीं पायी। बोली, "इसका मतलब?"

भाभी ने कहा, "इसका मतलब आज नहीं समझ पाओगी। शादी होने पर समझोगी!"

कहकर भाभी अजीब-सी हँसी हँसती। और जो शादीशुदा औरतें

होतीं वे भी हँसतीं। कुन्ती समझ नहीं पाती। कुन्ती ने कितनी ही बार सोचा है। उन लोगों की तरह घर-गृहस्थी होने पर शायद वह भी ख़ुश होती। वह भी उन लोगों की तरह खाना पकाती, बच्चे पैदा करती और उन्हीं लोगों की तरह उसके-इसके घर गप्पें लगाती फिरती। वह शायद इससे अच्छा होता।

बूड़ी फिर स्कूल जाने लगी थी। खाना बनाकर घर में ताला लगाकर कुन्ती चाबी ताई के पास ही रख जाती। कमरे में खाना ढँका हुआ रखा रहता। बूड़ी घर आकर खाने के बाद घर के दूसरे काम करती। बाद में पढ़ने बैठती।

ताई पूछती, "लौटने में क्या आज भी देरी होगी?"

"हाँ ताई, लौटने में आज भी देरी होगी। आप ज़रा बूड़ी पर नज़र रखिएगा। कमरे में खाना ढँका रखा है। खाने को कह दीजिएगा। देखियेगा, किसी के साथ बातचीत न करे। एक्ज़ाम पास ही हैं न!"

कुन्ती हर रोज़ इस तरह ताई से देखने को कह जाती। स्कूल से लौटकर बूड़ी रोज़ पढ़ने बैठती। शाम को पढ़ाने के लिए मास्टरनी भी लगा दी गयी थी। वही पढ़ाती।

ताई कहती, "बेटी, तुम धन्य हो। अपनी पूटी से भी यही कहती हूँ। कहती हूँ, एक बार अपनी कुन्ती दी को देख, बेटी! देखकर ही कुछ सीख। कितनी तकलीफ़ सहकर माँ-जायी बहन को आदमी बना रही है। सगा भाई भी इतना नहीं करता।"

कुन्ती कहती, "क्या ऐसे ही कर पाती हूँ, ताई! मर-मरकर ही करती हूँ। कितने दिन करती रहूँगी, पता नहीं। जितने दम रहेगा, कर रही हूँ। इसके बाद बूड़ी की तकदीर है!"

"बेटी, तुम जो कर रही हो, अच्छे-अच्छे नहीं कर पाते। मुहल्ले का कोई आदमी ऐसा नहीं है, जिसे नहीं मालूम हो। सब कोई तुम्हारी बड़ाई करते हैं।"

"आपके आशीर्वाद से बूड़ी अगर आदमी बन जाये तो समझूँगी कि मेरी मेहनत बेकार नहीं गयी।"

"ज़रूर होगी। तुमने जिस तरह से बहन को बचाया है, कौन नहीं जानता। दिन-रात एक करके सेवा की। और पैसा भी कैसा पानी की तरह बहाया। मैंने सभी तो देखा है।"

इसके बाद कुन्ती को देरी हो रही है, देखकर ताई ने कहा, "अच्छा,

तुम्हें देर हो रही होगी, बेटी ! तुम चलो। घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं बूड़ी को देखूँगी।"

बैग हाथ में लिये कुन्ती निकल पड़ी। इतनी जल्दी निकलने की कोई ख़ास ज़रूरत भी नहीं थी। फिर भी घर बैठे-बैठे अच्छा नहीं लगता। छुटपन से बाहर-ही-बाहर रहने से जैसे आदत-सी पड़ गयी है। अब बिना निकले अच्छा नहीं लगता। लगता, जैसे कलकत्ता शहर उसे पीछे छोड़कर आगे बढ़ रहा है। वह जैसे दौड़ में पिछड़ गयी है। सड़क पर बिहारी की दूकान पर कुन्ती रुकी, एक पान लिया। सामने ही शीशा झूल रहा था। ख़ुद के चेहरे की परछाईं पड़ रही थी। ज़रा देर देखकर बैग से पैसे निकालने लगी। खुले पैसे नहीं थे। पान के दाम भी बढ़ गये हैं।

कुन्ती ने कहा, "चूना दो, और ज़रा-सी सुपारी भी।"

पहचाना दूकानदार था। रुपये का नोट अच्छी तरह से देखने लगा।

दूकानदार ने हाथ बढ़ाकर लौटाते हुए कहा, "दीदी, यह बदल दीजिये। यह ख़राब है।"

"ख़राब माने ?"

नोट लेकर कुन्ती ने अच्छी तरह से देखा। कुछ भी समझ नहीं सकी। फिर काफ़ी देर तक देखने के बाद पता लगा, सचमुच ख़राब है। आश्चर्य ! उसे भी ठगा है ? किसने ठगा ? कुन्ती को लगा जैसे सारा कलकत्ता उसे ठगने के लिए इतने दिनों से षड्यन्त्र कर रहा है। इतने दिनों से षड्यन्त्र करने के बाद जैसे आज पकड़ पायी है। एक रुपया ! एकदम छोटी-सी चीज़। वही एक रुपया जैसे उसे मुँह चिढ़ा रहा था। उसमें छपी त्रि-सिंह मूर्ति के शेर जैसे जी उठे थे और उसे काटने आ रहे हों।

निकलते ही यह गड़बड़ होने से कुन्ती का मन ख़राब हो गया। सारा मज़ा जैसे किरकिरा हो गया। पहली बार जिस दिन वह ऑकलैंड-ऑफ़िस के बड़े बाबू के साथ बाहर निकली थी, उसने ठीक किया था, इस दुनिया के सामने वह हार नहीं मानेगी। अपनी जवानी की पूरी-पूरी क़ीमत वह वसूल कर लेगी। फिर ? फिर वह कैसे ठगी गयी ? किसने उसे ठगा ?

सामने की बस से कितनी ही नज़रें उसी की ओर ताक रही थीं। उनमें से एक नज़र तो जैसे निगल लेना चाहती थी। सिर से पाँव तक जैसे वह आदमी उसे निगल लेना चाहता था। ऐसे लोगों को चारों खाने चित् करने का आर्ट कुन्ती को आता है।

ज़रा इशारा करते ही वह आदमी चट से बस से उतर आया। आकर

सीधे पान की दूकान पर पान खरीदने लगा। शायद कचहरी जा रहा था। कोई मुक़दमा होगा। शायद मामले की सुनवाई आज ही होनेवाली थी। या अस्पताल में अपनी वहू को देखने जा रहा था। आज-कल में मरनेवाली होगी। इस तरह से कितने ही लोगों का काम कुन्ती ने विगाड़ा है। काम-काज सव जैसे गड़वड़ा जाता।

वह आदमी हाथ वढ़ाकर पान ले रहा था।

कुन्ती ने कहा, "देखिये तो, यह नोट क्या खराव है? दूकानदार कहता है चलेगा नहीं।"

वह आदमी भी शायद वात करने का वहाना खोज रहा था।

बोला, "देखूँ, देखूँ! क्या वात है?"

नोट हाथ में लेकर कई बार घुमा-फिराकर देखा। फिर कहा, "नहीं, यह नोट तो ठीक ही है। आपसे किसने कहा कि खराब है? यह अगर खोटा है तो इंडिया गवर्नमेंट भी खोटी है।"

"देखिये न, दूकानदार कह रहा है, नहीं लेगा।"

"लेगा नहीं माने? ज़रूर लेगा! क्यों जी, इस नोट में क्या खरावी है, ज़रा मैं भी सुनूँ? वेकार में एक भली महिला को तंग कर रहे हो? कह दिया नहीं लेंगे! क्यों नहीं लोगे?"

दूकानदार पुराना व्यापारी आदमी ठहरा। बोला, "नहीं वावू, यह नोट जाली है।"

"जाली है मतलव? जाली कहने से ही हो गया? तुमने कह दिया और जाली हो गया? पता है, मैं बैंक में नौकरी करता हूँ? मुझे नोट पहचानना सिखला रहे हो तुम? मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर सकता हूँ!"

झगड़ा शुरू हो गया। शोरगुल सुनकर और भी दो-चार लोग जमा हो गये।

उस आदमी ने कहा, "ठीक है! यह नोट मेरे पास रहने दीजिये। आप दूसरा नोट ले लीजिये।"

कहकर अपनी पॉकेट से एक अच्छा नोट निकालकर कुन्ती के हाथ में दे दिया।

फिर कहा, "आजकल ये दूकानदार इतना परेशान करते हैं कि कुछ न पूछिये, जनाव। मुझे कई बार भुगतना पड़ा है। आज मैं भी कुछ करके छोड़ूँगा। 'तोम ये नोट लेगा कि नहीं लेगा,' बताओ!"

लेकिन तब तक उस ओर की बस आ गयी थी। कुन्ती और नहीं

ठहरी। जल्दी से नोट अपने पर्स में डालकर बस पर जा चढ़ी। कुन्ती के चढ़ते ही बस चल दी। फिर कहाँ की पान की दूकान और कहाँ का वह आदमी! उस समय बस कलकत्ता की छाती चीरती आगे बढ़ रही थी।

□ □ □

सुबह के समय दो घंटे के लिए मिस्टर बोस का सेक्रेटरी आता। दुनिया की सारी ख़बरें उसे पढ़कर सुनानी होतीं। आजकल बिजनेसमैनों को बिजनेस के साथ-साथ दुनियाई पॉलिटिक्स से भी वाकिफ़ रहना पड़ता है। इंडिया का भाग्यविधाता इंडिया ही नहीं है। भारत-भाग्य-विधाता तो आज वाल-स्ट्रीट है। वहाँ के शेयर-मार्केट की पूरी-पूरी ख़बरें रखना आजकल बिज़नेसमैनों के लिए बड़ा ज़रूरी है। सिर्फ़ ज़रा-सी ख़बर जानने के लिए बम्बई ट्रंककॉल करना होता है। मिस्टर बोस के वकील-एडवोकेट-एटर्नी सभी टेलीफ़ोन सामने रखे बैठे रहते। इसी के बीच पर्सनल मामले भी चलते रहते। उसी के बीच रेस होती, क्लब होते, अपनी मिसेज़ होती, बेटी मनिला होती।

मकान के अन्दर से ही कितनी ही बार मनिला फ़ोन करती।

"डैडी, देखो न पेगी ब्रेकफास्ट नहीं ले रहा है।"

"लेकिन तुम उसके पीछे इतनी पागल क्यों हो?"

फिर पूछते, "तुम्हारी माँ कहाँ हैं? सोकर उठीं?"

"माँ टॉयलेट ले रही हैं।"

"अभी तक टॉयलेट ही हो रहा है? ब्रेकफास्ट नहीं हुआ? इतनी देर में ब्रेकफास्ट लेने पर शरीर का क्या हाल होगा?"

"उसके लिए मैं कुछ नहीं कह सकती, तुम आकर कह जाओ।"

मिस्टर बोस खुद सुबह जल्दी ही उठते। अपने ऑफ़िस-रूम में ही तरह-तरह के कामों में फँसे रहते। टेलीफ़ोन आते, आदमी आते, सेक्रेटरी आता। लेकिन मन घर के अन्दर ही पड़ा रहता। मिसेज़ ने टॉयलेट लिया है या नहीं, मनिला सोकर उठी है या नहीं—सब उन्हीं को सोचना होता। अख़बार पढ़ते-पढ़ते अनमने हो जाते। इसके बाद सेक्रेटरी की ओर देखकर कहते, "फिर?"

सेक्रेटरी फिर से अख़बार पढ़ना शुरू कर देता।

रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के फर्स्ट सेक्रेटरी श्री निकिता ख्रुश्चेव ने क्रमलिन में कहा है—'स्टालिन वाज़ ए ग्रेट मार्क्सिस्ट। आइ ग्रू अप अण्डर स्टालिन। स्टालिन मेड मिस्टेक्स, बट वी शुड शेयर रेस्पॉन्सिबिलिटी

फॉर दोज़ मिस्टेक्स बिकॉज़ वी वर एसोशिएटेट विद हिम। वी टेक प्राइड एट हैविंग फ़ॉट एट स्टालिन्स साइड अगेन्स्ट क्लास-एनिमीज़। द इम्पिरियलिस्ट्स कॉल अस स्टालिनिस्ट्स। वेल, ह्वेन इट कम्स टु फ़ाइटिंग इम्पिरियलिज़्म वी आर आल स्टालिनिस्ट्स।'

मिस्टर बोस ने इतना सुनकर कहा, "रुकिये !"

इसके बाद टेलीफ़ोन-रिसीवर उठाकर डायल करने लगे, "हलो, मिस्टर गुप्त हैं क्या ?"

उस ओर से हिमांशु बाबू ने फ़ोन उठाया था। बोले, "मिस्टर गुप्त तो अभी तक वापस नहीं आये।"

"यह क्या ? इन्दौर से अभी तक नहीं लौटे ?"

शिवप्रसाद गुप्त इन्दौर गये थे—ए० आई० सी० सी० का ख़ास निमंत्रण पाकर। अमेरिका से पंडित नेहरू ने कांग्रेस मेम्बरों को बुलाया था। शिवप्रसाद गुप्त को भी बुलाया। अब तक तो लौट आने की बात थी। ईजिप्ट से फ्रेंच आर्मी के वापस जाने के बाद से मिडिल ईस्ट की हालत और भी ख़राब हो गयी थी। किसका प्रभुत्व रहेगा ? सोवियत रूस या अमेरिका ?

मिस्टर बोस ने कहा, "पढ़िये, आप पढ़िये। इन्दौर की कोई ख़बर है ?"

सेक्रेटरी ने कहा, "यस सर। यह है न !"

कहकर पढ़ने लगा। मि० नेहरू ने कहा है, "इफ़ देअर इज़ ए पॉवर वैक्युअम इन वेस्ट एशिया, इट हैज़ टु बी फिल्ड बाई ए कन्ट्री इन दैट रीजन। ईवेन्ट्स इन ईजिप्ट एण्ड हंगरी हैड शोन दैट नाइदर कॉलोनियल-एग्रेशन नॉर कम्युनिस्ट-एग्रेशन वर ईज़ी एनी मोर..."

मिस्टर बोस ने बीच में ही रोका, "रुकिये !"

कहकर उठ खड़े हुए। घर के अन्दर की याद आयी। मिसेज़ की याद। मेजर सिनहा ने इतना कह दिया है कि ठीक समय सोकर उठना होगा, ठीक समय टॉयलेट करना होगा, ठीक समय ब्रेकफास्ट लेना होगा।

कॉरीडोर पार कर सीढ़ी है। सीढ़ी से ऊपर चढ़ने पर सेकंड फ़्लोर में मिसेज़ बोस के बेडरूम से लगा हुआ बाथरूम। अन्दर से पानी गिरने की आवाज़ आ रही थी।

दरवाज़े के पास जाकर पुकारा, "बेबी, अरे बेबी !'

मिसेज़ बोस का घर का नाम बेबी था।

"अरे बेबी ! इतनी देर क्यों कर रही हो ? पता है कितने बजे हैं ?"

टॉयलेट के अन्दर बेबी थीं, और आया थी।

मिस्टर बोस ने कहा, "तुम्हें और कितनी देर लगेगी ?" आया ने बाथरूम का दरवाज़ा खोल दिया। खोलकर बाहर निकलकर चली गयी।

मिस्टर बोस ने अन्दर जाकर देखा—टब के अन्दर गले तक पानी में डूबी मिसेज़ बोस एक किताब पढ़ रही हैं।

"यह क्या, इतनी देर से सोकर उठीं। अभी तक यह क्या पढ़ रही हो ?"

अन्दर अँधेरा था, इससे मिस्टर बोस देख नहीं पाये। अब देखा। बेबी बड़ी बेफ़िक्री के साथ 'हैंडीकैप' पढ़ रही थी। रेस की 'हैंडीकैप-बुक'।

"यह क्या ! तुम क्या यहाँ बैठी-बैठी 'हैंडीकैप' पढ़ रही हो ?"

मिसेज़ बोस मन-ही-मन जैसे झुँझला उठीं। बोलीं, "तुम यहाँ क्या करने आये हो ? देख रहे हो, मैं सोच रही हूँ।"

"ब्रेकफास्ट खाते समय भी तो सोच सकती हो ? यहाँ क्यों ?"

मिसेज़ बोस ने कहा, "देखो, तुमने मुझे 'ब्लैक-प्रिन्स' पर बाज़ी लगाने को मना किया है, लेकिन इसी 'ब्लैक-प्रिन्स' ने मद्रास में एकदम अपसेट कर दिया था—नाइन्टीन फिफ्टी में।"

मिस्टर बोस को गुस्सा आ गया, लेकिन अपने पर काबू रखा। बोले, "लेकिन 'अपसेट' लेकर तुम्हें क्या करना है ? 'ब्लैक-प्रिन्स' पर ही अगर बाजी लगानी थी तो प्लेस क्यों नहीं लगाया ?"

कहकर मिस्टर बोस फिर वहाँ नहीं रुके। सीधे नीचे फर्स्ट फ़्लोर पर आकर कॉरीडोर पार करके अपने ड्राइंग-रूम में आ गये।

सेक्रेटरी चुपचाप बैठा था। मि० बोस ने चुरुट सुलगाते हुए कहा, "पढ़िये, आप पढ़िये। एडीटोरियल पढ़िये।"

□ □ □

'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के ऑफ़िस में उस समय भी रिहर्सल हो रहा था। श्यामली चक्रवर्ती काफ़ी देर से बैठी है। वन्दना भी आ गयी है। फाउण्डर्स-डे फंक्शन जितना पास आ रहा है, स्टाफ का जोश भी उतना ही बढ़ रहा है। हर ओर दीवारों पर लिख-लिखकर टाँगा हुआ है—'वेस्ट नॉट वाण्ट नॉट,' 'टाइम इज़ मनी'। इसी तरह के और भी कितने ही अमूल्य सदुपदेश हर समय स्टाफ़ की आँखों के सामने झूलते रहते हैं, जिससे कोई काम में धोखा न दे पाये, कोई काम की अवहेलना न कर पाये।

अचानक कुन्ती कमरे में आयी।

सेक्रेटरी बोल उठा, "यह क्या, आपको इतनी देर लगी ?"

कुन्ती गुहा हाथ का पर्स रखकर बैठ गयी। बोली, "आप लोगों ने मुझे बड़ी मुश्किल में डाल दिया था।"

"क्यों ? मुश्किल कैसी ?"

"कल तीस रुपये दिये थे न। मैंने ठीक से देखे नहीं। आज देखती हूँ उनमें से एक रुपया ख़राब है।"

"अरे ? देखूँ, वह रुपया कहाँ है ?"

"वही एक रुपया लेकर घर से निकली थी। बस में टिकट के लिए रुपया देते ही मुश्किल में पड़ी। कंडक्टर ने कहा कि यह रुपया नहीं चलेगा। आख़िर मुझे घर लौटना हुआ। घर पहुँचकर, रुपया बदलकर तब कहीं यहाँ आ पायी। हम लोगों को ठीक से देखकर रुपये देने चाहिएँ न! 'हम आप लोगों का विश्वास करते हैं, इसलिए क्या आप लोग इस तरह ठगेंगे ?"

सेक्रेटरी साहब सचमुच शर्मिन्दा हो गये। जेब से मनीबैग निकालकर एक रुपया बढ़ाते हुए कहा, "यह लीजिये! हम लोग तो देख-भालकर ही देते हैं, फिर भी शायद ग़लती से चला गया होगा।"

रुपया लेकर कुन्ती ने अपने पर्स में डाल लिया। इसके बाद मुसकाई। बोली, "सो तो है ही। आप लोगों ने क्या जान-बूझकर मुझे ठगा ? मैंने यह तो नहीं कहा।"

□ □ □

इसी तरह हर रोज़ इस कलकत्ता की नींद टूटती है। नींद टूटने के बाद जगने पर भी यह कलकत्ता सोता रहता है। सुबह उठते ही अख़बार के रोचक उपदेशों का नाश्ता करता है। और भी कम खाने का उपदेश, और भी मेहनत करने का उपदेश, और भी बचत का उपदेश। यहाँ की दिनचर्या इन्हीं उपदेशों से शुरू हो जाती है। लेकिन रात शुरू होती है पद्मरानी के फ़्लैट से, होटल के डान्स और क्लब की रम, जिन, ह्विस्की से। कोई कहता है—सिटी ऑफ़ प्रोसेशन, जुलूसों का शहर। तो कोई और कहता—रामकृष्ण परमहंस का शहर, स्वामी विवेकानन्द का शहर, रवीन्द्रनाथ टैगोर का शहर, सी० आर० दास और सुभाषचन्द्र का देश।

जिसका भी शहर हो, १९४७ से यहाँ का इन्सान ईजिप्ट की ममी हो गया है। लेकिन इंडिया की ये ममियाँ क़ब्र-तले चुपचाप ख़ामोशी के साथ सोयी नहीं रहतीं। ये घूमती-फिरती रहती हैं, गाड़ी पर सवार होती हैं,

खाना खाती हैं, पद्मरानी के फ़्लैट में आ जाती हैं, क्लबों की मेम्बर होती हैं, रेस खेलती हैं। ये ही बस-ट्राम जलाते हैं, मीटिंग करते हैं, खादी के कपड़े पहनते हैं और कम्युनिज़्म पर लेक्चर झाड़ते हैं।

मौत यहाँ बहुत सस्ती है। इसलिए जीवन का यहाँ कोई मूल्य नहीं है। वह मुफ्त का है। चूँकि ग़रीबी यहाँ एकदम बेशर्म है, इसीलिए पैसे की निगाह इतनी पैनी है। प्रेम यहाँ सौदे की चीज़ है। इसी से यहाँ घृणा इतनी छोटी चीज है। पाप यहाँ इतनी ज़्यादा तादाद में है कि पुण्य बहुत ही साधारण-सी चीज़ बन गया है। यह सिर्फ़ कुन्ती गुहा की कहानी नहीं है; विनय, शंभू और सदाव्रत की कहानी नहीं है; केदार बाबू, शैल, मि० बोस और मनिला की कहानी भी नहीं है। यह कहानी है इकाई, दहाई और सैकड़ा की।

बाग़बाज़ार की गली में जिस समय केदार बाबू बीमारी और दर्द से छटपटाते हैं, उस समय मिस्टर बोस के क्लब में बड़े ज़ोर-शोर के साथ ताश के खेल की रबर होती है। जल्दी-जल्दी कुछ खा-पीकर जब बूढ़ी स्कूल पहुँचती है तो देखती है कि मिनिस्टर की मृत्यु के उपलक्ष में स्कूल में छुट्टी हो चुकी है।

शुरू-शुरू में कुन्ती को सन्देह नहीं हुआ। नियमित रूप से स्कूल की फीस देती रही। फ्रॉक छुड़ाकर बूड़ी को साड़ी पहनायी। जो मास्टरनी पढ़ाने आती, उससे बहस की। उस मास्टरनी को कुन्ती चालीस रुपये महीना देती थी।

कुन्ती पूछती, "बूड़ी की पढ़ाई-लिखाई का क्या हाल है ?"

मास्टरनी कहती, "आपकी बहन पढ़ने में खूब तेज़ है। पास कर जायेगी, देख लीजियेगा।"

बाहर जाते समय ताई से भी कह जाती कि बूड़ी ठीक समय पढ़ने बैठे, कि वह किसी के साथ गप्प न लगाये। एक दिन उसने भी तो फ्रॉक छोड़कर साड़ी पहनना शुरू किया था। एक दिन वह भी तो इसी उम्र में ऑकलैंड हाउस के बड़े बाबू के हाथों में फँस गयी थी। काफ़ी देर तक कुन्ती निगाह गड़ा-गड़ाकर बूड़ी की ओर देखती। वह धीरे-धीरे बड़ी हो रही है। बदन धीरे-धीरे भर रहा है। बदन जैसे गदरा गया है। कुन्ती को बड़ा डर लगता। बड़ी चिन्ता होती। यही तो उम्र है। यही तो डरने की उम्र है। इसी उम्र में तो वह खुद चारों ओर देखकर चौंक उठी थी। इसी उम्र में तो उसने दुनियाई आइने में अपनी शकल बाक़ायदा देखी थी। इसी उम्र

में तो पुरुषों की निगाहों में उसने अपना सर्वनाश पढ़ा था। इसी उम्र में तो उसे कलकत्ता ने लपक लिया था।

"यह क्या ? घर लौट आयी ! छुट्टी हो गयी क्या ?"

सुबह ग्यारह बजे स्कूल लगता है। शाम को चार बजे से पहले बूड़ी घर नहीं लौट पाती। उसी समय छुट्टी होती है। आज अचानक छुट्टी की बात सुनकर कुन्ती हैरान रह गयी।

"आज कौन मरा ?"

"कोई मिनिस्टर मर गया है।"

बूड़ी आजकल अपनी बहन से बात करते घबराती है। बूड़ी की बात पर कुन्ती अचानक जल-भुनकर लाल हो गयी। "मिनिस्टर मर गया तो तेरे स्कूल की छुट्टी क्यों हुई ?"

ताई उस वक्त भात पसाकर कमरे में घुस रही थी। कुन्ती की डाँट सुनकर वहीं से बोली, "तुम उसे इस तरह से मत डाँटो, बेटी ! अभी उस दिन तो अस्पताल से वापस आयी है।"

"देखिये न ताई, जैसी स्कूल की हैडमिस्ट्रेस है वैसा ही स्कूल है। बात-बात में छुट्टी ! आज दफ्तरी मर गया, उसकी छुट्टी। कल सेक्रेटरी मरा, उसकी छुट्टी। परसों मिनिस्टर मरा, उसकी छुट्टी। मुँहजले मर गये, बड़ा अच्छा हुआ ! लेकिन छुट्टी किस बात की ! हर महीने फीस नहीं लेते ? खून-पसीना एक कर तुम्हें फीस देती हूँ सो क्या छुट्टियों के लिए ?"

ताई ने पूछा, "कौन मर गया ? कौन ? कहाँ का मंत्री ?"

"पता नहीं किस चूल्हे का मंत्री मर गया है !"

"अरे, राम-राम ! उमर कितनी थी ?"

कुन्ती ने उस बात का कोई जवाब नहीं दिया। बूड़ी की ओर देखकर बोली, "छुट्टी तो हुई। अब सारे दिन क्या होगा, ज़रा सुनूं ? खेलेगी ? इधर-उधर आवारागर्दी करती फिरेगी ?"

बूड़ी ने निगाह नीची किये कहा, "मैं पढ़ूँगी !"

"पढ़ेगी न ख़ाक थोड़ी-सी ! तुझे अगर इतना पढ़ने का ही शौक होता तो मुझे फ़िक्र करने की क्या ज़रूरत थी ? तू कुछ बन जाये, इसीलिए तो भूतनी की तरह पिसती हूं ! और नहीं तो क्या मुझे इतनी मेहनत अच्छी लगती है !"

तभी जैसे अचानक याद आ गया। कई दिन हुए पेटीकोट फट गया

था। फटा पेटीकोट अलगनी से उतारकर बूड़ी को देते हुए कहा, "बैठी-बैठी इसकी सिलाई कर। घर का कोई काम तो किया कर। मैं अकेली सारा धन्धा करूँ और तू बैठी-बैठी खाये ? तुझसे क्या इतना भी नहीं होगा ? और कल राशन की दूकान से जो चावल आया है, सब-का-सब कंकड़ों से भरा है। उसे साफ़ करके रखना। मैं अकेली क्या-क्या देखूँ ?"

ताई खड़ी थी। बोली, "हाल में ही तो बीमारी से उठी है, बेटी। अभी से क्या इतना कर सकेगी ? उमर होने पर सब कर लेगी। सिर पर जब पड़ती है, तब ख़ुद ही समझेगी। किसी को सिखलाना नहीं होगा।"

इसी तरह प्रायः रोज ही कुन्ती बहन को उपदेश देती। इसी तरह कह-कहकर कुन्ती अपनी छोटी बहन को आदमी बनाना चाहती है। रात को बिस्तरे पर पड़े-पड़े किसी-किसी दिन सोचना अच्छा लगता कि बूड़ी और भी बड़ी हो गयी है। उसकी शादी हो रही है। उसका दूल्हा आया है। सिर पर सेहरा बाँधे, रेशमी कपड़े पहने। बारात, जयमाल हो रही है। बाजे बज रहे हैं। शंख की आवाज़ आ रही है। कलकत्ता की इतनी गन्दगी और सड़न में भी यह स्वप्न देखना अच्छा लगता। ट्राम और बस में जाते-जाते टैक्सी में किसी नये दूल्हा-दुल्हन को देखकर कुन्ती अनमनी हो जाती। इसके बाद आँखों के आगे दोपहर के वक्त का वह कलकत्ता कब रात के कलकत्ता में बदल जाता, पता ही नहीं चलता। उस कलकत्ता में पद्मरानी का फ़्लैट नहीं होता, ड्रामेटिक क्लब नहीं होता, ह्विस्की नहीं होती, चॉप-कटलेट कुछ भी नहीं होता। उस समय हर ओर सिर्फ़ शंख की आवाज़ होती। हर ओर बाजे, शहनाई और पुकार, 'दूल्हा आ गया ! बारात आ गई ! दूल्हा आ गया !'

शाम के समय जो पढ़ाने आती थी, रोज़ की तरह उस दिन भी आयी।

हाथ में छाता, पैरों में चप्पल। इधर-उधर हर मुहल्ले में घूम-घूमकर दो पैसा पैदा करना होता है। शाम को उसके आते ही बूड़ी रोशनी कर देती। ज़मीन पर चटाई बिछाती। किताबें लाती। इसके बाद पढ़ने बैठती।

दूसरे घरों में पढ़ाने जाने पर लड़की के माँ-बाप, बुआ, कोई-न-कोई आस-पास में होते। पढ़ाई कैसी हो रही है, खबर रखते। लेकिन इस घर का कुछ अलग ही हिसाब था। पहले दिन से ही उसे अजीब लगा था।

पूछा था, "तुम्हारी जीजी कहाँ हैं ? घर नहीं हैं ?"

बूड़ी ने जवाब दिया, "जीजी तो ड्रामा करने गयी हैं।"

"हर रोज़ ड्रामा रहता है ?"

"हाँ, रोज़ !"

बी० ए० पास महिला थी। काफ़ी मुश्किलों से पढ़ाई-लिखाई कर भाई-बहनों को पाला है, अपने पैरों पर खड़ी है। अब इच्छा है एक छोटा-सा मकान बनवाने की। कलकत्ता के किसी कोने में। बाद में मौक़ा लगने पर शादी भी कर लेगी। फिर भी यहाँ आकर, इस घर को देखकर बड़ा अजीब-अजीब-सा लगता। इसकी बहन कितना कमाती है ? वह बी० ए० पास करके जितना कमाती है शायद उससे भी ज़्यादा ! सौ, दो सौ, तीन सौ ? कुन्ती को सिर्फ़ एक बार देखा था। लेकिन एक बार और देखने की इच्छा है। ये लोग कितने मज़े में हैं ! ये ड्रामों, नाटकों में काम करनेवाली लड़कियाँ ! सिनेमा के अखबारों में इनकी फ़ोटो छपती है। इनमें से कितनों ही की जीवनी पढ़ी है। इन लोगों की ज़िन्दगी में भी कितना मज़ा है, और वह ? बहन से खोद-खोदकर बात पूछने की इच्छा होती।

हमेशा की तरह उस दिन भी शाम को आकर आवाज़ दी, "शान्ति !"

'शान्ति' आवाज़ सुनते ही हमेशा बूड़ी पीछे की ओर से आकर दरवाज़ा खोल देती। लेकिन आज कोई आवाज़ नहीं आयी।

मास्टरनी ने फिर ज़ोर से पुकारा, "शान्ति !"

ताई ने सुन लिया।

"कौन है ?"

बूढ़ी औरत, धीरे-धीरे आँगन पार कर आयी। दरवाज़ा खोला।

"ओह माँ ! तुम हो ! बूड़ी कहाँ गयी ? बूड़ी नहीं है ? दोपहर को ही तो देखा था—बैठी-बैठी सिलाई कर रही थी। कहाँ चली गयी ? तुम ज़रा देर बैठो न, बेटी ! शायद अभी आती ही होगी।"

मास्टरनी को सिर्फ़ एक घर में तो ट्यूशन करना नहीं होता। सुबह-दोपहर-शाम, हर वक़्त ही काम रहता। ज़्यादा देर बैठने से नुक़सान होगा।

मास्टरनी—"ठीक है ! आज शायद कहीं गयी हैं, मैं कल फिर आऊँगी।"

ताई और क्या कहतीं ! कहने को था भी क्या ! जिनकी लड़की है, जिनके पैसे हैं, वे ही समझेंगे। बाद में शान्ति जब घर लौटी, मास्टरनी जा चुकी थी। मज़े से पान चबाते-चबाते आकर दरवाज़ा खोलने लगी।

ताई ने पूछा, "कहाँ गयी थी री, बूड़ी ? तेरी मास्टरनी आकर लौट गयी !"

मास्टरनी के लौट जाने की बूड़ी को कोई खास चिन्ता नहीं थी। वहन के इतने रुपये ख़राब हो रहे हैं, उस ओर जैसे उसका ध्यान ही नहीं था। बड़ी बहन की तरह उसने भी जादवपुर देखा है, वेहाला का बाज़ार देखा है, और अब कालीघाट देख रही है। जितनी बड़ी हो रही है, उसकी आँखें जैसे उतनी ही खुल रही हैं। देख रही है—हर मुहल्ले के लोग एक-जैसे हैं। हर आदमी की नज़रें एक-जैसी हैं। वह अच्छी तरह से समझ गयी है कि सत्तर साल के बूढ़े से लेकर सोलह साल के लड़के तक सभी उससे एक ही चीज़ चाहते हैं। वह समझ गयी है कि बड़ी बहन के उपदेशों के अनुसार उससे पढ़ाई-लिखाई नहीं होगी। बिना पढ़े-लिखे भी कलकत्ता में आदमी बड़ा हो सकता है। मकान, गाड़ी—सब-कुछ मिल सकता है। उधर श्यामबाज़ार, बीच में धर्मतल्ला, और दक्षिण में बालीगंज-टालीगंज सारी जगह वह देख चुकी है। सिनेमाघर के पास जाकर खड़े होने पर कितनी ही बार टिकट बिना लिए भी काम चलता है। पैसे न होने पर भी रेस्टोरेंट में चाय पीने को मिल जाती है। पैसे न होने पर भी बस पर चढ़कर सारे कलकत्ता में घूमा जा सकता है। इस ज़रा-सी उम्र में ही उसने यह आर्ट सीख ली है। कलकत्ता में उसकी उम्र की लड़कियों को ख़ुश करनेवाले मालदार रईसों की कमी नहीं है।

"ताई, मैं ज़रा देर के लिए घूम आऊँ। आप दरवाज़ा बन्द कर लें।"

"अभी हाल तो आयी है, फिर कहाँ चली ?"

"अपनी क्लास की एक सहेली के यहाँ जा रही हूँ।"

कहकर और नहीं रुकी। बूड़ी की निगाहों में उस समय कालीघाट की बस्ती जैसे ज़हर हो रही थी। ऐसी शामों को जैसे बूड़ी की पीठ में पंख लग जाते हैं! तब उसे बड़ी बहन की बातें याद नहीं रहतीं। मुहल्ले की बात भी ध्यान में उतर जाती। यह भी ध्यान से उतर जाता कि कुछ ही दिन पहले उसकी जीजी ने उसे दराँती से मारा था। यह भी याद नहीं रहता कि कुछ ही दिन पहले उसे अस्पताल में ख़ून देकर बचाया गया है। उस समय सब-कुछ जैसे गोलमाल हो जाता।

"टिकट ! आपका टिकट ?"

बस उस समय लगभग धर्मतल्ला के पास पहुँच चुकी थी। बूड़ी ने जल्दी से कहा, "टालीगंज !"

"टालीगंज, तो इस बस में क्यों चढ़ीं ? यह तो दो नम्बर बस है। श्यामबाज़ार जायेगी।"

"तब क्या किया जाये ?"

"उतरकर आप दूसरी ओर जाइये और चार नम्बर बस पकड़िये।"

बूड़ी उतरी। बस के सारे लोग उसकी सहायता करने को बेचैन हो रहे थे। बेचारी कलकत्ता में नयी-नयी आयी है। बूड़ी भी आँख और मुंह के भाव से अनाड़ी का अभिनय बड़ी ही सफलता से कर लेती थी। ऐसा भाव दिखलाया जैसे सचमुच ही वह भूलकर ग़लत बस में चढ़ गई हो।

लेकिन उधर तभी हाय-तोबा मचना शुरू हो गया था—"मेरा मनी-बैग ? अरे जनाब, मेरा मनीबैग कहाँ गया ?"

और भी जो पैसेंजर अन्दर थे, अपनी-अपनी जेबें टटोलने लगे—बैग में कितने रुपये थे ? दस रुपये ? सस्ते में ही छूट गये। उस दिन मेरे तीन सौ रुपये निकाल लिये। लेकिन जनाब, हम सबकी जेबें सर्च करके देख लीजिये। जिसने लिया है, वह अभी अन्दर ही होगा। सभी की जेबें देख लीजिये। शर्म-लिहाज से काम नहीं चलेगा, यह भलमनसाहत का ज़माना नहीं है !

बूड़ी तब तक एसप्लैनेड के पास उतरकर धीमे-धीमे दूसरी ओर जा रही थी। बस के अन्दर शायद तब भी हाय-तोबा मची थी। सिर्फ़ उस एक बस में ही क्यों ? दोनों ओर से हज़ारों की तादाद में लोग आ-जा रहे हैं। रास्ता पार करना भी मुश्किल हो गया है। उस ओर एक रेस्टोरेंट दिखलायी दिया। उसी में घुस पड़ी। यहाँ उसे कोई भी नहीं देख पायेगा। उसकी बस के लोग।

एक बैरा सामने आकर खड़ा हुआ। वही उसे अन्दर ले गया। इन लोगों को क्या उस पर सन्देह हो गया है ? बूड़ी डर से घबरा गयी। इसके बाद एक घिरी-सी जगह में आने पर भी उसकी घबराहट कम न हुई। अगर बैग खोलकर देखे, अन्दर एक भी पैसा नहीं है ? बैरे के जाते ही जल्दी से ब्लाउज़ के अन्दर से मनीबैग बाहर निकाला। जाने किस चीज़ के मुड़े हुए कागज़। और उसी के साथ कुछ छुट्टे नोट। सब मिलाकर नौ। पूरे दस भी नहीं। झूठा कहीं का !

बैरा चाय रख गया था। होंठों से कप लगाया ही था, तभी लगा, बग़लवाले कमरे से जैसे कुन्ती की आवाज़ सुनायी दी। सच ही तो दीदी की आवाज़ है। शाम के समय दीदी यहाँ ? बीच-बीच में खिलखिलाहट की आवाज़ भी आती। किसी आदमी के साथ बातचीत कर रही थी। वह भी हँस रहा था। शायद दोनों चाय पी रहे थे।

बूड़ी थर-थर काँपने लगी। दीदी अगर देख ले!

चाय पिये बिना ही बूड़ी उठ खड़ी हुई। पैसे दिये। बाहर निकलकर फिर से बस पकड़ी। शायद दीदी अभी-अभी घर लौटेंगी!

□ □ □

केदार बाबू इसी तरह तख्तपोश पर पड़े हुए थे। सुबह शशिपद बाबू आकर देख गये हैं। लड़के के मास्टर हैं। लड़के के मास्टर हैं सिर्फ़ इसीलिए नहीं। दुनिया में कोई-कोई आदमी ऐसे भी होते हैं, जिन्हें सहानुभूति, प्रेम, स्नेह, श्रद्धा—सभी-कुछ मिलती है। लेकिन सिर्फ़ एक वही चीज़ नहीं मिलती जिससे उसका पेट भरता है। लोग उसे आश्रय देते हैं, उसकी मुश्किलों में, उसके दुःख में उसे देखते भी हैं, लेकिन उसका भार लेने से घबराते हैं।

जबकि केदार बाबू का इससे कुछ आता-जाता न था। उनके लिए तो सभी अपने थे। कोई पराया नहीं था। इसीलिए किसी के भी आगे हाथ फैलाने में उन्हें कोई भी हिचकिचाहट न थी। हिचकिचाहट थी शैल को। हर किसी से सहायता, ज़रूरी सहायता लेना भी उसे बुरा लगता था। काका क्या भिखमंगे हैं? आखिर किसी से क्यों माँगें? काका ने क्या जी-जान एक करके अपने छात्रों को नहीं पढ़ाया? फिर? फिर वह किसी के सामने हाथ फैलाने क्यों जाएँगे?

शैल एक-एक पैसे का हिसाब रखकर घर चलाती आयी है। होश आने के समय से ही देखती आयी है, जानती आयी है, सिर्फ़ अपने काका को। जबकि अपनी ही उम्र की दूसरी लड़कियों को उसने देखा है। फड़ेपुकुर स्ट्रीट के मकान की खिड़की से सड़क पर झाँककर देखती। नये-नये कपड़े और गहने पहने अड़ोस-पड़ोस की लड़कियाँ दोपहर के वक़्त सिनेमा जा रही हैं। लेकिन उसका तो कोई भी साथी नहीं है। कोई भी सहेली नहीं है। काका तो उसके लिए वैसी साड़ी नहीं लाये। और लड़कियों की तरह किसी दिन उससे तो सिनेमा जाने के लिए नहीं कहा।

तब वह क्या अलग है?

इसी कलकत्ता में रहकर भी वह यहाँ से अलग है। काका ने तो हमेशा दूसरों की भलाई चाही है। काका तो सारे देश के लोगों का कल्याण, सुख-सुविधा सब-कुछ चाहते हैं। इतिहास के पन्नों में मनुष्य के आदि-इतिहास को खोजने की कोशिश की। जबकि खुद उन्हीं के घर में कोई जीता-जागता इन तमाम दुनियायी आराम और सुविधाओं से वंचित, अनजान—तिरस्कृत

और अवांछनीय ज़िन्दगी जी रहा है; उसकी ओर तो कभी नज़र उठाकर देखा भी नहीं। या हो सकता है काका ने देखने की कोशिश ही न की हो। कौन जानता है।

काका का कहना था—अरे, विलासिता और ऐयाशी भी कोई चीज़ है ! यह ऐयाशी ही सारी बुराइयों की जड़ है। इसी की वजह से देश का यह हाल हुआ है।

जबकि पाप कौन नहीं कर रहा। ग़ैर-क़ानूनी काम, फ़िज़ूलख़र्ची, विलासिता, हर जगह तो पाप घुसा बैठा है। लेकिन उन्हें तो सज़ा नहीं भोगनी होती। बीमार होने पर उन्हें तो दवा मिलने में कोई तकलीफ़ नहीं होती। दूध, फल—सब-कुछ खरीदने को पैसा उन लोगों के पास होता है। काका ही क्यों नहीं खरीद पाते ? काका ने ही ऐसा कौन-सा पाप किया है ?

और देश का हाल अगर खराब है तो किधर से ? कोई भी तो आसार नज़र नहीं आते। सब-कुछ मजे से ही तो चल रहा है। दवा लेने धर्मतल्ला भटकते समय उसने सब देखा है। चारों ओर चकाचौंध, हर ओर ऐश्वर्य और समृद्धि जैसे बिखरी पड़ रही थी। सड़क पर बस और ट्रामों में कहीं भी तो मुश्किल दिखलायी नहीं देती। सब-कुछ ही तो जैसे मजे में चल रहा है। बचपन में जो उसने कलकत्ता देखा था अब उसकी कितनी उन्नति हो गयी है। कितनी ही ऊँची-ऊँची इमारतें खड़ी हो गयी हैं। सड़क पर और नयी-नयी गाड़ियाँ दिखलायी देती हैं। इसमें पाप कहाँ है ? एक भी मकान तो ज़मीन में धँसा नहीं। किसी का घर भी उनकी तरह तबाह नहीं हुआ। इतने लोगों में काका ने ही कौन पाप किये हैं ?

जिस समय सारे घर में कोई भी नहीं रहता था, जिस समय काका भी बुखार की बेहोशी में पड़े होते, जब मन्मथ भी नहीं होता, उसी समय शैल ज़मीन-आसमान एक किया करती, न जाने कहाँ-कहाँ की बातें। फिर काका के लिए नारियल का पानी निकालकर रखती। कमरा साफ़ करती। किताबों को पहले की तरह करीने से लगाती। हमेशा की ही तरह गृहस्थी के छोटे-मोटे काम जैसे नशे की ख़ुमारी में कर जाती। तभी दूधवाला आता, नल में पानी आता, दोपहर के गुमसुम कलकत्ता में फिर से हलचल शुरू होती।

तभी चुपचाप मन्मथ आकर खड़ा होता।

मन्मथ डरता-डरता वही हमेशा का सवाल दोहराता, "मास्टर साहब का हाल आज कैसा है ?"

रोज़ वही एक सवाल, और रोज़ वही एक जवाब !

किसी-किसी दिन मन्मथ अचानक पूछ बैठता, "सदाव्रत क्या फिर आये थे ?"

यह बात जैसे शैल के कानों में ही नहीं जाती थी।

"उन्हें ख़बर दे आऊँ ?"

इस बात का भी शैल कोई जवाब नहीं देती।

किसी-किसी दिन मन्मथ कहता, "तुम्हारे लिए नहीं, मास्टर साहब के लिए कह रहा हूँ। तुम अगर एक बार आने को कहो तो फ़ौरन आयेंगे। तुम्हारी वजह से ही नहीं आ रहे।"

शैल के पास जैसे इस बात का भी कोई जवाब नहीं था।

बात घुमाकर सिर्फ़ इतना ही कहती, "टॉनिक ख़त्म हो गया है, लाना होगा।"

"ले आऊँगा।"

"और गोलियाँ भी आनी हैं।"

"कल सब ले आऊँगा। लेकिन मेरी बात का तो जवाब दो !"

बाद में कहीं बात का जवाब देना पड़ जाये, शायद इसीलिए शैल किसी बात का बहाना कर घर से निकल जाती।

इसी तरह चल रहा था। इसी तरह धीरे-धीरे केदार बाबू टूट रहे थे। कहीं भेजना भी बूते के बाहर की बात थी। इसका इलाज घर बैठे नहीं होता। होता है टी० बी० अस्पताल में। सैनेटोरियम में। डॉक्टर साहब बार-बार यही बात कह गये हैं। शशिपद बाबू का भी यही कहना है। लेकिन सिर्फ़ कहने से ही तो कुछ होता नहीं है। वहाँ अर्ज़ी भेजनी होती है, फिर नियमानुसार वहाँ से बेड ख़ाली न होने का जवाब आता है। यही है इंडिया का क़ानून। जैसे यहाँ बिना जान-पहचान के किसी को नौकरी मिलना मुश्किल है, हॉस्पिटल में भी ठीक उसी तरह बेड नहीं मिलता। मिलना ग़ैर-क़ानूनी है। कोशिश क्या हो नहीं रही है ? काफ़ी दिनों से हो रही है। लेकिन जिसकी कोशिश से अभी इसी वक़्त काम हो सकता है, वह है सदाव्रत। पॉलिटिकल सफरर शिवप्रसाद गुप्त का लड़का। और भी एक आदमी है, जिसके जबान हिलाते ही अभी-अभी बेड मिल सकता है।

शैल ने पूछा, "कौन ?"

मन्मथ ने कहा, "वह हैं मिस्टर बोस, जिनकी लड़की से सदाव्रत की शादी होनेवाली है।"

इस पर भी शैल के पास जवाब देने को कुछ नहीं था।

लेकिन शशिपद बाबू उस दिन कुछ जल्दी चले आये थे। मन्मथ भी आया। खबर बुरी ही थी। उन्होंने ऑफ़िस के थ्रू कोशिश की थी। ऑफ़िस के बड़े-बड़े मालिक लोग कोशिश करने पर असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं। किसी-किसी ने वायदा भी किया था। लेकिन इतना सब करने पर भी आखिर में कुछ नहीं हुआ। कारण, कलकत्ता में अस्पताल तो है कुल अदद एक और मरीज़ हर घर में है। इसलिए तीन-चार महीने से पहले बेड मिलने की कोई आशा नहीं है। तीन-चार महीने कैसे काम चले ? तीन दिन ही काटना मुश्किल हो रहा है।

शशिपद बाबू ने कहा, "बेटी, तुम खुद भी काफ़ी सँभलकर रहना। यह रोग बड़ा पाजी रोग है।"

शैल सिर नीचा किये सब-कुछ सुन रही थी। वैसे ही बोली, "तब काका का क्या होगा ?"

"मैंने तो हर कोशिश करके देखा, बेटी। अब देखा जाये डॉक्टर साहब क्या करते हैं।"

शैल की नज़रों के सामने जितनी रोशनी थी वह भी जैसे बुझ गयी। इसी एक आदमी पर शैल को भरोसा था। सारी दुनिया में शायद इसी एक आदमी को शैल इतने अरसे से श्रद्धा की नज़रों से देखती आयी है। उन्होंने भी जैसे आज आखिरी जवाब दे दिया।

"आदमी सिर्फ़ कोशिश कर सकता है, बेटी ! उससे ज़्यादा कुछ करने की ताक़त आदमी में नहीं है। नहीं तो क्या बेड नहीं मिलता ? अभी मिल सकता है। किसी बड़े आदमी की चिट मिलते ही अभी बेड मिल सकता है।"

शैल ने सिर ऊपर उठाया। पूछा, "बेड न होने पर कहाँ से देंगे ?"

"भगवान जाने कहाँ से देंगे, लेकिन देंगे ! तब फिर यह बात नहीं उठेगी कि बेड खाली नहीं है। बेड तब खाली कर दिया जायेगा, यही क़ानून है।"

डॉक्टर साहब आ पहुँचे थे। उस दिन भी उन्होंने अच्छी तरह से परीक्षा की। उन्होंने भी वही कहा।

बोले, "आज मैं खुद गया था। उनका रेकार्ड भी चेक किया। तीन-चार महीने से पहले किसी बेड के खाली होने का चान्स नज़र नहीं आता।"

सब लोग शायद इसी का इन्तज़ार भी कर रहे थे। आखिरी आशा मिटाकर जैसे सबको निश्चिन्त करके चले गये। उनके जाने के साथ ही जैसे

आशा की कोई किरण बाकी नहीं रही। सोचने को भी कुछ बाकी नहीं बचा। वह जैसे उन सभी के मन की बची-खुची आशा को मिटाकर चले गये। शैल को लगा कि इतने दिन काका के लिए जो कुछ भी किया बेकार गया। सिर्फ़ पैसे की बरबादी हुई। और दिनों की तरह उस दिन शैल सुबह के वक़्त बाग़बाज़ार की गली के मोड़ पर खड़े-खड़े सारी दुनिया को धिक्कार देना भी भूल गयी। उसे लगा जैसे वह ख़ुद भी इतने दिनों बाद ख़त्म हो रही है। उसके सचेतन मन में जो कुछ भी था, वह उसके अहंकार के सिवाय और कुछ भी नहीं था। दुनिया में ज़िन्दा रहने के लिए जो कुछ भी ज़रूरी है उसमें से भगवान ने उसको कुछ भी नहीं दिया। दी थी सिर्फ़ एक चीज़। वह था उसका स्वाभिमान। उसी के बूते पर उसने अपनी दौड़ शुरू की थी। लेकिन शायद उसकी क़िस्मत की ही ख़राबी थी कि वह स्वाभिमान ही जैसे आज अहंकार बनकर बाहर आया था। और अगर वह सचमुच अहंकार ही था तो उसे इस तरह छीन क्यों लिया? इसके बिना उसके पास रहा ही क्या?

"मास्टर साहब!"

आवाज़ कान में जाते ही वह घर, वह गली, वह बाग़बाज़ार मुहल्ला—सबने जैसे पीछे मुड़कर देखा। इस घर में आकर इस तरह पुकारने पर जो आदमी सबसे ज़्यादा खुश होता वह केदार बाबू ही सिर्फ़ चुपचाप, निस्पन्द पड़े रहे। उन्हें सबसे मीठी लगनेवाली आवाज़ आज उनके कानों में नहीं जा पायी।

मन्मथ और शैल दोनों ही आश्चर्य से एक-दूसरे की ओर ताकने लगे। बिना बुलाये भी जो आया है, आने के लिए मना करने पर भी जो आ खड़ा हुआ है, उसका स्वागत किया जाये या दुत्कारा जाये, उन लोगों की समझ में नहीं आ रहा था।

"मास्टर साहब का क्या हाल है?"

सब के सिर के ऊपर खड़े होकर अपने लम्बे-चौड़े शरीर से सदाव्रत ने यह प्रश्न नीचे की ओर फेंक दिया—इस सवाल का जवाब तुम लोगों को देना होगा। मेरी उपेक्षा करके तुम लोगों ने मेरे मास्टर साहब को ठीक करना चाहा था। अब कहो—वह ठीक हुए या नहीं! और अगर ठीक नहीं हुए हैं तो क्यों नहीं हुए? कैफ़ियत दो!

"क्या हुआ, कोई जवाब नहीं दे रहा?"

इसके बाद बिना किसी की ओर देखे सीधा अन्दर चला आया। केदार

बाबू जहाँ लेटे थे, उसी के पास जाकर खड़ा हो गया। पीछे-पीछे मन्मथ भी जाकर खड़ा हो गया। लेकिन सदाव्रत के मुँह से उस समय एक शब्द भी नहीं निकल रहा था।

काफ़ी देर बाद सदाव्रत ने एक गहरी निःश्वास ली। फिर बग़ल में मन्मथ की ओर देखकर बोला, "मन्मथ, आख़िरकार तुम लोगों ने इस आदमी को ख़त्म करके ही छोड़ा! तुम लोगों में क्या ज़रा-सी भी दया-माया नहीं है?"

मन्मथ बुत की तरह चुपचाप खड़ा था।

"रुपया-पैसा बहुतों के पास नहीं होता, लेकिन तुम लोग क्या हॉस्पिटल भेजने का इन्तज़ाम भी नहीं कर सकते थे? उसके लिए भी क्या रुपयों की ज़रूरत होती?"

मन्मथ ने कहा, "लेकिन पिताजी ने तो कितनी कोशिश की। बेड ही नहीं मिला।"

"तुम चुप रहो! बेड नहीं मिलता इसलिए क्या आदमी को मार डालोगे? तुम्हारा मतलब है, हॉस्पिटल में बेड नहीं है? ऐसा भी कहीं हो सकता है? तुम क्या यह भी यकीन करने को कहते हो?"

"सच, सदाव्रत दा! यकीन करो। हम सभी कोशिश करते-करते हार गये। पिताजी ने कोशिश की। डॉक्टर साहब ने कोशिश की। तीन महीने से पहले बेड खाली नहीं होगा। उन लोगों ने साफ़-साफ़ कह दिया है।"

सदाव्रत ने उसी स्वर में कहा, "और तुम लोग उनकी बात का यकीन कर आराम से बैठे हो?"

फिर ज़रा रुककर कहा, "सुन लो, इसके बाद मास्टर साहब को कुछ ऐसा-वैसा हो गया तो मैं तुम लोगों में से किसी को माफ़ नहीं करूँगा।"

"लेकिन, सदाव्रत दा!"

सदाव्रत ने मन्मथ को बीच में ही रोक दिया। "तुम चुप रहो! बात मत करो! अब ज़रा भी देर करना ठीक नहीं है। तुम नीचे की तरफ से पकड़ो, मैं सिरहाना पकड़ता हूँ। मेरी गाड़ी है। अभी हॉस्पिटल ले चलना होगा।"

मन्मथ फिर भी हिचकिचा रहा था। बोला, "रुको, सदाव्रत दा, ज़रा शैल से पूछ आऊँ!"

"नहीं, किसी से कुछ पूछने की ज़रूरत नहीं है। जो कह रहा हूँ, करो!"

मन्मथ को फिर और कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। दोनों ने बीमार

केदार बाबू को लाकर सदाव्रत की गाड़ी में डाल दिया। मन्मथ भी गाड़ी में आ बैठा। सदाव्रत ने गाड़ी स्टार्ट कर दी।

गली के नुक्कड़ पर खड़ी शैल को आज एक शब्द भी कहने का मौक़ा नहीं मिला। जैसे सभी ने आज उसे नेगलेक्ट कर दिया था। सभी ने मिलकर जैसे उसका अपमान किया था। काका के लिए उसकी आँखों में आँसू आ रहे थे। लेकिन अपमान की चोट से सब सूखकर रेगिस्तान हो गये।

आस-पास के मकानों से कितने ही किरायेदार ताक-झाँक कर रहे थे। गली के नुक्कड़ पर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। गाड़ी के चले जाने पर सभी शैल को दिलासा देने आये। लेकिन उसकी सूखी आँखों को देख सभी बिना कुछ कहे चलते बने।

मन्मथ जिस समय वापस आया, शाम हो चुकी थी। मन्मथ के आते ही शैल ने सिर उठाकर ताका। कमरा बड़ा सूना-सूना लग रहा था। एक आदमी के जाते ही जैसे सब-कुछ सूना हो गया था।

"शैल, एडमीशन हो गया। वे लोग तो भरती करने को राज़ी ही नहीं हो रहे थे!"

शैल की ज़बान पर तब भी कोई शब्द नहीं था।

मन्मथ कहे जा रहा था, "आखिर सदाव्रत दा ने काफ़ी जोर दिया। कहा, 'आप लोगों को लेना ही होगा। अभी अगर गवर्नर को टी० बी० हो जाय तो आप लोग कहाँ से बेड लायेंगे? अगर चीफ़ मिनिस्टर को टी० बी० हो जाये तब कहाँ से बेड लायेंगे? उनसे तो तीन महीने वेट करने को नहीं कह पायेंगे! उन्हें तो रिफ़्यूज नहीं कर पायेंगे!' "

फिर ज़रा रुककर बोला, "इस पर भी क्या ले रहे थे? आखिर में सदाव्रत दा ने अपने पिताजी का नाम लिया। कहा, 'मैं शिवप्रसाद गुप्त का लड़का हूँ।' कहते ही जादू का-सा असर हुआ। बेड कहाँ था, किसे पता? उसी समय रुपये जमा हो गये। उसी समय टिकट भी मिल गया।"

"तब लौटने में इतनी देर क्यों लगी?"

मन्मथ ने कहा, "सदाव्रत दा ने उसी समय बाज़ार जाकर बिस्तरे की चादर, कम्बल, काँच का गिलास वगैरह कितनी ही चीज़ें खरीदीं। दवा का इन्तज़ाम भी कर दिया। डॉक्टर आया, उसे भी सब-कुछ बतलाया। इतनी-सी देर में सदाव्रत दा के करीब सात सौ रुपये खर्च हो गये।"

□ □ □

फाउण्डर्स-डे तो असल में एक बहाना था। लेकिन इसी बहाने मिस्टर

बोस स्टाफ़ के लिए हर साल कुछ रुपये खर्च करते। यह घूस है। इस घूस से मिस्टर बोस स्टाफ़ को खुश रखते। मिस्टर बोस की फैक्टरी में कभी जो स्ट्राइक नहीं होता, वह इसी वजह से। इसी मौक़े पर उन लोगों को बोनस भी मिलता। मन-माफ़िक खाने-पीने का इन्तज़ाम रहता। ड्रामा, स्पोर्ट्स, गाना-बजाना तो था ही। इसी दिन 'सुवेनीर इंजीनियरिंग' के स्टाफ़ के साथ मिस्टर बोस सहृदयता के साथ मिलते।

इस बार फाउण्डर्स-डे और भी ज़ोर-शोर से मनाया जानेवाला था। सच मायने में मिस्टर बोस इस बार खुले हाथ से खर्च कर रहे थे। ड्रामे के लिए हर बार स्टाफ़ को बारह सौ रुपये देते थे। इस बार अठारह सौ रुपये दिये हैं। इस बार कहा है—'खर्च की तुम लोग परवाह न करो, लेकिन प्ले अच्छा होना चाहिए।'

लम्बा-चौड़ा पण्डाल बना है। जो लोग ख़ास अतिथि के रूप में आनेवाले हैं उनके लिए इन्तज़ाम भी ख़ास हुआ है। उन सारे मेहमानों के लिए फैक्टरी के मीटिंग-रूम में अलग से इन्तज़ाम हुआ था। कॉकटेल, शैम्पेन, ह्विस्की—हर चीज़ का बन्दोबस्त था। ख़ासकर गवर्नमेंट ऑफ़िसर्स के लिए। उन्हीं पर तो कम्पनी का भविष्य निर्भर है। यानी कि जिनके हाथ में परमिट है, जिनके हाथ में प्रोटेक्शन है। इंडिया के बाहर से अगर फैन आने लगें तो सुवेनीर-फैन की क़ीमत कम हो जायेगी। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' में ताला पड़ जायेगा। इससे इंडस्ट्री का नुक़सान होगा। इसलिए मिस्टर बोस गवर्नमेंट ऑफ़िसरों को मुट्ठी में रखते हैं। ख़ासकर जिस मिनिस्ट्री के हाथ में इंडस्ट्री का पोर्टफोलिओ होता है, उसके ऑफ़िसरों को।

शिवप्रसाद गुप्त इन्दौर से वापस आने के बाद घर होकर सीधे यहीं चले आये थे।

मन्दाकिनी की शायद आने की इच्छा थी। शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "नहीं-नहीं, तुम वहाँ जाकर क्या करोगी ?"

अपनी ज़िन्दगी में मन्दाकिनी कभी भी घर के बाहर नहीं निकली थी। शिवप्रसाद बाबू की ज़िन्दगी में उनकी उन्नति के लिए अगर सच्ची सहायता किसी से मिली तो वह इसी मन्दाकिनी से। पति ने अपनी सारी ज़िन्दगी के दिन अपनी उन्नति और प्रतिष्ठा बढ़ाने के नशे में कहाँ-कहाँ बिताये, पता नहीं। लेकिन हर बार घर लौटने पर पाते, उनकी सहधर्मिणी उनके आराम और सुविधा का हर साधन जुटाये प्रतीक्षा में बैठी है। लेकिन पति की प्रतिष्ठा के साथ मन्दाकिनी में भी हिस्सा बँटाने की इच्छा हो

सकती है, शिवप्रसाद बाबू ने कभी इस बात की कल्पना भी नहीं की। कल्पना करने का समय ही उन्हें कहाँ मिला ?

आज मिस्टर बोस के यहाँ फाउण्डर्स-डे है। कल राजभवन में टी-पार्टी है। परसों एजूकेशन मिनिस्टर की लड़की की शादी है। इसके अगले दिन आसनसोल के आदिवासियों के उत्थान की सभा का सभापतित्व करना है। डायरी खोलने पर इसी तरह एक के बाद एक ऐन्गेज़मेंट लिखे हुए हैं। इससे उनका पीछा कौन छुड़ायेगा ? और वह पीछा छुड़ाने ही क्यों लगे ?

मिस्टर बोस की तेज़ नजर हर ओर है। उनके हज़ारों आदमी हज़ार ओर मौजूद हैं। देखनेवाले लोगों की कमी नहीं है। लेकिन जो खास मेहमान की हैसियत से आये हैं, उनकी अगवानी खुद किये बिना काम नहीं चलता। एक बार अन्दर जाते हैं, जहाँ ड्रिन्क्स का इन्तजाम है उस कमरे में, फिर बाहर आते हैं, जहाँ खद्दरधारी स्वदेशी नेताओं की भीड़ जमा है। उधर स्टेज तैयार हो गयी है। जो लोग प्ले करेंगे वे इसके अन्दर मेकअप कर रहे हैं।

एक के बाद एक सभी तैयार हो गये।

ड्रामेटिक क्लब के सेक्रेटरी दुनि बाबू खुद ही डायरेक्टर भी हैं। प्ले का निर्देशन खुद ही करेंगे। अन्दर का काम निबटाकर बाहर आये। बिना मिस्टर बोस की परमिशन के प्ले शुरू नहीं होगा।

वेलफ़ेयर ऑफ़िसर ने पूछा, "क्यों दुनि बाबू, कितनी देर है ?"

दुनि बाबू ने कहा, "हम लोग तो सर, एकदम रेडी हैं। आपसे पूछने आया हूँ। शुरू करें या नहीं ?"

वेलफ़ेयर ऑफ़िसर स्टाफ़ का वेनिफिट देखते हैं। फिर भी हर काम में मिस्टर बोस की अनुमति लेनी होती है। बोले, "रुकिये, मिस्टर बोस से पूछ आऊँ।"

मिस्टर बोस उस समय बड़े विजी थे। घर से मिसेज़ बोस आयी हैं। मिस बोस आयी है। मिसेज़ बोस ने लड़की की ओर देखा। बोलीं, "कितनी देर कर दी, फंक्शन कब शुरू होगा ?"

पेगी मनिला की गोद में बैठा था।

"देखो न तुम पेगी को लाने के लिए मना कर रही थीं। लेकिन देख लो कैसा चुपचाप बैठा है !"

मिस्टर बोस ने भी पेगी को यहाँ लाने के लिए मना किया था। आफ्टर ऑल पेगी इज़ ए डॉग। आज समाज के 'एलिट' लोग आयेंगे। गड़बड़ कर

सकता है। भूख-प्यास भी तो लग सकती है। कितनी ही सिली बातें कर सकता है। लेकिन मनिला राज़ी नहीं हुई।

"अरे मिस बोस, मिस्टर बोस कहाँ हैं ?"

वेलफ़ेयर ऑफिसर ने अन्दर आकर चारों ओर देखा। मनिला ने कहा, "मिस्टर भादुड़ी, काइंडली एक गिलास पानी भिजवा दीजिये !"

वेलफ़ेयर ऑफ़िसर मिस्टर भादुड़ी धन्य हो गये। जल्दी से ख़ुद ही एक कोल्ड ड्रिन्क लेकर हाज़िर हुए।

मनिला ने कहा, "कोल्ड ड्रिन्क तो कहा नहीं था—कहा था 'वाटर'। पेगी पियेगा। लेकिन देखिये, फ़्रिज का पानी होना चाहिए। मेरा पेगी हॉट वाटर नहीं पीता।"

मिसेज़ बोस का मन आज ठीक नहीं था। सुबह-सुबह ही मिस्टर बोस के साथ झगड़ा हो गया था। वह तो आना ही नहीं चाहती थीं। मनिला ही ज़बरदस्ती ले आयी है।

मनिला ने कहा था, "माँ, ग़लती तुम्हारी ही है। तुम डैडी की बात क्यों नहीं मानतीं ? डैडी बार-बार तुमसे अपनी हैल्थ का ख़याल रखने को कहते हैं।"

मिसेज बोस गुस्सा हो गयीं। "अपनी हैल्थ के बारे में मैं नहीं समझती ?"

"तब तुमने कोल्ड-बाथ क्यों ली ?"

"ख़ूब लूँगी ! इस हॉट व्हेदर में कोई हॉट-बाथ ले सकता है ? मेरा कोई भी काम तुम्हारे डैडी को अच्छा नहीं लगता; जबकि यह फैक्टरी ही देखो—किसके लक से बनी है, पता है ? तुम्हारे डैडी के लक से ?"

सुबह भी इसी बात को लेकर ख़ूब ज़ोर से झगड़ा हो गया था। बॉय, खानसामा और बावर्ची के सामने ही झगड़ा हो गया था। उन लोगों को मालूम है साहब और मेमसाहब के बीच यही स्वाभाविक है। कोई बहाना मिलना चाहिए। चाहे हॉट-बाथ हो, या कोल्ड-बॉथ; चिकन सेंडविच को लेकर नहीं तो टर्फ़ क्लब के घोड़े को लेकर ही सही। मिस्टर बोस जिस घोड़े पर बाज़ी लगाने को कहेंगे, मिसेज़ बोस उस घोड़े पर हरगिज़ बाज़ी नहीं लगायेंगी। मिस्टर बोस जो साड़ी खरीदकर लायेंगे, मिसेज़ बोस उसे कभी नहीं पहनेंगी। शादी के बाद से यही चल रहा है। क्यों चल रहा है, यह किसी की समझ में नहीं आता। मिसेज़ बोस का कहना है, उनकी वजह से ही मिस्टर बोस की इतनी उन्नति हुई है। शादी के समय मिस्टर बोस

इतने अमीर आदमी नहीं थे। बाद में बड़े आदमी हुए। लेकिन मिस्टर बोस यह बात नहीं मानते। उनका कहना है, "तुम्हारी माँ का दिमाग़ ख़राब हो गया है !"

मनिला कहती, "लेकिन डैडी, माँ को तुम इस तरह क्यों फटकारते हो ?"

"वाह, तुमने फटकारते हुए कब देखा ?"

यह भी शायद कोई अभिशाप है ! फ़ैमिली की और कितनी ही बातों में मिस्टर बोस इस बात का भी कोई जवाब नहीं खोज पाते। 'लक' ने उनका काफ़ी फ़ेवर किया है। वह एक साधारण आदमी थे। आज असाधारण हैं। मिस्टर बोस के नाम से आज राइटर्स बिल्डिंग में हलचल पैदा हो जाती है। मिस्टर बोस का नाम लेते ही आज हॉस्पिटल में बेड मिल जाता है। मिस्टर बोस का नाम उठते ही दिल्ली के मिनिस्टर भी पार्लमेंट में बैठे-बैठे सोते से जाग उठते हैं। वे वेस्ट बंगाल इंडस्ट्री के एक बड़े मेगनेट हैं।

'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के लिए आज का दिन स्मरणीय है। कम्पनी धीरे-धीरे ऊपर उठ रही है। और भी उठेगी। फिर भी इस दिन मन खराब रखना अच्छी बात नहीं है। अच्छी बात नहीं है, इसलिए मिस्टर बोस का मन भी खराब नहीं है। सभी के साथ खुश-खुश मुसकराते हुए बात कर रहे हैं। सभी का अभिवादन कर रहे हैं। इसके बाद शिवप्रसाद बाबू आयेंगे, सदाव्रत आयेगा। दोनों ओर से पक्की बात होगी। आज ही पहली बार शिवप्रसाद बाबू मनिला को देखेंगे। वैसे देखना नॉमिनल ही होगा। इस देखने पर शादी का होना-न होना निर्भर नहीं करता। क्योंकि सदाव्रत ने पहले ही नौकरी ऐक्सेप्ट कर ली है। दो हज़ार रुपये महीने की नौकरी लिये बैठा है। इस पर भी क्या शादी नहीं करूँगा, कह सकता है ?

यहाँ आते वक्त मिस्टर बोस ने कहा था, "मनिला, तुम कहीं पेगी को वहाँ पर न ले आना !"

लेकिन साथ लायेगी, इसीलिए तो सुबह से पेगी की तैयारियाँ हो रही हैं। सारे दिन साबुन और पाउडर लगाकर उसे तैयार किया गया है। बिना लाये काम कैसे चलेगा ?

मनिला ने कहा, "बिना ले जाये पेगी को पता कैसे चलेगा ?"

"किस बात का ?"

"मिस्टर गुप्त कैसे आदमी हैं ! पेगी की भी तो आखिर कुछ पसन्द-नापसन्द है, डैडी। पुअर डॉग है, इसलिए सोचते हो उसके बुद्धि नहीं है ?"

"लेकिन पेगी को अगर सदाव्रत पसन्द न आये ?"

"पेगी को पसन्द न आने पर मैं कर ही क्या सकती हूँ ?"

"इसका मतलब है पेगी ही तुम्हारे लिए बड़ा है ?"

"डोन्ट बी सिली, डैडी ! तुम क्या कह रहे हो ? बेचारा बोल नहीं सकता इसी से, सुन तो सकता है। मेरी और तुम्हारी तरह उसके भी तो कान हैं।"

इसके बाद मिस्टर बोस ने और कुछ नहीं कहा।

बाद में मनिला जूड़ा बँधवाने गाड़ी लेकर पार्क स्ट्रीट गयी। पहले स्काई-स्क्रेप जूड़े की बनवायी पचास रुपये थी। लेकिन आजकल हर चीज़ की क़ीमत बढ़ गयी है। हेयर-लोशन, हेयर-क्रीम—सब-कुछ कोस्टली हो गया है। बालों के दाम भी बढ़ गये हैं। नाइलॉन के बाल मध्यम श्रेणी की औरतें लगाती हैं। वह डेमोक्रेटिक है। मनिला असल आदमियों के बालों का ही जूड़ा बँधवाती है। उससे सिर अच्छा रहता है। बाल भी ठीक रहते हैं। आज पिचहत्तर रुपये चार्ज किये थे।

वहाँ से घर लौटकर ज़रा स्पंज-बाथ लेकर ही यहाँ चली आयी है। माँ भी साथ ही आयी हैं। यहाँ आने का उनको अधिकार है। वे दोनों यहाँ गेस्ट नहीं हैं, होस्ट हैं। निमन्त्रित नहीं हैं, निमन्त्रणकारी हैं। इसीलिए वे लोग सबसे पहले आकर एअर-कंडीशन्ड चैम्बर में बैठ गयीं।

मिस्टर भादुड़ी हाथ में ट्रे लिये फ्रिज-वाटर ले आये।

"अरे, आप खुद क्यों लाये, मिस्टर भादुड़ी ?" कहकर मनिला ने गिलास लेकर पेगी को पानी पिलाना शुरू कर दिया।

मिसेज़ बोस ने कहा, "मिस्टर बोस उस तरफ क्या कर रहे हैं, मिस्टर भादुड़ी ?"

मिस्टर भादुड़ी बोले, "मैं उन्हीं को तो ढूँढ रहा हूँ।"

मिसेज़ बोस—"आप लोगों के मिस्टर बोस को ज़रा भी पंक्चुएलिटी का सेंस नहीं है। हम लोग कब से बैठे हैं और आप लोग ही क्या कर रहे हैं ? इतनी बड़ी फैक्टरी है, कितना बजा, कुछ होश है ?"

कहकर रिस्टवाच मिस्टर भादुड़ी की ओर कर दी।

"मैं देखता हूँ," कहकर मिस्टर भादुड़ी ने गिलास लिये बाहर भागकर जान बचायी।

लेकिन बाहर भी मिस्टर बोस का पता नहीं लगा। आज उनका मिलना मुश्किल है। सभी मिस्टर बोस को खोज रहे थे। वह यहाँ के सर्वेसर्वा हैं।

शिवप्रसाद गुप्त के आते ही उन्होंने जा पकड़ा। कुंज ने गाड़ी बैक करके लाइन में पार्क कर दी।

"आइये-आइये, सदाव्रत कहाँ है ?"

"क्यों ? वह तो सुवह का निकला है। यहाँ आया नहीं ?"

"नहीं तो !...और मिसेज़ गुप्त ? वह नहीं आयीं ?"

"उनकी बात छोड़िये। वह कहीं भी नहीं जातीं।"

मिस्टर बोस सोच में पड़ गये, "लेकिन सदाव्रत क्यों नहीं आया ?"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "आ जायेगा, शायद कहीं चला गया होगा।"

"लेकिन आज फाउण्डर्स-डे है, सभी आ गये हैं। मिसेज़ बोस आ गयी हैं, मनिला आ गयी है। वे लोग सदाव्रत की राह देख रहे हैं। आज के दिन भी क्या देरी करनी चाहिए ?"

शामियाने में स्टेज के सामने लाइन-की-लाइन कुर्सियाँ लगी थीं। पहली क़तार में अच्छी कुर्सियाँ थीं। नामी आदमियों के लिए दामी कुर्सियाँ। वहाँ स्टाफ़ का कोई भी नहीं बैठ सकता। सारी कुर्सियाँ पैट्रन्स के लिए हैं। पैट्रन्स के बैठ जाने के वाद अगर जगह बचे तो तुम लोग बैठना। तुम लोग हमारी वरावरी करने की कोशिश मत करो। सब आदमी एक-जैसे नहीं हो सकते। होना भी नहीं चाहिए। यह लाइन है। इस लाइन के उस ओर तुम लोग रहोगे, और इस ओर हम लोग रहेंगे। उस ओर तुम लोगों की बिरादरी होगी और इस ओर हम लोगों की।

शिवप्रसाद गुप्त बीच की कुर्सी पर बैठे। बग़ल में बैठे मि० बोस। बाद में एक-एक कर सभी आ पहुंचे। सीटों पर सभी के नाम लिखे थे। मि० सान्याल, मिस्टर आहूजा, मिस्टर भोपत्कर, और भी कितने ही। कोई परमिट तो कोई लाइसेंस की, एक ही कड़ी में सब-के-सब बँधे हैं। यह बाहर से पता लगाना मुश्किल था। सब-के-सब सूट-बूट और टाई पहने बैठे थे। सिर्फ़ शिवप्रसाद बाबू खद्दर पहने थे। उन्होंने कहा, "अभी देरी होगी क्या, मिस्टर बोस ?"

"क्यों ? आपको कोई काम है क्या ?"

"नहीं, फिर मेरा पूजा का समय हो जायेगा न, ज़्यादा देर होने पर..."

मिसेज़ बोस आ पहुंचीं। उनके लिए नाम लिखी सीट थी। वहीं उनको बिठला दिया गया। उनके आते ही सब उठ खड़े हुए। नमस्कार किया। उनके बैठने पर सभी बैठ गये। पीछे-पीछे मनिला भी आ रही थी। उसकी गोद में पेगी था। मनिला भी बैठ गयी।

मिस्टर बोस ने परिचय करा दिया, "आप ही हैं मिस्टर गुप्त और मिसेज़ बोस, और मेरी लड़की मिस बोस !"

पेगी को शायद शिवप्रसाद गुप्त पसन्द नहीं आये। चारों ओर सूट-बूट-धारियों के बीच इस खद्दरधारी को बैठा देख जैसे वह डर ही गया। शिवप्रसाद गुप्त को देखते ही मनिला की गोद में बैठे-बैठे ही गुर्राने लगा।

"डोन्ट बी सिली, पेगी !" कहकर महिला ने उसके सिर पर चपत लगायी।

इसके बाद मिस्टर गुप्त की ओर देखकर मनिला ने पूछा, "पेगी ने धोती-कुर्त्ता पहने कभी किसी को देखा नहीं है न, इसी से ऐसा कर रहा है। आपकी मिसेज़ क्यों नहीं आयीं, मिस्टर गुप्त ?"

मिस्टर भादुड़ी ने मिस्टर बोस के पास आकर पूछा, "हम लोग अब प्ले शुरू कर सकते हैं न, सर ?"

मिस्टर बोस ने चारों ओर देखा।

"लेकिन परचेज़िंग ऑफिसर मिस्टर गुप्त को क्या हो गया, अभी तक नहीं आया ! क्यों मिस्टर गुप्त, सदाव्रत तो अभी तक नहीं आया ?"

मिस्टर बोस ने कहा, "शुरू कर दो, ही मे बी लेट !"

सारी बत्तियाँ बुझा दी गयीं। सिर्फ़ स्टेज़ की फुट-लाइट जल रही थी। और उसके बाद ही 'टन' से घंटे की आवाज़ हुई। मिसेज़ बोस चुप हो गयीं। मनिला बोस ने गोद में पेगी को और भी ज़ोर से चिपका लिया। मिस्टर भोपत्कर ने एक चुरुट सुलगा ली। ह्विस्की के बाद स्मोकिंग का अपना अलग मज़ा है। शिवप्रसाद गुप्त ने बायें हाथ से खद्दर की चादर कन्धे पर सरकायी। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' का काफ़ी रुपया ख़र्च हुआ है। इस एक दिन को सफल बनाने के लिए कितनों ही के कितने ही घंटे ख़राब हुए हैं। मिसेज़ बोस बोर हो रही हैं, मिस बोस भी आज क्लब नहीं जा पायीं। पेगी को भी इतनी भीड़ में कुछ अच्छा नहीं लग रहा।

धीरे-धीरे परदा उठने लगा। स्टेज के अन्दर का पूरा दृश्य अब दिखलायी दे रहा था। सामने ही नदी थी। उस नदी के पीछे आकाश में लाल सूरज उग रहा था। पौ फटने का दृश्य था। ज़रा और रोशनी होने पर दिखलायी दिया, स्टेज़ के एक कोने में कर्नाटक की राजकुमारी लाजवन्ती सूरज की ओर हाथ जोड़े प्रार्थना कर रही है। स्टेज़ के ऊपर से चेहरे के प्रोफाइल पर फोकस पड़ रहा था। लाजवन्ती संस्कृत-श्लोकों का पाठ करने लगी। पीछे से बैक-ग्राउण्ड म्युज़िक सुनायी दे रहा था। वॉयलिन, जौन-

पुरी के परदे छूकर काफ़ी देर से सैड-इफ़ेक्ट लाने की कोशिश कर रहा था।

जवाकुसुमसंकाशम काश्यपेयम् महाद्युतिम्…

अँधेरे में अचानक खस-खस की-सी आवाज़ हुई। मिस्टर बोस ने झुंझलाकर पीछे देखा, ह्वाई नॉयेज़ देयर ? बाद में सदाव्रत को देख पाये। सदाव्रत चुपचाप ही आ रहा था। उसके लिए रिजर्व सीट पर बैठना था। ऐसा ही इन्तज़ाम था।

मनिला ने भी देख लिया। सदाव्रत को देखते ही मोतियों-से दाँत निकालकर मुसकरायी।

"दिस इज़ माई पेगी !"

सदाव्रत ने शायद प्यार करने के लिए हाथ बढ़ाया। लेकिन सदाव्रत को देखते ही पेगी नाराज़ हो गया, "भों-भों !"

मनिला बोस ने पेगी के एक चपत जमायी, "डोन्ट बी सिली, पेगी ! बिहेव प्रॉपरली !"

सदाव्रत ने डरकर हाथ खींच लिया। "काटेगा क्या ?"

ध्वान्तारिम् सर्वपापघ्नम् प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्…

□ □ □

ग्रीनरूम के अन्दर दुनि बाबू को ही सबसे ज़्यादा चिन्ता लगी थी। वेलफ़ेयर ऑफ़िसर मिस्टर भादुड़ी तो कहकर चलते बने। हर महीने डेढ़ हज़ार रुपये गिनने से ही उनका काम चल जाएगा। लेकिन बदनामी होगी तो दुनि बाबू की ही होगी। नाटक भी नया है। एक्टर भी सब नये हैं। पूरे एक महीने से रोज़ रिहर्सल चल रहा है। फिर आजकल के आर्टिस्टों का जो हाल हो गया है—बात-बात में दिमाग़। कुछ-न-कुछ लगा ही रहता। तीन फीमेल-आर्टिस्टों के साथ इतने दिन काम चलाया है। उन लोगों को रोज़ गाड़ी से लाना हुआ, फिर रिहर्सल पूरा होने पर गाड़ी से ही घर पहुँचाना होता। इसके अलावा मिनट-मिनट में चाय। आर्टिस्ट हो या कुछ भी हो, असल में तो लड़की छोड़कर कुछ भी नहीं है। फिर भी वह दुनि बाबू का ही बूता है कि सँभाले रहे। और कोई होता तो धोती छोड़कर भाग जाता।

सारी मुश्किल कुन्ती गुहा को लेकर ही थी। उसकी वजह से डर भी था। लड़की पार्ट अच्छा करती है, इसीलिए इतनी ख़ुशामद करनी होती है। दुधारू गाय की लात खानी ही पड़ती है ! और जब मिस्टर भादुड़ी की निगाह में चढ़ गयी, फिर तो बिना ख़ुशामद किये कोई चारा ही नहीं था। कुछ ही दिन बाद प्रमोशन का चान्स है, रुक जायेगा। सुबह उठते ही दुनि

बाबू कालीघाट जाकर पूजा चढ़ा आये थे। उसकी पूजा का प्रसाद लाकर सबको खिलाया। पत्ते में सिन्दूर लाये, वह भी सबके माथे पर लगाया।

दुनि बाबू ने पहले दिन बार-बार कह दिया था, "कुन्तीदेवी, ठीक वक्त से आइयेगा।"

सिर्फ़ कुन्ती गुहा से ही नहीं; वन्दना, श्यामली सभी से एक ही अनुरोध किया था। पहले सीन में ही कुन्ती की ऐपियरेन्स थी। ज़रा भी देर होने से सब गुड़ गोबर हो जायेगा।

"आप जिस समय गाड़ी भेजेंगे, हम लोग आ जायेंगे, हम लोगों को क्या है ? हम लोगों का तो यही पेशा है, दुनि बाबू !"

तो गाड़ी ठीक वक्त पर ही पहुँच गयी थी। ठीक समय पर ही सब लोगों ने आकर मेकअप कराया। ठीक वक्त पर ही सब तैयार थीं। शाम के छः बजे, साढ़े छः बजे। मेकअप कम्प्लीट था। फिर भी ड्रॉप उठ नहीं रहा था। शुरू होने का नाम ही नहीं।

"क्यों दुनि बाबू, इतनी देर क्यों ?"

दुनि बाबू भी तैयार थे। बोले, "बस ज़रा-सी देर होगी, मिस बोस अभी तक नहीं आयी हैं।"

थोड़ी देर बाद फिर वही तगादा।

"ज़रा देर और। मिस्टर भोपत्कर अभी तक नहीं आ पाये हैं।"

धीरे-धीरे खबर आयी, सभी आ पहुंचे हैं। मिसेज़ बोस आयी हैं, मिस बोस आ गयी हैं। मिस्टर भोपत्कर आये हैं। मिस्टर बोस के और भी कितने ही दोस्त आ गये। आखिर में खबर आयी शिवप्रसाद गुप्त भी आ गये हैं।

"कौन आया ?"

"शिवप्रसाद गुप्त को नहीं जानतीं ? पॉलिटिकल सफरर, जिनका लड़का सदाव्रत गुप्त है···अपना परचेज़िंग ऑफ़िसर।"

कुन्ती ने कोई जबाव नहीं दिया। आज उसे लाजवन्ती का पार्ट करना होगा। सिर पर कानड़ा स्टाइल का जूड़ा बँधवाया है। चेहरे पर मैक्स फैक्टर लगाया है। सारे बदन पर फूलों का शृंगार है। जूड़े में भी फूल लगाये हैं। फूलों के गजरे, फूलों के गहने। मेकअप किये बैठी-बैठी पसीने में नहा रही थी।

दुनि बाबू तब भी दौड़-धूप कर रहे थे। वेलफ़ेयर ऑफ़िसर मिस्टर भादुड़ी की आज्ञा के बिना प्ले शुरू नहीं होगा।

"क्या हुआ, दुनि बाबू, और कितनी देर लगेगी ?"

"बस, ऑडिटोरियम में सभी आ गये हैं। मिसेज़ बोस, मिस बोस, सभी आ गये हैं।"

कुन्ती ने कहा, "आप लोग तो मिस्टर बोस के यहाँ नौकरी करते हैं, हम लोगों को भी क्या वही समझ रखा है ?"

आस-पास में जो लोग थे, उनके कान में भी बात गयी। सभी के कान में खट से जाकर लगी। लेकिन दुनि बाबू ने ही बात सम्हाल ली। बोले, "आप तो जानती ही हैं, ऑफ़िस का ड्रामा है। मेरी अपनी कोई वॉयस नहीं है। मालिक जो कहेगा वही करना होगा।"

"लेकिन मालिक की बीबी, मालिक की लड़की, मालिक की लड़की का कुत्ता भी क्या आप लोगों का मालिक है ?"

दुनि बाबू हँस पड़े। इस बात के जवाब में बिना हँसे चारा ही क्या था!

कुन्ती गुहा और भी गम्भीर हो गयी। "आप लोग अपने मालिक के कुत्ते की भी ख़ातिरदारी कर सकते हैं। लेकिन हम लोगों का काम तो वैसा करने से नहीं चलेगा। हमें तो मेहनत करके खाना होता है। बिना मेहनत किये हमें कोई भी पैसा नहीं देगा। आप लोगों ने क्या हमें सूरत देखने को बुलाया है ? बोलिये, सूरत 'देखने को बुलाया है ? आज अगर स्टेज़ पर जाकर ख़राब एक्टिंग करूँ तो क्या आप फिर किसी दिन मुझे बुलायेंगे ?"

वन्दना, श्यामली वग़ैरह भी जैसे ज़रा झेंप गयीं। इस तरह तीखी-तीखी बातें कहना ठीक नहीं है।

वन्दना ने पूछा, "आप लोगों के बड़े साहब की लड़की नाटक देखने आयी है, तो साथ में कुत्ता क्यों लायी है ?"

दुनि बाबू ने कहा, "बहुत प्यार करती है न !"

"तो अपने घर के अन्दर प्यार जतलाये ! यहाँ सबको दिखलाने की क्या ज़रूरत है ?"

श्यामली ने कहा, "कितना अच्छा जूड़ा बँधवाया है, देखा ! बनवाई कितनी पड़ी होगी ?"

किसी को नहीं पता, कितना पैसा लगा। फिर भी वन्दना और श्यामली को उसी को लेकर बात करना अच्छा लग रहा था। सिर्फ़ जूड़ा ही नहीं, सिर्फ कुत्ता ही नहीं। विंग्स के बाहर वे झाँककर देख आयी थीं। आगे-पीछे, हर ओर से अच्छी तरह देख आयी थीं। कौन-सी साड़ी पहनी है, कौन-सा गहना पहना है, कौन-सी लिपस्टिक लगायी है, भौंहें कैसे रंग

रखी हैं, अँगुलियों के नाखून कैसे बना रखे हैं, किस शेड का क्यूटेक्स लगाया है। सब-कुछ खड़े-खड़े चुपके से देख आयी हैं। कोई आदमी भी किसी लड़की की ओर इस तरह नज़र गड़ाकर नहीं देखता। देख रही हैं, और मन-ही-मन तारीफ़ कर रही हैं—वाह !

सचमुच मनिला बहुत सुन्दर लग रही थी, जैसे मोम की गुड़िया हो।

"और जिनके साथ शादी होगी वह नहीं आये ? वह कैसे लगते हैं ?"

दुनि बाबू ने कहा, "वही तो अपने परचेजिंग ऑफ़िसर मिस्टर गुप्त हैं। अभी वह भी नहीं आये हैं। मिस बोस के पास उनकी जगह अभी तक खाली पड़ी है। वह आकर वहीं बैठेंगे। मिस्टर गुप्त के पिता आ गये हैं, शिवप्रसाद गुप्त—पॉलिटिकल सफरर।"

"कौन-से हैं ?" वन्दना और श्यामली दोनों ने एक साथ पूछा।

"वह बैठे हैं न ! खद्दर पहने। कन्धे पर चादर पड़ी है। बड़े अपराइट आदमी हैं। चाहते तो कांग्रेस में घुस सकते थे। घुसकर शायद अब तक यूनियन मिनिस्टर बन गये होते। लेकिन उस सब झंझट में नहीं पड़ना चाहते। इसलिए अभी तक सोशल वर्क कर रहे हैं।"

दुनि बाबू इस तरह समझा रहे थे। अचानक पीछे से वेलफेयर ऑफ़िसर मिस्टर भादुड़ी ने आकर कहा, "दुनि बाबू !"

'यस, सर !"

दुनि बाबू के नज़दीक आते ही मिस्टर भादुड़ी ने कहा, "स्टार्ट ! स्टार्ट नाऊ ! मिस्टर गुप्त आ गये हैं।"

इतनी देर से सब लोग इसी बात की राह देख रहे थे। ऑर्डर मिलते ही दुनि बाबू ने घंटी बजाने को कहा। हाथ की ह्विसिल ज़ोर से बजा दी। उधर से शिफ़्टर ने कर्टेन उठा दिया। साथ-ही-साथ फ़ोकस पड़ने लगा।

और लाजवन्ती तैयार ही थी। फर्स्ट एपियरेन्स उसी की थी।

सामने नदी बह रही थी। पूर्व के आसमान में लाल-लाल सूरज उग रहा था। पीछे से जौनपुरी के परदों को छूती वॉयलिन की आवाज़ सैड-इफ़ेक्ट लाने की कोशिश कर रही थी।

जवाकुसुमसंकाशम् काश्यपेयम् महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिम् सर्वपापघ्नम् प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्।

□ □ □

नाटक का नाम 'कर्नाटक राजकुमारी' था। दुनि बाबू लोहे-लक्कड़ का काम करते हैं तो क्या हुआ, मर-पचकर एक नाटक लिख ही डाला। लेकिन

वह नाटक इतना अच्छा बन जायेगा, यह उन्होंने कभी नहीं सोचा था। सब मिलाकर पाँच बार क्लैपिंग हुई थी। रात के साढ़े दस बजे प्ले ख़तम हुआ। लाजवन्ती का पार्ट ही सबसे अच्छा हुआ था। जैसी डिलिवरी, वैसा ही ऐक्शन, वैसा ही पास्चर।

कुन्ती का वदन जैसे थककर चूर हो। जैसे और खड़ी भी नहीं रह पा रही थी। बहुत रोयी, बहुत हँसी, उसे बेहद मेहनत करनी पड़ी थी।

लड़कियाँ जा ही रही थीं। मेकअप साफ़ कर कुन्ती वगैरह निकलने ही वाली थीं। अचानक दुनि बाबू दौड़ते-दौड़ते आये।

"रुकिये, कुन्ती देवी, आपके लिए एक मैडल एनाउन्स हुआ है।"

कहकर दुनि बाबू ने खड़े रहने का मौक़ा भी नहीं दिया। एकदम स्टेज पर ले जाकर खड़ा कर दिया।

फिर से कर्टेन उठा। वेलफेयर ऑफ़िसर मिस्टर भादुड़ी ने माइक्रोफ़ोन के सामने खड़े होकर घोषणा की—"आज के श्रद्धेय अतिथि श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त 'कर्नाटक राजकुमारी' का अभिनय देखकर खुश होकर लाजवन्ती की भूमिका के लिए काम करनेवाली अभिनेत्री कुन्ती गुहा को एक स्वर्ण मैडल देने की घोषणा करते हैं।"

एक बार बँगला, फिर अंग्रेजी में घोषणा करते ही सारा ऑडिटोरियम तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा।

कुन्ती अब तक समझ नहीं पायी थी। लेकिन शिवप्रसाद गुप्त का नाम कान में आते ही जैसे करेन्ट लग गया। तभी नज़र आया, सामने ही सदाव्रत बैठा है और उसके पास की सीट पर बड़ा-सा जूड़ा बाँधे मनिला बोस बैठी थी। उसकी गोद में कुत्ता था। सदाव्रत उस कुत्ते को पुचकारने की कोशिश कर रहा था। मनिला बोस के मोम-जैसे सफ़ेद चेहरे पर जैसे कोढ़ हो गया था। सफ़ेद कोढ़। कुन्ती को लग रहा था कि कोलतार लेकर उसका चेहरा पोत डालने पर ही जैसे उसके मन की आग बुझेगी। ये बाप-बेटे और बहू मिलकर आराम से रहेंगे। उन्हें सज़ा देनेवाला कोई नहीं है। उन लोगों के सारे पापों की सज़ा भोगने के लिए ही जैसे कुन्ती, वन्दना और श्यामली वगैरह का जन्म हुआ है···

अचानक माइक्रोफ़ोन के सामने खड़ी होकर कुन्ती गला फाड़कर चिल्लाने लगी, "यह मैडल लेना मैं अस्वीकार करती हूँ। जिस प्रकार शिवप्रसाद गुप्त को मैडल देने का हक है, मुझे भी उसे अस्वीकार करने का हक है। जिसने मेरे बाप का ख़ून किया है, उससे मैडल लेते हुए मुझे घृणा होती

है। मुझे ख़ूनी से घृणा है ! ख़ूनी के मैडल से भी घृणा है !"

□ □ □

बहुत रात गये बूड़ी की नींद टूट गयी। हड़बड़ाती हुई बिस्तरे से उठ खड़ी हुई। दीदी तब भी दरवाज़ा खटखटा रही थी।

"क्यों री ? सो गयी थी क्या ?"

दूसरे दिनों [जब दीदी घर लौटती तो उसका चेहरा न जाने कैसा गम्भीर-गम्भीर-सा दिखाई देता। दीदी की ओर ताकते भी डर लगता। रात-दिन जितनी देर भी कुन्ती सामने रहती, सिर्फ़ डाँटती। खाली मन लगाकर पढ़ने का उपदेश देती।

जन्म से ही बूड़ी सिर्फ़ ग़रीबी और अभाव ही देखती आयी है। कुन्ती की तरह सिर्फ़ ऐश्वर्य के आस-पास घूमती रही है। ऐश्वर्य का स्पर्श पाकर धन्य होने का सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हुआ। देखा है कलकत्ता इतना बड़ा शहर है। यहाँ इतने बड़े-बड़े मकान हैं। मकानों के अन्दर के ऐश्वर्य का आभास ज़रा-ज़रा खिड़की और जंगलों से लग जाता। लेकिन कभी भी अन्दर जाने का अधिकार नहीं मिला। कभी पाने की आशा भी नहीं की।

इसीलिए कुन्ती बार-बार उपदेश देती—"अच्छी तरह पढ़ाई-लिखाई करने से तेरी भी अच्छी जगह शादी होगी। तब तेरे पास भी मकान होगा, गाड़ी होगी।"

लेकिन बूड़ी ने अपना दिमाग़ लगाकर देखा कि उसकी टीचर्स, जो उसे स्कूल में पढ़ाती हैं, जो मास्टरनी चालीस रुपये महीना लेकर उसे रोज़ पढ़ाने आती है, उसकी गाड़ी भी नहीं है, मकान भी नहीं है। कितनी ही की तो शादी भी नहीं हुई है, जब कि सभी एम० ए० या बी० ए० पास हैं। सारी टीचर्स ग़रीब हैं। रुपये के लिए पढ़ाने आती हैं। तब लिख-पढ़कर क्या हुआ? इतनी मेहनत से पढ़ाई-लिखाई करने के बाद अगर स्कूल में मास्टरी ही करनी है तो लिखने-पढ़ने की ज़रूरत ही क्या है ? दीदी भी तो पढ़ी-लिखी नहीं हैं। दीदी तो उसकी किताबें पढ़कर भी कुछ नहीं समझ पातीं। तब दीदी इतना पैसा कैसे कमाती हैं ? किस तरह वह उसके लिए चालीस रुपया महीने की मास्टरनी रखती हैं ? बिना लिखे-पढ़े भी तो दीदी काफ़ी रुपया कमा लेती हैं। उनके घर का किराया, खाने-पीने का खर्च, कितना सब है। उसकी बीमारी के समय हॉस्पिटल में ही तो पाँच सौ रुपये खर्च हो गये थे। वह सब पैसा कहाँ से आया ?

अन्दर आकर दीदी हठात् जैसे बड़ा अच्छा बर्ताव करने लगी।

"क्यों री, खाना खाया ?"

दीदी इस तरह से कभी नहीं बात करती। दीदी को शायद काफ़ी मेहनत करनी पड़ी थी। चेहरे और गालों पर तब भी ज़रा-ज़रा रंग लगा था। दीदी ने धीरे-धीरे सिर का फॉल्स जूड़ा खोल डाला। दीदी के सिर में पहले काफ़ी बाल थे। अब इन बालों से पूरा नहीं पड़ता। अब दूकान से नाइलॉन के बाल लाकर उसका जूड़ा बनाना पड़ता है। दीदी का चेहरा पहले से काफ़ी सूखा-सूखा लगता है। बूड़ी दीदी की ओर देखने लगी।

"तू सो न ! तू क्यों जागी बैठी है ?"

साड़ी-ब्लाउज़ बदलकर खाने बैठते समय फिर बूड़ी के पास आयी।

"आज तेरी मास्टरनी आयी थी ?"

"हाँ।"

"पढ़ा ?"

"हाँ, पढ़ा। भूगोल और सवाल किये।"

"लेकिन अच्छी तरह से ? अंग्रेज़ी क्यों नहीं पढ़ती? अंग्रेज़ी ही असली चीज़ है, पता है ! मैं अगर ज़रा अच्छी अंग्रेज़ी बोल पाती तो और भी कितने ही रुपये कमा लेती। तुझे इतना क्यों पढ़ा रही हूँ ? तेरे लिए कितने रुपये खर्च कर रही हूँ, देखती है न ! तू बड़ी होकर जिससे मेरी तरह मुश्किल में नहीं पड़े, इसीलिए। खूब अच्छी तरह से पढ़ना।"

बूड़ी ने कहा, "मैं तो अच्छी तरह से पढ़ती हूँ।"

कुन्ती ने फिर कहा, "खराब लड़कियों के साथ एकदम मेल-जोल मत रखो। बस और ट्रामों में कितनी ही खराब-खराब लड़कियाँ फिरती हैं। उनकी बातें ज़रा भी न सुनना, समझी ? कलकत्ता बड़ी खराब जगह है, री। पहले इतना खराब नहीं था। जैसे-जैसे दिन गुज़र रहे हैं उतना ही खराब हो रहा है। हर कोई सिर्फ़ पैसे के लिए मर रहा है।"

"लेकिन, दीदी !"

"क्या कह रही थी ? कह !"

"मेरी सभी मास्टरनियाँ पढ़ी-लिखी हैं। बी० ए०, एम० ए० पास किया है ! उनके पास तो रुपया नहीं है ! वे लोग भी खूब ग़रीब हैं।"

कुन्ती इस बात का क्या उत्तर दे, ठीक नहीं कर पा रही थी। फिर अचानक जो कभी नहीं किया वही कर बैठी। बूड़ी को दोनों हाथों से जकड़ लिया। फिर बूड़ी का माथा अपनी छाती के पास लगाकर ज़ोर से दबा लिया। बूड़ी दीदी से अचानक इतना स्नेह और दुलार पाकर जैसे सहम

गयी। इस तरह तो दीदी ने कभी भी प्यार नहीं किया। आज दीदी को अचानक क्या हो गया !

दीदी कहने लगीं, "अरी, देखती हूँ, तू भी मेरी ही तरह है। तू भी, देखती हूँ, पैसे से ही सब-कुछ नापती है। पता है कलकत्ता में कितने बड़े-बड़े लोग हैं। रुपयों के पहाड़ पर बैठे हैं। फिर भी जो हाल हमारा है, वही हाल उनका भी है। वे लोग वैसे बड़े-बड़े मकानों में रहते हैं। और हम किराये के मकान में रहते हैं। लेकिन सच मायनों में फ़र्क कुछ भी नहीं है।"

बूड़ी के लिए जैसे ये सारी बातें नयी थीं। ये बातें पहले किसी से भी नहीं सुनी थीं। अगर पैसा ही उद्देश्य नहीं है तो इतनी मेहनत करके रुपया कमाने की क्या ज़रूरत है ?

कुन्ती ने कहा, "बड़ी होकर समझ पायेगी, तुझे क्यों इतना पढ़ा-लिखा रही हूँ। तब समझेगी कि हम लोग क्यों ग़रीब हैं और अमीर लोग क्यों अमीर हैं। दुनिया में अगर ग़रीब लोग नहीं होंगे तो बड़े आदमी किस पर हुक्म चलायेंगे ? घर में किसे नौकर रखेंगे ? उनके बर्तन कौन माँजेगा ? खाना कौन पकायेगा ? घर की सफ़ाई कौन करेगा ?"

"लेकिन तब तो तुम भी अमीर हो। दीदी, तुम भी तो बिना पढ़े-लिखे इतना पैसा कमाती हो !"

"चल, पगली ! मैं कमाती ही कितना हूँ। दिन-रात ख़ून-पसीना एक करने के बाद कहीं जाकर घर का ख़र्च निकाल पाती हूँ। तेरे स्कूल की फीस, मास्टर की फीस, सब-कुछ जुटाना पड़ता है। लेकिन हमेशा तो इतना सब कर नहीं पाऊँगी। तब तो सब-कुछ तुझी को देखना होगा। तेरी शादी होगी। बाल-बच्चे होंगे। गृहस्थी होगी।"

बाद में खाते समय कुन्ती जैसे ख़ुद से ही कहने लगी, "लेकिन मालूम है, मेरी उम्र की कितनी ही लड़कियों को कुछ भी नहीं करना होता। बाप के पैसे से गाड़ी पर घूमती हैं, क्लब जाती हैं, कुत्ते पालती हैं, और ठीक वक़्त पर किसी बड़े आदमी के लड़के से उनकी शादी भी हो जाती है।"

सच ही तो, दीदी तो कभी उसके साथ इतनी अच्छी तरह बातें नहीं करती। आज दोनों बहनों में बड़ा मेल हो गया है। खाने के बाद बत्ती बुझाकर बिस्तरे पर लेटने के बाद भी जैसे दीदी की बातें ख़त्म नहीं हो रही थीं।

"मालूम है अमीर लोग सोचते हैं, हम लोग जैसे आदमी ही नहीं हैं।

हम लोगों के पास पैसा नहीं है, इसलिए जैसे गाय-बकरी समझते हैं हमें। जबकि हम जो यह आदमी से जानवर बन गये हैं, किसकी वजह से ?”

“किसकी वजह से, दीदी ?”

“उन्हीं लोगों की वजह से। उन लोगों की वजह से ही तो हम ग़रीब हैं। उन्होंने ही तो हमारी ज़मीन छीन ली है। हमारे पिताजी की हत्या कर दी है, और अब मज़े से खद्दर का धोती-कुर्ता पहने देश का उद्धार करने फिर रहे हैं ! असल में वे लोग ही कम्युनिस्ट हैं।”

“कम्युनिस्ट ? इसका मतलब, दीदी ?”

“वह सब तू बड़ी होकर पढ़ाई-लिखाई करने के बाद समझ पाएगी। कम्युनिस्ट माने जो लोग ग़रीबों के बारे में नहीं सोचते। ग़रीबों से घृणा करते हैं। जो लोग चाहते हैं कि वे ख़ुद तो बड़े आदमी बन जायें और दूसरे सब उनकी गुलामी करें ?”

इसके बाद ज़रा रुककर कहा, “इसी से तो कहती थी, ख़ूब मन लगाकर पढ़। मैं ख़ुद पढ़ाई-लिखाई नहीं कर पायी। मुझे पढ़ाने लायक पैसा पिताजी के पास नहीं था। लेकिन तेरी हालत तो वैसी नहीं है। अच्छी तरह से पढ़-लिखकर और बड़ी आदमिन बनकर क्या इन रईसों के मुँह पर जूता नहीं मार सकती ?”

अँधेरे में दीदी का चेहरा नहीं दीख रहा था। फिर भी लग रहा था जैसे आज दीदी कहीं से अपमानित होकर घर लौटी है। आज ही तो बूड़ी उस बड़े आदमी की जेब से मनीबैग मारकर लायी थी ! दीदी से कहे क्या ? कहे क्या कि चाय की दूकान में उसने दीदी की आवाज़ सुनी थी ? दीदी जिस दूकान में चाय पीने गयी थी, बूड़ी भी उसी दूकान में पहुँचकर उसकी बग़ल के कैबिन में बैठी थी, कहे क्या ?

“बूड़ी, सो गयी क्या ?”

“नहीं, सुन रही हूँ।”

“और नहीं ! काफ़ी रात हो गयी है। अब सो जा। मास्टरनी ने कितनी देर पढ़ाया ?”

बूड़ी ने कहा, “शाम से लेकर रात के नौ बजे तक।”

“बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ! तू सिर्फ़ पढ़ाई-लिखाई में मन लगा। और कोई फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं है। सिनेमा देखने और घूमने-फिरने के लिए बाद में काफ़ी वक़्त मिलेगा। लेकिन यही उम्र खराब है। इस उम्र में ठीक से चल पाती हो तो ठीक है। एक बात हमेशा ध्यान रखना।

इस दुनिया में तुम्हारा नुक़सान करनेवाले लोगों की कभी भी कमी नहीं होगी। सभी चाहेंगे कि तुम्हारा नुक़सान हो। उसी के बीच तुम्हें सिर ऊँचा रखना होगा। वह भी अपने ही बूते पर! कोई तुम्हारी सहायता करने नहीं आयेगा। तुम मरी या बची हो, दुनिया का इससे कुछ नहीं आता-जाता।"

बूड़ी शायद तब तक सो चुकी थी। उसके खुर्राटों की आवाज़ साफ़-साफ़ सुनायी दे रही थी। लेकिन उसके काफ़ी देर बाद तक भी कुन्ती को नींद नहीं आयी। सब-कुछ ख़ामोश था। शायद सारा कालीघाट बूड़ी के साथ ही सो गया था। लेकिन कुन्ती को इतनी आसानी से नींद नहीं आती। कलकत्ता की कुन्तियों के माथे कितने झंझट होते हैं। कुन्तियों की नींद हराम करने के लिए बीसवीं सदी के आदमियों ने जैसे चक्रव्यूह की रचना कर रखी है। कितने ही शिवप्रसाद गुप्त कितने ही सोने के मैडल लिये महान् होने का ढोंग रचाये खड़े हैं। कितनी ही पद्मरानियों ने कितने ही फ़्लैट चलाकर कितनी ही कुन्तियों को टगर बना रखा है। कलकत्ता के आदमी ने तरह-तरह की तरकीबें लगाकर कुन्तियों की इज्ज़त-आबरू नष्ट करके कलयुगी लज्जाहारी की भूमिका निभायी है। यह कोई एक दिन में नहीं हुआ। एक युग में भी नहीं हुआ। अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद से ही इसकी शुरुआत हुई है। इसके बाद से जैसे-जैसे वक़्त गुज़र रहा है, लोभ का हाथ भी उसी तेज़ी से बढ़ते-बढ़ते जैसे गगनचुम्बी हो गया है। आज कुन्ती पकड़ में आयी है। कल बूड़ी का नम्बर है। उसके बाद कलकत्ता की सारी कुआँरी लड़कियाँ पकड़ में आयेंगी। एक बार जब जाल फेंका गया है तो फिर छुटकारा नहीं है। सबको अपने पंजे में फँसाकर पद्मरानियों को चैन मिलेगा। चैन से करवट लेकर सो जायेंगी।

कुन्ती ने बिस्तरे पर करवट ली।

मिस्टर बोस ने दूसरे दिन ऑफ़िस पहुँचकर दुनि बाबू को बुलाया। दुनि बाबू फ़ैक्टरी में काम करते हैं तो क्या हुआ, नाटक में काम करने की जैसे उन्हें बचपन से ही बीमारी है। शुरू-शुरू में ऐक्टिंग करने का बड़ा शौक था। ड्रामे लिखने का भी बड़ा जोश था। वह जोश कम नहीं हुआ था। पेट के लिए मौक़ा पाते ही 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' में घुस पड़े। लोहा-लक्कड़ में माथा-पच्ची करते ज़रूर, लेकिन दिमाग़ सिनेमा और नाटकों में ही पड़ा रहता। दुनि बाबू को कभी-कभी लगता, फ़ैक्टरी में आते ही जैसे उनकी सारी क्षमता ख़त्म हो गयी है। लेकिन रात-रात-

भर जागकर चुपचाप एक नाटक लिख ही डाला। वही नाटक था—'कर्नाटक-राजकुमारी'। हर साल किराये की ड्रामा-पार्टियों को बुलाया जाता था। वे ही लोग पैसा लेकर नाटक कर जाते। लेकिन इस बार वेलफ़ेयर ऑफ़िसर मिस्टर भादुड़ी की मिन्नत-चिरौरी करके इस नाटक को खेलने का इन्तजाम कराया था। कम्पनी ने भी देखा कि ठीक ही है। स्टाफ-रिक्रिएशन क्लब भी हाथ में रहेगा और घर का पैसा घर में ही रहेगा।

दुनि बाबू के आते ही मिस्टर बोस ने फटकारना शुरू कर दिया।

वैसे मिस्टर बोस ने ख़राब कुछ नहीं कहा। कल जो घटना हुई वह 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' की ज़िन्दगी में कभी भी नहीं घटी थी। इतने सम्माननीय गेस्ट का इस तरह से उनके मुंह पर ही अपमान! यह जैसे कल्पना के बाहर की बात थी। मिस्टर गुप्त रेस्पेक्टेबल और सभ्य आदमी हैं। इसी से चुप रह गए। कुछ भी नहीं कहा, हँसते-हँसते सब सह लिया। लेकिन बग़ल में ही लड़का बैठा था। उसने क्या सोचा होगा। मिस्टर बोस को तो और भी बहुत-कुछ सोचना होता है। आज भले ही मिस्टर गुप्त चुप रह गये। सब-कुछ हँसी-हँसी में पी गये। लेकिन कल ही तो मिस्टर बोस को उनके पास जाना होगा। कोई भी नया लाइसेंस या परमिट लेने के लिए एकमात्र मिस्टर शिवप्रसाद गुप्त का ही तो आसरा है।

दुनि बाबू सामने खड़े थर-थर काँप रहे थे।

"वह लड़की कौन थी?"

"जी, वह एक आर्टिस्ट थी, सर!"

"उसका नाम क्या है?"

"कुन्ती गुहा।"

"घर कहाँ है?"

दुनि बाबू ने कहा, "पहले जादवपुर में रहती थी। वहाँ से कुछ दिन के लिए बेहाला सरकार हाट में आकर रही। अब कालीघाट में एक मकान किराये पर लेकर रहती है।"

"रिफ़्यूजी लड़की है?"

"जी! लगता है, वैसी ही कुछ है।"

"कम्युनिस्ट है?"

दुनि बाबू ने कहा, "वह तो पता नहीं। कितनी ही जगह नाटकों में एक्टिंग करने जाती है। काफी नामी आर्टिस्ट है। इसीलिए उसे बुलाया।"

"आपको पता नहीं था कि वह कम्युनिस्ट है?"

"जी नहीं, सर। मुझे कुछ भी पता नहीं था।"

"अगर कम्युनिस्ट नहीं है तो एक रेस्पेक्टेबल आदमी का नाम लेकर इस तरह क्यों कहा? उसे क्या पता नहीं है कि शिवप्रसाद गुप्त कलकत्ता के एक विशेष सम्माननीय व्यक्ति हैं? सिर्फ़ कलकत्ता ही क्यों, इंडिया के वेल-नोन लीडर हैं। उन्होंने तेरह साल ज़ेल काटी है। चाहते तो अब तक केबिनेट मिनिस्टर हो गये होते। फिर वह मेरे गेस्ट थे। मेरी ही फैक्टरी में खड़े होकर उनका अपमान किया गया! पता है, चाहता तो उसे पुलिस में दे सकता था? पुलिस-कमिश्नर को फ़ोन करके उसे लॉक-अप करा सकता था?"

दुनि बाबू चुपचाप खड़े रहे। जवाब नहीं दिया।

"पता है, कल कितने नामी-नामी आदमी मौजूद थे। मिस्टर गुप्त की बेइज़्ज़ती करना उन सभी की बेइज़्ज़ती करना हुआ। और मिस्टर गुप्त जब मेरे गेस्ट थे तो उनका अपमान मेरा अपमान था!"

दुनि बाबू ने इस बार भी कोई जवाब नहीं दिया।

"उसका पेमेन्ट कर दिया है?"

"जी हाँ! हंड्रेड रूपीज़ चार्ज करती है। पूरा पैसा दिया जा चुका है।"

"ठीक किया। अब आपको एक काम करना होगा। आप उसके घर जाइये, जाकर उससे एक रिटिन एपोलॉजी ले आइये। आई वान्ट इट इन हर ओन हैंड-राइटिंग—जाइये!"

दुनि बाबू ने छुटकारे की साँस ली। यह तो भगवान की दया थी कि नौकरी बच गयी। खुद मैनेजिंग डायरेक्टर ने इस तरह कभी भी नहीं बुलाया था। उनके हाथ से छुटकारा मिल गया, यही बड़ी बात है।

मिस्टर बोस ने टेलीफ़ोन का रिसीवर उठाया। डायल करने लगे।

"हलो!"

दूसरी ओर से शिवप्रसाद गुप्त रिसीवर उठाते ही ज़रा सुनकर बोले, "हाँ-हाँ, कहिये!"

"मैंने पता लगाया है, मिस्टर गुप्त, हमारे स्टाफ-रिक्रिएशन क्लब के सेक्रेटरी का काम है। और जिस लड़की ने कल इस तरह का अन-होली बर्ताव किया था, वह रिफ़्यूजी कम्युनिस्ट थी।"

शिवप्रसाद गुप्त उस ओर हँस पड़े। "आप क्या अभी तक वही सब सोच रहे हैं? मैं तो कभी का भूल गया हूँ।"

मिस्टर बोस ने कहा, "नहीं-नहीं, मिस्टर गुप्त! यह ऑडिनरी मामला

नहीं है। सारे कलकत्ता में आजकल इसी तरह के प्रोपेगंडों की भरमार है। जो लोग सक्सेसफुल हैं, उनके अगेन्स्ट सभी एण्टी-प्रोपेगंडा चला रहे हैं। दिस हैज़ गॉट टु बी स्टॉप्ड। इस तरह की छूट देने से तो कलकत्ता में हम लोगों का रहना मुश्किल हो जायेगा। न गाड़ी खरीद सकेंगे, न मकान बनवा सकेंगे, रुपया नहीं कमा पायेंगे, और वह सब करते ही कैपिटलिस्ट हो जायेंगे। ह्वाट इज़ दिस ? इस बार दिल्ली जायें तो नेहरूजी से कह दीजियेगा कि यह है बंगाल का ट्रेन्ड !"

"इस तरह तो कितने ही लोग कहते हैं, मिस्टर बोस ! यह सब लेकर मैं दिमाग़ खराब नहीं करता। ये लोग पहले भी कहते रहे हैं, आज भी कह रहे हैं, बाद में भी कहेंगे ! गांधी, नेहरू, सभी के अगेन्स्ट ये लोग कहते हैं। देखते नहीं, रास्ते में कितने लोग पंडितजी को गाली देते हैं ! उससे पंडितजी का क्या आता-जाता है ? पब्लिक वर्क करने पर यह सब सहना ही पड़ता है। आप वह सब लेकर माथापच्ची न करें।"

शिवप्रसाद गुप्त ने सचमुच उस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। इससे भी झूठी कितनी ही बातें उनके नाम पर कही जाती हैं। जहाँ भी पार्टी-पॉलिटिक्स होगी, यह सब होगा ही। आज तक किसी भी पब्लिकमैन को इससे छुटकारा नहीं मिला है।

"और जो लोग थे, उन्होंने क्या कहा ?"

मिस्टर बोस ने जवाब दिया, "वे सभी समझ गये कि यह विलिफ़िकेशन को छोड़कर और कुछ भी नहीं है। सभी तो जानते हैं कि पॉलिटिक्स में हैं, इसी से किसी ऑपोनेंट पार्टी के आदमी ने उससे यह सब कहलवाया है।"

"ख़ैर, जो भी हो। मेरे आने के बाद फिर क्या हुआ ?"

"आप जल्दी चले आये नहीं तो मैं उस लड़की को बुलाकर ऑन द स्पॉट आपसे माफ़ी माँगने को कहता। फिर भी आज उससे रिटिन एपोलॉजी लाने के लिए आदमी भेजा है। आई मस्ट हैव इट।"

इसके बाद फिर ज़्यादा देर बात नहीं हुई। मिस्टर बोस ने रिसीवर रख दिया तो शिवप्रसाद गुप्त नाराज़ नहीं हुए। मिस्टर गुप्त के गुस्सा होने या न होने पर उनकी कम्पनी का बहुत-कुछ निर्भर करता है। मिस्टर गुप्त से अभी कितने ही काम कराने बाकी हैं।

मिस्टर बोस ने अचानक कॉलिंग-बेल दबा दी। चपरासी के आते ही गुप्त साहब को बुला लाने को कहा।

सदाव्रत आया।

मिस्टर बोस ने कहा, "बैठो, सदाव्रत !"

फिर होंठों को जैसे एक अजीब-सी मुसकराहट में भिगो लिया।

"मैंने अभी-अभी तुम्हारे फ़ादर को फ़ोन किया था। कल जो हुआ, उसके लिए मैंने जो एक्शन लिया उन्हें बतलाया। मुझे तो लगता है, लड़की कम्युनिस्ट थी। तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

सदाव्रत ने कोई जवाब नहीं दिया।

उसके कुछ कहने के पहले ही मिस्टर बोस ने कहा, "यह तो मुझे मालूम नहीं कि तुम्हारी इस बारे में क्या राय है, लेकिन जहाँ तक मेरा ख़याल है, हम लोगों की मिडिल क्लास सोसाइटी में आजकल यह स्लोगन ख़ूब स्प्रेड हो गया है। हम लोगों को अभी से केयरफुल होना चाहिए। उन लोगों का खयाल है, जितने बड़े आदमी हैं, सभी कैपिटलिस्ट हैं। सक्सेसफुल लोगों को ये सहन नहीं कर पाते जबकि अपनी कन्ट्री डेमोक्रेटिक है। यहाँ सभी को तो फ्री स्कोप दिया जाता है, ओपन कम्पीटीशन है। कोई किसी को नहीं रोकता। तुम अगर क्वालीफ़ाइड हो तो तुम भी शासन करो। सरवाइवल ऑफ़ द फ़िटेस्ट का ज़माना है। लेकिन ये लोग समझते हैं कि हम लोग शायद किसी की ख़ुशामद करके बड़े आदमी हुए हैं। स्कूल हैं। कॉलेज हैं। वहाँ तुम पढ़ सकते हो। सो तो नहीं, जो लोग पढ़-लिखकर मैरिट दिखलाएँगे, नाम कमा लेंगे, समाज में उठ जाएँगे, उन्हें कैपिटलिस्ट कहेंगे। सिली ! इसीलिए तो बंगाली हर बात में पिछड़े हुए हैं। हर स्टेट के लोग आगे बढ़े जा रहे हैं—बाई लिप्स एण्ड बाउंड्स। क्या कहते हो ? तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

मिस्टर बोस हर बात पर ही सदाव्रत की राय पूछते हैं, लेकिन सदाव्रत की राय जानने से पहले ही अपनी राय जाहिर कर देते हैं। इन कुछ दिनों में ही सदाव्रत मिस्टर बोस का चरित्र समझ चुका है। प्रायः रोज़ ही मिस्टर बोस का लेक्चर सुनने के बाद अब सदाव्रत को अजीब नहीं लगता। कौन-सा जवाब देने से मिस्टर बोस ख़ुश होंगे, यह भी वह अच्छी तरह से जान गया है। चुप बैठे रहने से मिस्टर बोस और भी ख़ुश होते हैं, यह भी सदाव्रत को मालूम है। मिस्टर बोस अपनी ज़िन्दगी में सक्सेसफुल रहे, इसका कारण शायद यही होगा। ऐसे लोग विरोध नहीं सह पाते। जो लोग विरोध करते हैं, उनको वे पास भी नहीं फटकने देते। अपने चारों ओर वे लोग एक ऐसा जाल-सा ताने रहते हैं कि हर आदमी उनकी बात

पर 'यस' ही कहता है। 'नो' सुनते ही उन्हें चोट पहुँचती है। मिस्टर बोस उसी बिरादरी के आदमी हैं।

"तुम्हें पता है सदाव्रत, कल जो कुछ हुआ है, वह कोई 'आइसोलेटेड' घटना नहीं है। इसके बाद एक दिन वह भी आयेगा जब हमें गाड़ी में बैठे देखकर लोग पत्थर फेंकेंगे। हम लोग क़ीमती कपड़े भी नहीं पहन पायेंगे। हमारे ऊपर वे लोग पान की पीक थूकेंगे। सड़क से किसी सुन्दर आदमी को जाते देखकर एसिड बल्ब फेंकेंगे। इसी का नाम है कम्युनिज़्म। इंडिया के कुछ लोग यहाँ भी यही कम्युनिज़्म लाना चाहते हैं। हम लोग अगर अभी से केयरफुल नहीं होंगे तो आज जैसे उस लड़की ने तुम्हारे फ़ादर का अपमान किया, कल मेरा और परसों तुम्हारा भी करेगी। मिस्टर गुप्त को मैंने यही बात समझाने की कोशिश की। मैंने क्या ठीक नहीं किया? तुम्हारी क्या राय है?"

सदाव्रत इतने दिनों से काम कर रहा है, उसे भी यह पता है। उसके लिए कुछ भी अनजाना नहीं है। टी० बी० हॉस्पिटल में जो कुछ देखा, वहाँ भी यही हाल है। बाग़बाज़ार में केदार बाबू के यहाँ भी यही हाल देखा। मधुगुप्त लेन से शुरू कर सारे कलकत्ता में सभी तो कम्युनिस्ट हैं। बाकी है ही कौन? बाकी बचे सिर्फ़ मिस्टर बोस, मिस बोस और उनके क्लब के मेम्बर। और जो लोग बाकी बचे वे हैं इस 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के ऑफ़िसर्स।

एक दिन लाचार होकर अंग्रेज़ लोग चले गये। न जाते तो उनका सारा धन्धा चौपट हो जाता। आज जो कुछ बाकी बचा है, वह भी नहीं होता। लेकिन जिन लोगों के हाथ में वे शासन की बाग़डोर सौंप गये, वे लोग शायद और भी बड़े व्यापारी हैं। ब्रिटिश कम्पनी से भी बड़े। ये लोग सिर्फ़ व्यापार ही नहीं करते, व्यापार के साथ-ही-साथ देश के लोगों की बुद्धि पर भी शासन करना चाहते हैं। उनके ख़राब और अच्छे लगने की भी चौकसी रखना चाहते हैं।

"तुम्हें आज जो कुछ भी बतलाया, सब जाकर अपने फ़ादर से कहना। कहना कि मैंने क्या एक्शन लिया है। कहना कि मैं इनमें से किसी भी बात को नहीं मानता।"

"लेकिन मैं मानता हूँ।"

"मानता हूँ माने? वह छोकरी जो कुछ कह रही थी, तुम्हारा कहना है, सब सच है?"

"हां !"

"इसके माने मिस्टर गुप्त ने ख़ून किया है ? मर्डर ? एम आई टु बिलीव दैट ?"

सदाव्रत ने कहा, "हाँ, सब सच है !"

"तुम कह क्या रहे हो ?"

सदाव्रत ने फिर कहा, "सिर्फ़ मेरे पिताजी ही क्यों; आप, मैं, हम सभी ने ख़ून किया है। आज भी कर रहे हैं।"

"ह्वाट नॉनसेन्स !"

मिस्टर बोस बम के गोले की तरह फट पड़े। "ह्वाट डु यू मीन ?"

सदाव्रत कहने लगा, "ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जिस तरह खुदीराम का ख़ून किया है, गोपीनाथ साहा का ख़ून किया है. दिनेश बादल और विनय का ख़ून किया है, हम लोग भी आज ठीक उसी तरह लड़कियों का ख़ून कर रहे हैं। वे लोग पढ़ाई-लिखाई करना चाहती हैं, हम लोग उन्हें स्कूल के पास भी नहीं फटकने देते। जिससे वे पढ़ न लें इसलिए उनके हाथ में पैसा ही नहीं रहने देते। बाद में कहीं खाकर ज़िन्दा न रह जायें, इसलिए उनके हाथ में खाने लायक पैसा भी नहीं रहने देते। आटे में मिट्टी और चावल में कंकड़ मिला देते हैं। वे लोग जिससे मलेरिया, टाइफ़ायड या कॉलरा से मर जायँ, हम लोग उनके घर के सामने के नाले को साफ़ नहीं होने देते। इसे ख़ून नहीं तो क्या कहूं ! टी० बी० होने पर बाद में कहीं दवा खाकर ज़िन्दा न बच जायँ, इसलिए हम दवा छुपा देते हैं। या ग़रीबों को बेचते ही नहीं ! उस लड़की ने तो कल ठीक ही कहा। ज़रा भी झूठ नहीं कहा।"

"सदाव्रत ! आर यू औफ़ योर हैड ? तुम्हारा क्या दिमाग़ ख़राब हो गया है ?"

सदाव्रत उठ खड़ा हुआ।

बोला, "क्या और भी सबूत चाहिए ? तो आज आप क्लब न जाकर मेरे साथ कलकत्ता टी० बी० हॉस्पिटल चलिए। वहाँ पर मैं एक और आदमी को दिखाऊँगा। आदमी-सा आदमी, जिसका हम सब लोग मिलकर ख़ून करने वाले हैं। दो-एक दिन बाद ही उसका भी ख़ून हो जायेगा।"

फिर मिस्टर बोस की ओर देखकर कहा, "चलेंगे मेरे साथ ? देख आइये ! चलेंगे ?"

हैरान मिस्टर बोस सदाव्रत की ओर ताकने लगे।

और वक़्त ख़राब किये बिना सदाव्रत कमरे से निकल गया। फिर नीचे उतरकर गैरेज़ से गाड़ी निकालकर सड़क पर आ गया। गेट पर के दरबान ने हाथ उठाकर लम्बी सैल्यूट झाड़ी।

□ □ □

हॉस्पिटल में बिस्तरे पर केदार बाबू बेहोश पड़े थे। केबिन में नर्स थी। सदाव्रत के आते ही नर्स उठकर खड़ी हो गयी। ज़रा देर केदार बाबू की ओर देखकर नर्स से पूछा, "पेशेन्ट का क्या हाल है?"

नर्स ने जवाब दिया, "टेम्प्रेचर उतना ही है। एक सौ चार!"

"विज़िटिंग डॉक्टर आये थे क्या? उन्होंने क्या कहा?"

"प्रेसक्रिप्शन बदल दिया है।"

"रात को नींद आयी थी?"

"डिस्टर्बड स्लीप। सोते-सोते कई बार 'शैल-शैल' कह चिल्ला उठे थे।"

इसके बाद टेम्प्रेचर-चार्ट देखा। देखकर कहा, "प्रेसक्रिप्शन दीजिये। मैं दवा वगैरह ले आऊँ।"

कहकर प्रेसक्रिप्शन लेकर बाहर निकलते ही देखा कि शैल और मन्मथ आ रहे हैं। दोनों केबिन में ही जा रहे थे। मन्मथ की ओर देखकर कहा, "तुम लोग बैठो। मैं आ रहा हूँ।"

इसके बाद कॉरीडोर पार कर सीढ़ी उतर ही रहा था कि अचानक पीछे से शैल की आवाज़ सुनायी दी। सदाव्रत ने पीछे मुड़कर देखा।

शैल का चेहरा और आँखें फूली-फूली-सी लग रही थीं। बोली, "एक बात सुनिये!"

सदाव्रत एक-दो सीढ़ी उतर ही चुका था। जल्दी से ऊपर आकर बोला, "जल्दी से कहो क्या कहना है। मैं दवा लेने जा रहा हूँ।"

सदाव्रत को बुलाकर जैसे शैल को पश्चात्ताप हो रहा था। बेकार में क्यों बुलाने गयी? उसे क्या कहना था? मन्मथ ही उसे काका को देखने के लिए लिवा लाया था। आने के पहले तक यह सोचा भी नहीं था कि इस तरह से सदाव्रत के साथ मुलाक़ात हो जायेगी। मुलाक़ात होते ही उसे बुला बैठेगी, यह भी नहीं सोचा था। अब जैसे सिटपिटा-सी गयी।

सदाव्रत ने फिर से कहा, "मास्टर साहब के लिए तुम चिन्ता मत करो। जो कुछ करने का है, मैं कर रहा हूँ। तुम्हारे नाहीं करने पर भी करूँगा। और हॉस्पिटलवाले भी जहाँ तक हो सकेगा, करेंगे। मैंने आज सुबह ख़ुद टेलीफ़ोन पर डॉक्टर के साथ बात कर ली थी। आदमी के वश

में जो कुछ भी है, किया जायेगा। तुम हताश न होओ।"

शैल क्या कहती, कुछ समझ नहीं पा रही थी।

ज़रा रुककर बोली, "मैं आपके साथ चलूँगी!"

"मेरे साथ? मास्टर साहब को देखने नहीं जाओगी?"

"आपसे कुछ कहना था।"

सदाव्रत क्या कहे, कुछ ठीक नहीं कर पाया। एक मिनट सोचकर बोला, "चलो!"

इसके बाद सीधे बाहर आकर गाड़ी में बैठा। शैल पहले ही बैठ चुकी थी। शैल ने कहा, "गाड़ी चलाते-चलाते बात करने में आपको मुश्किल तो नहीं होगी?"

गाड़ी स्टार्ट हो चुकी थी। सामने से एक गाड़ी आ रही थी। उससे बचाकर सदाव्रत फिर सीधे ड्राइव करने लगा। काफ़ी देर बाद शैल की ओर देखकर कहा, "तुम मुझसे कुछ कहना चाहती थीं?"

शैल समझ गयी कि सदाव्रत उसकी बात सुन नहीं पाया। बोली, "आप क्या मुझसे नाराज हैं?"

"नाराज़? नाराज़ होने का मेरे पास समय ही कहाँ है, बोलो? अपनी नौकरी है, उस पर मास्टर साहब की बीमारी। और भी कितनी ही बातें हैं, जो कहने पर भी तुम नहीं समझोगी। और फिर नाराज़ होऊँगा किस पर? तुम्हारे ऊपर? खुद ही अगर अपने ऊपर गुस्सा करके खून जलाती हो तो क्या कह सकता हूँ?"

शैल ने कहा, "एक बात बतायेंगे?"

"कौन-सी?"

"वह लड़की कौन थी?"

"कौन-सी लड़की?" सदाव्रत जैसे आसमान से गिरा।

शैल—"क्या सच ही आप लड़कियों के साथ रहकर उनका सर्वनाश करते हैं? मेरे साथ क्या इसीलिए आपने खुद आकर परिचय किया? मैं काफ़ी सोचने के बाद भी किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पायी हूँ। उस दिन पहली बार मकान-मालिक ने नल काट दिया था। आपने आकर सड़क के नल से पानी ला दिया था। उस दिन मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं हुआ था कि आप इस तरह के आदमी हैं। आपको देखकर तो यह सोचा भी नहीं जा सकता।"

"तुम क्या यही कहने मेरे साथ आयी हो?"

शैल ने कहा, "इस बात का जवाब मिले बिना मैं पागल हो जाऊँगी। आपकी वजह से मैंने काका के साथ झगड़ा मोल लिया। मन्मथ से झगड़ी। जिन लोगों ने देखा है, वे मेरा आज का व्यवहार देखकर हैरान रह गये हैं। कमी हमारे यहाँ थी, शायद हमेशा रहेगी भी। मुझे उसकी आदत पड़ गयी है, लेकिन मैंने तो किसी को धोखा नहीं दिया है कि दूसरे भी मुझे धोखा दें! मैंने आपका ऐसा क्या बिगाड़ा था कि मुझे इस तरह धोखा दिया?"

"मास्टर साहब को यह सब मालूम है?"

"अपने मास्टर साहब को आप अभी तक नहीं पहचानते हैं। काका आपको मुझसे भी ज़्यादा चाहते हैं, यह शायद आपको नहीं मालूम?"

"मन्मथ?"

"मेरा व्यवहार देखकर वह भी हैरान रह गया। वह कहता है, मैं ऐसी तो नहीं थी। मुझे भी पता है कि मैं ऐसी नहीं थी। लेकिन ऐसी क्यों हो गयी? आपने क्यों ऐसा किया? मैंने आपका ऐसा क्या बिगाड़ा है?"

सदाव्रत ने कहा, "इन सब बातों का इस तरह गाड़ी चलाते-चलाते कहीं जवाब दिया जा सकता है?"

"और उपाय भी क्या है? आप सिर्फ़ इतना ही कह दीजिए कि वह जो लड़की रास्ते में आपका अपमान कर गयी, वह सब झूठ था। आप सिर्फ़ कह दीजिए कि आप उसे नहीं जानते। उसके साथ आपका कभी कोई सम्बन्ध नहीं था। आप अपने मुँह से कह भर दीजिए। मुझे यकीन हो जायेगा।"

"नहीं, मैं उसे जानता हूँ!"

"लेकिन मैं यही तो सोच नहीं पाती कि उस-जैसी लड़की को आप क्यों जानते हैं? उससे आपका क्या सम्बन्ध हो सकता है, और क्यों हो सकता है? आप तो काफ़ी ऊपर हैं।"

सदाव्रत थोड़ा झुंझला उठा।

"अजीब बात है। इस हालत में भी तुम्हारे दिमाग़ में ये सारी बातें कैसे आ रही हैं? इस हालत में भी तुम इन छोटी-छोटी बेकार की बातों में दिमाग़ ख़राब कर रही हो? दुनिया को क्या इतना छोटा समझती हो? हम लोग क्या अपने-अपने सुख-दुःख और रोने-धोने में लगे रहेंगे? सोचने के लिए और कुछ नहीं है क्या? तुम्हारे काका बीमार हैं। ज़िन्दगी-भर सबका भला चाहनेवाले उन-जैसे सच्चे आदमी को इस तरह बीमारी क्यों भोगनी पड़ रही है? तुम लोग क्यों तीस रुपये से ज़्यादा मकान का

किराया नहीं दे सकते ? और क्यों एक दूसरा है, जिसके लिए तीन सौ रुपया हाथ-खर्च में फूँककर भी पैसा खर्च करना प्रॉब्लम नहीं होती ? यह बात क्या तुमने कभी सोची है ?"

बात करते-करते सदाव्रत का चेहरा जैसे लाल हो गया।

"तुम्हें पता है, आज मुझे दो हज़ार रुपये महीना मिलते हैं। और मैं हाथ पसारकर वही ले रहा हूँ। जबकि मुझसे अच्छे लड़कों की क्या कलकत्ता में कमी है ? छाँटकर मिस्टर बोस ने मुझे ही पकड़ा है। और सिर्फ़ मैं ही क्यों ? मेरे-जैसे क्या और नहीं हैं ? और भी बहुत से हैं, जिनका खयाल है कि दुनिया में सुख-ही-सुख है ! दुनिया में अच्छे विचार हैं। न्याय की यहाँ इज़्ज़त है। अन्याय की यहाँ सज़ा है।"

क्या कहते-कहते क्या कह गया। शैल क्या कहने आयी थी और सदाव्रत क्या बात करने लगा ! इस आदमी को शैल काफ़ी अरसे से देख रही है। काका के पास आता था। काका के साथ कितने ही विषयों पर बातें करता। उसी समय से शैल दरवाज़े की आड़ में खड़ी-खड़ी सारी बातें सुनती और सदाव्रत के बारे में उसने मन में एक धारणा बना ली। लेकिन बाद में नज़दीक आने के साथ-साथ जैसे इस आदमी से घृणा करने लगी थी। वैसे यह असली अर्थों में घृणा भी नहीं थी। घृणा से मिला एक अजीब खिंचाव। इसी खिंचाव की वजह से आज शैल अपनी मर्ज़ी के खिलाफ़ सदाव्रत के साथ चली आयी है। यह आदमी जैसे दूसरों से अलग है। और जो लोग उसके काका के पास आते, यही मन्मथ, गुरुपद, शशिपद बाबू—उन सभी को शैल ने देखा है। सभी के बारे में शैल की एक निश्चित धारणा है। वह आदमी सच्चा है, वह परोपकारी है, वह स्वार्थी है—इसी तरह की कोई धारणा हर आदमी के बारे में थी। उसका मकान-मालिक, उसके पड़ोसी, सभी की जैसे क़ीमत लगा डाली थी। लेकिन इस सदाव्रत के बारे में कोई निश्चित मत नहीं बना पायी थी। एक बार लगता, यह आदमी उसे चाहता है। तो कभी लगता, यह आदमी तो जैसे उसके बारे में सोचता भी नहीं है। उसने उसके साथ ही गाड़ी में आने को कहा तो सदाव्रत खुश तो नहीं हुआ था। वह तो अपने में ही मस्त गाड़ी चला रहा है और बेसिर-पैर की बातें कर रहा है।

कलकत्ता में अँधेरा उतर आया था। सड़क की बत्तियाँ जल उठी थीं। शैल पास बैठी थी। एकदम सदाव्रत के पास।

"अच्छा, आप क्या सारे दिन यही सब सोचते हैं ?"

"क्या सब ?"

"वही जो कह रहे हैं ! या कुछ कहना चाहिए इसी से कह रहे हैं ?"

सदाव्रत इतनी देर से जो सब बातें कह रहा था, अचानक उसमें विघ्न आने से चौंक पड़ा।

बोला, "इसका मतलब ?"

"इसका मतलब यह कि ये सारी बातें अखबारों में छपी रहती हैं। इन बातों को लिखना होता है, इसी से वे लोग लिखते हैं। लेकिन कोई आदमी ये बातें सोचता भी है, यह तो मुझे नहीं मालूम था।"

"सो क्या ? कौन कहता है, कोई सोचता नहीं है ?"

"मैंने जिन लोगों को देखा है, उनमें से कोई नहीं सोचता। सभी ऑफ़िस जाते हैं, ऑफ़िस से लौटकर पार्क में मीटिंग अटेण्ड करते हैं। घर आकर ताश खेलते हैं या बच्चों को पढ़ाते हैं, फिर खाना खाकर सो जाते हैं।"

"तुमने क्या अपने काका को भी नहीं देखा ? मास्टर साहब भी क्या उन्हीं में से हैं ?"

"काका की बात छोड़िए, काका को तो लोग पागल कहते हैं। लेकिन आप क्यों सोचते हैं ? आपको अच्छी नौकरी मिली है। दो हज़ार रुपये महीना मिलते हैं। दो दिन बाद शादी करेंगे। आप क्यों हम लोगों के 'रोने' को लेकर दिमाग़ ख़राब करते हैं ? यह भी क्या आपकी रईसी का कोई शौक है ? अख़बारवालों के लिए कुछ नहीं कहती, क्योंकि उनकी नौकरी ही इसलिए है। लेकिन आपको इन सब बातों से क्या लेना-देना है ?"

सदाव्रत की गाड़ी रसा रोड पर आ गयी थी।

सदाव्रत ने कहा, "ये सब बातें छोड़ो, तुम मुझसे क्या कहना चाहती थीं, कहो !"

"आपके रुपये लौटा दिये, इसलिए क्या आप मुझसे नाराज़ हैं ? हम हज़ार ग़रीब हों, लेकिन आदमी होने के नाते स्वाभिमान नाम की भी तो कोई चीज हो सकती है। स्वाभिमान तो शायद कोई बुरी बात नहीं है ?"

"लेकिन मैंने तो तुमसे इसके लिये कोई कैफ़ियत नहीं माँगी !"

"आप कैफ़ियत भले ही न माँगें, लेकिन ख़ुद मेरी तरफ से भी तो कोई जवाबदेही हो सकती है।"

"जवाबदेही जो चाहते हों, उनके पास जवाबदेही करो। मुझे इसकी कोई जरूरत नहीं है। इस ज़रा-सी जवाबदेही देने के लिए अपने काका को

बिना देखे तुम्हारा मेरे साथ आना ठीक नहीं हुआ। यह मत सोचना कि तुम्हारी जवाबदेही सुनकर मैं तुम्हारे काका की देखभाल ज़्यादा करूँगा। मास्टर साहब के लिए जितना कर रहा हूँ, तुम्हारे बीमार होने पर भी ठीक उतना ही करूँगा।"

"अच्छा, सच बतलाइये, काका के लिए आप इतना क्यों करते हैं ? असली कारण क्या है ? उस दिन आप बीस रुपये लेने के लिए भी नहीं रुके और ऊपर से दो सौ रुपये और दे गये। कल सुना कि काका को यहाँ भर्ती कराने के लिए आपके क़रीब सात-सौ रुपये ख़र्च हो गये।"

"क्यों, ऐसी घटना क्या तुमने पहले कभी नहीं देखी ? कान से सुनी भी नहीं ?"

"किताबों में पढ़ा है। सतयुग में ऐसा होता था और कानों से मारवाड़ियों के बारे में सुना है। सच-झूठ तो जानती नहीं। सुना है कि ये लोग ज़िन्दगी-भर तो पाप करते हैं। फिर उसी पाप का प्रायश्चित करने के लिए तीर्थस्थानों में धर्मशाला बनवाते हैं।"

"समझ लो, मैंने भी कोई पाप किया है।"

"कौन-सा पाप ?"

सदाव्रत ने कोई जवाब नहीं दिया। सामने की ओर देखकर हँसने लगा।

"उस दिन धर्मतल्ला पर उस लड़की ने जो कुछ कहा, आपने क्या वही पाप किया है ? सच कहिये, उसने जो-कुछ कहा, क्या सब सच था ?"

सदाव्रत ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

"जवाब दीजिये। चुप न रहिये। यह बात पूछने के लिए ही मैं आज आपके साथ आयी हूँ। आप-जैसा आदमी बाग़-कोठियों में ले जाकर लड़कियों का सर्वनाश करता है, यह मैं सोच भी नहीं सकती। मैं ऐसे लोगों से हमेशा घृणा करती आयी हूँ। मैं उन्हें फूटी आँख भी नहीं देख सकती। सच ही आप क्या वैसे हैं ? आप क्या इतना नीच काम कर सकते हैं ?"

सदाव्रत ने सामने की ओर देखते हुए कहा, "मैंने उससे भी नीच काम किया है !"

"क्या ? आप ठीक कह रहे हैं ?"

"हाँ, यकीन करो। मैंने उससे भी ख़राब काम किया है।"

सदाव्रत की बात सुनकर शैल चौंक गयी। उसने सदाव्रत के चेहरे की ओर अच्छी तरह से देखा। उस चेहरे पर कहीं भी ज़रा शिकन नहीं थी।

सदाव्रत अब हँस नहीं रहा था। उसका चेहरा गम्भीर हो गया था।

"तो उस दिन जो कुछ कहा, सच था ? सच ही आप लोगों ने उस लड़की के पिता की हत्या की ?"

सदाव्रत ने उसी तरह सिर हिलाया।

बोला, "हाँ।"

"आप कह क्या रहे हैं ?"

"हाँ, सच ही कह रहा हूँ, शैल। हम लोगों ने मिलकर उस लड़की के बाप का ख़ून किया है। उसने जो कुछ कहा था, सब ठीक ही कहा था। एक भी बात झूठी नहीं थी।"

"लेकिन बड़ी अजीब बात है। आप लोगों को पुलिस ने नहीं पकड़ा ? आप लोगों को फाँसी नहीं हुई ?"

"ख़ून करने पर आदमी को हमेशा तो फाँसी नहीं होती। ज़्यादातर तो पकड़े ही नहीं जाते। फिर फाँसी कैसे हो ? और सिर्फ़ उस लड़की के बाप की हत्या की हो, इतना ही नहीं, और भी न जाने कितने लोगों की हत्या की, इसका ठीक नहीं है ! मज़ा यह है कि किसी को अभी तक पता भी नहीं लगा। किसी को हम लोगों पर सन्देह तक नहीं हुआ। हम सभी छाती फुलाये ठाठ से घूमते हैं।"

"लेकिन मेरे काका को क्या यह सब मालूम है ?"

"मास्टर साहब ? वह भले आदमी हैं। मुझसे स्नेह करते हैं। पता लगने पर भी विश्वास नहीं करेंगे। विश्वास करते तो शायद यह बीमारी उन्हें नहीं पकड़ती।"

शैल ज़रा इस ओर खिसक आयी।

"लेकिन ख़ून आख़िर किया क्यों ? रुपये के लिए ?"

"हाँ।"

"सिर्फ़ रुपये, और कुछ नहीं ? ज़रा से रुपयों के लिए आप लोग ख़ून करते थे ?"

"रुपया क्या कोई छोटी चीज़ है ? रुपया ही तो सब है ! आज तुम्हारे काका की बीमारी के लिए जो इतना रुपया ख़र्च हुआ, अगर मैं नहीं देता तो कहाँ से आता ? अगर मुझे दो हज़ार रुपये महीना न मिलते ? उस हालत में तुम्हारे काका का इलाज कैसे होता ? और यह जो गाड़ी देख रही हो, यह भी तो रुपयों से ख़रीदी गयी है। यह जो दवा लेने जा रहा हूँ, उसके लिए भी तो रुपया चाहिए। नहीं चाहिए ? रुपया क्या छोटी-सी

चीज़ है ?"

शैल इतनी सब बातें नहीं सोच पायी। बोली, "लेकिन इसलिए क्या आप आदमी का ख़ून करेंगे ?"

"रुपये के लिए सिर्फ़ ख़ून ही क्यों, दुनिया में ऐसा कोई पाप नहीं है जो मैं न कर सकूँ !"

"लेकिन करेंगे कैसे ? आदमी में बुद्धि नाम की क्या कोई चीज़ नहीं है ?"

"बुद्धि की बात सोचकर तो बड़ा आदमी नहीं हुआ जा सकता !"

"तब तो आप ज़रूर शराब पीते होंगे। शराब पीने के बाद सुना है बुद्धि-विवेक जैसी कोई चीज़ नहीं रहती। शराब पीकर, सुना है, आदमी जानवर बन जाता है।"

सदाव्रत ने कहा, "उसकी ज़रूरत नहीं होती। बिना शराब पिये भी हम लोग हत्या कर सकते हैं। हत्या करते-करते हम इतने पक्के हो गये हैं कि अब शराब की भी ज़रूरत नहीं होती।"

"अच्छा, आप क्या मेरे साथ मज़ाक कर रहे हैं ?"

शैल ने गरदन घुमाकर सदाव्रत की ओर देखा। लेकिन सदाव्रत ने तब तक गाड़ी एक जगह खड़ी कर दी थी। फिर गाड़ी से उतरकर बोला, "तुम ज़रा बैठो। मैं दवा ले आऊँ।"

शैल ने चारों ओर देखा। यह शायद विलायती लोगों का मुहल्ला था। सड़क और फुटपाथ पर ज़्यादा भीड़ नहीं थी। दो-एक क़ीमती गाड़ी सर्र से गुज़र जातीं।

अचानक एक बात हो गयी। उस ओर एक गाड़ी खड़ी थी। काफ़ी बड़ी और क़ीमती गाड़ी। गाड़ी के अन्दर लम्बे-लम्बे बालोंवाला एक छोटा-सा कुत्ता था। वरदी पहने एक ड्राइवर गाड़ी झाड़-पोंछ रहा था। अचानक सामने की दूकान से एक लड़की निकलकर आयी। सिल्क की 'बगल-कटी' ब्लाउज़ और सिल्क की ही साड़ी, जो बार-बार कन्धे से सरक रही थी। आते ही सदाव्रत की ओर देखकर पुकारा, "मिस्टर गुप्त ! मिस्टर गुप्त !"

सदाव्रत दवा की दूकान के अन्दर घुस रहा था। पीछे से पुकार सुनकर घूमकर खड़ा हो गया। फिर लड़की की ओर बढ़ आया। शैल अवाक् रह गयी। यह लड़की भी क्या सदाव्रत की पहचान की है ! दोनों का बातें करने का ढंग देखकर लगता था काफ़ी दिनों की पहचान है। पास-पास खड़े बात कर रहे थे। आश्चर्य ! सदाव्रत क्या लड़कियों के साथ ही रहता है ! उस

दिन जिस लड़की ने सदाव्रत का अपमान किया था, वह शायद ग़रीब थी। इतना साज-शृंगार भी न था। लेकिन यह तो शायद बड़े आदमी की लड़की लगती है। ख़ुद की गाड़ी, ड्राइवर, कुत्ता। कुत्ता गाड़ी की खिड़की से मुँह बाहर किये जीभ लपलपा रहा था। लड़की ने यह देख उसे जल्दी से गोद में ले लिया।

इसके बाद किसे पता क्या हुआ। सदाव्रत लड़की को लिये शैल के पास आया।

सदाव्रत ने पास आकर कहा, "तुम्हारे साथ परिचय करा दूँ, शैल! यह हैं मिस बोस और यह···"

मिस बोस की ओर देखकर सदाव्रत ने कहा, "यह मिस राय हैं।"

"हाऊ डु यू डु!"

कहकर ज़रा मुसकराकर शैल की ओर एक हाथ बढ़ा दिया। गोरा हाथ। अँगुलियों के नाख़ून बड़े-बड़े। नाख़ून के सिरे पर पॉलिश की हुई थी। अपना हाथ बढ़ाते हुए शैल को शर्म आयी। अपने नाख़ूनों का ध्यान आया। मसाला पीसने, खाना बनाने और बर्तन साफ़ करनेवाले हाथों को बढ़ाने में संकोच होने लगा। सारे बदन से ख़ुशबू आ रही थी। वह सदाव्रत के साथ मरने क्यों आयी? वह अस्पताल में काका को देखने गयी थी, वहीं रहती।

लड़की की गोद में बैठा कुत्ता मज़े से छाती के साथ चिपक रहा था। लड़की के हाथ बढ़ाते ही शैल की ओर गुर्राकर देखा। फिर शैल के हाथ बढ़ाते ही भों-भों करना शुरू कर दिया।

"डोण्ट बी सिली, पेगी!"

कहकर लड़की ने कुत्ते के सिर पर प्यार से चपत लगायी।

उसने कहा, "आप डरियेगा नहीं। नया आदमी देखते ही पेगी ज़रा चिल्लाता है। बाद में कुछ नहीं कहता। मिस्टर गुप्त को भी पहले दिन देखने पर 'बार्क' करने लगा था।"

शैल क्या करे, क्या बोले, कैसा व्यवहार करना चाहिए, कुछ भी ठीक नहीं कर पा रही थी। सारा बदन पसीने से लथपथ हो उठा था। जिन्दगी में बहुत-सी लड़कियों को देखा था। ख़ुद भी तो लड़की है। लेकिन ऐसी लड़की, यह साज-शृंगार, गहने और ऐसा जूड़ा उसने पहले कभी भी नहीं देखा था।

सदाव्रत ने कहा, "मनिला, तुम ज़रा वेट करो, मैं दवा खरीदकर अभी

आता हूँ।"

और मिस बोस सदाव्रत की गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर शैल के बिलकुल नज़दीक आकर बैठ गयी।

"सो आपके फ़ादर बीमार हैं। पता है मिस राय, बीमारी का नाम सुनते ही मुझे बड़ा दुःख होता है। मेरा यह पेगी एक बार बीमार हो गया था। कुछ भी नहीं खाता था। मुझे इतना ख़राब लगा था कि क्या कहूँ।"

मिस बोस फटाफट बातें किये जा रही थी। मुँह, हाथ और सिर हिला-हिलाकर बात कर रही थी। बीच-बीच में हैंडबैग खोलकर होंठों का रंग ठीक कर लेती। शैल उसकी भाव-भंगिमा देखकर हैरान रह गयी। इसके साथ सदाव्रत का परिचय कैसे हुआ? कौन है यह?

"बचपन में मैं भी एक बार बीमार हो गयी थी। उन दिनों मैंने शीशे में अपना चेहरा नहीं देखा। चेहरा इतना खराब हो जाता है कि उस ओर ताका तक नहीं जाता। इसीलिए मैं कभी भी हॉस्पिटल नहीं जाती। मेरे डैडी को जब फ़्लू हुआ था, मैं एक दिन भी उन्हें देखने हॉस्पिटल नहीं गयी। मैंने डैडी से कह दिया था—नो डैडी, मैं हॉस्पिटल नहीं आऊँगी। तुम बड़े 'अगली' लगते हो।"

शैल इतनी देर बड़ी मुश्किल से अपना कौतुहल छिपा पायी। अपने को और नही रोक पायी।

"सदाव्रत बाबू से आपका परिचय कैसे हुआ?"

"हूँ! मिस्टर गुप्त? अरे, मिस्टर गुप्त तो मेरे डैडी की फ़र्म में परचेंजिग ऑफ़िसर हैं। डैडी मिस्टर गुप्त को, मन्थली टू थाउज़ेंड चिप्स देते हैं, आपको नहीं मालूम?"

कहकर काजल लगी आँखों को फाड़कर शैल की ओर देखा।

"चलिए न, क्लब चलेंगी? तीनों बैठकर ताश खेलेंगे। आपको 'किटी' खेलना आता है?"

शैल हैरान थी।

"क्लब? सदाव्रत बाबू क्या इस समय क्लब जायेंगे?"

"आप अगर चलना चाहें तो जायेंगे!"

फिर अपनी हाथघड़ी देखकर बोली, "मैं ऑलरेडी लेट हो गयी हूँ। मिस्टर भोपत्कर मेरी राह देख रहे होंगे। मैं यहाँ के सैलून में 'ड्रेस' कराने आयी थी। मेरा जूड़ा कैसा बना है, कहिये न? वेरी ब्यूटीफुल?"

शैल ने जूड़े की ओर देखकर कहा, "हाँ, बहुत अच्छा बना है।"

"बहुत कॉस्टली है, मिस राय ! बड़ा आदमी देखकर ये लोग खूब ठगते हैं। लेकिन क्या करूँ ? इतना अच्छा ड्रेसिंग कलकत्ता में और कोई भी नहीं कर पाता।"

शैल अचानक पूछ बैठी, "सदाव्रत बाबू से आपका कितने दिन का परिचय है ?"

"हूँ ! मिस्टर गुप्त ? यही कोई तीन महीने से।"

सिर्फ़ तीन महीने ?"

मिस बोस ने कहा, "मिस्टर गुप्त एक नाइस जैंटलमैन हैं। पता है, उनके पिताजी सीनियर मिस्टर गुप्त पंडित नेहरू के पर्सनल फ्रेंड हैं ? आपको पता है, थर्टीन इयर्स जेल काटी है। नॉट ए मैटर ऑफ़ जोक। वह एक बोनाफ़ाइड पॉलिटिकल सफ़रर हैं।"

शैल ने अचानक ही फिर कहा, "आप दोनों शायद रोज़ मिलते हैं ?"

"ऑलमोस्ट रोज़।"

"रोज़ ?"

मिस बोस ने कहा, "हाँ, रोज़ ही तो, मिस्टर गुप्त हमारे क्लब के मेम्बर हैं न। लेकिन ह्वाट ए सिली। देखिए न, मिस्टर गुप्त को ह्विस्की पसन्द है। अच्छा, आप ही कहिए, अपनी इस ट्रॉपिकल कन्ट्री में ह्विस्की पीना क्या अच्छी बात है ? मैं तो मिस्टर गुप्त से 'रम' लेने को कहती हूँ। आपकी क्या राय है ?"

शैल चौंक उठी।

"सदाव्रत बाबू शराब पीते हैं ?"

"शराब नहीं, 'रम'—माइल्ड ड्रिंक।"

" 'रम' माने ?"

शैल समझ नहीं पायी।

मिस बोस ने कहा, "मेरा यह पेगी भी तो 'रम' पीता है। लेकिन देखिये, इतना पाजी है कि हॉट 'रम' में मुँह नहीं लगायेगा। पेगी को ऑडिनरी वाटर दीजिए, नहीं पियेगा। लेकिन फ्रिज का पानी दीजिये, चप-चप करके पी जायेगा।"

कहकर बड़े दुलार से पेगी की पीठ पर एक और चपत लगायी।

शैल का सिर जैसे फटा जा रहा था। इच्छा हो रही थी कि दरवाज़ा खोलकर बाहर सड़क पर खड़ी हो जाये।

अचानक फिर पूछ बैठी, "अच्छा, सदाव्रत बाबू क्या रोज़ शराब

पीते हैं ?"

"रोज़ नहीं, कभी-कभी। जबकि मेरा कहना है कि रोज़ एक पैग लेना चाहिए। उससे नर्व ठीक रहती है। आपको तो मालूम ही होगा, हम लोग एंगेज्ड हैं !"

"एंगेज्ड माने ?"

मिस़ बोस ने आश्चर्य से कहा, "यू डोण्ट नो ? आप 'स्टेट्समैन' नहीं पढ़तीं ? हम लोगों का एंगेज़मेंट तो एनाउंस हो गया है। हम लोगों की तो 'वेरी सून' शादी होनेवाली है।"

शैल को लगा जैसे बाहर की हवा बिलकुल बन्द हो गयी हो।

और ठीक उसी समय सदाव्रत आ पहुँचा। हाथ में दवा का पैकेट था। आते ही बोला, "चलो-चलो, बड़ी देर हो गयी, हॉस्पिटल का 'विज़िटिंग टाइम' खत्म होने को है। चलो।"

मिस बोस बाहर निकलकर खड़ी हुई। पूछा, "तुम क्लब आ रहे हो न ? हॉस्पिटल से सीधे क्लब चले आओ। मिस्टर भोपत्कर शायद अभी भी मेरी राह देख रहे होंगे। मैं तुम्हारे लिए 'वेट' करूँगी। टा-टा !"

* * *

मिस्टर बोस को सक्सेसफुल आदमी माने बिना चारा नहीं है। धरती पर जो-जो चीज़ें होने पर पुरुष को महापुरुष कहा जाता है, उनके पास वही हैं। आदमी को और क्या चाहिए ! घर, गाड़ी, फैक्टरी, रुपया और इन्फ्लुएंस से ही तो आदमी का दाम आँका जाता है। देखना होगा कि दूसरे दस लोग तुम्हारी इज्जत करते हैं या नहीं। देखना होगा कि बैंक में तुम्हारी क्रेडिट पर मिलियन रुपये हैं या नहीं। एक मिलियन से कम होने पर हम तुम्हें सक्सेसफुल आदमी नहीं मानेंगे। वैसे बिना पैसे के भी सक्सेसफुल आदमी हुआ जा सकता है। ऐसी हालत में तुम्हें फेमस होना होगा। आर्टिस्ट बनकर, नहीं तो साइंटिस्ट होकर। नहीं तो कवि या साहित्यिक बनकर ही नाम कमाना होगा। आजकल यह भी खूब चला है। दो-एक कविता या उपन्यास लिखकर ज़रा नाम होते ही समझने लगते हैं कि फेमस हो गये। ऐसे लोगों का नाम अखबारों में भी छप जाता है। सेक्रेटरी जिस समय अखबार पढ़कर सुनाता है, तब कोई-कोई अजीब नाम कान में आकर लगता है।

"हू इज़ दैट ? कौन है यह आदमी ?"

"जी, उसे पद्मश्री की उपाधि दी गयी है।"

"क्यों ? उसने क्या किया था ?"

"प्रसिद्ध फ़िल्म-अभिनेता है, फेमस फ़िल्म-स्टार !"

फिर भी मिस्टर बोस का सन्देह नहीं जाता, "काफ़ी रुपया होगा न ?"

सेक्रेटरी कहता, "जी हाँ, आजकल सिनेमा-थियेटर में पैसे की क्या कमी है !"

"कितना रुपया होगा ? एक मिलियन होगा ?"

एक मिलियन से नीचे मिस्टर बोस नहीं सोचते।

"तब कितना ? पाँच लाख ?"

"जी, वह तो ठीक से नहीं कह पाऊँगा।"

पाँच लाख रुपये से नीचे होने पर मिस्टर बोस की नज़रों में वह पुअर आदमी होता। सड़क पर चलते-चलते मिस्टर बोस बाहर देखते रहते। कभी-कभी हैरान रह जाते। रेस्टोरेंट में देखते, भरा हुआ। सभी खा रहे हैं। ये लोग कैसे एफ़ोर्ड करते हैं ? कैसे काम चलाते हैं ? वह ख़ुद भी तो स्टाफ को तनख़्वाह देते हैं। जितना देते हैं उनमें उन लोगों का घर चलना सम्भव नहीं है। फिर भी उसी में से पता नहीं कैसे वे लोग रेस खेलने पहुंच जाते हैं, सिनेमा देखते हैं, चॉप-कटलेट खाते हैं, और भी भगवान जाने क्या-क्या करते हैं।

काफ़ी अरसा हुए किसी अख़बार में एक लेख छपवाया था, देश की 'इकॉनोमिक कंडीशन' को लेकर। उसमें उन्होंने दिखलाना चाहा था कि अपना देश जो ग़रीब है, इसके बहुत से कारण हैं। मुख्य कारण है, बंगाली लोग रुपया बहुत उड़ाते हैं। जितना कमाते हैं उसका आधा रेस के मैदान में जाता है। नहीं तो रेस्टोरेंट या सिनेमा-थियेटर में जाता है। नहीं तो फिल्म-स्टारों को पद्मश्री कैसे मिलती है ? ज़रूर ही उन लोगों के पास पैसा हो गया है ! बिना पैसे के तो सरकार उन लोगों को रिकॉगनीशन देगी नहीं। सच ही मिस्टर बोस को यह बात अच्छी नहीं लगती कि सभी के पास रुपया हो। उस ज़माने में जिस तरह ब्राह्मण ऊपर थे, वे लोग शास्त्र से विधान देते, उसी विधान के अनुसार काम चलता था और काफ़ी अच्छी तरह से ही चलता था। आजकल की तरह तब रोज़ ही स्ट्राइक, रोज़-रोज़ के लॉक-आउट और रोज़ की मीटिंग्स नहीं थीं। बिना किसी कठिनाई के राज्य-कर्म चलता था। आज वैसा क्यों नहीं हो सकता ? होना सम्भव नहीं है। कारण, सभी के पास पैसा है। पहले जिसे गुड़ भी नसीब नहीं था, अब वही आदमी बिना चीनी के चाय तक नहीं पीता। दिस इज़ बैड। अब सभी मिलिऑनर होना चाहते हैं। दिस इज़ बैड। बड़े आदमी अगर कम होंगे तो

दूसरे लोग पहले की तरह से काबू में रहेंगे। मिस्टर बोस का कहना है—'स्टाफ के हाथ में ज़्यादा रुपया मत दो, देने पर वे लोग पैसा फूँकेंगे। बाद में रुपया खत्म होते ही फिर माँगेंगे। और अगर रुपया नहीं मिलेगा तो स्ट्राइक करेंगे, हड़ताल करेंगे, सरकार को परेशान करेंगे।'

अचानक टेलीफ़ोन की घंटी बज उठी।

रिसीवर हाथ में लेकर बोले, "हाँ, आपको टेलीफ़ोन किया था। आपने माइनिंग मिनिस्टर को फ़ोन किया था क्या? मैंने तीन बार ट्रंक बुक किया है, अभी तक नहीं मिला।"

उस ओर से मिस्टर गुप्त ने कहा, "दिल्ली की हालत बड़ी नेस्टी हो गयी है, मिस्टर बोस!"

मिस्टर बोस ने कहा, "क्यों?"

"श्यामाप्रसाद मुकर्जी के मरने के बाद से अपोज़िशन में ढंग की बात करनेवाला भी कोई आदमी नहीं है। नेहरूजी के सामने सभी भीगी बिल्ली बन जाते हैं। इसी का नाम डेमोक्रेसी है।"

"इसीलिए तो कह रहा हूँ, इस बार आप इलेक्शन में भाग लेते तो अच्छा रहता। कम-से-कम वेस्ट बंगाल की वॉयस तो फ़ोकस हो पायेगी।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अरे, नहीं जनाब! इस बुढ़ापे में मुँह पर सफ़ेदी पोतने की इच्छा नहीं है। हम लोगों ने जब पॉलिटिक्स शुरू की, तब यह सोचकर तो की नहीं थी। उस समय देश की आज़ादी ही हमारा लक्ष्य था। अब देश आज़ाद हो गया है। हमारा काम ख़तम। अब ये नये लोग चलायें। हाँ, कोई ग़लती होने पर ठीक करने की कोशिश करेंगे, बस इतना ही।"

तभी जैसे कोई बात याद आ गयी।

"कई दिनों से सदाव्रत काफ़ी देर करके लौटता है, बात क्या है? आपकी फैक्टरी में आजकल काम ज़्यादा है क्या?"

मिस्टर बोस हैरान रह गये।

"क्यों? नहीं तो। वह तो आजकल रोज़ चार बजे ही निकल जाता है। फैक्टरी क्लोज़ होने से काफ़ी पहले!"

"क्यों? कहाँ जाता है? मेरी पत्नी कह रही थीं, घर लौटने में काफ़ी देर करता है।"

"सदाव्रत तो कह रहा था कि उसके कोई रिलेटिव टी० बी० हॉस्पिटल में हैं। शायद वहीं जाता है।"

"कौन रिलेटिव ?"

"यह तो मुझे नहीं पता, मिस्टर गुप्त। किसी के पर्सनल मामलों में मैं इन्टरफियर नहीं करता हूँ। दैट इज़ माई हैबिट। मैं मनिला के बारे में भी कुछ नहीं कहता। अपनी वाइफ़ के बारे में भी वही है। मैं अपनी वाइफ़ तक से नहीं कहता कि कौन-से हॉर्स पर बाज़ी लगाओ! हर किसी की अपनी-अपनी लाइक्स और डिसलाइक्स होती हैं।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "आप ज़रा पूछियेगा तो! वह किसे देखने हॉस्पिटल जाता है? कौन है वह? उससे उसका क्या रिलेशन है?"

"लेकिन मेरा पूछना क्या ठीक होगा?"

"क्यों, इसमें बुराई क्या है? आप अगर ख़ुद न पूछना चाहें तो मनिला से पुछवाइयेगा।"

"अरे हाँ, मनिला कह रही थी, सदाव्रत को उसने एक लड़की के साथ देखा है। उसे अपनी गाड़ी में लिए ड्राइव कर रहा था।"

काफ़ी देर से टेलीफ़ोन पर ही बात हो रही थी। आखिरकार मिस्टर बोस ने कहा, "आजकल दोनों जने क्लब में तो रोज़ मिलते ही हैं। मैंने मनिला से कह दिया है, तुम लोग जब एंगेज्ड हो गये हो तो यू मस्ट मीट। मैं सदाव्रत से ख़ुद तो कहता नहीं हूँ। सदाव्रत के निकलने से पहले मनिला ही गाड़ी लेकर यहाँ आ जाती है। इसी तरह धीरे-धीरे मनिला सदाव्रत का रेजिमेंटेशन कर लेगी। आप फ़िक्र न करें!"

शिवप्रसाद बाबू ने निश्चिन्त होकर टेलीफ़ोन रख दिया।

□ □ □

इसी सदी के पचास साल के बाद की बात है। पहले-सा आँख-मुँह बन्द करके रहनेवाला ज़माना अब नहीं है। लड़का एक दिन पैदा हुआ, बड़ा हुआ, पढ़ाई-लिखाई ख़त्म की। उसके बाद एक गुणवती बहू घर में लाकर घर के बड़े निश्चिन्त हो जाते। वे दिन लद चुके हैं। अब आदमी की सुख-सुविधाओं और आराम के साथ अशान्ति, यंत्रणा, क्षोभ और इच्छाएँ बढ़ती जा रही हैं। हर कदम पर डर है। लड़की इतनी देर से क्यों लौटती है? लड़का किससे मेल-जोल बढ़ा रहा है? कांग्रेसी है या कम्युनिस्ट? हर ओर नज़र रखनी होती है। सड़क पार करते समय जितनी सतर्कता की ज़रूरत है, जीवन-यात्रा का भी वही हाल है। ज़रा-सी चूक हुई कि सब गड़बड़। इतनी मुश्किल से कमाई हुई सारी दौलत बट्टेखाते में जायेगी। हो सकता है, किसी दिन बेटा किसी को साथ लिये आ धमके। आकर कहे,

"यही है मेरी वाइफ़ !"

इस तरह बहुत हुआ है। यह सब देखकर ही मिस्टर बोस डर गये थे, शिवप्रसाद बाबू भी चौंक उठे थे। अब दोनों ही ज़रा निश्चिन्त हैं। 'स्टेट्समैन' में सदाव्रत और मनिला के एंगेजमेंट की न्यूज़ निकल चुकी है। क्लब के मेम्बर, ऑफ़िसर, ब्रॉदर-ऑफिसर वगैरह सभी को पता लग चुका है। सभी को ख़ुशी हुई। आफ्टर ऑल सदाव्रत लड़का अच्छा है। क्लब में किसी ने उसे नशे की हालत में नहीं देखा। सदाव्रत मनिला के साथ आता और पास ही बैठता। मिस्टर बोस ने कह दिया था, "मिस्टर गुप्त को हमेशा साथ रखना, अकेला न छोड़ना।"

शुरू में सभी खेलने के लिए तंग करते। लेकिन अब नहीं करते। मनिला जब खेलती होती, सदाव्रत एक ओर बैठा कोई किताब पढ़ता।

हर रोज़ इस तरह ताश खेलना इन लोगों को अच्छा भी लगता है। सदाव्रत देख-देखकर हैरान रह जाता। सारे कलकत्ता से अलग ये लोग जैसे अपने में ही खोये रहते। पढ़ते-पढ़ते जी ऊब जाता तो लॉन में जाकर चहल-कदमी करने लगता। रंग-बिरंगे फूलों के आस-पास घूमता। बगीचे के एक कोने में मालियों की कोठियाँ थीं। अँधेरे में किरोसिन का लैम्प जलाये वे लोग अपनी गृहस्थी चलाते होते। सदाव्रत की उन लोगों के साथ बात करने की इच्छा होती। उन लोगों से पूछने की इच्छा होती—आज उन लोगों ने क्या पकाया है ?

सदाव्रत उन लोगों के लिए साहब था। सदाव्रत को आते देखकर वे लोग संकोच से सिमट जाते। इस शराब, टेरिलिन, गैबर्डीन और जुए के सामने उनकी चिथड़ा साड़ी और चीकट फतूरी जैसे उनका मख़ौल उड़ाती। शोरगुल मचाकर जब ये लोग चले जाते तो वे लोग बाहर निकलते। क़ीमती सिगरेट के डिब्बे बटोरते। टीन के उन डिब्बों के लिए उन लोगों में छीना-झपटी और कभी-कभी तो मारपीट तक की नौबत आ जाती। प्लेटों में पड़े साहबों के जूठे केक और डबलरोटी के टुकड़ों के लिए लड़के-लड़कियों में छीना-झपटी, खींचातानी होती। बाद में काफ़ी रात होने पर भी कोई-कोई मेम्बर तो उठना ही नहीं चाहता। नशे में धुत ! एकदम बेहोश हो गये होते। कुर्सी से फ़र्श पर लुढ़क पड़ते। जिसे सामने पाते उसे ही अँग्रेज़ी में गाली देते। लेकिन इसके लिए किसी को चूँ करने की भी मज़ाल नहीं होती। कै करने पर भी किसी को कुछ भी कहने का हक नहीं होता। तब मैनेजर आकर मालियों और बैरों को बुलाता। साहब उन्हें भी

भद्दी-भद्दी गालियाँ सुनाते ; सभी साहब की 'डंडाडोली' करके गाड़ी में डालकर घर पहुँचा देते। फिर भी किसी को कुछ कहने का हुक्म नहीं था। साहब किसी गवर्नमेंट ऑफ़िस के क्लास-वन ग्रेड के ऑफ़िसर हैं। पाँच हज़ार रुपये महीना तनख्वाह है।

एक दिन सदाव्रत के सामने ही घटना हो गयी। सदाव्रत सिर से पाँव तक घिनाने लगा। और सभी मिस्टर मल्लिक का हाल देखकर हँस रहे थे। मनिला भी हँस रही थी।

सदाव्रत अपने को और नहीं रोक पाया। बोला, "ह्वाई डु यू लाफ़ ? आप लोग हँस क्यों रहे हैं ? ब्रूट को हंटर से मरम्मत नहीं कर सकते ?"

सभी खिलखिलाने में मस्त थे।

मिस्टर भोपत्कर ने कहा, "मिस्टर गुप्त, पता है यह कौन हैं ? ही इज़ नो लेसर ए पर्सन दैन मिस्टर मल्लिक—मिस्टर मल्लिक जो हैं, वेस्ट बंगाल गवर्नमेंट भी वही है !"

और कोई होता तो यह बात सुनकर चौंक जाता। लेकिन सदाव्रत पर इसका कोई असर नहीं हुआ। बोला, "उससे मुझे क्या मतलब ? और आपको ही क्या है ?"

इसके बाद ही मज़ा किरकिरा हो जाता। खेल ठप हो जाता। पेगी को गोद में लिये मनिला उठ खड़ी हुई। सदाव्रत भी गाड़ी में आ बैठा।

गाड़ी में बैठते ही बोला, "मनिला, मुझसे फिर कभी क्लब आने को न कहना।"

मनिला ने भौंहें टेढ़ी करके पूछा, "क्यों ?"

"दे आर स्कॉण्ड्रल्स ! पाँच हज़ार रुपये तनख्वाह है तो मुझे क्या ? मुझे कोई लोन लेने तो जाना नहीं है ! उसके पास मैं भीख माँगने भी नहीं जाऊँगा। मिस्टर मल्लिक बड़े आदमी हो सकते हैं, लेकिन हम लोगों को दिखला-दिखलाकर इस तरह परेड करना, यह सब बर्दाश्त करना भी ठीक नहीं है।"

मनिला बोली, "न-न, यह बात नहीं है। असल में भूल मि० मल्लिक की ही है। ह्विस्की के साथ कोई जिन पंच करके पीता होगा ? पंच करने पर तो नशा होगा ही। मैंने कितनी बार कहा है, आप इस तरह पंच करके न पिया करें, मि० मल्लिक ! उससे टिप्सी हो जायेंगे। लेकिन वह हैं कि सुनते ही नहीं।"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, यह बात नहीं है। तुम समझती नहीं हो।

वह नशा करके जतलाना चाहते हैं कि वह बड़े आदमी हैं। उनके पास चाहे जितनी शराब पीने के लिए पैसा है।"

"वह तो है ही। वह एफोर्ड तो कर ही सकते हैं!"

"लेकिन सबको नास्टी भाषा में गाली-गलौज़ करने का उन्हें क्या हक है?"

मनिला को शायद कुछ बुरा लगा। बोली, "लगता है तुम्हें तो ड्रिंक करना ही पसन्द नहीं है!"

"नहीं है।"

"तब तो शादी के बाद तुम मुझे भी ड्रिंक नहीं करने दोगे?"

"ड्रिंक करना अच्छी बात नहीं है।"

"यह भी खूब कहा! शादी करूँगी इसलिए ड्रिंक नहीं कर पाऊँगी! ताश नहीं खेल पाऊँगी!"

"वह तुम्हारी मर्ज़ी पर है, लेकिन जिस रास्ते तुम चल रही हो मेरे खयाल से वह ठीक नहीं है।"

"लेकिन हर कल्चर्ड लेडी और हर कल्चर्ड जैंटलमैन ड्रिंक करते हैं, ताश खेलते हैं। मिसेज़ आहूजा, मिस भोपत्कर, मिसेज़ मैनियल, मिस फेनी तलियार खान, सभी तो ड्रिंक करती हैं। सभी रेस में बाज़ी लगाती हैं।"

"मेरी माँ वह सब नहीं करती। शराब नहीं पीती। रेस भी नहीं खेलती।"

"लेकिन मेरी माँ तो ड्रिंक करती हैं। असली विलायती 'रम'! रेस में बैटिंग भी करती हैं।"

"मनिला, तुम्हारी माँ एक्सेप्शन हैं। मेरी जान-पहचान की कोई लड़की ड्रिंक नहीं करती, रेस में बाज़ी नहीं लगाती।"

मनिला यह सुनकर ज़रा खिन्न हो गयी। बोली, "तुम कितनी कल्चर्ड लड़कियों को जानते हो? तुमने कितनी देखी हैं?"

"कई एक ऐसी लड़कियों को जानता हूँ।"

"वे लोग क्या कल्चर्ड हैं? वे लोग क्या कॉन्टिनेंट गयी हैं? उस दिन तुम्हारी गाड़ी में जिसे देखा था, वह कौन है? हू इज़ शी? दैट, दैट हैगर्ड गर्ल! मेरे साथ एक शब्द भी नहीं बोल पायी। कल्चर्ड लेडी को कैसे बात करना चाहिए, यह भी नहीं मालूम। तुम उसे कल्चर्ड कहते हो?"

सदाव्रत ने गम्भीर होकर कहा, "जिसके बारे में तुम जानती नहीं हो,

उसके बारे में इस तरह क्यों कहती हो, मनिला ? वह ग़रीब हो सकती है, देखने में ख़राब हो सकती है, लेकिन अगर वह कल्चर्ड नहीं है तो तुम भी कल्चर्ड नहीं हो !"

"ह्वाट डु यू मीन, सदाव्रत ? तुम मुझे इतना मीन, इतना ओछा समझते हो ?"

सदाव्रत ने कहा, "तुम्हें ओछा नहीं समझता, लेकिन तुम इतना सब जान-बूझकर उसे ही इतना नीचा क्यों मानती हो ? उसमें भी तो सेल्फ-रेस्पेक्ट जैसी कोई चीज़ हो सकती है ! नसीब का फेर है कि वह ग़रीब हो गयी। क्योंकि हम लोगों ने ही उसे ग़रीब बनाकर रख छोड़ा है, लेकिन उसकी भी तो गाड़ी में चढ़ने की इच्छा हो सकती है। वह भी तो सिल्क की साड़ी पहनना चाह सकती है। पैसा होने पर वह भी तुम्हारी तरह स्काई-स्क्रेप जूड़ा बँधवाती। उसके काका के पास पैसा होता तो वह भी कॉन्टिनेंट घूमने जाती।"

मनिला गाड़ी के अँधेरे में थोड़ी देर तक सिसकती रही। बोली, "मेरे बारे में तुम्हारी यही ओपीनियन है ? मैं अन्कल्चर्ड हूँ ?"

सदाव्रत को अब होश आया कि वह दो हज़ार रुपये महीना की घूस खाये बैठा है।

धीरे-से बोला, "तुम नाराज़ न हो, मनिला। मेरा यह मतलब नहीं था।"

मनिला जैसे मन-ही-मन कहने लगी, 'मुझे मालूम था, तुम एक दिन यही बात कहोगे। इसीलिए तो मैं पेगी को इतना चाहती हूँ। पेगी कभी इतना 'रूड' होकर बात नहीं करता। तुम्हें पता नहीं है, पेगी मुझे कितना प्यार करता है। तुमसे भी ज़्यादा प्यार करता है। माँ तो इसीलिए कहती हैं कि पहले जन्म में पेगी मेरा लवर था।'

अँधेरे में ठीक से नहीं दीख रहा था। लेकिन सड़क की रोशनी में दिखलायी दिया—मनिला के गालों के मैक्स-फैक्टर के ऊपर से आँसू ढुलक रहे थे।

सदाव्रत ने मनिला का हाथ पकड़ा।

"तुम रो रही हो, मनिला ! छिः !"

"मैं रोऊँ नहीं ? तुम क्या कह रहे हो ? मैंने ऐसा क्या किया है कि मुझे इस तरह रुला रहे हो ? तुम्हें शायद पता नहीं है, एक दिन मैं रोयी थी, इसीलिए डैडी ने मेरी आया को डिस्चार्ज कर दिया था। तुम्हें पता

नहीं है, मैं आज जाकर अगर डैडी से कहूँ कि मैं आज रोयी थी तो डैडी को नींद नहीं आयेगी। स्लीपिंग पिल लेनी होगी।"

"तुम क्या बच्ची हो ?"

"तुमने मेरा बचपना ही देखा। और तुम्हारी कोई ग़लती नहीं है ? तुम्हारे डैडी से नेहरू की इतनी दोस्ती है, इसीलिए खुद को तुम इतना सुपीरियर समझते हो ? अपने को इतना ऊँचा मानते हो ? यही अपने मिस्टर भोपत्कर के साथ डॉक्टर विधान राय की इतनी दोस्ती है। उन्हें तो इस बात का कोई घमण्ड नहीं ? फिर तुम्हीं को इतनी वैनिटी किस बात की है ?"

गाड़ी एलिगन रोड की ओर बढ़ रही थी। मनिला और भी न जाने क्या-क्या कहती रही। कड़ी-कड़ी बातें। सदाव्रत सारी बातें बड़े धैर्य के साथ सुनता रहा। सिर्फ़ आज ही नहीं, सारी ज़िन्दगी इसी तरह सुननी होंगी। ज़िन्दगी-भर पेगी के साथ उसकी इसी तरह तुलना होगी। पूरी ज़िन्दगी हाथ फैलाकर मिस्टर बोस से दो हज़ार रुपये लेने होंगे। इसी तरह सुबह के वक़्त नौकरी पर आना होगा। शाम के समय मनिला इसी तरह आकर क्लब ले जाया करेगी। बाद में बिना बात झगड़ते-झगड़ते घर लौटेगी। यही होगी उसकी ज़िन्दगी ! इसी ज़िन्दगी की अमानत मनिला के पास रखकर वह बैठा है।

वैसे जब नौकरी शुरू की थी तब क्या जानता नहीं था कि ऐसा होगा। जान-बूझकर ही उसने यह सब कहा था। सदाव्रत ने तो अपनी पसन्द से ही मनिला को चुना है। उसे अच्छी तरह पता था कि मनिला जुआ खेलती है, मनिला कुत्ता पालती है, मनिला ड्रिंक करती है। असल में उसने मनिला से तो शादी की नहीं है, शादी की है मिस्टर बोस के रुपये से। इस रुपये के बिना मास्टर साहब का हॉस्पिटल का ख़र्चा कैसे चलेगा ?

अगले सप्ताह ही तो तीन-सौ रुपये की और ज़रूरत है। बाद में ज़रा ठीक होते ही मास्टर साहब को चेन्ज के लिए भेजना होगा। या तो पुरी, नहीं तो वाल्टेयर, या हज़ारीबाग़, या और कहीं। वहाँ मकान का किराया देना होगा, दूध-फल वग़ैरह का ख़र्चा करना होगा। इसके अलावा दवा है। दवा की क़ीमत क्या आजकल कम है ! वह सब ख़र्चा कौन देगा ?

सदाव्रत अचानक जैसे दूसरा आदमी हो गया।

"जो कुछ कहा सो कहा, मनिला, मुझे माफ़ कर दो !"

"मुझे पता था कि तुम अपनी भूल कबूलोगे। अगर वैसा ही होता तो

हम लोग क्लब क्यों जाते हैं ? रेस क्यों खेलते हैं ? अन्कल्चर्ड औरतों की तरह खाना पकाने और सिलाई करने में समय काटती ! तुम भी क्या वही चाहते हो ? चाहते तो या नहीं, कहो ?"

"नहीं, वह नहीं चाहता।"

"तब कहे देती हूँ कि मैं जो अब कर रही हूँ, शादी के बाद भी वही करूँगी। मैं तब भी क्लब जाऊँगी, किटी खेलूँगी !"

"ठीक है !"

"तुम्हारी मदर या फ़ादर मना करेंगे तो नहीं सुनूँगी ! आई मस्ट हैव माई ओन वे ? तुम प्रॉमिस करो !"

सदाव्रत ने कहा, "मैं प्रॉमिस करता हूँ।"

"मैं पेगी को भी नहीं छोड़ पाऊँगी। मेरे बेडरूम में ही पेगी भी सोयेगा। तुम आपत्ति नहीं कर पाओगे।"

"आपत्ति क्यों करूँगा ?"

"साल में एक बार कॉन्टिनेंट जाऊँगी !"

"जाना, अगर डॉलर एक्सचेंज मिलेगा तो जाना !"

मनिला की आँखें तब तक क़रीब-क़रीब सूख गयी थीं। बोली, "क्यों, डॉलर मिलेगा क्यों नहीं ? तुम्हारे फ़ादर से तो मिस्टर नेहरू की जान-पहचान है !"

सदाव्रत को मास्टर साहब की याद आ रही थी। डॉक्टर ने जो बिल दिया था, वह काफ़ी रुपयों का था। टी० बी० के ट्रीटमेंट के लिए कोई ख़ास ख़र्चा नहीं लगता, असली ख़र्च तो बाद का है। वही ख़र्च मार देता है। पेशेन्ट को कम्प्लीट रेस्ट लेना होगा। अच्छा खाना, अच्छी हवादार जगह में रहना, मानसिक शान्ति, हर चीज़ में ख़र्च।

"उस बार 'एअर इंडिया' में गयी थी। लेकिन इस बार 'पान अमेरिकन' से जाऊँगी, समझे ?"

आश्चर्य की बात है, जो आदमी कुछ दिन पहले तक किसी को पहचानता तक नहीं था, वही आदमी अब घर जाना चाहता था। पिछले कई दिनों से केदार बाबू घर जाने को कह रहे हैं। लेकिन मास्टर साहब घर तो जाएँगे, किस घर ? जिस घर में धूप नहीं आती, रोशनी नहीं आती ? जिस घर के चारों ओर से कीचड़ की सड़ांध आती है, वहाँ किस तरह जाकर रहेंगे ? वहाँ रहने पर तो फिर बीमार हो जायेंगे ! पहले मास्टर साहब

को हुआ था, अब शैल को पकड़ेगा। शैल को भी बचाना मुश्किल होगा।

सदाव्रत ने मन्मथ से भी कहा।

मन्मथ ने कहा था, "हाँ, सदाव्रत दा! वहाँ ले जाकर बचाना मुश्किल होगा।"

"तुम्हारी नज़र में और कोई अच्छा मकान है ?"

"ढूंढने पर कितने ही मकान मिलेंगे। लेकिन किराया ज़्यादा माँगेंगे। इसलिए खोजता नहीं।"

"कितना किराया माँगते हैं ?"

"दो सो रुपये से कम में फ़्लैट नहीं मिलेगा।"

"ठीक है, मैं दो सौ रुपये ही दूँगा। लेकिन घर में हवा, धूप, पानी खूब होना चाहिए। रुपया देने के लिए मैं तैयार हूँ, तुम ठीक करो।" सदाव्रत ने दृढ़तापूर्वक कहा।

अचानक मनिला की वात पर ध्यान टूटा।

"तुमने कभी पान एम की पाँच कोर्स की डिनर ली है ? ह्वाट ए लवली डिनर! फ़ॉर्टी थाउज़ैंड फ़ीट ऊपर एंपल, टॉट! हाऊ लवली! ···"

सदाव्रत ने सिर्फ़ इतना ही कहा, "ठीक है, पान एम से ही जाना होगा।"

और इसके बाद ही मिस्टर बोस के पोर्टिको के नीचे पहुँच गाड़ी रुकी। बैरे ने आकर दरवाज़ा खोल दिया।

□ □ □

हिन्दुस्तान पार्क के रिटायर्ड बूढ़े उस दिन भी आये थे।

"अरे, मिस्टर गुप्त हैं क्या ?"

कॉलिंग बेल दबाकर थोड़ी देर राह देखनी होती। तब गोविन्द निकलकर आता। कहता, "जी, बाबू तो नहीं हैं।"

बूढ़े लोग पूछते, "इस बार कहाँ, इलाहाबाद, या इन्दौर ?"

"जी, बाबू आरामबाग़ गये हैं, मीटिंग है।"

"बाप रे! इस बुढ़ापे में भी इतनी मीटिंग अटेण्ड कर लेते हैं। हम तो साहब श्यामबाज़ार जाते-जाते ही हाँफने लगते हैं। मेरी लड़की और जमाई बरानगर में हैं। उन लोगों से मुलाक़ात ही नहीं हो पाती।"

फिर कॉलिंग बेल।

"कौन ?"

गोविन्द ने आकर दुहरा दिया, "नहीं, बाबू नहीं हैं। आरामबाग़ गये हैं।"

"बाबू नहीं, छोटे बाबू हैं ? सदाव्रत बाबू ?"

सदाव्रत घर में ही था। सारा दिन ऑफ़िस, फिर मनिला के साथ क्लब, वह भी एक अजीब हालत होती है। वहाँ से हॉस्पिटल और हॉस्पिटल से अभी घर आया ही था।

"अरे विनय, तू ?"

वही विनय। अन्दर आकर बैठा। सूट-बूट डाटे था। वही डेढ़ सौ वाला इन्स्टॉलमेंट में बनवाया सूट।

"तुझसे भाई एक काम था !"

"तू आजकल कर क्या रहा है ?"

"नौकरी, लेकिन कहने लायक कुछ नहीं है। अढ़ाई सौ रुपये मिलते हैं। सुना है तेरे पिताजी मिस्टर गुप्त अख़बार निकालने वाले हैं ?"

"अख़बार ? न्यूज़-पेपर ?"

"हाँ, सुना है बड़े-बड़े कैपिटलिस्टों की बैकिंग होगी। एक करोड़ की लागत से शुरू होगा। अख़बार कोई सौ-दो सौ आदमियों से तो नहीं चलने का। काफ़ी आदमियों की ज़रूरत होगी। हाँ तो, अपने पिताजी से कहकर मुझे एक नौकरी दिला दे न। सुना है मिस्टर बोस भी एक पार्टनर हैं।"

सदाव्रत हैरान रह गया।

"कहाँ, मुझे तो कुछ भी नहीं पता ! लेकिन अख़बार में नौकरी करके तू क्या करेगा ? तेरा लिखने का शौक क्या अभी तक चल रहा है ?"

एक समय विनय को सचमुच लिखने का शौक था। कॉलेज के 'एस्से-कम्पीटीशन' में फर्स्ट आया था। कॉलेज मैगज़ीन में भी कहानियाँ लिखता था। बाद में उसका एडीटर भी बन गया था। वही विनय आज ढाई सौ रुपये की नौकरी कर रहा है और सदाव्रत को दो हज़ार रुपये मिल रहे हैं। ज़मीन-आसमान की तुलना ज़रा बड़ी पड़ती है, फिर भी वही पुरानी तुलना ही याद आयी। वही विनय आज नौकरी के लिए सदाव्रत के पास आया है। उस दिन तक यही विनय सड़कों पर चक्कर काटता फिरता था। बाद में कोई निकम्मा कहे इसलिए घर से निकलकर फुटपाथ और सड़कों पर चक्कर लगाता। सदाव्रत ने विनय के चेहरे की ओर देखा। यह सच है कि उसने क़ीमती सूट पहन रखा था। दाढ़ी भी ठीक से बनी हुई थी, यह भी ठीक था। लेकिन आज विनय बड़ा बुझा-बुझा-सा लग रहा था। इससे तो जब बेकार था तभी उसका चेहरा ज़्यादा ब्राइट लगता था। उसकी आँखों में ज़्यादा चमक थी। आज अढ़ाई सौ रुपये की नौकरी मंजूर करके विनय

जैसे बुझ-सा गया था। अढ़ाई सौ रुपये की नौकरी करके उसने सिर्फ़ अपना ही नहीं, सारी बंगाली जाति का मुँह काला किया है। कम-से-कम सदाव्रत को तो यही लगा। सदाव्रत जैसे खुद ससुर के यहाँ काम करके अपने को खत्म कर रहा है, विनय का भी वही हाल है। हो सकता है मन-ही-मन विनय को सदाव्रत से जलन होती हो। लेकिन उसे क्या मालूम कि दोनों का ही एक हाल है। दोनों ही इस शताब्दी के अर्थ-कौलिन्य की बलि हैं। इंडिया के इस नये वर्णाश्रम-धर्म की वेदी पर उन दोनों की बलि चढ़ायी गयी है। क्यों विनय विद्रोह नहीं कर पाया? आदमी जिस तरह पहले धर्म के लिए लड़ता था, दुश्मन से लड़ता था; भूख, नींद, हर चीज़ से लड़ा है? विनय के सामने तो उस-जैसी लाचारी नहीं थी। विनय को तो टी० बी० अस्पताल के रोगी का खर्च चलाना नहीं होता। फिर? लेकिन अढ़ाई सौ रुपये में विनय को क्या मिला? डेढ़ सौ रुपये का टेरिलिन या गैबरडीन सूट? और लोगों को दिखाने के लिए एक काम। विनय इतने-से के लिए फँस गया! इतने सस्ते दामों में अपने को बेच दिया!

"पता है एक सूट और दिया है बनने। मोहम्मद अली की दूकान में। तुझे बाद में किसी दिन दिखलाऊँगा। एकदम नये डिज़ाइन की कोटिंग है, चालीस रुपये गज़।"

फिर जरा रुककर कहा, "तू जो भी कह भाई, मुसलमान दर्जियों की-सी बढ़िया सिलाई कोई नहीं कर सकता।"

अचानक अन्दर से गोविन्द आया। बोला, "छोटे बाबू, आपका टेलीफ़ोन!"

"मेरा टेलीफ़ोन? कौन है, रे?"

विनय ने कहा, "अच्छा तो भाई, मैं चलता हूँ। मेरी बात याद रखना।"

जल्दी से अन्दर आकर रिसीवर उठाते ही सदाव्रत अवाक् रह गया। मिस्टर बोस का फ़ोन था।

"तुम ज़रा अभी सीधे चले आओ, सदाव्रत। मनिला खूब रो रही है। एक सीरियस मामला हो गया है।"

"क्या हुआ?"

"वह तुम आकर ही जान पाओगे। मनिला के नाम एक चिट्ठी आयी है। तुम्हारे अगेन्स्ट कई 'एलिगेशन' हैं। वेरी सीरियस ऐलिगेशन्स।"

"मेरे अगेन्स्ट? किसने लिखा है?"

"नाम नहीं है। लेकिन लगता है ऐसे किसी ने लिखा है, जो तुम्हें काफ़ी

अच्छी तरह जानता है। मुझे लगता सब फ़ैक्ट है। एक बात भी झूठ नहीं है। और मनिला भी करोबॅरेट कर रही है।"

"लेकिन मेरे बारे में ऐसा क्या हो सकता है ? और कौन लिखेगा ? और आप सब-कुछ सच कैसे मान रहे हैं ? लिखाई कैसी है ? मर्दानी या जनानी ?"

"मेरे ख़याल में लिखावट ज़नाने हाथ की है। इट इज़ ए लांग लेटर, काफ़ी लम्बी चिट्ठी ! मनिला ने पाते ही मुझे दिखलायी। मुझे दिखलाकर अच्छा ही किया। तुम फ़ौरन चले आओ। मनिला रो-रोकर घर भर दे रही है। तुम्हें तो पता ही है, मनिला के रोने से मुझे कितना दुःख होता है ! लगता है मुझे आज भी स्लीपिंग पिल लेनी होगी।"

"अच्छा, मैं अभी आया।"

कहकर सदाव्रत ने टेलीफ़ोन छोड़कर नीचे आकर गैरेज़ से गाड़ी निकाली। मिस्टर बोस की बात होती तो आराम से जाता। लेकिन यह मिस बोस की बात थी। मिस्टर बोस की इकलौती लड़की। मिस्टर बोस जैसे लोग अगर बाघ होकर पैदा होते तब भी उनकी आदत में, व्यवहार में कोई फ़र्क नहीं होता। शायद बाघ बनाते-बनाते ही भूल से ब्रह्मा ने उन्हें आदमी बना दिया था। और तभी से मिस्टर बोस ने जैसे सारी पृथ्वी को एक जंगल मान लिया था। ख़ासकर इंडिया को। इंडिया के जंगल में मिस्टर बोस जैसे बेफ़िक्री से शिकार मारते घूम रहे थे। उन लोगों ने मान लिया था कि इस इंडिया के जो ठेकेदार हैं, सो बने रहें। उनसे उनका कुछ भी नहीं आने-जाने का। जितने दिन वे जिन्दा हैं हुकूमत करने का अधिकार उन्हीं का है। और किसी का नहीं है। एक 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' हुई है, कल और होंगी। एक दिन एक से अनेक होंगी। बाद में और भी ज़्यादा। फिर छाँट-छाँटकर जिन्हें ऑफ़िसर बनाया है, उनके रेफ़रेन्स के ज़ोर पर और ऊपर उठेंगे। उठते-उठते एक दिन पूरे जंगल के मालिक बन बैठेंगे। ऊपर और कोई नहीं होगा।

मिस्टर बोस के ऊपर कोई रहे यह उन्हें पसन्द नहीं है।

उनकी इच्छा थी आज वह जैसे अपनी फ़र्म के मालिक हैं, एक दिन इस इंडिया के भी मालिक बन जायेंगे। कम-से-कम मालिक नाम के लोगों को कंट्रोल करेंगे। उनकी इच्छा थी कि टेलीफ़ोन पर दिल्ली में प्रेसिडेंट को वह जो करने को कहें, प्रेसिडेंट वही करे। या कुछ भी करते वक़्त मिस्टर बोस की राय लेकर करे। एक ही बात है।

और अगर ऐसा ही नहीं होता तो एक ज़रा-सी फ़र्म के मैनेजिंग डाइरेक्टर होने से फायदा ही क्या है।

यह जो इंडिया है, इतना बड़ा 'वास्ट कन्ट्री', इस पर हुकूमत करना उन्हीं का काम है। ये जो लोग कैबिनेट में हैं ! अख़बार पढ़-पढ़कर हँसते और कैबिनेट-मिनिस्टरों की वृद्धि का हाल देखकर दाँतों तले अँगुली दबाते। कहते, 'नहीं, अब इंडिया नहीं रुक सकती। इंडिया विल गो टु डॉग्स !'

इंडिया जैसे उनकी बपौती हो। उसका नुक़सान हो और वे बैठ-बैठे देखा करें। इंडिया का नुक़सान होते देखकर ही टेलीफ़ोन उठाते। ट्रंक-कॉल पर दिल्ली बात करते, "हलो मिस्टर भोजराज, पार्लमिंट में आप लोग क्या तमाशा कर रहे हैं ?"

मिस्टर भोजराज एम० पी० कहते, "क्यों ? क्या हुआ, मि० बोस ?"

मिस्टर बोस कहते, "आज के पेपर में आपके प्राइम मिनिस्टर का आर्ग्युमेंट पढ़ा। आप लोग क्या इतना भी नहीं सिखला पाते ? काण्ट यू टीच हिम हाऊ टु टाक सेन्स ? लोग हँस रहे हैं। आइज़नहावर, डलेस, मैकमिलन, सब क्या सोचते होंगे ?"

सदाव्रत मिस्टर बोस को जान चुका है। फिर भी गाड़ी ड्राइव करते-करते सोच रहा था, ऐसी कौन-सी ज़रूरी चिट्ठी है कि मिस बोस रो-रोकर घर भरे दे रही है। और जिसके लिए मिस्टर बोस ने इतनी रात को भी बुला भेजा है। चिट्ठी कौन लिख सकता है ? सदाव्रत के खिलाफ़ मिस बोस को कौन लिख सकता है ? शैल ? शैल के साथ मनिला का थोड़ी देर का परिचय ज़रूर हुआ था। उस दिन, वही जिस दिन दोनों को गाड़ी में छोड़कर दवा लेने गया था। उसी बीच कुछ हो गया क्या ? फिर उसके ख़िलाफ़ लिखने को है ही क्या ?

याद आया। उस दिन दवा खरीदने के बाद एक ही गाड़ी में हॉस्पिटल लौटते समय शैल एक शब्द भी नहीं बोली। दोनों ने पूरा रास्ता चुप रहकर काटा। और बात करने लायक भी तो कुछ नहीं था। कहता भी तो क्या ? मास्टर साहब बीमार हैं। थोड़ी-थोड़ी देर बाद आँखें खोलते और कहते—'मैं अच्छा हो गया हूँ। अब और यहाँ नहीं रहूँगा।'

कहकर आँखें फिर बन्द कर लेते।

नर्स, डॉक्टर सभी पास खड़े रहते। नर्स रात-दिन सेवा करती। सभी कहते, "अजब पेशेन्ट है !"

पेशेन्ट अजीब ही तो था। यहाँ जो लोग आते, वे सभी डॉक्टर और

नर्स सभी को बड़ी तकलीफ़ देते। इस मरीज़ को तो हमेशा यही चिन्ता रहती थी कि नर्स को तकलीफ़ होगी। नर्स से कहते, "तुम्हें और परेशान होने की ज़रूरत नहीं है, बेटी। तुम जाकर सो जाओ।"

केदार बाबू पूछते, "तुम्हें कितने रुपये मिलते हैं ?"

जो सुनता हैरान रह जाता।

"अरे बेटी, तुम्हें परेशानी होगी ! मेरी वजह से तुम्हें बड़ी तकलीफ़ हो रही है।"

नर्स कहती, "आपको इन सब बातों के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है। आपके ठीक हो जाने पर हम लोगों को ख़ुशी होगी।"

केदार बाबू कहते, "मैं ही कैसे पड़ा रह सकता हूँ, बेटी ! मेरी भतीजी घर पर अकेली होगी। यहाँ इस तरह कब तक पड़े रह सकता हूँ ! और भी कितने ही काम हैं, बेटी ! मैं अगर ज़्यादा दिन यहाँ रहा तो मेरे सब-के-सब छात्र आवारागर्दी करते फिरेंगे। कोई भी नहीं पढ़ेगा।"

फिर ज़रा रुककर कहते, "और वह जो लड़का मुझे सुबह-शाम देखने आता है, वह मेरा सबसे अच्छा छात्र है। समझी, बेटी ! दो हज़ार रुपये महीना कमा रहा है। मन लगाकर पढ़ा है। अच्छी तनख़्वाह नहीं मिलेगी ? दो हज़ार रुपये महीना क्या छोटी-मोटी बात है, कहो न ? वह जो एक और लड़का मेरी भतीजी के साथ आता है, उसके बाप की तनख़्वाह एक हज़ार रुपये माहवार है।"

नर्स कहती, "आप ज़्यादा बात न करिये। सो जाइये।"

केदार बाबू कहते, "मुझे नींद नहीं आयेगी, बेटी ! लड़कों की वजह से नींद नहीं आती। इम्तहान सिर पर हैं।"

केदार बाबू जब किसी भी तरह नहीं सोते तो नर्स उन्हें नींद की गोली खिलाकर सुला देती। केदार बाबू तब सो जाते। सिर पर लड़कों की चिन्ता का बोझ लिए वह आदमी जैसे शिशु बन जाता। मुँह से और शब्द नहीं निकलते।

सदाव्रत के आने पर नर्स कहती, "यह बात बहुत करते हैं। इतनी बात करने के बाद किसी को नींद आ सकती है ?"

सदाव्रत ने कहा, "यह हमेशा ही ज़रा ज़्यादा बोलते हैं।"

"आपके बारे में ही ज़्यादा बातें करते हैं। कहते हैं कि आप ही उनके सबसे अच्छे विद्यार्थी हैं। अच्छा, इनकी पत्नी नहीं हैं ?"

"नहीं, इन्होंने शादी नहीं की। इस तरह के लोग संसार में कभी-कभी

ही आते हैं। सर पी० सी० राय को देखा था और दूसरे ये हैं। ज़रा अच्छी तरह देखभाल करियेगा। इनका कोई नुक़सान होने पर मैं अपना नुक़सान समझूँगा।"

उस दिन दवा लेकर लौटते समय सदाव्रत ने सोचा था, शैल वे ही सब बातें फिर उठायेगी। लेकिन वह रास्ते-भर चुपचाप बैठी रही। एक शब्द भी नहीं बोली। जो सदाव्रत रात-दिन तरह-तरह की समस्याओं के कारण परेशान था, शायद उसे और परेशान नहीं करना चाहती थी। इसलिए बात नहीं की। इतना ही नहीं, अस्पताल लौटने के बाद भी कोई बात नहीं की।

केदार बाबू को उस समय होश था। सदाव्रत को देखते ही बोले, "सदाव्रत, अब मैं काफ़ी अच्छा हो गया हूँ।"

सदाव्रत ने कहा, "अच्छा आपको होना ही होगा, मास्टर साहब ! आपके बिना ठीक हुए दुनिया चलेगी कैसे ? मैं जैसे भी होगा आपको अच्छा कर ही लूँगा।"

केदार बाबू के मुँह पर एक हल्की-सी मुसकराहट फूट उठती। कहते, "ठीक कह रहे हो, सदाव्रत ! नहीं तो इम्तहान में सभी फेल हो जायेंगे।"

"नहीं, मास्टर साहब ! इसलिए नहीं ! जिस जंगल में शेर नहीं, वह जंगल, जंगल ही नहीं है। चारों ओर इतने जानवर हैं, पशुराज के न होने पर जो जिसकी मर्ज़ी में आयेगा, करेगा।"

केदार बाबू जैसे फिर सोच में पड़ गये। बोले, "ऐसी बात है क्या ? आजकल क्या हर कोई अपने मन-मुताबिक कर रहा है ?"

सदाव्रत ने कहा, "सर पी० सी० राय के बाद आपको छोड़कर देश में और है ही कौन ?"

"लेकिन मेरी बात तो कोई मानता ही नहीं, सदाव्रत ! मैं तो खाली बकवास करता हूँ। मैं क्या पी० सी० राय हूँ ?"

"पी० सी० राय की बात भी मास्टर साहब, किसी ने नहीं सुनी। उनकी ज़िन्दगी में किसी ने भी उनकी बात नहीं मानी। लेकिन वह थे, इसी से दुनिया ज़रा आगे बढ़ पायी। स्वामी विवेकानन्द की बात ही तब किसने सुनी थी ? और आज हर किसी की ज़बान पर स्वामी विवेकानन्द और पी० सी० राय की बातें हैं। स्कूलों में कम-से-कम उनकी जीवनी तो पढ़ाई जाती है।"

केदार बाबू ने नर्स की ओर देखा। कहा, "देखती हो बेटी, सदाव्रत

मुझे कितना चाहता है। मेरे लिए कितना पैसा खर्च कर रहा है। कल रात को तुम्हें बतलाया था, याद है न !"

इतनी बातें हुईं। सब-कुछ हुआ। लेकिन शैल के मुँह से इस बीच एक शब्द भी नहीं निकला। मन्मथ ने भी बात नहीं की। बाद में दवा नर्स के हाथ में देकर सदाव्रत हमेशा की तरह चला गया। और सिर्फ़ उसी दिन क्या ? हर दिन ही तो शाम के समय मन्मथ के साथ शैल अस्पताल आती और वहाँ उससे मुलाक़ात होती। लेकिन शैल ने किसी भी दिन तो मुँह नहीं खोला। कोई शिकायत-शिकवा, कुछ भी तो नहीं ! केदार बाबू धीरे-धीरे अच्छे हो रहे थे, इसलिए सभी को आशा थी। सदाव्रत को सभी श्रद्धा और स्नेह की नज़रों से देखते। सदाव्रत भी रोज़ अपनी गाड़ी लेकर आता। आकर बुख़ार का चार्ट देखता। केदार बाबू के साथ दो-चार बातें करता। नर्स से एक-आध सवाल करता। फिर डॉक्टर के साथ मुलाक़ात करके चला जाता क्लब ! सुबह से ऑफ़िस का काम, फिर हॉस्पिटल और फिर क्लब। इसी तरह दिन गुज़र रहे थे। इतने दिनों में शैल ने एक बार भी मुँह नहीं खोला।

सदाव्रत को लगता कि शायद वह इतना रुपया खर्च कर रहा है, इसलिए शैल-जैसी तुनुक-मिज़ाज़ लड़की भी चुप हो गयी है। लेकिन शैल को क्या पता नहीं कि अगर केदार बाबू बीमार नहीं होते तो वह यह नौकरी छोड़ ही देता। नहीं तो खर्च कैसे चलता ? केदार बाबू का इलाज कैसे होता ? बाग़बाज़ार के मकान से वह अपनी ज़िम्मेदारी पर केदार बाबू को यहाँ लाया था। इसलिए मन-ही-मन उसे भी ज़रा डर था। अगर कुछ ऐसा-वैसा हो जाता तो शैल को क्या मुँह दिखला पाता ?

काफ़ी रात हो गयी थी। एल्गिन रोड पर आकर हॉर्न बजाते ही दरवान ने दरवाज़ा खोल दिया। गाड़ी को पोर्टिको में पार्क कर सदाव्रत फटाफट सीढ़ियाँ चढ़ता ऊपर पहुँचा।

□ □ □

उस दिन भी बस में शोरगुल होने लगा। बस जिस समय कॉलेज स्ट्रीट के मोड़ के पास पहुँची तब अचानक एक आदमी चिल्लाने लगा, "अरे भाई, मेरा मनीबैग कहाँ गया ?"

देखते-देखते चलती बस के अन्दर करीब सौ आदमी आँखें फाड़े खड़े थे। सभी ने अपने-अपने पॉकेट में हाथ डालकर देखा। सभी ने साँप की तरह फन खड़ा किये सतर्क दृष्टि से चारों ओर सिर घुमाकर देख लिया।

चोर-गिरहकट-पॉकेटमार कहीं पास में ही है।

"वैग में कितना रुपया था, साहब ?"

"सचमुच खो गया है क्या ? अपने पॉकेट वगैरह ज़रा अच्छी तरह से देखिये न !"

वेचारा हर पॉकेट अच्छी तरह से देखने लगा। जैसे एकदम पागल हो गया था।

पीछे से किसी ने कहा, "ज़रा पहले जो लड़की उतरी थी, वह आपकी कौन है ?"

"लड़की ?मेरे साथ लड़की कहाँ से आयी, जनाब? मैं तो अकेला हूँ।"

"लेकिन वह लड़की आपकी जेव में हाथ डाल रही थी। मैंने देखा था।"

अजीब तमाशा है ! सब कोई हैरान रह गये। उत्सुक हो गये। सच ही तो एक लड़की लेडीज़-सीट पर बैठी थी। वह आदमी 'रॉड' पकड़े खड़ा था और वह लड़की उसके पास ही बैठी थी। साधारण मध्यम श्रेणी की लगती थी। क़रीव-क़रीव सभी की नज़र पड़ी थी। सोचा था, उस आदमी की ही कोई रिश्तेदार होगी। इसीलिए शुरू-शुरू में किसी को सन्देह नहीं हुआ। सिर्फ़ एक ने देखा था कि लड़की ने उस आदमी की जेब में हाथ डाला। इससे ज़्यादा कुछ नहीं। लेकिन लड़की दो स्टॉपेज पहले ही उतर गयी। लड़की के अकेले उतर जाने पर उस आदमी को ज़रा अजीव-अजीब लगा था। लेकिन वह चुप रहा। कुछ बोला नहीं।

जिसका मनीवैग खोया था वह आदमी उतर रहा था।

"अरे, अब क्या वह बैठी होगी, साहब ! इतनी देर में कहाँ-से-कहाँ पहुँच चुकी होगी।"

लेकिन फिर भी वह आदमी उतर गया। सत्तासी रुपये क्या कम होते हैं ! सत्तासी रुपये में दो मन चावल खरीदा जा सकता है। बच्चों को भर-पेट दूध मिल सकता है। बहुत कुछ किया जा सकता है। बस में खड़े-लटके यात्री ये ही बातें करने लगे। लेकिन बस तो किसी के लिए रुकती नहीं है। उस आदमी को उतारकर बस आगे बढ़ गयी।

बूड़ी जिस समय घर लौटी, शाम हो आयी थी। कहाँ कॉलेज-स्ट्रीट' कहाँ बहूबाज़ार ! कहाँ-कहाँ घूमती-घूमती आख़िर थककर घर आ गयी। अपने मुहल्ले में आकर उसने साड़ी को ठीक कर लिया। लेकिन घर में घुसते ही जैसे चौंक पड़ी। दीदी घर में ?

कुन्ती बिस्तरे पर लेटी थी।

"क्यों री, इतनी देर से कहाँ थी ? हाथ में क्या है ? देखूँ !"

बूड़ी के हाथ में एक पैकेट था। सच बात कहने में कैसा एक डर-सा लग रहा था।

"क्या है उसमें ? देखूँ ? खोल !"

कुन्ती ने पैकेट हाथ से ले लिया। एक लिपस्टिक, पाउडर-केस और एक सेंट की शीशी, साबुन, और भी कितनी ही छोटी-मोटी चीज़ें।

कुन्ती ने पूछा, "यह सब कहाँ से खरीदा ? पैसे कहाँ से मिले ?"

"खरीदा नहीं, एक ने दिया है।"

"किसने दिया ?"

"मेरी क्लास की एक लड़की ने !"

"क्लास की एक लड़की ने तुझे दिया और तूने ले लिया ? उसे देने को तू ही मिली ? उसका नाम क्या है ?"

"वासन्ती !"

"उसने तुझे क्यों दिया ? काफ़ी बड़े आदमी हैं क्या ?"

बूड़ी दीदी के सामने खड़ी थर-थर काँप रही थी। बोली, "हाँ, दीदी, वे लोग काफ़ी पैसेवाले हैं। दूकान पर जाकर खुद के लिए भी खरीदा। मेरे लिए भी लिया। मैंने मना किया, दूसरे की दी चीज़ मैं क्यों लेने लगी ! उसने ज़बरदस्ती मेरे हाथ में ठूँस दी।"

कुन्ती बूड़ी के चेहरे की ओर ताकने लगी। माँ-जायी छोटी बहन ! वह अपनी छोटी बहन को अच्छी तरह से खिला-पिला भी नहीं सकती। बल्कि उस दिन कितनी बुरी तरह से मारा था ! माथे का दाग़ अभी भी है। शादी के समय जो लोग देखने आयेंगे, शायद पूछें, "माथे पर यह दाग़ कैसा है ?"

कुन्ती ने पूछा, "हाँ री, तेरे सिर में अब दर्द तो नहीं होता न ?"

कपड़े बदलकर बूड़ी उस समय पढ़ने की तैयारी कर रही थी। बोली, "नहीं, अब दर्द नहीं होता।"

"हाँ री, तुझे माँ की याद आती है ?"

माँ ?

इतने दिन बाद अचानक दीदी ने माँ की बात क्यों उठायी ! बूड़ी की समझ में नहीं आ रहा था। आजकल दुनिया में इतनी देखने काबिल, सोचने काबिल और मज़े करने लायक चीज़ें हैं कि उनके बीच माँ-बाप की याद

किसे रहती है ? याद रखने लायक समय ही किसके पास होता है ?

"पता है, मैं जब छोटी थी सारा दिन बाहर घूमा करती थी। तब घर में माँ बैठी-बैठी मेरे लिए परेशान हुआ करती थी। तब मैं माँ की परवाह नहीं करती थी। अब प्रायः ही माँ की याद आती है।"

बूड़ी सुनती रहती।

"कभी-कभी लगता है, आज माँ होती तो कितना अच्छा होता! आज अगर माँ ज़िन्दा होती तो मुझे तेरी चिन्ता नहीं होती। मैं पैसा कमाती और तू सारे दिन पढ़ाई-लिखाई लिये रहती। तुझे खाना नहीं बनाना होता। तब खूब अच्छा होता न !"

बूड़ी कुछ बोली नहीं। उसे बड़ा अजीब लग रहा था। दीदी को आज हुआ क्या ? उसके साथ इस तरह तो बात नहीं करती।

अचानक बूड़ी ने सिर उठाकर पूछा, "आज तुम बाहर क्यों नहीं गयीं ? शायद कोई प्ले नहीं है ?"

कुन्ती तब तक आँख बन्द कर चुकी थी। आँखें बन्द किये पड़ी-पड़ी न जाने क्या सोचने लगी। बूड़ी अपनी दीदी की ओर देखने लगी। सजने पर दीदी काफ़ी सुन्दर दीखती थी। आज सजी क्यों नहीं ? आज हाथ-मुँह नहीं धोया, चोटी नहीं की, साड़ी तक नहीं बदली ! इतने दिन बाद अचानक दीदी का ध्यान आया। दीदी को क्या हुआ ?

"शान्ति !"

बाहर से मास्टरनी की आवाज़ सुनकर बूड़ी उठ खड़ी हुई। "ओह, बहनजी पढ़ाने आ गयी हैं।"

मास्टरनी अन्दर आकर चौंक उठी।

"यह क्या ? आप आज बाहर नहीं गयीं ! आज शायद आपका प्ले नहीं है ?"

कुन्ती जैसे पड़ी थी, वैसे ही पड़ी रही। बोली, "आज तबीयत कुछ ठीक नहीं है। बूड़ी की पढ़ाई-लिखाई कैसी चल रही है ? आपके ऊपर ही छोड़कर निश्चिन्त हूँ। आप ज़रा अच्छी तरह देखियेगा।"

चालीस रुपये महीना की मास्टरनी। महीने की पहली तारीख को ही छात्रा के हाथ से ले जाती। आधे दिनों छात्रा घर पर मिलती ही नहीं थी। कोर्स पूरा न होने पर भी स्कूल के इम्तहान में पास कराकर, पहले से क्वेश्चन बतलाकर ट्यूशन बनाये रखना था। इम्तहान में अगर बूड़ी फ़ेल हो तो उसे रखने से फायदा! नहीं तो शायद कोचिंग क्लास में भर्ती होगी।

तब ? तब कौन रुपये देगा ? इसी तरह करते-करते बूड़ी क्लास फ़ोर से फ़ाइव में आ गयी, फिर फ़ाइव से क्लास सिक्स में। इसी तरह धीरे-धीरे क्लास 'टेन' में आ पहुँची है। इम्तहान से पहले बहनजी सारे क्वेश्चन बतला देती। 'रिज़ल्ट' में ज़ीरो के सामने कभी चार तो कभी पाँच बैठा देती। वही रिज़ल्ट लाकर बूड़ी अपनी दीदी को दिखलाती।

दीदी कहती, "वाह, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ! इसी तरह मन लगाकर पढ़।"

फिर कहती, "बूड़ी, पता है, मेरा तो कुछ भी नहीं हो पाया। अगर तू कुछ कर लेगी तो मुझे इसी में खुशी होगी। तेरे लिए ही तो इतनी मेहनत करती हूँ। नहीं तो गाल और होंठों को रंगकर नाचना-कूदना क्या मुझे अच्छा लगता है !"

□ □ □

सीढ़ी पार कर ऊपर आते ही मिस्टर बोस का 'पार्लर' है। वहीं बैठकर साधारणतः मिस्टर बोस सुबह अखबार की न्यूज़ सुनते हैं। विज़िटरों के साथ मुलाक़ात करते हैं। दिल्ली से 'ट्रंक' मिलाते हैं। सदाव्रत ने वहाँ भी झाँककर देखा। वहाँ से कॉरीडोर पार कर अन्दर 'इन्डोर' के लिए जाना होता है। आफ्टर डिनर मिस्टर बोस वहीं रहते हैं। सिर के ऊपर बिजली के दो झाड़ झूल रहे थे। एक-एक झाड़ में सोलह-सोलह बल्ब और दो-चार कट-ग्लास के वाल-लैम्प। फ़्लोर के ऊपर कश्मीरी कार्पेट। छः सोफा, छः कोच और उत्तर की ओर दीवार में भालू की खाल लटकी थी। भालू अमरकण्टक के जंगल का था। नाइन्टीन-फोर्टी-फाइव में बारह बोर की राइफ़ल से उसका शिकार किया था। यह बात चमड़े के नीचे क़ीमती फ्रेम में मढ़ी लटकी थी। किसी को अगर जानना हो तो जान ले।

यहीं इसी हॉल में ही डिनर के बाद मिस्टर बोस, मिसेज़ बोस, मिस बोस रोज़ थोड़ी देर के लिए बैठते हैं। किसी-किसी दिन इच्छा हुई तो थोड़ा ड्रिंक करते हैं। कभी 'ईल्स वीकली' पढ़ते हैं, कभी 'रीडर्स डाइजेस्ट'। सोसाइटी की बातें होतीं, क्लब की बातें होतीं, टर्फ़ क्लब के घोड़ों की बातें होतीं। और होती पॉलिटिक्स। यानी कि नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद, कृष्ण मेनन, जगजीवनराम या विजयलक्ष्मी पंडित। मिसेज बोस की पॉलिटिक्स की दौड़ यहीं तक थी।

इसी कमरे में बैठकर सदाव्रत ने कितनी ही बार ये ही बातें सुनी हैं। यानी कि सुननी पड़ीं। बातों में भाग लेना हुआ है। मिसेज़ बोस खयाली

औरत हैं। अगले शनिवार किस घोड़े पर बाज़ी लगायेंगी यह सजेशन भी माँगतीं। लेकिन सदाव्रत किसी भी तरह मिसेज़ बोस की मदद नहीं कर पाता।

शुरू में तो मिसेज़ बोस को आश्चर्य हुआ, "क्यों ? ज़िन्दगी में कभी रेस नहीं खेली ?'

सदाव्रत ने कहा, "नहीं !"

"हाऊ स्ट्रेंज। तुम्हें मालूम होगा या नहीं, बचपन में टेक्स्ट की एक किताब में पढ़ा था—'हॉर्स इज़ ए नोबल एनिमल।' और रेसिंग हॉर्स इज़ ए नोबलर एनिमल !"

मनिला कहती, "सदाव्रत, पता है माँ हॉर्स के बारे में एकदम अनलकी हैं। सिर्फ़ किटी में लकी हैं।"

माँ-बाप और बेटी में यही बहस चलती। किसने किस हॉर्स पर बाज़ी लगायी, किसे किस घोड़े पर ट्रिपल-टोट मिला, कब कौन-सा घोड़ा अपसेट हो गया, इन बातों की लिस्ट बाप-बेटी और माँ को मुँहज़बानी याद थी। सदाव्रत के पास चुपचाप बैठे रहने के अलावा कोई चारा नहीं था। वक़्त होने पर सदाव्रत उठता। कॉरीडोर पार कर सीढ़ी तक आकर मनिला अचानक सदाव्रत का मुँह दोनों हाथों में लेकर 'किस' करती। फिर सदाव्रत की ओर जैसे दो शब्द फेंक देती, "बाई-बाई !"

इसी का नाम एंगेजमेंट है। इसी को कोर्टशिप कहते हैं। कुछ महीनों से सदाव्रत इसी तरह चला रहा था। लेकिन अचानक जैसे किसी ने तालाब में पत्थर फेंक दिया।

सदाव्रत ने हॉल में आकर देखा। उस दिन भी मिस्टर बोस, मिसेज़ बोस और मिस बोस बैठी हुई हैं। सभी कोई उत्तेजित थे। मिस्टर बोस आज बड़ी जल्दी-जल्दी चुरुट से कश ले रहे थे।

सदाव्रत को देखते ही सीधे होकर बैठे।

"हियर इज़ ही !"

सदाव्रत ने मिस बोस की ओर भी देखा। रोते-रोते मुँह, आँख और भौंहों पर का कॉस्मेटिक्स धुल-पुँछ गया था। मिसेज़ बोस भी उत्तेजित थीं। बोलीं, "कम हियर, सदाव्रत !"

मिस्टर बोस के सामने ट्रे में एक चिट्ठी पड़ी थी। चिट्ठी उठाकर सदाव्रत की ओर बढ़ाते हुए मिस्टर बोस ने कहा, "यह देखो सदाव्रत, दिस इज़ द लेटर !"

एक लिफ़ाफ़ा था। लिफ़ाफ़े के ऊपर मनिला बोस का नाम और पता लिखा था। बंगला में लिखे टेढ़े-मेढ़े अक्षर। लाइनें भी सीधी नहीं थीं। उसी के अन्दर नोटबुक से फाड़े दो पेजों में लिखी चिट्ठी थी। वह भी वैसी ही टेढ़ी-मेढ़ी। व्याकरण और स्पेलिंग कुछ भी ठीक नहीं था। सैकड़ों ग़लतियों से भरा।

"तुम कह सकते हो यह किसकी लिखी चिट्ठी है? क्यों लिखी है?"

सदाव्रत ध्यान से चिट्ठी पढ़ रहा था।

"और तुम्हारे अगेन्स्ट जो-जो लिखा है, आर दीज़ फैक्ट्स?"

सदाव्रत ने सिर उठाया। उसे गुस्सा भी आया। वह चिट्ठी पढ़ने के बाद गुस्सा करना ज़रा भी अस्वाभाविक नहीं था। लेकिन सदाव्रत का गुस्सा चिट्ठी के लिखनेवाले के ऊपर उतना नहीं था, जितना मिस्टर बोस के ऊपर था।

मिसेज़ बोस ने कहा, "मैंने भी पढ़ा है, इट इज़ ए डैम सिली लेटर, रियली सिली!"

ज़रा और होने पर ही शायद मनिला बोस फिर से रोना शुरू कर देती। मनिला ने कहा, "लेकिन मुझे क्यों बिट्रे किया, सदाव्रत? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? ह्वाट हैव आई डन टु यू?"

मिस्टर बोस ने कहा, "तुम एक बात का जवाब दो, सदाव्रत! इस चिट्ठी के पीछे कोई ट्रुथ है या नहीं?"

सदाव्रत ने कहा, "आप क्या चिट्ठी में लिखी बातों का विश्वास करते हैं?"

"बट हू इज़ द राइटर? हूम डू यू सस्पेक्ट? तुम्हें किस पर सन्देह है, बोलो? उत्तर दो!" मि० बोस ने पूछा।

मनिला बोस ने कहा, "डैडी, मैंने तुमसे कहा था न, सदाव्रत ड्रिंक नहीं करता। किटी नहीं खेलता। वह कैसे नॉर्मल हो सकता है?"

मिसेज़ बोस ने कहा, "लेकिन सदाव्रत, तुम्हें देखकर तो ऐसा नहीं लगता। यू लुक क्वाइट ए जेंटलमैन!"

"तुम्हें किस पर सन्देह है? जवाब दो!"

सदाव्रत ने कहा, "मुझे किसी पर सन्देह नहीं है!"

"सन्देह नहीं है? तो किसने चिट्ठी लिखी? घोस्ट? भूत ने लिखी है? बोलो, जवाब दो!"

"आपने क्या मुझे यहाँ सफ़ाई देने के लिए बुलाया है ?"

"सफ़ाई के लिए नहीं तो किसलिए ? तुम मनिला से शादी करोगे, उसके भले-बुरे के लिए हम लोगों को नहीं सोचना होगा ? मेरी क्या कोई रेस्पॉन्सिबिलिटी नहीं है ?"

"आपने तो मुझे टेस्ट कर ही लिया है ! मैं कम्युनिस्ट हूँ या कांग्रेसी, सभी कुछ तो देख लिया है !"

"लेकिन तुम्हारा मॉरल कैरेक्टर ?"

सदाव्रत भी अपने को और सम्हाल नहीं पाया। बोला, "आपका सन-इन-लॉ होने के लिए क्या मुझे कैरेक्टर सर्टिफ़िकेट भी सबमिट करना होगा ? आप मुझे दो हज़ार रुपये दे रहे हैं, वह मेरे काम के लिए या मेरे 'मॉरल कैरेक्टर' के लिए ? किसलिए, कहिये ?"

"लेकिन तुम ज़िन्दगी-भर लड़कियों के साथ रहे हो। उन्हें लेकर बग़ीचों और बंगलों में गये हो। उनके साथ ऐडल्ट्री की है। इसके बाद भी क्या तुम पर भरोसा किया जा सकता है ?"

"अगर विश्वास नहीं कर पा रहे हैं तो मुझे डिस्चार्ज कर दीजिए।" सदाव्रत ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"लेकिन तुमने यह सब पहले से क्यों नहीं बतलाया ?"

मनिला बोस ने कहा, "डैडी, मैंने देखा है। सदाव्रत हैगर्ड, पुअर और अन्कल्चर्ड लेडीज़ के साथ घूमता है।" सदाव्रत जैसे पहले ही सब-कुछ कह चुका था। अब इस बारे में कहने को उसके पास कुछ भी नहीं था। यहाँ से निकलकर ही उसे शान्ति मिलेगी।

"क्या हुआ, जवाब दो ?"

"मुझे कुछ नहीं कहना !"

"इसका मतलब, चिट्ठी में जो कुछ लिखा है, सच है ? एव्री थिंग ट्रू ?"

"मैं यह भी नहीं कहूँगा। इससे भी बुरे और नीच काम करनेवाले लोग आपके समाज में सिर ऊँचा किये ठाठ के साथ घूमते हैं। उन लोगों की आप रेस्पेक्ट करते हैं। उन्हें इज़्ज़त बख़्शते हैं। जो ऑफ़ेंस आप सभी लोग कर रहे हैं, उसी के बारे में कैफ़ियत देने को मुझे बुलाया है, मुझे आश्चर्य तो इस बात का हो रहा है !"

"इसका मतलब ?"

सदाव्रत ने कहा, "अब मैं मनिला से शादी करूँगा या नहीं, पहले तो

यही ठीक करूँ !"

इस पर जैसे मिस्टर बोस का सारा नशा हिरन हो गया। सदाव्रत बोलता ही जा रहा था। मिस्टर बोस ने उठकर खड़े होते हुए कहा, "तुम बैठो, सदाव्रत ! टेक योर सीट ! तुम एक्साइटेड हो गये हो। सुनो, ज़रा-सी बात के लिए इतना एक्साइटेड क्यों हो रहे हो ? बैठो, बैठो !"

मिस्टर बोस ने ज़बर्दस्ती सदाव्रत को बैठा दिया।

बोले, "मैंने तुमसे कैफ़ियत तो माँगी नहीं थी। मनिला का पता है। वह रोने-धोने लगी, इसी से तुम्हें बुलाया। तुम्हें पता ही है, मनिला के रोने पर मुझे रात को नींद नहीं आती। मुझे स्लीपिंग पिल लेनी होती है।"

ज़रा देर रुककर फिर बोले, "मिस्टर गुप्त देश के कामों में फँसे रहते हैं। मैं फैक्टरी के झमेलों में फँसा हूँ। तुम्हारे फ़ादर की सारी प्रॉपर्टी, मेरी सारी प्रॉपर्टी, सब-कुछ ही तो तुम 'इनहेरिट' करोगे—तब? तुम्हारे में अगर तब इन्टेग्रिटी नहीं होगी तो इस सब को किस तरह हैंडिल करोगे ?"

फिर एक कश चुरुट का लगाया। धुआँ छोड़कर फिर कहने लगे, "जब तक मिस्टर गुप्त हैं, और जब तक मैं हूँ, तब तक तुम्हें चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं है। लेकिन धीरे-धीरे जिस तरह हर ओर कम्युनिस्टिक एलिमेंट फ़ोर्स गैदर कर रहा है, तुम्हारा खयाल है कि तुम बाद में भी इसी तरह बिजनेस चला पाओगे ? इसीलिए तो तुम्हें ये सारे लेसन देने के लिए बीच-बीच में बुलाता हूँ, डाँटता भी हूँ, इट इज फॉर योर गुड। तुम्हारे भी अच्छे के लिए। मनिला के भी अच्छे के लिए। इससे तुम इतने नाराज़ क्यों होते हो ?"

सदाव्रत के मन का गुबार जैसे थोड़ा कम होने लगा।

मिस्टर बोस ने कहा, "ज़रा-सी 'रम' लोगे ? या एक पैग 'जिन' ?"

सदाव्रत उठ खड़ा हुआ। बोला, "मुझे माफ़ करिये, मिस्टर बोस, मैं कल से ऑफ़िस नहीं आ पाऊँगा, मैं कल ही आपके पास रेज़िग्नेशन भेज दूँगा।"

कहकर और नहीं रुका। सीधे कॉरीडोर की ओर पाँव बढ़ा दिये।

□ □ □

सन् १९०० के बाद क़रीब पचास साल गुज़र जाने पर भी कलकत्ता के आधे से अधिक आदमी जान ही नहीं पाये कि राजा कौन है, उसका नाम क्या है, कहाँ रहता है। जिन्होंने इतिहास पढ़ा नहीं उन्हें बतलाना मुश्किल

है कि—अरे भाई, यह इंडियन राज है ! जो लोग जानते हैं सो जानते हैं। लेकिन उनकी गिनती बहुत कम है। दूसरे कुछ भी फ़र्क नहीं देख पाते। अगर कोई कहता है कि इंडिया के प्रेसिडेंट आजकल लार्ड लिनलिथगो हैं, वे लोग वह भी मान लेंगे। अगर पूछा जाय कि यह बौद्ध-युग है या मुग़ल-युग है या ब्रिटिश-युग है, वे लोग ठीक से वह भी नहीं बतला पायेंगे। राजा कोई भी हो, उससे हमारा क्या आता-जाता है ! हम लोग जनाब अदरक के व्यापारी हैं। हमें जहाज़ की बात पूछकर क्या करना है ? राजा लोग क्या हमें राजा बना देंगे ? हम लोगों की तकलीफ़ें हमारे साथ हैं। राजा लोग हमारी तकलीफ़ों को क्या समझें ! जो राजा है वह तो राजमहल में रहता है। बौद्ध-युग में राजा रामपाल ने वही किया, मुग़ल-युग में नवाब अलीवर्दी खाँ ने भी वही किया। ब्रिटिश-युग में लार्ड लिनलिथगो ने भी यही किया। आज जो लोग राज कर रहे हैं वे लोग भी वही कर रहे हैं, और करेंगे भी वही। उन लोगों का कहना है कि यही नियम है। हमेशा से यही हो रहा है। बच्चा जिस तरह हमेशा दूध पीता है, गाय जैसे हमेशा घास खाती है, राजा भी हमेशा घूस खाते हैं। कोई क्षमता की घूस, तो कोई रुपये की, बात एक ही है। हमने वोट देकर तुम्हें राजा बनाया है, राजा बनकर तुम हमें आँखें दिखलाओ और ज़रूरत पड़ने पर रोज़ सुबह अख़बार में दो पेजों का उपदेश दो। तुम्हारी ड्यूटी इतनी ही है !

शिवप्रसाद बाबू कहते, "एजूकेशन के बिना आदमी कुछ भी नहीं हो सकता।"

बूढ़े अविनाश बाबू कहते, "आपने ठीक कहा।"

शिवप्रसाद बाबू कहते, "मेरे ठीक कहने से तो काम नहीं चलेगा। बातें तो काफ़ी कही जा चुकी हैं, अब काम करके दिखलाना होगा। उस दिन डॉक्टर राय से भी मैंने यही कहा। मैंने कहा—पहले पढ़े-लिखे लोगों की संख्या के लिये बंगाल का अव्वल नम्बर था। यह ब्रिटिश हुकूमत की बात थी। बाद में थर्ड पोज़ीशन रह गयी। और आजकल क्या पोज़ीशन है, पता है ?"

बूढ़े दल के सभी लोग उस दिन मौजूद थे।

पूछा, "अरे साहब, हमें क्या पता, कितना नम्बर है। इतनी बातें किसे मालूम होती हैं। अपने ही झंझटों को देखने का वक़्त नहीं मिलता, उस पर देश के झमेले।"

"अब पोज़ीशन सेवेन्थ है !"

"हैं !"

"आप लोग हैं कहाँ ? कमिंग सेशन में हो सकता है, बंगाल की पोज़ीशन टेन्थ हो गयी है। एक वक़्त था, जब इसी बंगाल से दूसरे सब राज्यों में हम लोग मजिस्ट्रेट, डॉक्टर, वकील, और तो और, क्लर्क तक सप्लाई करते थे। और भी पहले तो दूसरे प्रॉविन्सों में चावल तक हम ही लोग सप्लाई करते थे, और आज हमारे लड़के ही ऑल-इंडिया-सर्विस में स्टैन्ड नहीं कर पाते। अब हर बात में बंगाली लोग पिछड़े हुए हैं। कैबिनेट में एक भी बंगाली मिनिस्टर नहीं है। एक-दो हैं भी तो उनकी कोई वॉयस नहीं है। नेहरू की एक डाँट पर सिट्टी-पिट्टी भूल जाते हैं।"

"तब ?"

तब क्या किया जाये, सोचते-सोचते ही बूढ़े पैंशन-होल्डर परेशान होते। काफ़ी देर तक सोचने के बाद भी कोई तरकीब नहीं निकल पाती। सुबह से खा-पीकर दोपहर को एक नींद लेकर बूढ़े लोग शाम को थोड़ा-सा वक़्त देश की चिन्ता में काटते। वैसे उनका दोष भी नहीं है। वे लोग ठहरे बूढ़े आदमी। अपनी सारी ताक़त ज़िन्दगी-भर गवर्नमेंट की नौकरी में ख़र्च कर डाली, अब और एनर्जी नहीं है। अब जैसे दूर से खड़े-खड़े ताकते और मन-ही-मन हाय-हाय करते। कहते, "अब देश गड्ढे में जायेगा।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "इसीलिए तो अखबार निकालने की सोच रहा हूँ।"

"निकालिये, निकालिये, साहब ! लोगों को ज़रा ठीक बातों का पता चले। हम लोग किस युग में जी रहे हैं, लोगों को ज़रा मालूम हो। देश का बड़ा उपकार होगा।"

शिवप्रसाद कहते, "देखें, क्या होता है। काफ़ी रुपयों की बात है न !"

अविनाश बाबू ने कहा, "ज़रा हम पैंशन-होल्डर लोगों के बारे में भी कुछ लिखिएगा। आज हम लोग बूढ़े हो गये हैं तो क्या कभी जवान थे ही नहीं ? या हम लोग टैक्स नहीं देते ?"

अधर बाबू ने कहा, "पंडित नेहरू आपके फ्रेंड हैं, इसलिए उन्हें छोड़ न दीजियेगा।"

"अरे साहब, मैं उस समय का ट्राइड पॉलिटीशियन हूँ। हम लोग कभी ब्रिटिश गवर्नमेंट के खिलाफ़ बोलने से नहीं चूके। इन लोगों की तो बात ही क्या है ?"

"लेकिन आप अखबार निकाल रहे हैं। देख लीजियेगा, फ़ौरन ही

आपका मुँह बन्द कर दिया जायेगा।"

"किस तरह ?"

"घूस देकर।"

"घूस ?"

अधर बाबू ने कहा, "जी हाँ। गवर्नमेंट आपको मोटी-मोटी रकमों के विज्ञापन देगी। स्टाफ की तनख़्वाह बढ़ा देने को कहेगी। आप कहेंगे पैसा नहीं है। तब आपका कागज़ का कोटा बढ़ा देगी। और क्या इतना ही ? आपको अमेरिका घुमा देगी, वेस्ट जर्मनी घुमा देगी, सारी दुनिया में मुफ्त में घूमने का इन्तज़ाम कर देगी। सिर्फ़ आप अकेले ही को नहीं, आपकी बीवी-बच्चे सभी को बिना पैसे प्लेन पर घुमा देगी। इसी का तो नाम है घूस !"

शिवप्रसाद बाबू मुसकराये। जानकारी-भरी मुसकराहट। बोले, "अगर ऐसा ही होता तो साहब मैं कभी का कैबिनेट मिनिस्टर हो गया होता। लेकिन मुझसे वह सब नहीं होगा। नेहरूजी ने कितनी ही बार मुझसे कहा—'गुप्ता, तुम हमारी कैबिनेट में आ जाओ।' मैंने कह दिया—'नेहरूजी, सच बात कहने के लिए कम-से-कम एक आदमी बाहर रहे, नहीं तो देश रसातल में चला जायेगा।' "

बातों-ही-बातों में अचानक बद्रीनाथ आ धमकता। तब जैसे सभी को होश आता। शिवप्रसाद बाबू का पूजा करने का समय हो गया। अब उठने की बारी है। शिवप्रसाद बाबू के साथ मुलाक़ात होना भी एक समस्या है। कभी दिल्ली, कभी इलाहाबाद, तो कभी आरामबाग़। सारी इंडिया में चरखी की तरह घूमते रहते हैं। इसी को जनाब पैट्रिअट कहते हैं। चाहते तो आज क्या नहीं हो सकते थे ! स्टेट-मिनिस्टर से लेकर कैबिनेट तक सब जगह पहुँचे हैं। फिर भी कोई लोभ नहीं, कोई मोह नहीं, एकदम अहंकार-रहित आदमी। दैत्य-कुल के प्रह्लाद हैं, प्रह्लाद !

सब लोगों के जाने के बाद शिवप्रसाद बाबू पूजा करने ही जा रहे थे, लेकिन अचानक एक बात याद आ गयी। घड़ी की ओर देखा। नौ बजे थे। यही ठीक वक्त है। इसी समय मिस्टर बोस डिनर के बाद पार्लर में आकर बैठते हैं।

टेलीफ़ोन का रिसीवर उठाकर शिवप्रसाद बाबू डायल करने लगे।

"हाँ, शायद आपको मालूम हो गया होगा, आपका कोलतार का परमिट निकल गया है।"

"मैनी थैंक्स, मिस्टर गुप्त ! आपके बिना बड़ी मुश्किल होती। चिट्ठी भेजने पर तो दिल्ली से कोई जवाब आता नहीं है, इसीलिए आपसे कहा। एनी हाऊ, काम हो गया, अच्छा ही हुआ।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "जो तकलीफ़ हो, आप मुझे बतलाइयेगा। मैं सब ठीक करा दूँगा।"

"लेकिन दिल्ली में इतने मिनिस्टर और इतने सेक्रेटरी, डिप्टी सेक्रेटरी हैं ! ये लोग आखिर क्या करते रहते हैं, इन्हें क्या चिट्ठी लिखने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती ?"

"समय मिलेगा कैसे ? मैंने सेक्रेटेरियेट में जाकर देखा है। सारे-के-सारे सेक्रेटरी मिनिस्टरों की बर्थ-डे सेलिब्रेट करने में लगे हैं।"

"बर्थ-डे सेलिब्रेशन माने ? जन्म-दिन ? जन्म-दिन का उत्सव ?"

"अरे हाँ साहब, बारह मिनिस्टर हैं। हरेक का बर्थ-डे सेलिब्रेट करना क्या आसान बात है ! आज अबुलक़लाम आज़ाद, कल जगजीवनराम तो परसों टी० टी० कृष्णमाचारी। साल में महीने तो होते हैं सिर्फ़ बारह। बारह मिनिस्टरों की बर्थ-डे-फ़ाइलें क्लियर करते-करते ही तो सारा साल गुज़र जाता है। बाकी काम होगा कब, आप ही कहिए ?"

"लेकिन इतने सारे एम० पी० किसलिए हैं ? वे लोग वहाँ बैठे-बैठे क्या करते हैं ?"

"वे लोग हाथ उठाते हैं।"

"लेकिन पब्लिक अगर इस बात को लेकर क्वेश्चन उठाये, तब क्या जवाब देंगे ?"

"लेकिन पब्लिक के माने तो अख़बार है। अख़बारों का मुँह तो उन्होंने पहले ही बन्द कर रखा है। अब अखबार पीपुल्स-वॉयस कहाँ रहे हैं ! अब तो प्रोप्राइटर-वॉयस रह गये हैं। अखबारों के मालिकों को तो विलायत-सिलायत घुमाकर हाथ में कर रखा है।"

"किस तरह ?"

"वह सब फिर बतलाऊँगा। इसीलिए तो आपसे कहा था, अखबार निकालने के लिए···हाँ, एक बात और। आजकल सदाव्रत कैसा काम कर रहा है ?"

"नाउ ही इज़ ऑलराइट ! यंगमैनों को जो होता है, वही हुआ, और क्या ! उस दिन मेरे पास रेजिग्नेशन भेजा था। उसे बुलाकर मैंने सब समझाया।"

"उसने क्या कहा ?"

मिस्टर बोस ने कहा, "मैंने तो आपसे पहले ही कहा था यह उम्र सबसे डेंजरस होती है। किसी तरह तीस क्रॉस करते ही डेंजर ख़त्म हो जाता है। तीस साल की उम्र तक ही कम्युनिज़्म की छूत लगने का डर रहता है। बाद में सब ठीक हो जाता है। आप कुछ भी फ़िक्र न करिये।"

शिवप्रसाद बाबू ने इस पर पूछा, "तब शादी के बारे में मिस बोस का क्या कहना है ?"

"नेक्स्ट मन्थ में ही शादी हो जाये। मनिला ने भी, देखता हूँ, काफ़ी एडजस्ट कर लिया है। पेगी को बहुत ज़्यादा चाहती थी न। आजकल पेगी को लेकर क्लब नहीं जाती।"

"वेरी गुड, वेरी गुड !"

शिवप्रसाद बाबू ने बेफ़िक्री की साँस ली। इसके बाद टेलीफ़ोन छोड़कर सीधे पूजा के कमरे में जा बैठे। पूजा के कमरे में मूर्ति वगैरह कुछ भी नहीं है। कार्पेट का आसन। सामने डिस्टेम्पर की हुई दीवार। बद्रीनाथ ने वहाँ आकर टेलीफ़ोन फिट कर दिया। सफ़ेद पत्थर की प्लेट में थोड़े-से फूल और ताँबे के मीना का काम किये पाट के अन्दर थोड़ा-सा गंगाजल। दो दिन पहले चन्दननगर के पास एक प्लॉट खरीदा था। दाम लगने पर बेच डाला। लेकिन उस समय क्या मालूम था कि क़ीमत इतनी बढ़ जायेगी। वहीं तो मोटर की फ़ैक्टरी बननेवाली है। तब तो कुछ दिन और रख लेते। थ्री हंड्रेड परसेंट उनका ख़ुद का प्रॉफ़िट रहता। बड़ा ख़राब इन्वेस्टमेंट हो गया। शिवप्रसाद बाबू का मन ख़राब हो गया। इतने रुपये ! क़रीब पचास हज़ार रुपये का नुक़सान हो गया था। लैण्ड डेवेलपमेंट सिंडीकेट बनने के बाद इतना बड़ा नुक़सान पहले कभी भी नहीं हुआ। हाथ में गंगाजल लिये शिवप्रसाद बाबू लॉस-प्रॉफ़िट-गेन का हिसाब लगाने लगे।

□ □ □

एक दिन दुनि बाबू को ही कुन्ती का पता ढूँढना पड़ा था। प्ले करने के लिए कुन्ती गुहा की ख़ुशामद करनी पड़ी थी। सिर्फ़ इतना ही नहीं, उसी कुन्ती के पास आकर दुनि बाबू को धरना देना पड़ा था। उस दिन तो कुन्ती ने उन्हें दुत्कार ही दिया।

कहा था, "चलिए-चलिए ! मैं किस बात की कैफ़ियत दूँ ? मुझे कौन गरज पड़ी है ?"

दुनि बाबू ने कहा था, "देखिये, मेरी नौकरी पर बन आयेगी !"

"आपकी नौकरी जाये तो मुझे क्या ? मैं आपके मिस्टर बोस का न दिया खाती हूँ, न पहनती हूँ । मैं कुछ भी नहीं कर पाऊँगी ।"

"लेकिन वह मुझे चार्ज-शीट दे देंगे !"

कुन्ती फिर भी राजी नहीं हुई। बोली, "हम लोग जनाब थियेटर-ड्रामा करती फिरती हैं। रुपये से ही हमें मतलब है। मुझे रुपये मिल चुके हैं। अब आपकी कम्पनी से मेरा क्या मतलब ? अगर फिर कभी आपका प्ले होगा, आप लोग अगर रुपया देंगे तो आऊँगी, नहीं तो कलकत्ता में थियेटर करानेवालों की क्या कमी है ?"

आख़िर दुनि बाबू को उस दिन खाली हाथ ही लौटना हुआ।

लेकिन भाग्य का फेर। उन्हीं दुनि बाबू से मिलने के लिए कुन्ती गुहा का मन छटपटाने लगा। उन्हीं दुनि बाबू के लिए कुन्ती गुहा सड़क पर, बस में, ट्राम पर इधर-उधर आँखें बिछाए रास्ता देखने लगी। एक बार और अगर मिल जाते तो अच्छा होता ! दुनि बाबू का घर कहाँ है, किस मुहल्ले में रहते हैं, उसे यह भी पता नहीं था। मधुगुप्त लेन के उस शंभू बाबू से मुलाक़ात होने पर भी काम चल सकता था। शिवप्रसाद गुप्त के लड़के को वह भी पहचानता है।

"ओ दादा, दादा !"

उस दिन डलहौजी स्क्वायर में सचमुच ही शंभू दीख गया।

"अरे, कुन्ती है न ! क्या हाल है ?"

शंभू कुन्ती को देखकर रुक गया।

"आपके क्लब का क्या हुआ ? 'मरी मिट्टी' स्टेज हुआ या नहीं ?"

शंभू ने जेब से सिगरेट निकालकर सुलगायी। फिर बोला, "हम लोगों का क्लब तो बन्द हो गया। अब जा कहाँ रही हो ? किसी खास काम से तो नहीं जा रहीं ? चलो न, ज़रा देर चाय की दूकान पर बैठें।"

एक अँधेरी चाय की दूकान के केबिन में जाकर दोनों बैठे।

"क्या खाओगी, बोलो ? आज ही तनख़्वाह मिली है। पास में रुपया है। देखो, शरमाना मत।"

काफ़ी कहने के बाद कुन्ती खाने के लिए राज़ी हुई। बोली, "शंभू दा, बड़ी मुश्किल में पड़ी हूँ।"

"क्यों, तुम लोगों को किस बात की तकलीफ़ है ? आजकल तुम लोग ही तो सुखी हो। मज़े से खाती-पीती हो और रंग लगाकर एक्टिंग करती हो ! और हम लोग खून-पसीना एक करके कमाया रुपया तुम्हारे पैरों पर

डाल देते हैं !"

कुन्ती ने कहा, "आप लोगों ने बाहरी साड़ी, ब्लाउज़, बॉडिस और रँगा हुआ चेहरा ही देखा। अन्दर झाँककर नहीं देखा।"

"अन्दर दिखलाने से ही देखेंगे ! अन्दर क्या तुम दिखलाती हो ?"

"आप लोग ही क्या किसी के अन्दर को देखना चाहते हैं ? मैं ही अगर ज़रा देर के लिए मुँह भारी किये रहूँ, यह मेकअप वगैरह नहीं करूँ, शृंगार न करूँ, तो क्या आप मुझे बुलायेंगे ? मेरी बीमारी में क्या मुझे देखने आयेंगे ? मुझे खाना मिल रहा है या नहीं, इस बात की खबर रखेंगे ? आप लोग तो सिर्फ़ ऐश करते वक्त हम लोगों को याद करते हैं। उससे पहले तो नहीं न !"

"न भई, तुम लोग ठहरीं थियेटर-ड्रामा करनेवाली एक्ट्रेस। बातों में तुमसे पार नहीं पाऊँगा।"

कुन्ती गुहा मुसकरायी। "केवल आप ही क्यों ! सभी का वही हाल है। इस दुनिया में दादा कोई किसी का नहीं है, यह बात मैंने काफ़ी पहले ही समझ रखी है। आपको जितने दिन मुझसे मतलब है, आप मुझे ढूँढेंगे। काम निकल जाने पर सन्तरे के छिलके की तरह छीलकर फेंक देंगे।"

"देखता हूँ, आजकल काफ़ी-कुछ सीख गयी हो !"

"सीखी नहीं हूँ, आप लोगों ने ही मुझे सिखला दिया है। इसी से कह रही हूँ।"

"हाँ, तो काम-काज कैसा चल रहा है ? कितने प्ले हाथ में हैं ?"

"अब और इस लाइन में नहीं रहूँगी, दादा ! सोच रही हूँ, कोई दूसरी लाइन पकड़ूँ।"

"अब फिर कौन-सी लाइन ? इस उम्र में बे-लाइन होगी ?"

"बे-लाइन क्या अपनी मर्ज़ी से हो रही हूँ ? जाना पड़ रहा है।"

"आखिर वह लाइन है कौन-सी ?"

"गृहस्थी की लाइन !"

"गृहस्थी की लाइन के माने ?"

"यही सोचिये, एक बहन है। उसकी शादी करके मैं घर में बैठकर बीड़ी बनाऊँगी। बीड़ी बनाकर अगर दूकानों पर सप्लाई की जाए या अखबारी कागज़ के थैले बनाकर दूकानों पर बेच आऊँ तो आसानी से पेट चल सकता है। और कुछ नहीं तो नर्सिंग। नर्सिंग तो मैंने सीखी भी थी। पूरे दो महीने नर्सिंग सीख चुकी हूँ।"

शंभू ने फिर से एक सिगरेट सुलगायी। बोला, "लेकिन ख़ुद भी शादी क्यों नहीं कर लेतीं ?"

"शादी !"

कुन्ती ज़ोर से हँस पड़ी। बोली, "मुझसे शादी कौन करेगा, दादा ! लोग हम लोगों को बीवी कैसे मान सकते हैं ! दो-एक रात मज़ा करने के लिए हमारी याद आती है। बहुत हुआ तो 'कीप' रख सकते हैं। इससे ज़्यादा की आशा हम लोग नहीं कर सकतीं।"

कुन्ती की बातों में कहीं जैसे थोड़ी उदासी छिपी थी। शंभू जैसा आदमी भी आश्चर्य में पड़ गया। बोला, "बात क्या है, साफ़-साफ़ कहो न ? किसी के साथ प्रेम के झमेले में पड़ गयी हो क्या ?"

कुन्ती ने कहा, "क्यों मज़ाक करते हो, दादा ? तेंतीस रुपये मन चावल का भाव। यह साड़ी भी उस दिन सत्ताईस रुपये में खरीदी है। एक कमरे में रहती हूँ। उसी का किराया तीस रुपये है। ऐसी हालत में कहीं प्रेम सूझता है ?"

फिर जैसे अचानक पूछ बैठी, "आपका क्या हाल है ?"

"हाल और क्या होगा ! किसी तरह ज़िन्दा हूँ, बस इतना ही ! कलकत्ता में जो लोग पैसेवाले हैं, मज़े में सिर्फ़ वे ही हैं। हम लोगों का क्या है, न मरों में हैं, न ज़िन्दों में ही हैं। टिके हुए हैं किसी तरह।"

"और आपके उन मित्र साहब का क्या हाल है ?"

"कौन-सा ?"

"वही एक था न, बड़े बाप का बेटा ! आप लोगों के क्लब में आता था और मेरे पीछे-पीछे घूमता था ?"

"अरे, सदाव्रत की बात कर रही हो न ! बेचारा बड़ी मुश्किल में पड़ गया था।"

"मुश्किल में ! क्यों ? क्या हुआ ? उसे तो सुना था दो हज़ार रुपये महीना की नौकरी मिली थी। कम्पनी के मालिक की लड़की से शादी होने की बात थी !"

शंभू ने कहा, "अरे, बड़ी अजीब बात हुई। शादी का सारा इन्तज़ाम हो चुका था। अचानक न जाने कहाँ से एक गुमनाम चिट्ठी गयी उसकी भावी पत्नी के पास। मतलब, उसका कैरेक्टर ख़राब बतलाते हुए किसी ने चिट्ठी लिखी थी। लिखा था कि सदाव्रत लड़कियों को लेकर बाग़-कोठियों में जाता है। यही बातें लिखी थीं। दुनिया में किसी के दुश्मनों की तो कमी

नहीं है। लोगों ने देखा—अरे, इसे तो बैठे-बैठे दो हज़ार माहवार मिल रहे हैं, इसी से जलने लगे, और एक गुमनाम चिट्ठी छोड़ दी।"

"अरे ! फिर ? शादी टूट गयी ?"

"चिट्ठी पढ़कर मिस्टर बोस ने सदाव्रत को बुलाया।"

"फिर ?"

"सब सुनकर सदाव्रत ने नौकरी छोड़ दी। रेज़िग्नेशन लेटर भेज दिया।"

"तब क्या नौकरी छूट गयी ? तब तो शादी भी नहीं होगी ?"

"सदाव्रत ने तो नौकरी छोड़ ही देनी चाही थी, लेकिन मिस्टर बोस ने किसी भी तरह नहीं छोड़ा। सदाव्रत के पिताजी ने मिस्टर बोस का काफ़ी काम किया है। अब भी करते हैं। सदाव्रत के साथ शादी न करने पर वह सब भी खत्म हो जाता। यह डर भी तो था !"

कुन्ती की बेचैनी जैसे और भी बढ़ गयी। पूछा, "लेकिन सदाव्रत की नौकरी है या छूट गयी, साफ़-साफ़ बतलाइये न ?"

"है।"

"क्यों ? एक लम्पट लड़के के साथ लड़की की शादी करेंगे ? वह तो एक लम्पट-चरित्रहीन लड़का है।"

शंभू ने कहा, "यह तुम क्या कह रही हो, कुन्ती ! सदाव्रत वैसा लड़का नहीं है।"

"आपके दोस्त को क्या मैं पहचानती नहीं हूँ ? आपके दोस्त मेरे पीछे-पीछे कितने दिन घूमे हैं, कुछ पता है ? मुझे कितनी बार बाग़-कोठी में ले जाना चाहा है, आपको मालूम है ? मेरे पिताजी का उन लोगों ने ख़ून किया है, यह पता है ?"

"तुम्हारे पिताजी का ?"

"देखिये दादा ! मेरी उम्र कोई ज़्यादा नहीं है। लेकिन इस लाइन में रहकर आदमी पहचानना बाक़ी नहीं है ! आज मेरे पास पैसा नहीं है, इसलिए आपने मेरी बात का यक़ीन नहीं किया। दो हज़ार रुपये महीना की नौकरी अगर करती तो शायद यक़ीन कर लेते। इस युग का नियम ही यही है।"

"अरे, नहीं-नहीं। तुमने उसे अभी भी नहीं पहचाना। हम लोग उसे बचपन से देख रहे हैं।"

कुन्ती ने कहा, "आपके साथ बहस नहीं करना चाहती, दादा ! आपके

मित्र बड़े अच्छे हैं, सच्चरित्र ! आप भी अच्छे हैं ! खराब सिर्फ़ हम लोग हैं, क्योंकि हमारे पास रुपया नहीं है।"

"लेकिन तुम नाराज़ क्यों हो रही हो ?"

"नाराज़ नहीं होऊँगी। वह गुमनाम चिट्ठी हो या कुछ और भी हो, ऐसी चिट्ठी पाने के बाद भी क्या कोई उसे जमाई बना सकता है ? लेकिन वह लड़की भी क्या है !"

शंभू ने कहा, "सुना है, देखने में काफ़ी अच्छी है।"

"अरे, रहने दीजिए ! मैंने उसे देखा है। ऐसा पचास रुपये का जूड़ा बँधवाने के लायक पैसा होने पर मैं भी सुन्दर लगती !"

"लेकिन तुम तो सुन्दर ही हो। किसने कहा कि तुम सुन्दर नहीं हो ?"

लेकिन इस बार कुन्ती हँसी नहीं, उठ खड़ी हुई। बोली, "देख लेना दादा, मैं वह शादी तोड़कर ही रहूँगी। जिसने मेरा सर्वनाश किया है, मैं उसे माफ़ नहीं कर सकती। उससे अगर मुझे फाँसी भी होगी तो परवाह नहीं है। मेरी आँखों के सामने ही वे लोग आराम से मज़े उड़ायें, यह मैं नहीं होने दूँगी ! यह मैं कहे देती हूँ ! मुझे काम है, मैं चलूँगी।"

शंभू ने कहा, "कुछ देर और बैठो न ! इस समय तुम्हें क्या काम है ?"

"नहीं दादा, मैं इसका बदला लूँगी ही।"

कहकर कुन्ती उठने लगी। कुन्ती जैसे थर-थर काँप रही थी।

"इसका मतलब तुमने ही वह गुमनाम चिट्ठी लिखी थी ? हैं !"

लेकिन कुन्ती और रुकी नहीं, दूकान से निकल सड़क पर आ गयी।

शंभू ने पूछा, "तुम किस ओर जाओगी ?"

इस बात का कोई जवाब न देकर कुन्ती ने पूछा, "आपको ठीक मालूम है दादा, सदाव्रत की नौकरी नहीं गयी ?"

"नहीं ! नहीं छूटी !"

'वहीं, उसी लड़की के साथ शादी होगी ?"

"हाँ, जो गड़बड़ हुई थी, सब ठीक-ठाक हो गया। अब सदाव्रत फिर रोज़ ऑफ़िस जाता है। क्लब जाता है। मोटर में दोनों घूमने जाते हैं।"

"आपको ठीक पता है न ?"

"हाँ, मुझे मालूम नहीं होगा ? मेरे साथ तो उसी दिन मुलाक़ात हुई है। मुझे सब-कुछ बतलाया। बेचारा काफ़ी अफ़सोस कर रहा था। उस लड़की से शादी करने के अलावा कोई चारा नहीं है। क़रीब महीने-भर बाद ही शादी होगी। सब ठीक हो गया है।"

सामने की ओर से एक ट्राम आ रही थी।

कुन्ती ने कुछ सोचा। बोली, "अच्छा, मैं भी अगर अपने बाप की बेटी हूँ तो कहे देती हूँ दादा, कि मैं यह शादी तुड़वाकर ही रहूँगी।"

कहकर ट्राम के आकर रुकते ही उसमें चढ़ गयी और साथ-ही-साथ ट्राम चल दी।

□ □ □

हॉस्पिटल के कॉरीडोर में मन्मथ खड़ा था। शैल भी उसके पास चुपचाप खड़ी थी।

अचानक फटाफट सीढ़ियाँ चढ़ता सदाव्रत ऊपर आ गया। केबिन की ओर ही जा रहा था।

मन्मथ ने पूछा, "क्या हुआ, सदाव्रत, रिलीज़-ऑर्डर हुआ ?"

सदाव्रत ने कहा, "हाँ।"

"तब मास्टर साहब को कब ले जाना है ?"

"बस अभी, मैंने सारा पेमेंट कर दिया है।"

आज मास्टर साहब को हॉस्पिटल से छोड़ दिया जायेगा। इतने दिनों बाद यह केबिन खाली होगा। अब कोई और आयेगा। कितने लोग वेटिंग-लिस्ट के आसरे बैठे हैं। अब उन लोगों का नम्बर है। कोई ठीक हो जायेगा, कोई ठीक नहीं होगा। कोई घर लौट आयेगा, कोई लौट नहीं पायेगा। यहाँ का यही नियम है। हॉस्पिटल के नर्स, मेहतर, जमादार सब आकर इस समय खड़े होते हैं। इस समय हाथ फैलाने पर कुछ मिल जाता है। उन लोगों ने इतने दिन सेवा की है। यह उन लोगों का हक़ है।

सदाव्रत केबिन के अन्दर गया।

साफ़ धुले कपड़े पहने केदार बाबू बिस्तरे पर बैठे थे।

सदाव्रत को देखते ही बोले, "क्यों सदाव्रत, गुरुपद के यहाँ गये थे क्या? पास हुआ ?"

सदाव्रत को उस बात पर ध्यान देने की फुरसत नहीं थी। बोला, "आपको मेरी गाड़ी में चलकर बैठना होगा। चलिये !"

"लेकिन तुमसे तो गुरुपद की माँ के पास जाने को कहा था ? गये नहीं ? गुरुपद पास हुआ या फेल, ज़रा पूछ आते ? भूगोल में बेचारा बड़ा कमज़ोर था।"

सदाव्रत ने कहा, "आप अपने ही बारे में सोचिये, मास्टर साहब ! गुरुपद की फ़िक्र गुरुपद कर लेगा, उसके लिए स्कूल है, मास्टर है, हेडमास्टर

है। देश में चिन्ता करने वाले लोगों की कमी नहीं है। वे लोग मोटी-मोटी तनख़्वाहें डकार रहे हैं। देश के चीफ़ मिनिस्टर हैं, गवर्नर हैं, असेम्बली है, पार्लियामेंट है, पुलिस, सोल्जर, मेयर हैं। किसी बात की कमी नहीं है। वे लोग हमसे काफ़ी रुपये ले रहे हैं। इस समय आप अपने ही बारे में सोचिये, और किसी के बारे में न सोचिये। आपकी फिक्र करने वाला कोई नहीं है। सिर्फ़ यही बात ध्यान में रखियेगा। चलिये !"

* * *

बहुत दिन पहले एक दिन इसी धरती पर पैदा होकर सदाव्रत ने सुना था कि सत्य की जय अवश्य होती है। ज़िन्दगी का पहला पाठ यही था, हमेशा सच बोलो। हर ओर जब इतना झूठ का बोलबाला है, तब सच के लिए इतनी दौड़-धूप करने की क्या ज़रूरत है ! मास्टर साहब ने भी एक बार कहा था कि इतिहास में जो कुछ सच है, विज्ञान में भी वही सच है। धर्म, दर्शन और काव्य-साहित्य का सत्य भी वही है। सत्य की कोई जाति नहीं है, श्रेणी नहीं है, सत्य में कोई प्रथा-भेद भी नहीं है। सत्य हमेशा सत्य ही है। चंगेज़ख़ाँ के लिए जो सच था, तथागत बुद्ध के लिए भी वही सत्य था। हिटलर के लिए जो सच था, स्टालिन के लिए भी वही सच था। आदमी का सर्वनाश करने वाला इतना उम्दा हथियार और दूसरा नहीं बना। सत्य के लिए नादिरशाह की तलवार के सामने लाखों आदमियों को अपनी जान देनी पड़ी, या तथागत के चरणों में सिर नवाना हुआ। पश्चिम से इसी सत्यवालों का प्रचार करने के लिए अरबों ने हमला किया। और सच के लिए ही उत्तर से अलैक्ज़ेंडर ने हमला किया। बाद में जब एरोप्लेन बन गये, स्टैनगन का आविष्कार हो गया, तब दिशाओं का ज्ञान नहीं रहा। ख़ास काम भी नहीं रहा। हर ओर से हमला होने लगा। अन्दर-बाहर हर ओर से हमला शुरू हो गया। सत्य अब सत्य नहीं रहा, झूठ भी झूठ नहीं रहा। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलकर जैसे वह हाइड्रोजन भी नहीं रहता, ऑक्सीजन भी नहीं रहता, पानी हो जाता है; उसी तरह सच और झूठ मिलकर एक तीसरी ही चीज़ बन जाती है। उसका नाम टैक्ट है !

टैक्ट का कोई हिन्दी या बंगला शब्द नहीं होता। अंग्रेज़ों ने एक अद्भुत शब्द आविष्कृत किया। एक अद्भुत आदर्श ! तरीके से झूठ बोलने पर वह झूठ नहीं रहे। इसी का नाम टैक्ट है ! टैक्ट के बिना सच बात भी झूठी लगती है। जीवन की उन्नति का आदि-गुरुमन्त्र है टैक्ट। जो यह नहीं जानता, वह सारी ज़िन्दगी केदार बाबू की तरह काटता है। और जो

यह जानता है, वह होता है शिवप्रसाद गुप्त !

सदाव्रत ने शायद पहले से ही सारा इन्तज़ाम कर रखा था। हॉस्पिटल से आने के बाद केदार बाबू कहाँ रहेंगे, इसका इन्तज़ाम कर रखना ही सबसे जरूरी काम था। लेकिन इसका इन्तज़ाम करे कौन ? मन्मथ से मकान ठीक करने को कहा था, लेकिन कर नहीं पाया। सदाव्रत फिर भी हताश नहीं हुआ। वह इतना समझ गया था कि मास्टर साहब को अगर स्वस्थ करना है, तो किसी के भरोसे बैठे रहने से काम नहीं चलेगा।

बाग़बाज़ार के उसी गन्दे मकान में आकर केदार बाबू को मन-ही-मन ज़रा ढाढस हुई। उन्होंने सोचा, अगले दिन से ही वह गुरुपद को पढ़ाने जा पायेंगे। अपनी छतरी लिये फिर से लड़कों को पढ़ाने एक घर से दूसरे घर चक्कर काटेंगे। सदाव्रत-जैसे अगर दस लड़के भी निकल जायें तो उनका काम पूरा हो जायेगा। देश में फिर से सतयुग आ जायेगा। वे दस लड़के ही सबसे कहते फिरेंगे—'चोरी करना महापाप है। जो चोरी करता है उससे हर कोई घृणा करता है।' वे लोग ही कहेंगे—'किसी से भी बुरा न कहो। जो बुरा बोलता है, उससे सभी घृणा करते हैं।' वे लोग ही कहेंगे—'तुम्हें मन को साफ़ रखना होगा, और जो कोई तुम्हारे पास आये उसकी सेवा करनी होगी। दूसरों की भलाई करने से तुम्हारा कल्याण होगा। अच्छे काम करने से मन साफ़ रहता है, और सबके अन्तर में जो 'शिव' हैं उनका दर्शन होता है।' वे लोग ही स्वामी विवेकानन्द के वचनों को याद करायेंगे—'अपनी सृष्टि में ईश्वर ने सभी को समान बनाया है। बुरे-से-बुरे और नीच-से-नीच आदमी में कोई-न-कोई गुण होता है, जो अच्छे-से-अच्छे आदमी में नहीं होता। छोटे-से-छोटे कीड़े में भी कोई गुण हो सकता है जो किसी महापुरुष में भी नहीं होता।'

लेकिन सदाव्रत ने इतना ही नहीं सोचा था।

सदाव्रत ने कहा, "नहीं, मास्टर साहब, पहले आप ख़ुद की चिन्ता कीजिये। तभी लड़कों की भी चिन्ता हो सकेगी। और आप-जैसे आदमी को भी अगर मैं बचा नहीं पाता तो चाहे यह देश भाड़ में जाये।"

"लेकिन तुमने तो मुझे बड़ी मुश्किल में डाल दिया।"

"आपने ही तो एक दिन बतलाया था, यह धरती मिट्टी की नहीं है। यह धरती आदमियों की है।"

"कहा तो था, लेकिन अब तो मैं अच्छा हो गया हूँ।"

"नहीं, मास्टर साहब ! फिर भी मैं आपको कलकत्ता में नहीं रहने

दूँगा। आपको चेन्ज के लिए भेजूँगा ही।"

"लेकिन उसमें तो तुम्हारे काफ़ी रुपये ख़र्च हो जायेंगे ?"

"रुपये तो ख़र्च होंगे ही। मुझे काफ़ी तनख़्वाह भी तो मिलती है। वह रुपया कुत्ते, क्लब और बालों के जूड़े बँधवाने वाले सैलूनों में ख़र्च होता है। आपके लिए ख़र्च करके समझूँगा, कम-से-कम एक अच्छा काम हुआ।"

कुत्ते, क्लब और सैलून की बात केदार बाबू की समझ में नहीं आयी। पूछा, "तुमने क्या कुत्तों का क्लब खोला है ?"

"न-न, मास्टर साहब ! वह आप नहीं समझेंगे। आपके बाहर जाने का सारा इन्तज़ाम मैंने कर दिया है। पुरी में किराये का मकान ठीक हो गया है। छः महीने का एडवान्स किराया भी दे दिया गया है।"

सुनकर केदार बाबू हैरान रह गये।

"इसका मतलब ?"

"इसका मतलब कि कल आपको शैल के साथ पुरी जाना होगा !"

"यह कैसे हो सकता है ? वह अकेली कैसे सम्हालेगी ?"

"उसके लिए भी आपको फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं है। मन्मथ भी साथ जायेगा।"

फिर अचानक मन्मथ की ओर घूमकर कहा, "क्यों मन्मथ, तुम साथ नहीं जा सकोगे ? तुम्हारे 'एक्ज़ामिनेशन हो तो चुके हैं न ?"

सुनकर मन्मथ भी हैरान रह गया। पास ही शैल खड़ी थी। सुनकर वह भी अवाक् रह गयी। लेकिन मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला।

अचानक सदाव्रत ने खुद ही कहा, "तुम लोग कोई मास्टर साहब के साथ नहीं जाओगे ? बोलो, जवाब दो !"

मन्मथ ने कहा, "मैं पिताजी से पूछकर बतलाऊँगा।"

सदाव्रत नाराज़ हो गया।

"मास्टर साहब के अच्छे के लिए कुछ करने पर क्या तुम्हारे पिताजी को ख़राब लगेगा ?"

"नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है।"

"तब क्या यह कोई ख़राब काम है ?"

"नहीं, मैंने वह तो कहा नहीं।"

"तब आजकल तो तुम्हारी छुट्टी है। तुम्हें ऐसा क्या काम है जिसकी वजह से तुम जा नहीं पाओगे ?"

"नहीं, काम और क्या होगा ?"

"तब ? मैंने तुम्हारी टिकट ले ली है। साथ में जो लेना हो, ले लेना। मैं शाम को छ: बजे गाड़ी लेकर आऊँगा। आठ बजे गाड़ी जाती है।"

कहकर सदाव्रत बाहर निकलने लगा। लेकिन दरवाज़े के बाहर निकलने से पहले ही पीछे से शैल की आवाज़ आयी, "एक बात सुनिये !"

सदाव्रत जाते-जाते रुक गया। लेकिन शैल उसे लेकर एकदम सड़क पर आकर खड़ी हो गयी।

"मुझे ऑफ़िस पहुँचना है, देर हो रही है, जो कहना हो झटपट कह डालो।" सदाव्रत ने जल्दी में कहा।

"सचमुच आप हम लोगों के लिए जो कर रहे हैं, उसके लिए मैं आभारी हूँ।"

आभार और कृतज्ञता की बात जैसे सदाव्रत को अच्छी नहीं लगी। बोला, "आभार की बात क्यों कर रही हो ? मैं क्या तुम्हारे आभार के लिए यह सब कर रहा हूँ ?"

"लेकिन इतना क्यों कर रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आ रहा। बिना किसी स्वार्थ के इतनी कोशिश कोई नहीं करता है। मैं इसका मतलब नहीं समझ पा रही हूँ।"

"स्वार्थ नहीं है, किसने कहा ? कौन कहता है कि मेरा कोई स्वार्थ नहीं है ?"

शैल ने पूछा, "वह स्वार्थ क्या है ?"

"यही, मान लो, मास्टर साहब का मेरे ऊपर ऋण···"

"और कुछ भी नहीं ?"

"और हो ही क्या सकता है ?"

शैल ने कहा, "मैं भी तो यही सोच रही हूँ, आपके मन में और हो ही क्या सकता है ?"

इसके बाद ज़रा रुककर कहा, "और आपको भी तो कोई कमी नहीं है। इस उम्र में आप-जैसे लड़के जो चाहते हैं, सभी कुछ तो आपको मिला है। नौकरी, पैसा, पत्नी, गाड़ी, घर, कुल—कुछ भी तो मिलना बाकी नहीं है। फिर भी हम लोगों के लिए आप इतना क्यों कर रहे हैं ?"

सदाव्रत इसका क्या उत्तर दे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था।

वह बोला, "तुम मेरे बारे में इतना सोचती हो ?"

"आप सोचने को मजबूर करते हैं, इसी से सोचना पड़ता है। उस दिन

जिन्हें देखा, वहाँ तो आपकी पत्नी होंगी ?"

"ठीक तो यही हुआ है।"

"सुना है, अगले महीने आपकी शादी होगी। यह भी ठीक है न ?"

"हाँ।"

"तब ? तब क्या इसी वजह से हम लोगों को बाहर भेज रहे हैं, जिससे आपकी शादी के समय हम लोग यहाँ न रहें ?"

"छिः !"

शैल ने कहा, "यहाँ खड़े-खड़े मेरा आपके साथ ये सारी बातें करना ठीक नहीं है, जानती हूँ। लेकिन आज पहली बार ही नहीं, कई दिनों से मैं इसी बारे में सोच रही हूँ। काका से भी पूछा है, मन्मथ से भी पूछा है। शुरू-शुरू में गुस्से के मारे आपसे काफ़ी कुछ कहा भी है। लेकिन किसी के किसी भी जवाब से मुझे शान्ति नहीं मिली।"

"काका ने क्या जवाब दिया ?"

"काका की बात जाने दीजिए। काका आपको अच्छे विद्यार्थी के रूप में जानते हैं। आपका कोई दोष नहीं देख पाते।"

"तुम्हें यह तो मालूम ही होगा, आदमी दोष-गुणों से भरा हुआ है।"

"सच ही क्या आपमें दोष हैं ? सच-सच कहिये !"

यह सुनकर सदाव्रत हँस पड़ा। बोला, "जब देवता नहीं हूँ तो दोष तो होंगे ही !"

"उन दोषों के बारे में अपने मुँह से ही कहिए। मैं शान्ति के साथ जा पाऊँगी। आपके मुँह से सब-कुछ सुनने के बाद पुरी ही क्यों, जहाँ भी, जितनी भी दूर भेजेंगे, चली जाऊँगी। मैं आपको वचन देती हूँ कि फिर कभी इस बारे में कोई सवाल नहीं करूँगी।"

सदाव्रत कुछ देर तक शैल की ओर देखता रहा। फिर बोला, "तुम्हारा कहना ठीक ही है। मैं दोषी हूँ। मेरे अपराधों का अन्त नहीं है।"

"कहिये, रुक क्यों गये ? कहिये !"

सदाव्रत जैसे इधर-उधर करने लगा। चेहरे पर ज़रा मुसकराहट लाने की कोशिश की। फिर कहा, "सवाल भी ऐसे समय किया जब जवाब देने का भी वक़्त नहीं है।"

"है, वक़्त है। कल रात के आठ बजे तक वक़्त है।"

"तुम सोचती हो, क्या इतने-से वक़्त में मेरे दोष गिने जायेंगे ? मेरे दुःख, मेरी कसक क्या इतनी ही छोटी है ? इतने से वक़्त में क्या सब-कुछ

कहना सम्भव है ?"

"तब क्या कल शाम से पहले आपसे मुलाक़ात नहीं होगी ?"

"मुलाक़ात होना क्या ठीक है ?"

"क्यों. ठीक क्यों नहीं है, बतलाइये ? आप सोचते हैं क्या इतना सब होने के बाद भी मैं आज की रात सोकर काट पाऊँगी ?"

इसके बाद सदाव्रत ने वहाँ और खड़े रहना ठीक नहीं समझा। सुनसान गली। धूप काफ़ी तेज़ हो चुकी थी। दो-चार लोग आ-जा भी रहे थे।

सदाव्रत ने कहा, "तुम्हें शायद काम होगा। मुझे भी ऑफ़िस जाना है। मैं चलता हूँ।"

"लेकिन मुझे इतनी दूर क्यों भेज रहे हैं, पहले इस बात का जवाब तो दे जाइये ?"

सदाव्रत और रह नहीं पाया। पूछा, "तुम्हें क्या शर्म नहीं आती ?"

"शर्म ?"

सुनकर शैल जैसे सिटपिटा गयी। इतनी देर बाद उसे होश आया कि रास्ते पर खुले आसमान के नीचे इस तरह बात करना ठीक नहीं है। और वह बात कर रही है ?

लेकिन तभी शैल ने अपने-आपको सम्हाल लिया। कहा, "शर्म-हया तो एक दिन थी मुझमें। इतने दिन इसी शर्म की वजह से मैं कहीं निकलती तक नहीं थी। लेकिन आपने क्यों आकर मेरी शर्म को छीन लिया? कहिये, क्यों छीन लिया ?"

"इसका मतलब ?"

सदाव्रत थोड़ी देर भौंचक-सा खड़ा रहा। क्या करे, कुछ ठीक न कर पाने पर बोला, "मैं अब चलूँगा।"

शैल ने रोका। बोली, "नहीं, आप पहले मेरी बात का जवाब दीजिए, तब जाइये। उससे पहले मैं आपको जाने नहीं दूँगी। कहिए, आपने क्यों मेरी हया-शर्म छीन ली ? क्यों आपने इस तरह से मेरा सर्वनाश किया ?"

सदाव्रत इस पर सचमुच ही चुप रह गया। उसने सिर्फ़ कहा, "चुप रहो, तुम चुप रहो !"

सदाव्रत की बात का कोई जवाब दिये बिना शैल ने कहा, "चुप क्यों रहूँ ? और मुझे चुप करने के लिए ही शायद जल्दी से इतनी दूर भेज रहे हैं ? एक दिन की देरी भी नहीं सह पा रहे हैं ?"

सदाव्रत ने कहा, "अरे, नहीं-नहीं। तुम यकीन करो, मास्टर साहब

की हालत देखकर बाहर भेज रहा हूँ। मास्टर साहब अकेले तो रह नहीं पायेंगे। इसीलिए तुम्हें भेजा जा रहा है…"

"फिर भी आप सच बात नहीं कहेंगे ? मेरा आपको इतना डर है !"

"कहती क्या हो ? मैं तुमसे क्यों डरने लगा ?"

"अगर डरते नहीं हैं तो अपनी शादी के बाद भी तो हम लोगों को भेज सकते थे। इतने दिन पहले से क्यों भेज रहे हैं ? इतने दिन से काका अस्पताल में थे। एक महीना और रह आते तो उनका क्या नुक़सान हो जाता ?"

सदाव्रत क्या करे, कुछ समझ नहीं पा रहा था। लग रहा था जैसे कोई उसे बाँधकर पीट रहा है और वह कुछ नहीं कर सकता।

उसने कहा, "सच कह रहा हूँ, शैल, मेरा वैसा कोई उद्देश्य नहीं।"

"तब मैं कलकत्ता से कहीं नहीं जाऊँगी। जाना ही है तो काका अकेले ही जाएँ।"

"लेकिन वहाँ जाकर मास्टर साहब अकेले कैसे रहेंगे ? तुम समझ क्यों नहीं रही हो ?"

"तब ठीक है। टिकट लौटा दीजिए। एक महीने बाद ही हम लोग सब मिलकर जायेंगे।"

"लेकिन यह कैसे हो सकता है ?"

"क्यों नहीं हो सकता ? किसलिए नहीं होगा ? मुश्किल किस बात की है ?"

सदाव्रत और भी मुश्किल में पड़ गया। आखिर उसके मुँह से निकल ही गया, "मैं नहीं चाहता कि मेरी शादी के समय मेरी जान-पहचान वाला कोई रहे। मैं नहीं चाहता, कोई मेरी शादी देखे। मैं नहीं चाहता…"

कहते-कहते सदाव्रत बीच में ही रुक गया। अपनी बात पूरी नहीं कर पाया। अपने को छुपाने की कोशिश करता हुआ अचानक शैल के सामने से भाग निकला। बाद में टेढ़ी-मेढ़ी गली पार करता, जल्दी से आकर अपनी गाड़ी में बैठ गया। और साथ-ही-साथ गाड़ी स्टार्ट कर दी। जैसे जान छुड़ाकर भागा हो।

तभी कमरे के अन्दर से आवाज़ आयी, "शैल !"

□ □ □

हावड़ा-स्टेशन के 'इन्क्वायरी' ऑफ़िस के आस-पास बूढ़ी काफ़ी देर से चक्कर काट रही थी। चारों ओर कितने आदमी हैं। यह भी एक अजीब

दुनिया है। पहले कभी इस ओर नहीं आयी थी। भवानीपुर, चौरंगी, श्यामबाज़ार—हर जगह घूम चुकी है। यह नयी जगह है। यहाँ के सभी लोग ज़रा देर के लिए आते हैं। थोड़ी देर एक-दूसरे के साथ बातचीत होती। फिर कौन कहाँ चला जाता, किसी को पता नहीं लगता।

थोड़ी देर बाद प्लेटफ़ॉर्म-टिकट की खिड़की के पास जाकर खड़ी हुई।

"एक प्लेटफ़ॉर्म-टिकट तो दीजिए !"

प्लेटफ़ॉर्म-टिकट बेचनेवाली एक लड़की ही थी। सोने की चूड़ियाँ पहने थी। माँग में सिन्दूर था। बैठी-बैठी एक फ़िल्मी-अख़बार पलट रही थी। अख़बार रखकर एक टिकट दे दी। बूढ़ी टिकट लेकर वेटिंग-रूम में आ बैठी। वेटिंग-रूम आदमियों से खचाखच भरा था। बोरिया-बिस्तर लिए कोई जायेगा बम्बई, कोई दिल्ली, कोई और भी बहुत दूर जायेगा !

"तुम कहाँ जाओगी, माई ?"

बूढ़ी ने बग़ल में बैठी महिला की ओर देखा। उम्र ज़रा ढलती पर थी। गोद में एक छोटी-सी क़रीब साल-भर की लड़की थी। लड़की के गले में सोने का हार चमचमा रहा था।

"मैं ?"

बूढ़ी ने यह तो सोचा नहीं था। इस बात का जवाब भी तैयार नहीं था। बोली, "मैं ! मैं कहीं भी नहीं जाऊँगी। मेरे एक रिश्तेदार आनेवाले हैं, उनसे मिलना है।"

चारों ओर आदमी इतनी जल्दी में थे, किसी के साथ बात करने की भी किसी को फ़ुरसत नहीं थी। जो जहाँ था, अपने सामान वगैरह की निगरानी में लगा था।

लड़की के गले का हार तब भी चमचमा रहा था। कम-से-कम दो तोले का तो होगा। एक सौ पचीस के भाव से टाँका काटकर कम-से-कम दो सौ रुपये तो मिल ही जायेंगे। 'बिजली' और 'रूपाली' में दो नयी फ़िल्में लगी हैं। देख नहीं सकी। एक नयी रिस्टवाच भी खरीदनी है। सभी लोग पहनते हैं। देखने में खूब छोटी-सी। बाएँ हाथ में पहनने पर बड़ी अच्छी लगती है।

"आप लोग कहाँ जायेंगे ?"

उस औरत ने कहा, "पुरी घूमने जा रहे हैं, भाई। बहुत दिनों से बीमार हूँ। अब डॉक्टरों ने समुद्र की हवा खाने को कहा है।"

सोने का हार फिर से चमचमा उठा।

"आप लोगों की 'पुरी-एक्सप्रेस' कितने बजे छूटती है ?"

बहू ने कहा, "वे कह रहे थे आठ बजे !"

तभी सामान लिए एक बड़ा-सा झुंड वेटिंग-रूम में आ घुसा। सामान काफ़ी था। होलडॉल, सूटकेस, लालटेन और ट्रंक—सभी-कुछ। एक बूढ़ा। शायद हाल ही में बीमारी से उठा था। ज़रा चलते ही बूढ़ा हाँफने लगा था। कमरे में आते ही वह एक चेयर पर बैठ गया। साथ में एक लड़की थी। दीदी की उम्र की होगी। देखने में ख़राब नहीं लगती थी। हाथ, गले और कान में, कहीं भी सोने का कुछ भी नहीं था। दोनों हाथों में चार-चार काँच की चूड़ियाँ खनखना रही थीं। पास में एक लड़का था। सामान आ जाने के बाद एक और सूट-बूटधारी आया। लम्बा-चौड़ा और गोरा रंग। हाथ में रिस्टवाच। मर्दानी घड़ी।

"तुम्हारी ट्रेन कब है ?"

बूड़ी ने कहा, "मेरे मामा तूफ़ान मेल से आयेंगे न !"

"तूफ़ान मेल कब आता है ?"

"आना तो साढ़े पाँच बजे चाहिए। सुना है साढ़े तीन घंटे लेट हैं।"

"अरे राम ! तब तो तुम्हें काफ़ी रात होगी ? काफ़ी देर बैठना होगा ?"

बूड़ी ने कहा, "तब क्या करूँ, बतलाइए ! पहले से क्या मालूम था, इतनी देर होगी। पता होने पर देर से ही आती।"

लड़की के गले का हार तब भी चमचमा रहा था।

बूढ़े आदमी ने पूछा, "हम लोगों की ट्रेन कितने बजे छूटेगी ?"

पास बैठे आदमी ने कहा, "ट्रेन आठ बजे है और साढ़े सात बजे गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर लगेगी।"

"अब कितना बजा है ?"

"साढ़े छः।"

लड़की चुपचाप बैठी थी। उसके काका होंगे। काका कहकर ही बातें कर रही थी। दीदी की तरह इस लड़की की भी शादी नहीं हुई थी। बूड़ी ने फिर से गोद की लड़की की ओर देखा। सोने का हार चमचमा रहा था।

बूड़ी ने कहा, "लाइये न ! बच्ची को ज़रा मेरी गोद में दीजिए न !"

महिला ने कहा, "तब तो हो गया ! यह क्या मेरी गोदी से उतरेगी? क्यों री, जायेगी ? ओ मुन्नी, दीदी के पास जायेगी ?"

बूड़ी तब भी एकटक हार की ओर देख रही थी। सोने का हार,

असली गिनी सोने का हार। कम-से-कम दो तोला भारी तो ज़रूर ही होगा। एक सौ पचीस रुपये तोला के भाव से टाँका काटकर दो सौ रुपये तो मिलेंगे ही। 'विजली' और 'रूपाली' में दो नयी फ़िल्में लगी हैं। देख नहीं पायी। एक नयी कलाई रिस्टवाच खरीदनी होगी।

सोने का हार फिर से चमचमा उठा।

□ □ □

ट्रेन आठ बजे रात को छूटनेवाली थी। लेकिन उसकी तैयारियाँ सुवह से ही चल रही थीं। मसहरी लेनी होगी, लालटेन, पानी की बाल्टी भी लेनी है। मतलब कोई भी चीज़ छोड़ने से काम नहीं चलेगा। सदाव्रत तो कहकर चलता बना, लेकिन इतना सब करे कौन?

और कलकत्ता शहर तो कोई ऐसा-वैसा शहर नहीं है। बस, ट्राम, आदमी, हर कोई जैसे पागल हो। कोई भी काम धीरे-सुस्ती से, आराम से नहीं किया जा सकता। ट्राम-बस में चढ़ने पर लड़कियों का साबुत रहना भी जैसे मुश्किल हो गया था। कहाँ धर्मतल्ला, कहाँ चाँदनी, कहाँ कॉलेज-स्ट्रीट! एक चीज़ खरीदने के लिए दस जगह चक्कर लगाने होते हैं। हर जगह भाव अलग। लगता है, जैसे सभी ठगने के लिए दूकान खोले बैठे हैं!

मन्मथ अकेला क्या-क्या करे!

शशिपद वाबू सुवह ही आए थे। सुनकर खुश हुए। कहने लगे, "अच्छा ही हुआ, मास्टर साहब! बाहर गये बिना आप ठीक नहीं होंगे।"

केदार वाबू ने कहा, "सदाव्रत ने मेरे लिए काफ़ी रुपया खर्च कर डाला, शशिपद बाबू। इन कुछ ही महीनों में क़रीब तीन हज़ार रुपया निकल गया।"

"आपके प्राणों की क़ीमत इससे कहीं ज़्यादा है, मास्टर साहब!"

"मैं वही सोच रहा था, जिनके लिए सदाव्रत नहीं है, उनका काम कैसे चलता है?"

"उन लोगों का काम नहीं चलता है।"

"काम नहीं चलता तो उन लोगों का क्या होता है?"

"वे लोग मर जाते हैं।"

केदार बाबू उठकर बैठ गये। बोले, "मरेंगे क्यों? वे लोग क्या इन्सान नहीं हैं?"

"लेकिन गवर्नमेंट तो चाहती नहीं है कि कोई ज़िन्दा रहे। मर जाने पर गवर्नमेंट की ज़िम्मेदारी खत्म। ज़िन्दा रहने पर किसी को नौकरी देनी

होगी, किसी को खिलाना होगा, किसी को पहनाना होगा। ज़िन्दा रहने पर ये लोग स्ट्राइक करेंगे, यूनियन बनायेंगे, हड़ताल करेंगे। इससे तो मर जायें तो आफ़त टले !"

केदार बाबू सुनकर थोड़ी देर चुप रहे। फिर बोले, "आप और कुछ न कहिये। मेरा दिमाग़ चक्कर खा रहा है।"

"मुझे भी ऑफ़िस जाने को देर हो रही है। मैं भी और नहीं बैठूंगा। कभी-कभी मेरा ही दिमाग़ चकराने लगता है। पता है, हमारे ऑफ़िस में जो हुआ है, सुनकर अच्छे-भले आदमी का दिमाग़ ख़राब हो जायेगा।"

"क्या हुआ ?"

शशिपद बाबू ने कहा, "उस दिन हमारे ऑफ़िस की इमारत की मरम्मत के लिए चालीस हज़ार रुपये ख़र्च हुए हैं। मैं बिल पास करता हूं। अपने ऊपरवाले साहब के हुक्म से डेढ़ लाख रुपये का बिल पास करना हुआ, और नहीं करने पर मेरी नौकरी नहीं रहती। इसमें का एक लाख दस हज़ार रुपया 'ब्लैक-मनी' था। साहब और कॉन्ट्रैक्टर ने बाँट लिया।"

"च्यांग-काई-शेक का शासन यही सब करने से तो ख़तम हो गया।"

"इस राज्य का भी वही हाल होगा। आप ही क्या कर सकते हैं! मैं ही क्या कर सकता हूं!"

शशिपद बाबू के जाने के बाद केदार बाबू बैठे-बैठे सोचने लगे। शैल और मन्मथ सामान खरीदने बाज़ार गये हैं। शाम को सदाव्रत आयेगा।

केदार बाबू ने आवाज़ दी, "शैल ! ओ शैल !"

तभी अचानक ध्यान आया, शैल घर में नहीं है। कोई नहीं है। वह अकेले ही घर पर हैं। धीरे-धीरे दीवार की 'शेल्फ़' से अपनी डायरी उतारी। फिर तारीख़ निकालकर शशिपद बाबू की बातें नोट कीं। बाद में भूल सकते हैं। इस तरह की कितनी ही बातें उन्होंने लिख रखी हैं। कितनी ही अच्छी-अच्छी बातें पढ़ी हैं, सुनी हैं, ज़िन्दगी में बहुत-कुछ देखा है। सब-कुछ लिख रखा है। एक दिन शायद ज़रूरत होने पर किसी की नज़र पड़ेगी, अभी भी सभी आदमी ख़राब तो नहीं हुए हैं। हर कोई चोर-डाकू या ख़ूनी नहीं है। क्यों नहीं हुए ? एक दिन इसी दुनिया में वाल्टेयर आये थे, रूसो आये थे, ईसा मसीह आये थे; बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर, नानक, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और गांधी आये थे। उनके वचन और उपदेश पढ़कर ही तो आज भी कुछ अच्छे लोग दुनिया में बाकी हैं।

केदार बाबू ने लिखा, "शशिपद बाबू से आज जो कुछ सुना, वह बहुत

ही खतरनाक वात है। भारत के लोग धीरे-धीरे विलासप्रिय, आलसी और ईर्ष्यालु होते जा रहे हैं। वे लोग घूस लेते हैं, झूठ बोलते हैं, स्वार्थी हो गये हैं। यह बहुत ही बुरी बात है। प्राचीन रोम-साम्राज्य इन्हीं सब कारणों से नष्ट हो गया था। नेपोलियन का फ्रांस भी उसकी स्वार्थपरता के कारण सर्वनाश की ओर अग्रसर हो रहा था। नेपोलियन ने अपने सम्बन्धी और रिश्तेदारों को बड़े-बड़े ओहदों पर नियुक्त कर अपने ध्वंस का प्रबन्ध खुद ही कर डाला था। राजा की ग़लती से सिर्फ़ राजा ही खत्म नहीं होता, राज्य भी नष्ट होता है। इंडिया में मुग़ल साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण यही था। बंगाल के नवाबों के चारित्रिक पतन के ही कारण बंगाल विदेशियों के हाथ में चला गया। जैसे चल रहे हैं, वैसे ही चलते रहे तो यह देश फिर दूसरों के हाथ में जायेगा।"

लिखकर डायरी बन्द कर ही रहे थे कि अचानक एक बात याद आयी। नोटबुक खोलकर एक लाइन और लिखी, "पंडित जवाहरलाल नेहरू बड़े सज्जन आदमी हैं। वह भी अगर देश को सर्वनाश से बचाना चाहते हैं, तो उन्हें भी अपने नाते-रिश्तेदारों को पोषण करने वाली नीति को छोड़ना होगा! अपनी बहन, लड़की और बुआ सभी को नौकरी से हटाकर प्रजा के सामने उदाहरणस्वरूप आदर्श पेश करना होगा। वैसा न करने पर दूसरे सब मंत्री भी अपने भाई-भतीजों को घुसायेंगे। नेपोलियन ने अपने ही लड़के 'इयूज़िन' को इटली का शासक नियुक्त किया था। एक भाई को, जिसका नाम जोसेफ़ बोनापार्ट था, स्पेन का राजा बनाया। और एक भाई लुई को हालैंड का राजा बनाया। नेपोलियन खुद ही लिख गया है—'थ्रू-आउट माई होल रेन, आई वाज़ द की-स्टोन ऑफ़ एन एडिफ़ाइस एन्टायरली न्यू, एण्ड रेस्टिंग ऑन द मोस्ट स्लेंडर फाउण्डेशन्स। इट्स ड्यूरेशन डिपेन्डेड ऑन द इश्यू ऑफ़ माई बैटिल्स। आई वाज़ नेवर, इन ट्रुथ मास्टर ऑफ़ माई मूवमेण्ट्स; आई वाज़ नेवर एट माई ओन डिस्पोज़ल।' भगवान से मेरी प्रार्थना है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू को मृत्यु से पहले नेपोलियन की तरह पश्चात्ताप न करना पड़े।"

सब लिखकर केदार बाबू ने फिर से डायरी बन्द कर दी। इसके बाद अचानक बाहर से आती पैरों की आवाज़ सुनकर डायरी को वैसे ही 'शेल्फ' में रख दिया, जिससे कोई देख न पाये।"

शैल और मन्मथ लौट आये। वे लोग काफ़ी सामान लाये थे।

"यह देखो, काका, तुम्हारे लिए एक जोड़ी जूता खरीदे हैं।"

आश्चर्य ! केदार बाबू के ऊपर जैसे एक अवसाद का-सा भाव छाया रहा। यहाँ इतने पाप चलते रहेंगे, इतना अन्याय चलता रहेगा और वह किसी की कोई भलाई नहीं कर पायेंगे। उनसे क्या एक भी आदमी का उपकार नहीं हो पायेगा ? वह ख़ुद बाहर जा रहे हैं, हवा बदलने, अपने स्वास्थ्य के लिए। उनके लिए स्वार्थ ही सब-कुछ है।

सारे दिन सभी सामान बाँधने और ठीक करने में लगे रहे। शैल और मन्मथ दोनों ने ही सारे दिन मेहनत करके चीज़ें इकट्ठी कीं। यह घर हमेशा के लिए छोड़ देना होगा। किराया दे दिया गया है। विद्यार्थियों से भी एक बार मिलना नहीं हुआ। सिर्फ़ गुरुपद आया, दोपहर के बाद।

गुरुपद को देखते ही केदार बाबू नाराज़ हो गये। गुरुपद ने पाँव छुए। पैरों की धूल लेकर माथे से लगायी।

केदार बाबू ने कहा, "मैं पैरों की धूल नहीं दूँगा। जाओ, चले जाओ मेरे घर से !"

गुरुपद ने सिर नीचा किये कहा, "जी, मुझे माफ़ कर दीजिए !"

"क्यों, क्यों माफ़ करूँ ? तुम भूगोल में फेल क्यों हुए, बोलो ?"

"कोई पढ़ानेवाला नहीं था।"

"कोई पढ़ानेवाला नहीं था ! मुझे किसने पढ़ाया ? मुझे पढ़ाने के लिए क्या मास्टर था ? विद्यासागर को पढ़ानेवाला कौन था ? ग़रीबों का भी कोई होता होगा ? मैं अब किसी को भी नहीं पढ़ाऊँगा ! समझे, बेटा ! अब मैं सिर्फ़ अपने बारे में ही सोचूँगा, और किसी की परवाह नहीं करूँगा। चले जाओ तुम ! आख़िर क्या सोचकर तुम फेल हुए, बोलो ?"

गुरुपद रोने लगा। धोती के छोर से आँसू पोंछने लगा।

"रो रहा है ! पास तो हो नहीं पाता, ऊपर से लड़कियों की तरह रोता है। भाग, निकल यहाँ से, भाग जा !"

कहकर उसी बीमारी की हालत में गुरुपद के ऊपर झपट पड़े। इसके बाद उसकी पीठ पर सड़ासड़ घूँसे लगाने लगे।

आवाज़ सुनते ही शैल दौड़ी आयी। काका का हाथ पकड़ लिया।

"करते क्या हो, काका ? मार क्यों रहे हो ?"

मन्मथ भी दौड़ा आया। केदार बाबू गुस्से से काँप रहे थे। शशिपद बाबू की बात सुनकर जितना गुस्सा जमा हुआ था, सब जैसे गुरुपद के ऊपर उतरा।

"तुम लोगों को कौन देखेगा ? तुम लोगों का कोई नहीं है, पता नहीं है ! तुम लोगों के लिए स्कूल नहीं है, मास्टर नहीं है, सरकार नहीं है, नाते-रिश्तेदार कोई नहीं है ! तुम लोग मर क्यों नहीं जाते ? किसलिए ज़िन्दा हो ? तुम्हारे मरते ही तो सबको शान्ति मिलेगी, तुम खुद भी छुट्टी पाओगे, गवर्नमेंट को भी छुट्टी मिलेगी ।"

शैल तब तक गुरुपद को पकड़कर कमरे के बाहर ले आयी। गुरुपद अभी तक रो रहा था।

शैल उसे दिलासा देने लगी, "छिः, रोओ मत। तुम तो काका को पहचानते हो। उनकी बात पर गुस्सा नहीं करना चाहिए। जाओ, घर जाओ।"

गुरुपद को समझा-बुझाकर घर भेज दिया। फिर कमरे में आकर देखा, काका चुपचाप बैठे हैं। दोनों आँखें डबडबा रही थीं। शैल को देखकर केदार बाबू ने पूछा, "क्यों री, गुरुपद चला गया ?"

"तुम इस तरह मारोगे तो जायेगा नहीं ?"

"काफ़ी जोर से मार दिया क्या ?"

"जोर से नहीं मारा ? धमाधम घूंसे लगाये। लगती नहीं है क्या ?"

"उसके काफ़ी लगी है क्या ? काफ़ी ज़ोर से ?"

फिर मन्मथ की ओर देखकर कहा, "हाँ, मन्मथ, मैंने क्या ज़ोर से मार दिया ?"

मन्मथ ने भी कहा, "हाँ, मास्टर साहब, आपने उसे काफ़ी ज़ोर से मारा।"

केदार बाबू जैसे अपने को रोक नहीं पाये। बोले, "तो तुम खड़े-खड़े क्या देख रहे थे ? मेरे दोनों हाथ नहीं पकड़ सकते थे ? मुझे बतलाना चाहिए था कि मैं काफ़ी ज़ोर से मार रहा हूँ। तुम क्या गूँगे हो गये थे ? खड़े-खड़े तुम क्या कर रहे थे ? तुम क्या···?"

हठात् उसी समय सदाव्रत कमरे में आया। ठीक छः बजे थे।

सदाव्रत अन्दर आते ही हैरान रह गया।

"यह क्या ? अभी तक आप लोगों का कुछ भी नहीं हुआ है ! आठ बजे ट्रेन है !"

केदार बाबू ने कहा, "यह देखो, सदाव्रत, तुम आ गये। मन्मथ ने अभी तक कुछ भी नहीं किया। खाली खड़ा था। मैंने गुरुपद को इतना मारा, मुझे एक बार···"

सदाव्रत ने उस बात पर ध्यान नहीं दिया। मन्मथ की ओर देखकर कहा, "अच्छा, और क्या-क्या रखना बाकी है ? सात बजे के अन्दर स्टेशन पहुँचना ही होगा। मेरी गाड़ी तैयार है।"

□ □ □

चितपुर से निकलते ही अँधेरी गली थी। सुफल कुन्ती को लिये उसी ओर चला।

सुफल ने कहा, "तुम्हें मैं ऐसी जगह ले जाऊँगा टगर दी, किसी को पता नहीं चलेगा।"

अचानक सुफल जैसे करुणा और ममता से भर उठा। बोला, "टगर दी, इतने दिन कहाँ थीं ? मैं रोज़ माँ से तुम्हारे बारे में पूछता था।"

कुन्ती ने पूछा, "मुझ पर क्या तुम्हारा कुछ बाकी है, सुफल ?"

सुफल ने जीभ काट ली।

"अरे राम-राम, टगर दी ! मेरा क्या यह मतलब है ? मुझे क्या वैसा ही आदमी समझ रखा है ? मेरे साथ क्या तुम्हारा पैसे का ही नाता है ? तुम भी क्या कहती हो, टगर दी ! कसम से सुफल को तुम लोग आज भी नहीं पहचान पायीं। चाट की दूकान खोल रखी है, इसलिए क्या मैं आदमी नहीं हूँ ?"

"नहीं-नहीं, मेरे कहने का वह मतलब नहीं है, सुफल ! मैं क्या तुम्हें जानती नहीं हूँ। फिर भी वह तुम्हारा धन्धा है।"

"हो धन्धा। धन्धा करता हूँ तो क्या मुझे पूरा चश्मखोर समझ रखा है ? धन्धेबाज़ी उस सेठ ठगनलाल के साथ करूँगा। सेठ ठगनलाल ! साला खुद तो गवर्नमेंट को ठगता है और अगर हम लोग उसे ठगें तो गुस्से के मारे लाल हो जाता है !"

कुन्ती गुहा इस सुफल को काफ़ी अरसे से देख रही है। तभी से जब ऑकलैंड ऑफ़िस के बड़े बाबू के साथ पहली बार यहाँ आयी थी। पराँठे, मटन, कटलेट, केंकड़े की भुनी टाँगें वगरैह कितनी ही चीजें इस सुफल ने खिलायी हैं। मीठ-मीठी बातें कीं। बाद में पद्मरानी के फ्लैट में आना-जाना शुरू होने के बाद तो प्रायः ही सुफल की दूकान का सामान खाती। कभी नकद तो कभी उधार। इधर-उधर दूसरे मुहल्लों से भी लोग सुफल की दूकान पर खरीदने आते। पद्मरानी के फ़्लैट में कितनी ही बार पुलिस आयी। कितनी ही बार पुलिस ने आकर फ़्लैट की तलाशी ली। यह सुफल ही हमेशा सबसे पहले होशियार कर देता। सिविल ड्रेस में कितने ही सी० आई० डी० घर

के आस-पास घूमते। सुफल उन सभी को पहचानता है। और पहचानता है, इसलिए सबको पहले से होशियार कर देता है। यह ठीक है कि सुफल पैसा पकड़ता है, लेकिन किसी लड़की के कुछ दिन न आने पर ख़बर लेता। इस घर की सभी लड़कियाँ जैसे उसकी अपनी ही थीं। इनके साथ उसका भाग्य बहुत दिन की पहचान की वजह से जैसे एक हो गया था।

अगर कोई सुफल से पूछे, "क्यों रे सुफल, तेरा घर कहाँ है ?" सुफल हा-हा करके हँसता। फिर कहता, "मेरा घर कहाँ होगा ! पद्मरानी का फ़्लैट ही मेरा घर है, मेरा देश है ।"

सिर्फ़ घर या देश की बात नहीं है, सुफल कहाँ पैदा हुआ, कौन उसका बाप है, कौन माँ है, सुफल को यह भी नहीं मालूम। सुफल सिर्फ़ हँसना जानता था। हँसते-हँसते कहता, "मैं तो भाई बेजन्मा हूँ।"

"बेजन्मा माने ?"

"बेजन्मा माने अजन्मा ? माने जिसके माँ-बाप का ठीक न हो।"

लड़कियों और औरतों को पता है कि इस मुहल्ले में ऐसे कितने ही हैं। इस मुहल्ले की सड़कों और गलियों में जितने काने-कुबड़े, लूले-लँगड़े, भिखारी, चोर, गुण्डे, दलाल घूमते हैं, सभी वही हैं। सभी का कोई परिचय नहीं है। वे लोग ज़िन्दा हैं, खाते-पीते हैं, सोते हैं, चोरी करते हैं और पकड़े जाते हैं, इतना ही। उन्हीं के बीच सुफल जैसे भी हो, अपने पाँवों खड़ा हुआ है, यही काफ़ी है। इसी से लड़कियाँ सुफल का विश्वास करतीं। शायद उसे चाहती भी थीं। सुफल को देखे बिना उन लोगों को अच्छा नहीं लगता था। इसी तरह सुफल भी कुछ दिनों तक किसी लड़की को नहीं देखता तो पद्मरानी के पास जाकर पूछता, 'गुलाबी क्या बीमार है ? दुलारी को बुखार आया था, अब कैसी है ?' अपनी ही भट्ठी पर साबूदाना बनाकर कमरे में पहुँचा आता। जब पद्मरानी को चेचक हुई थी, तब उसके कमरे में कोई फटकता तक नहीं था। यह सुफल था, इसी से पद्मरानी आज ज़िन्दा है। पद्मरानी का अपना लड़का भी इतनी सेवा करता या नहीं, इसमें सन्देह है।

कुन्ती ने अचानक पूछा, "अच्छा सुफल, मैं जो तेरे साथ आयी हूँ, यह किसी को पता नहीं है न ? किसी से कहा तो नहीं ?"

"छिः-छिः, यह क्या मैं कह सकता हूँ, टगर दी ? मुझे क्या तुमने ऐसा-वैसा आदमी समझ रखा है ? तुम्हें डरने की कोई बात नहीं है। मैंने सब-कुछ ठीक कर रखा है।"

अँधेरी गली। गली के जितना अन्दर जायँ, अँधेरा भी उतना ही घना होता जाता। ईंट-बिछी गली। इस मुहल्ले में कुन्ती को आये इतने दिन हो गये। लेकिन कभी इस ओर नहीं आयी। अभी भी यहाँ इलेक्ट्रिक लाइट नहीं आयी है। भूत की तरह पता नहीं कौन बग़ल से धक्का मारता निकल गया।

कुन्ती ने फुसफुसाकर पूछा, "यह कहाँ ले आये, सुफल ?"

सुफल आगे-आगे चल रहा था। "डरने की कोई बात नहीं है, टगर दी ! मैं तो हूँ, डर किस बात का ? तुम मेरे पीछे-पीछे चली आओ न !"

काफ़ी दूर चलने के बाद सुफल एक घर के दरवाज़े के सामने रुका। फिर धीरे-धीरे दरवाजा खटखटाने लगा। तब भी कोई जवाब न पाकर पुकारने लगा, "भूलो ! ऐ भूलो !

थोड़ी देर बाद दरवाज़ा ज़रा-सा खुला। फिर शायद सुफल को देखकर बोला, "आ, अन्दर चला आ !"

"टगर दी हैं साथ में।"

"तो अन्दर ले आ न !"

कहकर दरवाज़ा थोड़ा-सा और खोला। सुफल अन्दर आया। कुन्ती भी आयी। अन्दर एक लालटेन टिमटिमा रही थी। नीची छत। लकड़ी की कड़ियों से पटी। एक ओर एक तख़्त पड़ा था। बीच से दूसरे कमरे में जाने का दरवाज़ा था। कुन्ती का जैसे दम घुट रहा था। सुफल ने पहले तो कुछ भी नहीं बतलाया। बोला, "यही अपनी टगर दी हैं। इन्हीं को ज़रूरत है।"

उस आदमी ने कुन्ती की ओर देखा। पूरा चेहरा चेचक के दाग़ों से भरा था। बोला, "बैठिये न, इधर बैठिये !"

फिर भी कुन्ती बैठी नहीं। सुफल बैठ गया। बोला, "बैठो न, टगर दी, बैठो न, यहां कोई नहीं देख सकता। भूलो अपना ही आदमी है।"

भूलो ने पूछा, "यह कहाँ की हैं ?"

"बतला तो चुका हूँ, पद्मरानी के फ़्लैट की हैं।"

"केस-वेस तो नहीं होगा ? आजकल पुलिस साली बड़ी होशियार हो गयी है !"

"न-न, उस सबका कोई डर नहीं है। मैंने कह जो दिया है, फिर तुझे किस बात की फ़िक्र ? मिलेगी या नहीं, पहले यह बतला ?"

"मिलेगी क्यों नही ? ऑर्डर मिलते ही बना रखूंगा। लेकिन कुछ

एडवान्स लगेगा ?"

"कितना ?"

"चाहिए कब, यह बतला पहले ? मुझे बनाने में एक दिन लगेगा।" भूलो ने कहा।

सुफल ने इस बार कुन्ती की ओर देखा। पूछा, "तुम्हें कब चाहिए, टगर दी ? बोलो न !"

कुन्ती का जैसे दम घुट रहा था। दिल धुक्-धुक् कर रहा था। पैरों तले से मिट्टी खिसक रही हो, लग रहा था, और ज़रा देर रुकने पर जैसे बेहोश हो जायेगी।

"चलाना कहाँ है ? कलकत्ता में ही या बाहर ?"

सुफल हैरान रह गया। बोला, "बाहर भी सप्लाई होती है ?"

अब कहीं जाकर जैसे कुन्ती के मुँह से कोई बात निकली। बोली, "चलो, सुफल ! मैं फिर कभी आकर बतला जाऊँगी। बाद में ख़बर कर दूँगी।"

कहकर दरवाज़े की ओर उसने पाँव बढ़ाया।

सुफल फिर अवाक् रह गया—क्या हुआ ? इतनी हुज्जत करके फिर बहाना कैसे ?

कुन्ती तब तक ख़ुद ही दरवाज़ा खोलकर बाहर जा चुकी थी। सुफल भी पीछे-पीछे बाहर आ गया।

"क्या हुआ, टगर दी ? माल नहीं लेना ?"

कुन्ती ने कहा, "पता नहीं क्यों मुझे डर-सा लग रहा है। चलो, यहाँ से चलें।"

"लेकिन भूलो क्या कहेगा, ज़रा सोचो ? भूलो आज बारह साल से यह धन्धा कर रहा है। वह कभी नमकहरामी नहीं कर सकता। वह वैसा आदमी ही नहीं है।"

कुन्ती ने कहा, "जो भी हो। उसकी सूरत देखकर मुझे बड़ा डर लग रहा था। वह आदमी तो जैसे ख़ूनी-ख़ूनी लग रहा था।"

"कसम से, तुमने भी ख़ूब कहा, टगर दी। पुलिस के बाप की भी मज़ाल नहीं है उसे पकड़ने की। वह घर पर माल रखता ही नहीं है। घर की तलाशी लेने पर पुलिस को कुछ भी नहीं मिलेगा।"

"नहीं सुफल, मुझे अब जरूरत नहीं है। तुम्हें बेकार परेशान किया। दूकान छोड़कर आये, लेकिन···"

सुफल ने कहा, "मुझे दूकान की परवाह नहीं है। तुम्हारा काम हो

जाय, इसीलिए आया था। तुम कितनी मुश्किल में फँसी हो, लेकिन मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा, टगर दी !"

"मेरे दुःखों के लिए परेशान न हो, सुफल ! मेरे नसीब में तो दुःख ही लिखे हैं।"

कुन्ती की बात सुनकर सुफल को बड़ा अजीब लगा। बोला, "सिर्फ़ तुम्हीं क्यों, टगर दी, मुझे ही देखो न। साले ख़ुद अपने माँ-बाप ने ही जब नहीं देखा तो साला भगवान क्या देखेगा !"

"जबकि देखो, सुफल ! तुम्हारे असली माँ-बाप शायद मज़े से पाँव पर पाँव रखे इसी कलकत्ता शहर में मोटर-कार की सैर कर रहे होंगे। बाप भी लड़के को नहीं पहचान पा रहा और तुम भी बाप को नहीं पहचान पा रहे।"

बातें शायद सुफल के मन-माफ़िक ही थीं। बोला, "बाप साला अगर मिल जाये तो मुँह पर कम-से-कम सौ जूते मारकर साले के मुँह का भुरता बना दूँ, यह तुमसे कहे रखता हूँ, टगर दी !"

"और भी देखो न, जो लोग हमारा ख़ून चूस रहे हैं उनसे कोई कुछ नहीं कहता। वे लोग मज़े से बालीगंज में बँगला बनवाकर आराम से रह रहे हैं। खद्दर पहनते हैं। मीटिंगों में जाते हैं और गाड़ियों पर घूमते हैं। इतना ही नहीं, हमें देखकर घृणा से मुँह फेर लेते हैं।"

सुफल ख़ुश हो गया। बोला, "मैं भी तो भूलो से यही कहता हूँ, टगर दी ! कहता हूँ, भूलो, जो होगा देखा जायेगा। तू काली माई की जय बोलकर सारे कलकत्ता को जलाकर राख कर दे।"

तब तक सड़क आ गई थी। रोशनी से पूरी सड़क जगमगा रही थी। सुफल अपनी दूकान में घुस गया। पद्मरानी के फ़्लैट में जाने से पहले कुन्ती ने भी कहा, "मैं ज़रा और सोच लूँ, सुफल ! एकाएक कुछ कर बैठना ठीक नहीं है।"

कहकर कुन्ती सदर दरवाज़े से अन्दर आँगन की ओर चली गयी।

□ □ □

शशिपद बाबू ऑफ़िस से सीधे स्टेशन आये थे। लड़के के काफ़ी पुराने मास्टर हैं। शशिपद बाबू की तनख़्वाह जब कम थी, तभी से केदार बाबू मन्मथ को पढ़ाते आ रहे हैं, एकदम इन्फ़ैन्ट क्लास से ही। एक तरह से केदार बाबू ने ही मन्मथ का भार ले रखा था। बाद में शशिपद बाबू ने धीरे-धीरे नौकरी में तरक्की की। लेकिन केदार बाबू को नहीं छोड़ पाये।

एकदम घर के आदमी हो गये। शशिपद बाबू के दुःख-सुख से केदार बाबू जैसे बँध-से गये। वह ही केदार बाबू आज जा रहे हैं। मन्मथ को भी साथ भेज रहे हैं, नहीं तो कौन उन्हें देखेगा ? उनका है ही कौन ?

प्लेटफ़ॉर्म के अन्दर सभी ट्रेन के लिए खड़े थे। खाली गाड़ी रामराजतला से आयेगी। लेकिन उससे पहले ही प्लेटफ़ॉर्म जैसे आदमियों से भर गया। थर्ड क्लास के पैसेन्जर बेसब्री से खड़े थे। ट्रेन आते ही किसी तरह घुसना होगा।

सदाव्रत आज क्लब नहीं गया। मिस्टर बोस ने पूछा ज़रूर था—उसे ऐसा कौन-सा काम है ? मनिला ने भी पूछा था। लेकिन उन लोगों को तो पता नहीं। उन लोगों को तो पता नहीं कि यह फ़र्म का सवाल नहीं है। केदार बाबू की सेवा करना सदाव्रत के लिए कितना ज़रूरी है, यह कहने पर भी उन लोगों के लिए समझना मुश्किल है। हर रोज़ वही क्लब, वही किटी, ड्रिन्क, फिर एल्गिन रोड लौटना। वहाँ उन लोगों के साथ ही डिनर लेना। और डिनर के बाद 'रीडर्स डाइजेस्ट' या 'ईव्स वीकली' के पन्ने उलटना। यह उससे कहीं अच्छा है। इतने सारे लोग, इतनी भीड़, इसी के बीच जैसे असली भारत के दर्शन हो जाते हैं। यही फर्स्ट क्लास, सेकंड क्लास, थर्ड क्लास। समाज का असली रूप जैसे इस रेलवे स्टेशन में ही दिखलाई देता है। यह स्टेशन ही जैसे छोटा-सा इंडिया है।

देखते-देखते ट्रेन आ गयी। गाड़ी प्लेटफ़ॉर्म पर लगते ही मारा-मारी और हाथापायी शुरू हो गयी। मन्मथ ने ही रिज़र्व कम्पार्टमेंट खोज निकाला। चार वर्थ के कम्पार्टमेंट में तीन आदमी। चौथी सीट पर एक और आदमी। मन्मथ ने चटपट सामान कम्पार्टमेंट में चढ़ाया। प्लेटफ़ॉर्म पर अभी भी जगह और कुलियों को लेकर झगड़ा चल रहा था। शैल अन्दर जाकर जो एक कोने में बैठी तो फिर उसने इस ओर नज़र नहीं फेरी।

शशिपद बाबू ने कहा, "कल सुबह पहुँचते ही चिट्ठी दे दीजिएगा।"

केदार बाबू ने कहा, "मन्मथ से कहिए। मैं कुछ नहीं हूँ। सब काम उसे ही बतला दीजिए।"

बाद में अचानक रुककर कहने लगे, "जानते हैं शशिपद बाबू, मैं जा भले ही रहा हूँ, लेकिन शाम से ही मन बड़ा खराब हो गया है।"

"क्यों ? आप स्वास्थ्य के लिए ही तो जा रहे हैं। सब ठीक हो जायेगा।"

"अरे, नहीं, यह बात नहीं है। आज गुरुपद बेचारे को बहुत मारा।"

"गुरुपद ? गुरुपद कौन ?"

"मेरा एक विद्यार्थी। भूगोल में फ़ेल हो गया है, जनाव ! मैं गुस्सा नहीं रोक पाया। धमाधम दस-बारह घूँसे जमा दिये। जब कि यह मन्मथ पास ही खड़ा था, मुझे एक बार भी नहीं रोका।"

सदाव्रत को जैसे अचानक याद हो आया। प्लेटफ़ॉर्म से डिब्बे की खिड़की में झाँककर उसने शैल से कहा, "तुम्हारे साथ ले जाने को कुछ रुपये लाया था, सँभालकर रख लो !"

कहकर मनीबैग निकालने के लिए जेब में हाथ डाला। हैं ! मनीबैग कहाँ गया ? एक-एक कर सारी जेबें टटोल डालीं। सदाव्रत जैसे ऊपर से नीचे तक बेचैन हो गया। कहाँ गया ? कोट के अन्दर की जेब में ही तो रखा था। स्टेशन आने से पहले अच्छी तरह गिनकर देखे थे। कहाँ गया ? तीन टिकटें भी तो उसी में थीं।

"क्या हुआ ? मनीबैग नहीं मिल रहा ?"

केदार बाबू, मन्मथ, शैल, शशिपद बाबू—सब-के-सब भौंचक्के खड़े सदाव्रत की ओर देख रहे थे।

"कहाँ रखा था ? सामने की जेब में ? कितने रुपये थे ?"

सदाव्रत को ध्यान आया। ज़रा देर पहले एक लड़की उसके काफ़ी नज़दीक खड़ी थी। एकदम बदन से सटी हुई। बदन से बदन छू जाने के कारण सदाव्रत ने माफ़ी भी माँगी थी। उसी ने निकाला क्या ? लड़कियाँ भी चोरी करती हैं ?

"टिकटें भी क्या उसी में रखी थीं ? यह तो बड़ा ग़ज़ब हुआ ! अब क्या किया जाये ?"

सभी आश्चर्यचकित हो उठे।

सदाव्रत ने अचानक दूर की ओर देखा। वही लड़की जैसे जल्दी-जल्दी गेट की ओर जा रही थी। वही हरे रंग की साड़ी, बड़ा-सा जूड़ा पीछे की ओर झूल रहा था।

सामने हज़ारों की भीड़। प्लेटफ़ॉर्म पर जैसे आदमियों का जुलूस रुका हुआ था। ट्रेन के छूटने में बीस मिनट बाकी थे। सदाव्रत जल्दी-जल्दी उसी ओर जाने लगा। गेट पार करते ही पकड़ से बाहर हो जायेगी। सड़क पर पहुँचते ही ट्राम और बस के गोरखधन्धे में पता नहीं कहाँ खो जायेगी।

लगभग भागते-भागते सदाव्रत चिल्ला उठा, "चोर, चोर !"

प्लेटफ़ॉर्म के सारे लोग सुनकर उसी ओर देखने लगे।

और आश्चर्य ! हरी साड़ीवाली लड़की ने एक बार पीछे देखकर भागना शुरू कर दिया।

सदाव्रत फिर चिल्लाया, "चोर, चोर !"

सदाव्रत के पीछे-पीछे दूसरे लोगों ने भी दौड़ना शुरू कर दिया।

पुलिस के कुछ सिपाहियों ने, जो अभी तक पता नहीं कहाँ छुपे थे, अचानक दौड़ती हुई लड़की को पकड़ लिया। सदाव्रत के वहाँ पहुँचते-पहुँचते हज़ारों आदमियों की भीड़ जमा हो चुकी थी। जितने लोग, उतनी ही बातें ! भीड़ को चीरते हुए अन्दर घुसकर सदाव्रत ने लड़की के चेहरे को अच्छी तरह से देखा।

लड़की डर के मारे थर-थर काँप रही थी।

सिपाही ने कहा, "चलो जी० आर० पी० के ऑफिस में !"

सदाव्रत ने कहा, "लेकिन मनीबैग में पुरी-एक्सप्रेस के तीन टिकट थे। ट्रेन डिटेन कर दो। गाड़ी छूटने में सिर्फ़ बीस मिनट का वक़्त है।"

लेकिन कौन किसकी सुनता है ! भीड़ की गरमी की वजह से किसी के दिमाग़ का ही ठिकाना नहीं था। सभी तमाशा देखने आ जमे थे। जी० आर० पी० के ऑफ़िस में लड़की को ले जाकर बैठने को कुर्सी दी गयी।

"तुमने मनीबैग चुराया है ?"

लड़की ने कुछ भी नहीं कहा, सिर्फ़ रोना शुरू कर दिया।

"देखो, नहीं मानने पर तुम्हारी बॉडी सर्च करेंगे। निकालो जल्दी !"

लड़की ने फिर भी कुछ नहीं कहा।

"तुम्हारा नाम क्या है ? रहती कहाँ हो ? स्टेशन क्या करने आयी हो ?"

एक के बाद एक सवालों की जैसे झड़ी लग गयी थी, फिर भी लड़की के मुँह में जैसे आवाज़ ही नहीं थी, जैसे गूँगी हो गयी थी।

□ □ □

पद्मरानी के फ़्लैट में रात जैसे और भी गहरी हो आयी थी। किसी-किसी दिन तो गुलाबी, कुन्ती घर भी नहीं लौट पातीं। घर आये 'बाबू' को छोड़ने से धन्धा ख़राब होता है। पद्मरानी की बदनामी होती सो अलग। ग्राहक आकर पद्मरानी से कहते, "कैसी सब लड़कियाँ रखी हैं तुमने ! ख़ातिरदारी करना भी नहीं जानतीं !"

पद्मरानी चारपाई पर बैठे-बैठे ही कहती, "क्या हुआ, भैया ? मेरी लड़कियों से भूल हो गयी क्या ?"

"ग़लती नहीं ? हमने पैसे खर्च कर पी है, एडवांस पैसा दिया है। अब कहती हैं—देर हो रही है, उठिये ! हम लोगों का पैसा क्या पैसा नहीं है ? हमारा पैसा क्या मुफ़्त का आता है ?"

सब नये-नये कल के छोकरे। अभी ठीक से पाज़ामा पहनना भी नहीं सीखा। लफ़ंगबाज़ी में अभी हाल ही पाँव रखना शुरू किया है। इन दिनों ज़्यादातर वही लोग इस ओर आते हैं। इन्हें नाराज़ करना पद्मरानी के वश का रोग नहीं है। ये लोग कारखानों में शायद कुछ काम करते हैं। हाथ में चार पैसा आते ही उड़ाना सीख गये हैं।

पद्मरानी ने कहा, "कितना नम्बर ? किसकी बात कर रहे हो, बेटा ?"

जिनकी घर-गृहस्थी है, जो यहाँ कुछ घंटे पैसा कमाने आती हैं, उन्हीं को जल्दी रहती है। वे ही कहतीं—"ज़रा जल्दी-जल्दी ! देर हो रही है।"

देशी माल एक घूँट में तो गटागट नहीं चढ़ाया जा सकता। जो लोग यहाँ आते हैं, कितना देख-सुनकर आते हैं। वे लोग जी भरकर ऐयाशी करेंगे। सोचकर ही आते हैं। ऐसे वक्त जल्दबाज़ी करने से गुस्सा आना स्वाभाविक ही है।

लेकिन गुलाबी तब तक दरवाज़े में ताला लगाकर सड़क पर जा चुकी थी। एक बस आ रही थी, उसी में चढ़ गयी। पीछे-पीछे कुन्ती भी आ रही थी। वह भी चढ़ आयी। दोनों ने एक लेडीज़ सीट पर दखल जमाकर जैसे निश्चिन्तता की साँस ली।

गुलाबी ने कहा, "लड़की को बुखार में छोड़ आयी हूँ, इसी से मन ज़रा छटपटा रहा था। मैं तो सोच रही थी, आज आऊँगी ही नहीं। फिर सोचा, न आकर भी क्या करूँगी ? पेट तो वह सब नहीं सुनेगा···"

फिर ज़रा रुककर बोली, "माँ से जाकर जो मर्ज़ी में आये कहो। मुझे किसी का डर नहीं है। जाने कहाँ-कहाँ के सब गुण्डे और बदमाश आते हैं। सब-के-सब मेरे लड़कों की उम्र के हैं। मुझसे कहते हैं कि···"

फिर जैसे अचानक ध्यान आया। बस की भीड़ में ये सारी बातें कहना ठीक नहीं है। खुद को ज़रा सम्हाल लिया। फिर भी कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से पूछा, "आज सुफल के साथ कहाँ गयी थी, टगर ?"

बात सुनकर कुन्ती चौंक उठी।

"मैं ! तुमसे किसने कहा ?" फिर कुछ रुककर कुन्ती ने कहा, "अरे, कहीं नहीं, ऐसे ही।"

"ऐसे ही माने ? आजकल लगता है, सुफल दलाली करने लगा है ! किसी बाबू को फँसाने ले गया था क्या ?"

"हट, दलाली क्यों करने लगा ? मैं उधर से आ रही थी, वह भी आ रहा था, रास्ते में मिल गया। सुफल बड़ा अच्छा आदमी है। बेचारे के माँ-बाप नही हैं। मेरे भी माँ-बाप नहीं हैं।"

गुलाबी के भी माँ-बाप में से कोई नहीं है। हमेशा किसी के भी माँ-बाप नहीं रहते। फिर भी उन्हीं के लिए लोग ज़िन्दगी-भर अफ़सोस करते हैं। कुन्ती तो फिर भी थियेटर में काम कर लेती है। वैसे आजकल उतनी बुलाहट नहीं होती, फिर भी बीच-बीच में थोड़ा पैसा आ ही जाता है। इन लोगों के पास तो वह भी नहीं आता। इन दुलारी और गुलाबी को ही लीजिये। ये लोग कब पैदा हुई, इसका हिसाब किसी के पास नहीं है। जिस दिन मर जायेंगी कोई उसका भी हिसाब नहीं रखेगा। श्मशान के क्लर्क के रजिस्टर में काली स्याही से सिर्फ़ सबका नाम और पता लिखा रहेगा। बाद में वह रजिस्टर भी किसी दिन रद्दी कागज़ों के साथ तुलकर बिक जायेगा। फिर वह कागज़ या तो चूल्हा जलाने के काम आयेगा या लिफाफा बनकर एक दूकान से दूसरी दूकान पर चक्कर काटेगा। तब वे लोग हमेशा के लिए निश्चित हो जायेंगी। और हो सकता है, उसी के बदले किसी पार्क के बीच संगमरमर के सफ़ेद पत्थर का बना शिवप्रसाद गुप्त का स्टैच्यू प्रतिष्ठित होगा जो उस दिन उसे सोने का मैडल देने आया था। हरामज़ादा, सूअर का बच्चा! उसी का लड़का उसी की इज्ज़त लेने के लिए उससे दोस्ती गाँठने आया। उसी के लड़के की शादी हो रही है। काफ़ी बड़े आदमी की लड़की के साथ शादी होगी।

"हाँ री, कुछ मुझसे कह रही थी ?"

गुलाबी को लगा कि टगर उससे कुछ कहना चाहती है।

कुन्ती ने कहा, "कहाँ, नहीं तो !"

कोई कुछ नहीं कह रहा, फिर भी इस संगदिल कलकत्ता के इतने सारे लोगों के बीच वे दोनों एक-दूसरे को बड़ा नज़दीक महसूस कर रही थीं। शायद ज़रा देर बाद ही बस से उतरने पर दोनों एक-दूसरे को देख भी नहीं पायेंगी। कल अगर कुन्ती फिर पद्मरानी के फ़्लैट पर जाती है, तब शायद ज़रा देर के लिए दोनों की मुलाक़ात हो। नहीं तो दोनों के कमरों में बाबू होंगे, दोनों ही थोड़ी देर तक सब-कुछ भूलकर बाबुओं का दिल बहलाने की कोशिश करेंगी। उस समय और किसी की बात दिमाग़ में नहीं आयेगी।

कलकत्ता शहर जैसे चल रहा है, चलता रहेगा। किसी के लिए बैठा नहीं रहेगा। पाप, पुण्य, आनन्द और वेदना सब-कुछ भुलाकर इतिहास सृष्टि करता रहेगा। उसमें कौन मरा, कौन बचा, लेकर वह माथापच्ची नहीं करेगा।

"अरे कुन्ती, क्या खबर है ?"

कुन्ती ने जैसे साँप देख लिया हो।—कौन ? उसका नाम लेकर किसने पुकारा ?

नज़र उठाकर सामने देखा। पाजामा पहने एक छोकरा था। काफ़ी पुरानी जान-पहचान हो, इस तरह उसकी ओर देख रहा था। कुन्ती ने पहचानकर भी न पहचानने का बहाना किया। कितने क्लब, कितने संस्कृति संघ और कितने ऑफिसों के ड्रामों में काम किया है। सभी को क्या याद रखा जा सकता है ?

"कौन हैं आप ?"

गुलाबी भी हैरान रह गयी। टगर को कुन्ती क्यों कह रहा है ?

"मुझे नहीं पहचानतीं ? तुमने हमारे क्लब के नाटक में पार्ट किया था न ! 'रंगमहल' में ओल्ड बालीगंज क्लब का प्ले हुआ था, याद नहीं है ?"

"आप किसको क्या समझ रहे हैं ! मैं तो एक्टिंग कर नहीं पाती।"

"लेकिन तुम्हारा नाम कुन्ती है न ? कुन्ती गुहा ?"

गुलाबी और चुप न रह पायी।

"ओ माँ, यह कुन्ती क्यों होने लगी ! आपको बात करने के लिए और कोई नहीं मिला ? ज़रा खिसककर तो खड़े होइए ! गरदन पर झुके बिना शायद लड़कियों से बात नहीं की जा सकती ?"

रात काफ़ी हो चुकी थी। शायद बस का यह आखिरी ट्रिप था। पैसेन्ज़र थोड़े ही थे। फिर भी बस में जितने मर्द थे, उन्होंने सारा मामला हाथोंहाथ अपने ऊपर ले लिया। "अरे जनाब, इधर चले आइये, काफ़ी जगह खाली पड़ी है, उधर जनानी सीटों पर क्यों लदे पड़ रहे हैं ?"

लेकिन वह लड़का इन लोगों की बात पर कान देनेवाला नहीं था।

"अरे, याद नहीं है हमारे यहाँ 'शेष लग्न' नाटक में तुमने नन्दिता का पार्ट किया था और मैंने सुधामय का पार्ट किया था ! याद नहीं है ?"

कुन्ती ने गुलाबी की ओर देखकर कहा, "देखो न भाई, ये साहब किससे क्या कह रहे हैं। मैंने कब तो नाटक करना सीखा और कब पार्ट ही किया ?"

अन्दर की ओर से एक आदमी आगे की ओर आ गया।

"अरे जनाब, उधर काफ़ी जगह पड़ी है। जाकर बैठ क्यों नहीं जाते? लड़कियों के ऊपर झुके-झुके क्या कर रहे हैं?"

फिर जैसे अचानक शक हुआ। "अरे, शराब भी पी रखी है!"

शराब!

शराब का नाम सुनते ही सारे पैसेन्जर चौंक उठे—"एँ!"

सामने भूत देखकर भी शायद कोई इतना नहीं चौंकता। शराब का नाम सुनते ही सब लोग जैसे भभक उठे।

"कंडक्टर, पकड़कर बस से उतार दो! उतारो!"

"अरे जनाब, आपके क्या हाथ नहीं हैं? गरदन पकड़कर दो धक्के लगाइये न बच्चू को! ज़रा-ज़रा-से छोकरे! शराब पीना सीख गये हैं!"

लेकिन और ज़्यादा नहीं कहना हुआ। लड़के ने ख़ुद ही उतरकर सब लोगों की बेचैनी दूर की। कुन्ती का दिल तब भी धुक्-धुक् कर रहा था। गुलाबी का भी। शराब की बू तो उन लोगों के ही मुँह से आ रही थी। लौंग-इलायची खाने पर भी पूरी तरह से गयी नहीं थी।

कुन्ती के उतरने का समय भी हो आया था। गुलाबी ने पूछा, "कल आ रही है न?"

"तू आ रही है न?"

"आऊँगी नहीं तो कहाँ जाऊँगी, भाई! मरते-मरते भी आना होगा।"

कुन्ती को उतारकर बस दायीं ओर चली गयी। रात की आखिरी बस थी। सड़क खाली हो चुकी थी। वही पान की दूकान अभी तक खुली थी।

"ज़रा दो पान तो देना!"

खाना खाने के बाद कुन्ती पान खाती। शीशे में एक बार अपना चेहरा भी देख लेती। बूड़ी शायद अब तक सो चुकी होगी। बेचारी सारे दिन स्कूल में पढ़ती है, फिर शाम को खाना बनाती है, और उसके बाद ही किताब लेकर फिर पढ़ने बैठ जाती है। सचमुच बूड़ी के लिए इतना पैसा ख़र्च हो रहा है, इतनी मेहनत कर रही है, आख़िर में क्या होगा, कौन जानता है! कौन उससे शादी करेगा? रुपये कहाँ से आएँगे? कम-से-कम तीन हज़ार तो लगेंगे ही। वह तो 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के मालिक की लड़की नहीं है! बूड़ी की शादी होते ही कुन्ती पद्म रानी के यहाँ जाना छोड़ देगी। तब तक उम्र भी काफ़ी हो जायेगी। एक तरह से बूढ़ी

ही हो जायेगी। तब कौन उसे पार्ट करने के लिए बुलाने आयेगा ! वन्दना, श्यामली वगैरह को ही अब कोई नहीं पूछता। पहले इस लाइन में कम लड़कियाँ थीं। इसीलिए कुन्ती की बुलाहट होती थी। अब तो जिसे देखो, नाटक करने चला आ रहा है। लड़कियों का जैसे जमघट लग गया है। इतनी लड़कियाँ और इतने आदमी पता नहीं क्या खाकर पैदा हुए हैं !

घर के दरवाज़े के पास आते ही पता नहीं कैसा खटका-सा लगा। एक बार ठेलते ही ताई ने अन्दर से दरवाज़ा खोल दिया। ताई को देखकर कुन्ती चौंक गयी।

"यह क्या ताई, अभी तक जग रही हैं ?"

ताई ने सुबक-सुबककर रोना शुरू कर दिया।

"सत्यानाश हो गया, बेटी, तुम्हारी बूड़ी को पुलिस ने पकड़ लिया!"

"हैं ! पुलिस ने पकड़ लिया है ? क्यों ? उसने क्या किया था ? कब पकड़ा ?"

इतने सारे सवाल एक साथ कर कुन्ती जैसे हाँफने लगी। ताई रोये या सब-कुछ खोलकर बतलाये, कुछ ठीक नहीं कर पा रही थी।

"आपसे किसने कहा, ताई ?"

"एक आदमी आकर कह गया। हावड़ा-स्टेशन थाने में बन्द कर रखा है। चोरी की थी।"

"क्या चुराया था ?"

"रुपया, बेटी, रुपया ! किसी भले आदमी की जेब से दो हज़ार रुपये निकाल लिये थे। सुनकर मेरे तो हाथ-पैर ठंडे पड़ गये, बेटी ! नींद भी नहीं आती, कुछ भी नहीं। तभी से तुम्हारे लिए जागी बैठी हूँ।"

"अब मैं क्या करूँ, ताई ?"

ताई भी आखिर क्या कहती ! ऐसी बात तो कभी सुनने में नहीं आयी। ऐसी घटना कितनों के साथ घटी है। एक बार कुन्ती को पुलिस ने पकड़ लिया था। उस बार ज़्यादा कुछ नहीं किया। हवालात में बन्द कर दिया। बाद में एक दिन बिना कुछ कहे-सुने छोड़ दिया। लेकिन थाना और पुलिस माने क्या होता है, यह कुन्ती अच्छी तरह से समझ गयी थी। कितनी ही बार आधी रात के समय पुलिसवाले पद्मरानी के फ़्लैट में आ धमकते।

पद्मरानी के फ़्लैट का ध्यान आते ही कुन्ती ने सोचा एक बार पद्मरानी से इस बारे में बात करे क्या ? माँ के साथ पुलिसवालों का बड़ा

रसूख है। ख़बर करके किसी को फ़ोन करवाकर अगर बूड़ी को छुड़वा सके !

"अरे, अब इस समय कहाँ जा रही है तू ?"

कुन्ती उसी हालत में फिर सड़क पर आ गयी। बोली, "ताई, दरवाज़ा बन्द कर लीजिए। मैं एक बार हो आऊँ। देखूँ, अगर कुछ हो जाये तो !"

"तो क्या ऐसे ही जायेगी ? बिना कुछ खाये-पिए ?"

"इस समय मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। बूड़ी बिना खाये बैठी होगी, मैं किस मुँह से खा लूँ !"

इसके बाद सड़क के मोड़ पर आकर टैक्सी पकड़ी। टैक्सी के अन्दर बैठकर बोली, "चलो चितपुर, सोनागाछी !"

☐ ☐ ☐

रात काफ़ी हो चुकी थी। लेकिन पद्मरानी के फ़्लैट में जैसे पूरी गर्मी थी। आँगन से ऊपर दूसरी मंज़िल में हारमोनियम पर गाना चल रहा था : 'चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछी नज़रों से न देख।' सुफल गोश्त की घुघनी की सप्लाई अच्छी तरह से नहीं दे पा रहा था। फूलमाला वाले आकर क़रीब चार-पाँच बार घूम गये थे। पद्मरानी ने अपने निजी स्टॉक से माल सप्लाई करना शुरू कर दिया है।

कुन्ती को इस समय लौटते देखकर पद्मरानी चौंक उठी।

"अरे, बेटी टगर ! इस 'टेम' कैसे ?"

कुन्ती ने बिना किसी भूमिका के कहा, "ग़जब हो गया, माँ ! बूड़ी को पुलिस ने पकड़ लिया है।"

"बूड़ी कौन ? तेरी छोटी बहन न ?"

"हाँ माँ, हावड़ा-स्टेशन पर पता नहीं क्या कर रही थी। मुझे तो घर पहुँचने पर पता चला। मेरी मकान-मालकिन को आकर कोई ख़बर दे गया था कि बूड़ी को हवालात में बन्द कर रखा है।"

"तेरी बहन ने किया क्या था ?"

"मुझे कुछ भी नहीं पता, माँ ! ख़बर मिलते ही मैं तुम्हारे पास दौड़ी आयी हूँ। तुम्हारे साथ तो माँ, पुलिस के कितने सारे लोगों की जान-पहचान है। किसी से कहकर मेरी बहन को छुड़वा दो।"

पद्मरानी जैसे कुछ सोचने लगी। फिर बोली, "पर इत्ती रात में किससे कहूँ ? मेरी कौन सुनेगा ?"

कुन्ती फिर भी मिन्नतें करने लगी। बोली, "जैसे भी हो माँ, तुम

मेरी बहन को छुड़वा दो।"

"पर हावड़ा-पुलिस मेरा कहा क्यों सुनने लगी? मुहल्ले का थाना होता तो कह देती। और इत्ती रात में कौन जगा बैठा होगा, बेटी?"

फिर भी काफ़ी कहने-सुनने पर पद्मरानी ने टेलीफ़ोन का रिसीवर उठाया। बात की। कोई पकड़नेवाला नहीं था। आख़िर किसी ने कह दिया कि कोई नहीं है। झुँझलाकर फ़ोन छोड़कर बोली, "धत्, पहरेदारों को छोड़कर थानेदार सोने चला गया है।"

"तब क्या होगा, माँ?"

"सवेरे कोशिश करके देखूँगी। तू, बेटी, अब जाकर सो रह, नहीं तो बाबुओं को पटा।"

लेकिन कुन्ती जैसे कमर कसकर आयी थी। "नहीं माँ, तुम्हें कुछ तो करना ही होगा। बिना माँ-बाप की मेरी एक ही बहन है। उसके लिए मैंने काफ़ी पैसा ख़र्च किया है। अच्छे घर में शादी करूँगी, सोचकर उसे पढ़ा रही हूँ। मेरा अपना कहने को और है ही कौन, माँ!"

"अच्छा-अच्छा! यह सब छिनालपना छोड़! कौन किसे देखता है, ज़रा सुनूँ? मेरी ख़बर रखने को कितनी बहनें थीं?"

इतनी बातें सुनने का वक़्त कुन्ती के पास नहीं था।

"फिर क्या होगा, माँ?"

"होगा क्या! अपनी बहन को यहाँ लाकर रखेगी? देखती हूँ मुँहजले पुलिसवाले क्या करते हैं! तब तो बड़े ज़ोर-ज़ोर से गला फाड़ रही थी, यहाँ नहीं लायेगी! अब क्या हुआ? तब तो सेठ ठगनलाल तुझे नथ-खुलायी के पचीस हज़ार दे रहा था। अब क्या हुआ? तब मैंने ही तेरे हाथ में पाँच हज़ार रुपये रखे थे। तू ने फटाक से फेंक दिये। कहती थी—रुपयों पर मैं मूतती हूँ! तो अब क्या हुआ? सारी ठसक कहाँ गयी अब? ज़रा सुनूँ? अब तो तेरी बहन को यही संडे छीन-झपटकर खायेंगे। तुम्हारा ख़याल है, पहरेवालों ने क्या उसे अब तक छोड़ रखा होगा?"

"माँ!!"

कुन्ती के मुँह से जैसे अचानक एक टीस निकल गयी। पद्मरानी के गाल पर कसकर एक तमाचा जड़ने की इच्छा हुई। लेकिन तभी कुन्ती ने अपने को सम्हाल लिया।

पद्मरानी तब भी कहे जा रही थी, "कहते हैं न, खुजलाने पर दाद कोढ़ हो जाता है। तेरा भी वही हाल है। तुझसे मैंने कित्ता कहा था—

रसूख है। खबर करके किसी को फ़ोन करवाकर अगर बूड़ी को छुड़वा सके !

"अरे, अब इस समय कहाँ जा रही है तू ?"

कुन्ती उसी हालत में फिर सड़क पर आ गयी। बोली, "ताई, दरवाज़ा बन्द कर लीजिए। मैं एक बार हो आऊँ। देखूँ, अगर कुछ हो जाये तो !"

"तो क्या ऐसे ही जायेगी ? बिना कुछ खाये-पिए ?"

"इस समय मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। बूड़ी बिना खाये बैठी होगी, मैं किस मुँह से खा लूँ !"

इसके बाद सड़क के मोड़ पर आकर टैक्सी पकड़ी। टैक्सी के अन्दर बैठकर बोली, "चलो चितपुर, सोनागाछी !"

□ □ □

रात काफ़ी हो चुकी थी। लेकिन पद्मरानी के फ़्लैट में जैसे पूरी गर्मी थी। आँगन से ऊपर दूसरी मंज़िल में हारमोनियम पर गाना चल रहा था : 'चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछी नज़रों से न देख।' सुफल गोश्त की घुघनी की सप्लाई अच्छी तरह से नहीं दे पा रहा था। फूलमाला वाले आकर क़रीब चार-पाँच बार घूम गये थे। पद्मरानी ने अपने निजी स्टॉक से माल सप्लाई करना शुरू कर दिया है।

कुन्ती को इस समय लौटते देखकर पद्मरानी चौंक उठी।

"अरे, बेटी टगर ! इस 'टेम' कैसे ?"

कुन्ती ने बिना किसी भूमिका के कहा, "ग़ज़ब हो गया, माँ ! बूड़ी को पुलिस ने पकड़ लिया है।"

"बूड़ी कौन ? तेरी छोटी बहन न ?"

"हाँ माँ, हावड़ा-स्टेशन पर पता नहीं क्या कर रही थी। मुझे तो घर पहुँचने पर पता चला। मेरी मकान-मालकिन को आकर कोई ख़बर दे गया था कि बूड़ी को हवालात में बन्द कर रखा है।"

"तेरी बहन ने किया क्या था ?"

"मुझे कुछ भी नहीं पता, माँ ! खबर मिलते ही मैं तुम्हारे पास दौड़ी आयी हूँ। तुम्हारे साथ तो माँ, पुलिस के कितने सारे लोगों की जान-पहचान है। किसी से कहकर मेरी बहन को छुड़वा दो।"

पद्मरानी जैसे कुछ सोचने लगी। फिर बोली, "पर इत्ती रात में किससे कहूँ ? मेरी कौन सुनेगा ?"

कुन्ती फिर भी मिन्नतें करने लगी। बोली, "जैसे भी हो माँ, तुम

मेरी बहन को छुड़वा दो।"

"पर हावड़ा-पुलिस मेरा कहा क्यों सुनने लगी? मुहल्ले का थाना होता तो कह देती। और इत्ती रात में कौन जगा बैठा होगा, बेटी?"

फिर भी काफ़ी कहने-सुनने पर पद्मरानी ने टेलीफ़ोन का रिसीवर उठाया। बात की। कोई पकड़नेवाला नहीं था। आख़िर किसी ने कह दिया कि कोई नहीं है। झुँझलाकर फ़ोन छोड़कर बोली, "धत्, पहरेदारों को छोड़कर थानेदार सोने चला गया है।"

"तब क्या होगा, माँ?"

"सवेरे कोशिश करके देखूँगी। तू, बेटी, अब जाकर सो रह, नहीं तो बाबुओं को पटा।"

लेकिन कुन्ती जैसे कमर कसकर आयी थी। "नहीं माँ, तुम्हें कुछ तो करना ही होगा। बिना माँ-बाप की मेरी एक ही बहन है। उसके लिए मैंने काफ़ी पैसा ख़र्च किया है। अच्छे घर में शादी करूँगी, सोचकर उसे पढ़ा रही हूँ। मेरा अपना कहने को और है ही कौन, माँ!"

"अच्छा-अच्छा! यह सब छिनालपना छोड़! कौन किसे देखता है, ज़रा सुनूँ? मेरी ख़बर रखने को कितनी बहनें थीं?"

इतनी बातें सुनने का वक़्त कुन्ती के पास नहीं था।

"फिर क्या होगा, माँ?"

"होगा क्या! अपनी बहन को यहाँ लाकर रखेगी? देखती हूँ मुँहजले पुलिसवाले क्या करते हैं! तब तो बड़े ज़ोर-ज़ोर से गला फाड़ रही थी, यहाँ नहीं लायेगी! अब क्या हुआ? तब तो सेठ ठगनलाल तुझे नथ-खुलायी के पचीस हज़ार दे रहा था। अब क्या हुआ? तब मैंने ही तेरे हाथ में पाँच हज़ार रुपये रखे थे। तू ने फटाक से फेंक दिये। कहती थी—रुपयों पर मैं मूतती हूँ! तो अब क्या हुआ? सारी ठसक कहाँ गयी अब? ज़रा सुनूँ? अब तो तेरी बहन को यही संडे छीन-झपटकर खायेंगे। तुम्हारा ख़याल है, पहरेवालों ने क्या उसे अब तक छोड़ रखा होगा?"

"माँ!!"

कुन्ती के मुँह से जैसे अचानक एक टीस निकल गयी। पद्मरानी के गाल पर कसकर एक तमाचा जड़ने की इच्छा हुई। लेकिन तभी कुन्ती ने अपने को सम्हाल लिया।

पद्मरानी तब भी कहे जा रही थी, "कहते हैं न, खुजलाने पर दाद कोढ़ हो जाता है। तेरा भी वही हाल है। तुझसे मैंने कित्ता कहा था—

टगर, अपनी बहन को यहीं ले आ, बेटी ! कुछ नगद भी मिल जायेंगे, पेट भी चलेगा। अब ठीक हुआ न ! पेट भी न भरा, बदनामी भी हुई !"

बात करने से पहले ही टेलीफ़ोन की घंटी बज उठी।

"कौन ?"

इतनी पूरी रात को कौन टेलीफ़ोन कर रहा है ? किसे लड़की की ज़रूरत पड़ी ?

नहीं, यह बात नहीं है। ट्रंककॉल है ! पद्मरानी ने गला फाड़कर कहा, "हलो !"

उस ओर से जवाब आया। इंडिया के एक छोर से दूसरे छोर पर ट्रंककॉल आया है।

"सुन्दरियाबाई !"

उधर से सुन्दरियाबाई ने पता नहीं क्या जवाब दिया। और इधर पद्मरानी से पता नहीं क्या बातें होने लगीं। कुन्ती की समझ में कुछ भी नहीं आया। ये सब बातें सुनने में भी अच्छी नहीं लगतीं। वह धीरे-धीरे कमरे से निकल गयी। सड़क ज़रा सूनी हो आयी थी। एक टैक्सी जा रही थी। रोककर कुन्ती उसमें बैठ गयी। फिर दरवाज़ा बन्द कर बोली, "हावड़ा स्टेशन !"...

□ □ □

हिन्दुस्तान पार्कवाले बँगले में बद्रीनाथ बहुत व्यस्त था। शिवप्रसाद बाबू फिर बाहर गये हैं। बूढ़े पैंशन-होल्डर लोग शाम को आकर वापस लौट गये हैं। इसके अलावा शाम से कितने ही टेलीफ़ोन आये। बाबू के घर न होने पर बद्रीनाथ की ही आफ़त आती।

बद्रीनाथ कहता, "बाबू तो बाहर चले गये हैं, आफ़त मेरी आती है।"

टेलीफ़ोन की आवाज़ सुनते ही मन्दाकिनी कहती, "ओ बद्रीनाथ ! ज़रा देख तो, कौन टेलीफ़ोन कर रहा है ?"

बाबू भी घर नहीं रहते। छोटे बाबू भी नहीं हैं। हर काम के लिए बद्रीनाथ का ही आसरा है। बद्रीनाथ कहता, "और नहीं होता, बाबा ! जान ले डाली !"

बद्रीनाथ इस घर में काफ़ी अरसे से है। कब से इस घर का हाल-चाल देख रहा है। वैसे कुंज भी है, लेकिन कामकाज न होने पर कुंज गैरेज में पड़ा-पड़ा सोता रहता है। ज़रा जवाब भी देते नहीं बनता।

मन्दाकिनी ने पूछा, "क्यों रे बद्रीनाथ, बाबू को कौन पूछता था ?"

"बाबू को नहीं, छोटे बाबू को !"

"तूने क्या कहा ?"

"कह दिया, इस समय क्या बाबू घर रहते हैं ? ऑफ़िस चले गये हैं।"

"कौन आया था ?"

"जी, एक औरत थी।"

कुन्ती ने सोचा था, सुबह-सुबह न जाकर ज़रा देरी से जाना अच्छा रहेगा। क्या पता, बड़े आदमी ठहरे। शायद देर से उठते होंगे। लेकिन सदाव्रत इतनी जल्दी ऑफ़िस चला जायेगा, वह नहीं सोच पायी। कुन्ती को सारी रात नींद नहीं आयी थी। पूरी रात चक्कर काटती रही। पद्म-रानी के फ़्लैट से सीधी हावड़ा स्टेशन। वे लोग तो मिलना ही नहीं चाहते थे, लेकिन शायद नसीब अच्छा था। जान-पहचान का आदमी था। जो दारोग़ा ड्यूटी पर था उसने देखते ही कुन्ती को पहचान लिया।

"सुना है आप लोगों ने मेरी बहन को थाने में बन्द कर रखा है ?"

इंस्पेक्टर ज़रा झुँझला उठा। बोला, "लेकिन इस समय ? कल सुबह आइयेगा ?"

कुन्ती ने कहा, "देखिये, मैं भले घर की लड़की हूँ। मेरे माँ, बाप, भाई कोई नहीं है। क्या करना चाहिए वह भी नहीं जानती।"

"जो कुछ जानना चाहें कल सुबह आकर पता लगाइयेगा। इस समय बेकार नींद क्यों ख़राब कर रही हैं !"

"देखिये, मेरी बहन बहुत छोटी है। वह किसी भी तरह चोरी नहीं कर सकती है। ज़रूर ही किसी ने फँसा दिया है।"

पुलिस-इंस्पेक्टर को जैसे अचानक कुछ खयाल आया।

"आप रहती कहाँ हैं ?"

"कालीघाट ! देखिये न, खबर मिलते ही कालीघाट से भागी आ रही हूँ।"

"अच्छा, आपका नाम क्या है ?"

"कुन्ती गुहा !"

अचानक इंस्पेक्टर का चेहरा मुलायम हो गया।

"अरे, आप ड्रामों में पार्ट करती हैं न ? हम लोगों के पुलिस-क्लब में आपने हीरोइन का पार्ट किया था न ?"

अचानक जैसे सब-कुछ याद आने लगा। इतनी देर बाद जैसे कुन्ती को सहारा मिला। कुन्ती के सिर का जूड़ा अचानक खिसककर पीठ पर

आ गिरा। काफ़ी मुश्किल से बार-बार कोशिश कर कुन्ती को यह सब सीखना हुआ था। लेकिन वह सीखना आज यहाँ थाने में काम आयेगा, यह उसकी कल्पना के बाहर की बात थी। फिर बदन में उभार लाकर दोनों हाथ ऊपर कर जूड़ा ठीक करते-करते बोली, "आप ही ने तो हीरो का पार्ट किया था !"

"ख़ूब याद है ! आई० जी० ने आपको मैडल दिया था न ! लेकिन आपकी वहन चोरी करने क्यों गयी ?"

कुन्ती ने कहा, "देखिये, मेरी समझ में कुछ भी ठीक-ठीक नहीं आ रहा है। मैं तो रात-दिन थियेटर-ड्रामा और रिहर्सल में ही फँसी रहती हूँ। उसके लिए मास्टरनी लगायी है। वह तो सारे दिन पढ़ाई-लिखाई करती रहती है। वह यहाँ हावड़ा-स्टेशन पर क्यों आने लगी ! मेरी समझ में नहीं आ रहा। आप मेहरबानी करके उसे छोड़ दीजिये। मैं मारते-मारते उसकी जान ले डालूंगी। लेकिन अगर उसे सज़ा हो गयी तो मैं कैसे मुँह दिखलाऊँगी ? आपके पाँव पड़ती हूँ, मुझ पर रहम खाइये, उसे छोड़ दीजिये !"

"लेकिन अब तो कुछ नहीं हो सकता। डायरी लिखी जा चुकी है।"

"एक बार लिख जाने पर क्या काटा नहीं जा सकता ?"

इंस्पेक्टर ने कुछ सोचा। बचपन से ही नाटक वग़ैरह का शौक था। आज भी इस लाइन के लोगों को देखकर ज़रा रहम आता है।

बोला, "अब तो कुछ भी नहीं हो सकता।"

"कोशिश कर देखिये न, अगर ग़रीब का कुछ भला कर सकें !"

"लेकिन केस काफ़ी उलझ चुका है।"

"क्यों ? उलझन किस बात की ?"

"अरे, इसी पिक-पॉकेटिंग की वजह से कल पुरी-एक्सप्रेस दो घंटे लेट हो गयी थी। हैड ऑफ़िस तक खबर पहुँच चुकी है। सभी को पता लग चुका है। और कम्प्लेन करनेवाला भी कोई ऐसा-वैसा नहीं है, शिवप्रसाद गुप्त का लड़का !"

"कौन ? किसका नाम लिया ?"

"शिवप्रसाद गुप्त ! उन्हीं का लड़का सदाव्रत गुप्त ! आपकी बहन ने उसी की जेब काटी थी। जेब में दो हज़ार रुपये थे, तीन फर्स्ट क्लास के टिकट थे ! पूरे हावड़ा-स्टेशन पर बात फैल गयी थी। ग़रीब होने पर कोई झमेला नहीं था। किसी को कानों-कान खबर तक न लगती। उस हालत में, मैं अपने रिस्क पर आपकी बहन को अभी हाल छोड़ देता। लेकिन

शिवप्रसाद गुप्त के साथ मिनिस्टरों तक का उठना-बैठना है। पता नहीं, कहाँ से रिपोर्ट हो जायेगी, तब ?"

"तब मैं क्या करूँ ?"

"अगर सदाव्रत गुप्त केस 'विदड्रा' कर लें, तब कुछ किया जा सकता है। आपको शिवप्रसाद गुप्त का पता मालूम है ?"

कुन्ती चुप रही। जैसे उसकी जवाब देने की ताक़त भी खतम हो चुकी थी।

"पता नहीं मालूम ? मैं बतलाता हूँ···"

ज़रा रुककर कहा, "अरे, आप बालीगंज में हिन्दुस्तान पार्क जाकर जिससे भी पूछेंगी, वही आपको दिखला देगा। इतने बड़े पॉलिटिकल सफरर ठहरे। सुना है, नेहरूजी से भी गहरी दोस्ती है। यह केस क्या ऐसे ही छोड़नेवाला है ? बाद में हम लोगों की नौकरी पर ही बन आयेगी।"

कुन्ती ने फिर भी कुछ नहीं कहा।

"आप और देर मत करिये। सुबह ही जाकर उनके लड़के से मिलिये। बड़ा भला आदमी है। अगर आप अपनी मुश्किल ठीक से समझा पायेंगी, तब ज़रूर ही काम हो जायेगा। फिर हम लोगों के करने का काम हम लोग करेंगे। वायदा करता हूँ।"

कुन्ती फिर भी चुप रही।

"हाँ, तो इस समय कौन-सा प्ले चल रहा है ?"

उसका सिर जैसे भन्ना रहा था। सिर की आग में जैसे सारा शरीर जला जा रहा था। कुन्ती को लगा, इससे तो स्टेशन पर इंजिन के नीचे सो रहना ज़्यादा अच्छा है। पद्मरानी के फ़्लैट में जाकर अपने कमरे में कड़े से लटककर फाँसी लगा लेना ज़्यादा आसान काम है। इससे सब-कुछ आसान है। उसके सामने जाकर खड़ा होना···नहीं-नहीं ! यह नहीं हो सकता ! जाकर आखिर कहेगी क्या ? माफ़ी माँगेगी ? गाली-गलौज करेगी ? उसके पाँवों में सिर रखेगी ? क्या करने और कहने पर वह माफ़ करने को राजी होगा ?

"देखिये न, कल सदाव्रत बाबू किसी को छोड़ने आये थे। उन बेचारों को भी देर हुई। उफ़, क्या हंगामा हुआ था ! शुरू में तो हम लोगों को पता ही नहीं था कि वह शिवप्रसाद गुप्त के लड़के हैं। बाद में जब उसने आई० जी० को टेलीफ़ोन किया, साउथ ईस्टर्न रेलवे के जनरल मैनेजर को फोन किया, भाग-दौड़ मच गयी। वे लोग कांग्रेसी ठहरे ! उन्हीं लोगों के हाथ में

तो आजकल पावर है। रेलवे भी उन्हीं की है, पुलिस भी उन्हीं की है। अगर वे लोग कहें तो मैं फौरन छोड़ दूँ। मेरा क्या है! अगर आज पंडित नेहरू कहें, जेलखाने में जितने क़ैदी हैं, सभी को छोड़ दो, तो क्या छोड़ न दूँगा ?"

इंस्पेक्टर और भी न जाने क्या-क्या कहने लगा।

रात खत्म होने को थी। पूरी रात ही जैसे कुन्ती के सिर पर से सायँ-सायँ करती गुज़र गयी। लेकिन इतने अत्याचार के बाद भी उसे उन्हीं के सामने सिर नवाना होगा? दुनिया में उन्हीं लोगों की चलेगी? और कुन्ती वगैरह कुछ भी नहीं हैं? कुन्तियाँ अगर मर भी जायें तो कोई पूछने वाला नहीं है। किसी के सिर में दर्द भी नहीं होगा। उन लोगों के लिए दो हज़ार रुपये क्या चीज़ है! और रुपया, टिकट सभी तो वापस मिल गया। फिर भी ज़रा-सा तरस नहीं खायेंगे। कुन्ती को लगा कि बूड़ी अगर उस समय सामने होती तो उसी मोटे रूल से उसका सिर फोड़कर दम लेती। एक बार दराँती से मारकर बूड़ी को बेहोश कर दिया था। बाद में अस्पताल जाकर उसी के लिए खून दिया। अब की बार उसे खत्म करके निश्चिन्त हो जाती। ऐसा मारती कि फिर बचने की कोई उम्मीद ही नहीं रहती। मुँह से ख़ून उगलती-छटपटाती मर जाती। ऐसी लड़की को ज़िन्दा छोड़कर क्या होगा! मर जाये! जेलखाने में सड़ा करे! कुन्ती उसके बारे में सोचेगी भी नहीं। ऐसी बहन के होने से भी क्या फायदा! न होना ही अच्छा है। कुन्ती आज़ादी से घूमेगी!

कुन्ती ने पूछा, "बाबू ऑफ़िस से कब लौटेंगे ?"

बद्रीनाथ ने कहा, "ऑफ़िस से घर तो नहीं लौटेंगे, क्लब जायेंगे। वहाँ से आते-आते रात के दस बजेंगे। आप तभी आयें।"

कहकर कुन्ती के मुँह पर ही धड़ाम से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

□ □ □

केदार बाबू उस दिन वाक़ई काफ़ी परेशान हो गये थे। सिर्फ़ बीस मिनट रह गये हैं। अगर गाड़ी छूट जाये? सदाव्रत कहाँ गया? सभी को पकड़ेगा क्या?

मन्मथ ने समझाने की कोशिश की। बोला, "आप कुछ फ़िक्र न करें। सदाव्रत दा तो देखने गये हैं।"

"लेकिन अगर गाड़ी चल दे? तुम लोग किसी काम के नहीं हो!"

आखिर शशिपद बाबू से नहीं रहा गया, वह सदाव्रत को ढूँढने चल

दिये। और शैल गाड़ी के अन्दर पत्थर का बुत बनी चुपचाप बैठी रही। कहीं कुछ रुक-सा गया था। ज़िन्दगी में पहली बार वह कलकत्ता से कहीं बाहर जा रही थी। वास्तव में वह आज पहली बार गाड़ी पर चढ़ी थी। अब तक ट्रेन उसने सिर्फ़ दूर से ही देखी थी। बागमारी की उस कीचड़ और पोखरों से भरी सुनसान ज़मीन पर आसमान के नीचे यह ट्रेन ही उसकी एकमात्र सहेली थी। उस ट्रेन के साथ ही शैल जगह-जगह घूम आती। उसकी छोटी-छोटी खिड़कियों के साथ जैसे उसकी गहरी दोस्ती हो गयी थी। आज वह उस ट्रेन पर ही चढ़ी है। इस ट्रेन पर ही चढ़कर वह अब बेमतलब मन-माफ़िक घूमेगी। इससे तो खुश होने की ज़रूरत थी। कहाँ पुरी, कैसा वह शहर है ! समुद्र कैसा होता है, उसे तो यह भी नहीं मालूम। फिर भी जैसे लग रहा था इस कलकत्ता की अँधेरी गली का वह गन्दा कमरा ही जैसे उसके लिए अच्छा था। उस कोठरीनुमा कमरे के लिए ही उसका दिल न जाने कैसा हो गया। सारे दिन सामान सहेजती रही, मन्मथ के साथ सारे दिन काम की एक-एक चीज़ बाँधती रही। लेकिन कलकत्ता छोड़कर जाते पता नहीं क्यों दिल टूट-सा रहा था।

और तभी यह गड़बड़ !

हे भगवान, किसी तरह उसका जाना रुक जाय ! डॉक्टर और दवा मिलने पर काका यहीं क्यों ठीक नहीं हो सकते !

"हाँ री शैल, सदाव्रत कहाँ गया ? मन्मथ, तुम उतरकर ज़रा देखो न। कोई किसी मतलब का नहीं है, सब-के-सब कामचोर हैं ! तुम्हें साथ ले जाकर देखता हूँ काफ़ी मुश्किल में पड़ना होगा !"

"मेरे उतरते ही अगर गाड़ी छूट जाये ?"

"छूटेगी कैसे ? कोई मज़ाक है ? टिकट के पैसे नहीं दिये हैं ? मुफ्त में जा रहे हैं ?"

"लेकिन टिकट तो चोरी चले गये !"

"तुम तो हर बात में बहस करते हो ! टिकट चोरी जाने से क्या हुआ, रेलवे ऑफ़िस में रिकॉर्ड नहीं है ? हम लोगों के नाम सीटें रिज़र्व नहीं हैं ? अँधेर समझ रखा है क्या ? गवर्नमेंट ऑफ़िसर चोर हैं तो क्या दिन-दहाड़े डकैती करेंगे ?"

फिर जैसे ख़याल हुआ कि दूसरे का आसरा देखना बेकार है। बोले, "कोई किसी मतलब का नहीं है, देखता हूँ मुझे ही उतरना होगा।"

कहकर जल्दी से उतरने जा रहे थे, शैल ने हाथ पकड़ लिया। उसने

कहा, "काका, तुम समझते क्यों नहीं हो ?"

"मैं समझता नहीं हूँ माने ? सदाव्रत कहाँ गया देखना नहीं होगा ? वह बेचारा हम लोगों के लिए इतना कर रहा है, इसकी कोई क़ीमत ही नहीं है ? मेरे ऊपर खर्च करने की उसे क्या पड़ी है ? वह कौन है मेरा ? वह किसी मुश्किल में तो नहीं पड़ा, देखना नहीं होगा ?"

तब तक सभी लोग ट्रेन से उतरकर प्लेटफ़ॉर्म पर जमा हो गये थे। सभी की ज़बान पर एक ही सवाल था—ट्रेन कब छूटेगी, कौन पकड़ा गया, इतनी देर तक ट्रेन किसके लिए रुकी है ?

लेकिन उस दिन सदाव्रत का पारा जितना चढ़ गया था, और कभी वैसा नहीं हुआ। जी० आर० पी० के ऑफ़िस में उस दिन सदाव्रत का चेहरा जिसने नहीं देखा वह कल्पना भी नहीं कर पायेगा।

पुलिस-ऑफ़िसर ने सिर्फ़ इतना ही कहा, "तो आपका मतलब है आपकी तीन टिकटों के लिए इतने पैसेन्जर सफर करेंगे ?"

सदाव्रत ने कहा, "जिससे सफर न करें वही करिये !"

"लेकिन हम पुलिसवालों का भी तो कोई क़ानून है ?"

"पुलिस का क़ानून क्या पब्लिक को तकलीफ़ देने के लिए है, या उनकी मदद करने के लिए है, पहले तो यही बतलाइये ?"

आखिर पुलिस-ऑफ़िसर के धैर्य का बाँध टूट गया। उसने कहा, "देखिये, मुझे आपसे क़ानून नहीं पढ़ना है ! आप यहाँ से जाइये !"

"ठीक है, अपना टेलीफ़ोन मुझे दीजिये, मैं आप लोगों के सुपरिन्टेंडेंट से बात करूँगा।"

कहकर ख़ुद ही फ़ोन उठाकर सुपरिन्टेंडेंट की लाइन माँगी। लेकिन वह नहीं थे। उस समय वह शायद क्लब, होटल या किसी पार्टी में गये थे। फिर टेलीफ़ोन किया आई० जी० को। वह भी नहीं थे। फिर किया रेलवे के डी० टी० एस० को। वह भी नहीं मिले। आख़िरकार जनरल मैनेजर को फ़ोन किया। सदाव्रत ने जनरल मैनेजर को भी सावधान कर दिया—"आप अगर कोई स्टेप नहीं लेंगे तो मैं रेलवे बोर्ड को फ़ोन करूँगा। अगर उससे भी कोई स्टेप नहीं लिया जाता तो मैं रेलवे-मिनिस्टर को फ़ोन करूँगा। उससे भी अगर कोई फ़ायदा न हुआ तब मैं चैन खींचूंगा ! आप लोग मुझे अरेस्ट कीजिये। आई वान्ट दैट !"

केदार बाबू वहीं खड़े-खड़े देख रहे थे और हिस्ट्री से मिला रहे थे। चारों ओर भीड़ थी। अप-डाउन हावड़ा-स्टेशन की सारी ट्रेनें उस

दिन 'अपसेट' हो गयी थीं। शशिपद बाबू, केदार बाबू, सभी सदाव्रत को देखकर हैरान खड़े थे। पैसे ख़र्च कर, लाइन में धक्का-मुक्की करने के बाद इतनी मुश्किल से कराया रिज़र्वेशन क्या यों ही जायेगा? इंडियन रेलवे इंडिया के प्रधानमन्त्री अथवा जनरल मैनेजर की निजी सम्पत्ति नहीं है। यह जनता की है। इसकी बुराई-भलाई 'इंडियनों' की बुराई-भलाई है। अमेरिका जब आज़ाद हुआ, तब वहाँ के 'डिक्लेरेशन ऑफ़ इंडिपेंडेन्स' में आम जनता के अधिकारों की बात लिखी गयी। इतिहास में पहली बार जन-साधारण को मान्यता मिली। लिखा गया: 'वी होल्ड दीज़ ट्रू्थ्स टु बी सेल्फ-एवीडेन्ट: दैट ऑल मैन आर क्रीएटेड ईक्वल; दैट दे आर एण्डोउड बाई देयर क्रीएटर विद सर्टन अनेलियनेबल राइट्स; दैट एमंग दीज आर लाइफ़, लिबर्टी, एण्ड द परस्यूट ऑफ़ हैपीनेस; दैट टु सीक्योर दीज़ राइट्स, गवर्नमेंट्स आर इन्स्टीट्यूटिड अमंग मैन, डिराइविंग देयर जस्ट पॉवर्स फ़ॉम द कन्सेन्ट ऑफ़ द गवर्न्ड; दैट ह्वेनएवर एनी फ़ॉर्म ऑफ़ गवर्नमेंट बिकम्स डिस्ट्रक्टिव ऑफ़ दीज़ एण्ड्स, इट इज़ द राइट ऑफ़ द पीपुल टु आल्टर ऑर टु एबॉलिश इट एण्ड टु इन्स्टीट्यूट न्यू गवर्नमेंट, लेइंग इट्स फाउण्डेशन ऑन सच प्रिंसिपल्स एण्ड ऑर्गनाइज़िंग इट्स पॉवर्स इन सच फ़ॉर्म, एज़ टू देम शैल सीम मोस्ट लाइकली टु इफेक्ट देयर सेफ्टी एण्ड हैपीनेस...बट ह्वेन ए लोंग ट्रेन ऑफ़ एब्यूज़ेज़ एण्ड युज़रपेशन्स, परस्युइंग इनवैरिएबली द सेम ऑब्जेक्ट—इविन्सेज़ ए डिज़ाइन टु रिड्यूस देम अण्डर एब्सोल्यूट डेस्पोटिज्म, इट इज़ देयर राइट, इट इज़ देयर ड्यूटी, टु थ्रो ऑफ़ सच गवर्नमेंट एण्ड टु प्रोवाइड न्यू गार्ड्स फ़ॉर देयर फ्यूचर सेफ्टी।'

सदाव्रत ने कहा, "हमारी ही सरकार, हमारी ही पुलिस—आप लोगों के जी में जो आये, मैं वह नहीं करने दूँगा! आप अपराधी को लॉक-अप में बन्द कर मेरा पर्स, मेरी टिकटें वापस करिये!"

शशिपद बाबू ने कहा, "सर, पता है, यह कौन हैं? यह शिवप्रसाद गुप्त के लड़के हैं, इनका नाम सदाव्रत गुप्त है। यह केस पार्लियामेंट तक जायेगा, मैं कहे देता हूँ। पंडित नेहरू शिवप्रसाद गुप्त के पर्सनल फ्रेंड हैं।"

साथ ही जैसे जादू का-सा असर हुआ। पुलिस इंस्पेक्टर के चेहरे का भाव बदल गया। उठकर बोला, "आप खड़े क्यों हैं, बैठिये न!"

१७८१ में अमेरिका की आज़ादी के आठ साल बाद ही सन् १७८९ में फ्रांस में राज्यक्रान्ति हुई। हम चर्च नहीं मानेंगे, पुरोहित और पण्डों को नहीं मानेंगे; रायसाहब, रायबहादुर, पद्मश्री और पद्मविभूषण को नहीं

मानेंगे। हम सिर्फ़ एक बात मानेंगे—"मैन आर वॉर्न एण्ड रिमेन फ्री एण्ड ईक्वल इन राइट्स। लॉ इज़ द एक्सप्रेशन ऑफ़ द जनरल विल। ऑल सिटीज़न्स हैव द राइट टु टेक पार्ट पर्सनली ऑर बाई देअर रिप्रिजेण्टेटिव्स इन इट्स फॉरमेशन। नो मैन कैन बी एक्यूज्ड, अरेस्टेड ऑर डिटेण्ड एक्सेप्ट इन द केसिज़ डेटरमाइन्ड बाई द लॉ एण्ड एकोर्डिग टु द फॉर्म्स इट हैज़ प्रिस्क्राइब्ड। प्रॉपर्टी बींग ए सैक्रिड एण्ड इनवाओलेबल राइट्स, नो वन कैन बी डिप्राइव्ड ऑफ़ इट अनलेस ए लीगली एस्टेबलिश्ड पब्लिक नेसेसिटी एवीडेंटली डिमाण्ड्स इट अण्डर द कंडीशन ऑफ़ ए जस्ट एण्ड प्रायर इण्डेमनिटी।"

केदार बाबू सब देख रहे थे और मन-ही-मन हिस्ट्री के साथ मिला रहे थे। अमेरिका में डिक्लेरेशन ऑफ़ इंडिपेंडेन्स और फ्रेंच-रिवोल्यूशन के बाद तो दरबार में आम जनता की पूछ बढ़ गयी। लेकिन इंडस्ट्रिअल-रिवोल्यूशन के बाद सब गोलमाल हो गया। कागज़ आया, प्रेस आया, टाइपराइटर और नोट छापने की मशीन आयी, कपड़ा बुनने की मशीन आयी, मोटर कार और हवाई जहाज़ आये। राजा की जगह बड़े आदमी आये। आम जनता फिर से नौकर की नौकर रह गयी। आदमी को फिर नये सिरे से नयी जाति-पूँजीपतियों की गुलामी करनी पड़ी। उसके बाद ही आयी लड़ाई। उसके बाद ही एक और समस्या आ खड़ी हुई। तब सभी कहने लगे। 'गवर्नमेंट इज़ ऑफ़ द रिच, बाई द रिच एण्ड फॉर द रिच।'

केदार बाबू ने इतनी देर बाद मुँह खोला, "मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था, सदाव्रत, लेकिन तुमने मेरी बात नहीं मानी।"

सदाव्रत पसीने से तर हो रहा था। घूमकर पूछा, "क्या कह रहे थे ?"

केदार बाबू ने कहा, 'तुम्हें कुछ भी याद नहीं रहता—तुमसे कहा नहीं था फ्रांस में १८८२ में लुई ब्लान्क ने यही बात कही थी—गवर्नमेंट इज़ ऑफ़ द रिच, बाई द रिच एण्ड फॉर द रिच।"

"आप रुकिये तो !"

"रुकूँ क्यों ? मैंने क्या ग़लत कहा है ? हिस्ट्री की किताब नहीं लाया हूँ, नहीं तो तुम्हें दिखलाता।"

कहकर अचानक बूढ़ी की ओर घूमकर ज़रा नीचे झुके। फिर पूछा, "अच्छा बेटी, बतलाओ तो, तुमने आखिर चोरी क्यों की ?"

शायद पुलिस-इंस्पेक्टर ही आपत्ति करता। लेकिन तभी ऊपर के हलके से फ़ोन आ गया। मनीबैग, मनीबैग के रुपये और टिकट वगैरह का

पूरा ब्यौरा रखकर जिसकी चीज़ है उसी को लौटा दो। ट्रेन अभी छोड़नी होगी। और ज़रा भी देर नहीं होनी चाहिए।

उस दिन हावड़ा-स्टेशन से पुरी-एक्सप्रेस दो घंटे लेट छूटी।

जी० आर० पी० थाने के इंस्पेक्टर ने डायरी में नोट किया, 'ए केस ऑफ़ पिक-पॉकेटिंग ऑफ़-डेयरिंग नेचर।'

उसके बाद थाने के लॉक-अप में अपराधी को बन्द करके कांस्टेबल ने दरवाज़े पर ताला लगा दिया। अपराधी के रोने की आवाज़ अब बाहर से सुनायी नहीं दे रही थी। इंस्पेक्टर ने निश्चिन्त मन से एक सिगरेट सुलगायी। एव्रीं थिंग ऑलराइट इन द स्टेट ऑफ़ डेनमार्क !

□ □ □

दूसरे दिन सुबह ही ट्रेन के पुरी पहुँचने की बात थी। पहुँची भी होगी। सदाव्रत हमेशा की तरह जल्दी ही उठा था। उसके बाद आदत के अनुसार घड़ी देखी। कलकत्ता शहर की सुबह रात के बारह बजने के बाद शुरू होती है। और रात के बारह बजने के साथ-ही-साथ रात खत्म होती है। रात के बारह बजे ही ख़बरें आतीं। मैक्सिको, पेरू, न्यूयॉर्क, लन्दन, बम्बई और दिल्ली की ख़बरें। ये ही ख़बरें रोटेरी मशीन में छापकर ठीक समय पर घर-घर पहुँचा दी जातीं। सुबह पांच बचे उठते ही सुबह के ब्रेकफास्ट की टेबल पर वह अख़बार हाज़िर रहता। न्यूयॉर्क के बुलियन मार्केट का लेटेस्ट भाव सुबह उठते ही मिलना चाहिए। मद्रास टर्फ क्लब की लास्ट रेस का हाल जाने बिना भी काम नहीं चलेगा। ऑयरन, स्टील, जूट, एल्यूमिनियम, सारे शेयरों का पूरा-पूरा हाल जाने बिना ब्रेकफास्ट हजम नहीं होगा। शेयर-मार्केट और रेस ये दोनों देखने के बाद आती पॉलिटिक्स। कहाँ पर किस मिनिस्टर ने क्या लेक्चर दिया। कौन डिप्टी मिनिस्टर किस देश में स्टेट-विजिट पर गया। किस गवर्नर ने कहाँ पर कौन-सी कांफ्रेंस ओपन की। यह सब सुबह ही जानना ज़रूरी होता है। इसके बिना तुम बैक-डेटेड हो। सोलह नये पैसे का टैक्स दिये बिना तुम्हें दुनिया का कल्चर्ड आदमी नहीं माना जायेगा। इसके बाद तुम्हें खाना मिलता है या नहीं यह देखना हमारा काम नहीं है। तब तुम अपना हाल खुद समझो।

मिस्टर बोस काफ़ी सालों से सुबह का वक्त इसी तरह काटते आ रहे हैं। उनकी उन्नति के पीछे भी यह अख़बार ही है। सोलह पैसे टैक्स देते-देते आज वह सोलह मिलियन रुपये के मालिक हैं। जब देखा बुलियन मार्केट गिरा है, खरीद लेते। उन्होंने राजनैतिक दूरदृष्टि पायी

थी, इसीलिए कभी धोखा नहीं खाया। पॉलिटिकल लीडरों से जान-पहचान कर रखी है। लेटेस्ट ख़बरें रखते। और हिसाब लगाकर रुपया इनवेस्ट किया है। किसके जमाई को नौकरी देने से इनवेस्टमेंट सेंट-परसेंट प्रॉफ़िट में आयेगा, किसके लड़के को प्रमोशन देने से स्टील का परमिट मिलने में आसानी होगी, यह सब इन अख़बारों की बदौलत ही किया है। इस मामले में उन्हें कोई धोखा नहीं दे सकता।

उनका कहना है, "ब्लड में कोई डिफेक्ट होने पर आदमी या तो पोयट होता है या फ़िलॉसफर हो जाता है।"

वह कहते, "जिसस क्राइस्ट के ख़ून में ज़रूर कोई ख़राबी थी, गांधीजी का भी वही हाल था···"

वह कहते, "असली आदमी वही है, जो सक्सेसफुल है, बाकी सब एनिमल होते हैं।"

कलकत्ता के सारे आम लोगों को वह जानवर ही मानते थे। जैसे पेड़-पौधे के सूख या मर जाने पर किसी को ख़ास चिन्ता नहीं होती, उसी तरह आम लोगों के जीने-मरने से उन्हें कोई मतलब नहीं था। जिन अख़बारों में आम लोगों के दुःख-सुख की कहानी होती, या भूखों मरते लोगों की या किसी नौजवान की आत्महत्या करने की कहानी होती, या तनख्वाह बढ़ाने के लिए स्ट्राइक की ख़बरें होतीं, इन ख़बरों की ओर वह देखते भी नहीं थे। उनका सेक्रेटरी सिर्फ़ आइज़नहॉवर, चर्चिल, नेहरू, कृष्णमेनन, अतुल्य घोष, बी० सी० राय और प्रफुल्ल सेन की ख़बरें पढ़कर सुनाता।

सेक्रेटरी अगर पूछता, "कलकत्ता में कल एक एक्सिडेंट हो गया, पढ़ूँ, सर ?"

"कैसा एक्सिडेंट ?"

"एक रिफ़्यूजी-गर्ल को गुंडों ने ले जाकर 'रेप' किया।"

मिस्टर बोस को यह सब अच्छा नहीं लगता। कहते, "लीव इट, यह रहने दो—और क्या है ? ह्वाट नेक्स्ट ?'

"सर, विजयलक्ष्मी की एक लड़की की कल शादी हुई है—पढ़ूँ ?"

"यस, यस, यू मस्ट, कहाँ पर ? किसके साथ ? इनवाइटेड गेस्ट कौन-कौन थे ?"

सुबह के वक़्त यह अख़बार और दोपहर को फैक्टरी—एक-न-एक झंझट लगा ही रहता है। फिर रात। रात होती है सब-कुछ भूल जाने के

लिए। रिलेक्स करने के लिए। जिसके लिए था क्लब, अलकोहल और नींद की गोलियाँ। क्रॉसवर्ड पज़ल्स,'रीडर्स डाइजेस्ट' और 'ईव्स वीकली' से मन भुलाना होता।

पिछले दिन डिनर के समय सदाव्रत नहीं आ पाया था। क्लब भी नहीं आया।

"क्यों ? क्यों नहीं आया ?"

"कह रहा था कोई काम था।"

"क्या काम ? उसे कौन-सा काम हो सकता है ? मनिला, तुमने उसे क्यों छोड़ा ? ऑफ़िस के अलावा उसे और कौन-सा काम है ? और काम होने पर भी तुम्हें साथ-साथ रहना चाहिए। तुम्हें भी मालूम होना चाहिए सदाव्रत कहाँ जाता है। तुमने पूछा नहीं, उसे क्या काम था ?"

दूसरे दिन ऑफ़िस पहुँचते ही मिस्टर बोस ने सदाव्रत को बुला भेजा।

"कल तुम कहाँ गये थे ?"

सुनकर सदाव्रत को बड़ा अजीब लगा। उसे क्या रोज़ इसी तरह कैफ़ियत देनी होगी !

"मनिला कह रही थी कल तुम क्लब नहीं गये ?"

"कल हावड़ा-स्टेशन गया था कुछ लोगों को सी-ऑफ़ करने।"

"ओह, वही तो सोच रहा था। तुम नहीं गये। मनिला को बड़ा लोनली लग रहा था। तुम्हें तो मालूम ही है मनिला बड़ी सेन्सेटिव लड़की है, वेरी टची—हाँ सो, आज क्लब जा रहे हो न ?"

"हाँ।"

इसी का नाम शायद नौकरी होता है। इसी नौकरी के लिए शम्भू, विनय वगैरह उससे जलते हैं। यह नौकरी है इसीलिए समाज में उसकी इतनी इज्जत है। सभी जानते हैं सदाव्रत गुप्त गाड़ी ड्राइव करके ऑफ़िस जाता है। उसे बस और ट्राम में झूलते हुए नहीं जाना होता। सभी उसकी आर्थिक अवस्था जानते हैं। लेकिन मैनेजिंग डायरेक्टर के रूप में जाकर उसे जो यह कैफ़ियत देनी होती है, यह कोई नहीं जानता। किसी को नहीं पता कि मैनेजिंग डायरेक्टर की लड़की को लेकर उसे रोज़ शाम घूमने जाना होता है। उसकी लड़की के कुत्ते को प्यार करना होता है। नौकरी मंजूर करते ही उसकी सारे दिन की आज़ादी गयी। अब शाम के वक़्त की आज़ादी भी गयी। पहले वह इस समय गाड़ी को कहीं पार्क कर सड़कों पर चक्कर काटता था। घूम-घूमकर इन्सानों को देखता। सड़कों पर धक्कम-

धक्का करती लोगों की भीड़, छोटे-छोटे कमरे, छोटे-छोटे आकार। बन्द और घुटन-भरे कमरों में बैठे रहने के कारण इन लोगों का दम अटकने लगता था। तब साड़ी-ब्लाउज़ और ट्राउजर शर्ट पहनकर सड़क पर खुली हवा के लिए निकल पड़ते। ख़ुद को दिखलाते और दूसरों को भी देखते। तभी मनिला को बग़ल में बैठाकर सदाव्रत को घूमने निकलना पड़ता।

चलते-चलते किसी दिन सदाव्रत पूछता, "आज किस ओर चलना है ?"

मनिला किसी दिन कहती, "चलो, न्यू-मार्केट चलें।"

या कहती, "चलो, लेक चलते हैं।"

गाड़ी के टैंक में काफ़ी पेट्रोल है, जेब में पैसा और सामने न ख़त्म होनेवाले मौक़े। मनिला की आस नहीं मिटती। देखकर या दिखलाकर किसी तरह भी आस नहीं मिटती। सिर्फ़ लगता जैसे दुनिया हाथ में से फिसलकर भाग रही है। दुनिया में से सब-कुछ निचोड़कर, उसमें का सब लेकर तब छोड़ो।

उसके बाद सिनेमा है। अमेरिका में मैन्यूफैक्चर किया हुआ और हाथ में आया, यौवन यों ही निकलने नहीं दिया जा सकता। कहती, "चलो, 'मेट्रो' चलें।"

फिर जैसे इन सारी चीज़ों से मनिला ऊब उठती। तब फिर क्लब। क्लब पहुँचकर फिर वही किटी, वही ड्राई जिन और···

मनिला कहती, "कलकत्ता अब और अच्छा नहीं लगता।"

सदाव्रत पूछता, "क्यों ? अच्छा क्यों नहीं लगता ?"

मनिला कहती, "न एक भी अच्छी पिक्चर आ रही है, न कोई पार्टी ही हो रही है—लाइफ़ डल हो गयी है !"

इसका शायद कोई अन्त नहीं है। इसी अच्छे न लगने का। आजकल मनिला को 'पेगी' भी अच्छा नहीं लगता।

सदाव्रत कहता, "तब तो किसी दिन मैं भी तुम्हें अच्छा नहीं लगूँगा ?"

"मुझे कुछ भी ज्यादा दिनों तक अच्छा नहीं लगता। मेरे लिए सब-कुछ दो दिन में ही पुराना हो जाता है। मैं क्या करूँ, कहो ?"

"तब क्यों बेकार के लिए मुझसे शादी कर रही हो ?"

"शादी करने पर सारी ज़िन्दगी क्या अच्छा भी लगना होगा ? ऐसा क्या कोई कांट्रेक्ट है ?"

"तब तो तुम से शादी करना मुसीबत मोल लेना है !"

मनिला हँस पड़ी, "वाह, माँ ने भी तो डैडी से शादी की है, लेकिन माँ को तो डैडी ज़रा भी पसन्द नहीं हैं। सारे दिन दोनों लड़ते हैं, डैडी जिस घोड़े पर बाज़ी लगाने को कहते हैं, माँ उस पर कभी बाज़ी नहीं लगातीं।"

"अपनी माँ और डैडी की बात जाने दो। तुम तो इस युग की हो!"

"लेकिन मैंने तो कहा न कि मैं क्या करूँ? मेरे लिए सब चीज़ें पुरानी हो जाती हैं, इसीलिए बीच-बीच में डैडी के साथ कुछ दिनों के लिए बाहर चली जाती हूँ। और कभी-कभी तो यह इंडिया भी पुरानी हो जाती है।"

सदाव्रत पूछता, "क्यों, पुरानी क्यों हो जाती है, कभी सोचकर देखा है?"

"वह सब नहीं सोचती। लेकिन अच्छा नहीं लगता। कुछ भी अच्छा नहीं लगता। ड्रिंक करती हूँ लेकिन ड्रिंक करने पर पहले जितना अच्छा लगता था, अब उतना अच्छा नहीं लगता। अब तो आदत पड़ गई है इसीलिए ड्रिंक करती हूँ!"

फिर ज़रा रुककर पूछने लगी, "लेकिन बतला सकते हो, ऐसा क्यों होता है?"

सदाव्रत कहा, "कहूँ?"

"सच बतलाओ न?"

"तुम्हें खराब तो नहीं लगेगा?"

"नहीं!"

सदाव्रत ने कहा, "ज्यादा पैसा होने पर ऐसा ही लगता है। तुम्हारे डैडी के पास कम पैसा होता तो तुम्हारे लिए अच्छा होता, तुम्हारी माँ के लिए भी अच्छा होता। डैडी और माँ में झगड़ा नहीं होता।"

"लेकिन मैं ग़रीबों को तो देख भी नहीं पाती। देखने पर घृणा होती है।"

"क्यों, घृणा क्यों होती है? तुमने कभी ग़रीब देखे हैं?"

"देखे हैं, अपनी आया को देखा है। बड़ी ग़रीब है बेचारी। मुझसे देखा नहीं जाता।"

सदाव्रत ने कहा, "चलो, तुम्हें ग़रीबों की बस्ती दिखला लाऊँ?"

कहकर सदाव्रत ने गाड़ी घुमा दी। "इसका नाम है टालीगंज। देखो कैसे छोटे-छोटे कमरे हैं! यहाँ एक कमरे में छः-सात लोग सोते हैं। ज़रा यहाँ के लोगों की ओर देखो। ये भी इसी कलकत्ता के आदमी हैं। ये भी

टैक्स देते हैं। तुम्हारी ही तरह टैक्स। लेकिन सरकार ने जो सुख और सुविधाएँ तुम्हें दे रखी हैं, इन्हें नहीं देती। इन लोगों की भी शादी होती है, इन लोगों के भी बाल-बच्चे होते हैं, इन्हें भी प्यार करना आता है, ये भी तुम्हारी और मेरी तरह आदमी हैं!"

मनिला ने ज़िन्दगी में कभी भी यह कलकत्ता नहीं देखा था। उसने देखी है चौरंगी, पार्क कॉर्नर और एल्गिन रोड। और देखी है न्यू मार्केट। इसके अलावा ग्रांड, ग्रेट ईस्टर्न और स्पेन्सर्स होटल देखा है। लेकिन कालीघाट नहीं देखा, बहुबाजार नहीं देखा, चित्पुर या जोड़ासाँकी भी नहीं देखा है।

"वे लोग कौन हैं? वे सब लड़कियाँ खड़ी हैं न?"

"वे लोग हैं प्रॉस्टीटच्यूट्स। उन्हें वेश्या कहते हैं। रुपये के लिए ये लोग अपना शरीर बेचती हैं।"

मनिला ने सिर ज़रा झुकाकर फिर से अच्छी तरह देखा। चेहरे पर रंग पोते घर के बरामदे में सड़क की ओर ताकती खड़ी थीं।

"हाऊ फनी! लेकिन ये लोग तो शादी भी कर सकती हैं!"

"इन लोगों की शादी नहीं होती।"

"क्यों नहीं होती?"

सदाव्रत ने कहा, "इन लोगों को पोसे बिना सरकार बेकार जो हो जायेगी!"

"क्यों?"

"वह सब जानने की तुम्हें ज़रूरत नहीं है। उधर देखो, अफ्रीका के जंगल में भी लोग इससे अच्छी तरह रहते हैं।"

"ये लोग इतने गन्दे कपड़े क्यों पहनते हैं? ये लोग अपने कपड़े ड्राई-क्लीनिंग के लिए क्यों नहीं देते?..."

सदाव्रत रोज़ इसी तरह कलकत्ता दिखलाने लगा। पूछा, "और देखना है?"

"यह भी कलकत्ता है?"

"अगर और देखना चाहो तो दिखला सकता हूँ। देखोगी यह कलकत्ता अरेबियन नाइट्स से ज्यादा इन्टेरेस्टिंग है। तुम्हारी तरह चाऊ-एन-लाई, ख्रुश्चेव, क्वीन एलिज़ाबेथ ने भी कलकत्ता आकर इस कलकत्ता को नहीं देखा। तुम लोगों को यह कलकत्ता देखना नहीं चाहिए। तुम्हारे डैडी ने भी इसीलिए तुम्हें यह कलकत्ता नहीं दिखलाया।"

"लेकिन इसे देखने में मेरा लाभ ही क्या है?"

"जिस देश में तुम पैदा हुई हो, उसी को नहीं देखोगी ? तुम्हारे घर जो अखबार आते हैं उनमें भी तो इस कलकत्ता की कोई खबर नहीं होती। तुम जो 'रीडर्स डाइजेस्ट' पढ़ती हो, 'ईव्स वीकली' पढ़ती हो, उनमें भी इन आदमियों के बारे में कुछ नहीं होता।"

"चलो-चलो, इन गरीबों को देखते-देखते मेरा तो सिर घूमने लगा, आज लगता है दो पैग जिन लेनी होगी। यह सब क्यों दिखलाया मुझे ? यहाँ इतना धुआँ, इतनी कीच और घुटन है, यहाँ भी क्या कोई रह सकता है ?"

"तुमने भी खूब कहा ! कलकत्ता से तुम्हारा जी भर गया था इसीलिए दिखलाया। कल और भी कई जगह दिखलाऊँगा। दिखलाऊँगा, किसके पैसे से कलकत्ता की सड़कें तैयार हुई हैं, किसकी बनायी सड़क पर हम गाड़ी ड्राइव करते जाते हैं, उन सब लोगों को भी दिखलाऊँगा।"

"देखती हूँ तुम बहुत ही बड़े-आदमी-हेटर हो। डैडी क्या इन लोगों को ठगकर बड़े आदमी बने हैं ?"

इस बात का जवाब दिये बिना सदाव्रत ने कहा, "चलो, और नहीं, अब क्लब चलो, यह सब तुम्हारे देखने लायक जगह नहीं है, किसी के भी देखने लायक नहीं है। चाऊ-एन-लाई, ख्रुश्चेव, क्वीन एलिज़ाबेथ, आइज़नहावर और कैनेडी, जो कोई भी कलकत्ता आयेगा, उन्हें हम लोग यह सब नहीं दिखलाएँगे। देखने पर वे लोग हमें ग़रीब समझेंगे, हम लोगों के ऊपर तरस खायेंगे। सोचेंगे, इन तेरह-चौदह सालों में कांग्रेस ने देश का कोई भी काम नहीं किया। इससे तो हम उन्हें चण्डीगढ़ दिखलायेंगे, भाखरा नंगल, हीराकुड और डी० वी० सी० दिखलायेंगे। राजघाट ले जाकर गांधीजी की समाधि पर दो सौ रुपये की फूलमाला चढ़वाकर फ़ोटो लेंगे। फिर उसी फ़ोटो को फ्रेम में मढ़वाकर अपने कमरे में टाँगेंगे। सभी को दिखलाकर कहेंगे—'देखो, सब लोग इंडिया के कितने अच्छे दोस्त हैं !'

☐ ☐ ☐

"आज तुम लोग किस ओर गये थे ?"

डिनर के बाद चुरुट में कश लगाते-लगाते मिस्टर बोस ने गॉस्सिपिंग शुरू की।

यह रोज़मर्रा की बात है। सिर्फ़ कल हावड़ा-स्टेशन जाने की वजह से नागा हो गयी। यहाँ से सदाव्रत सीधा जायेगा और सो जायेगा।

मिस्टर बोस ने कहा, "पेपर में आज देखा मिसेज़ पंडित की लड़की

की शादी हुई है, 'कैलकटे' से कौन-कौन इनवाइट हुआ था, तुम्हें पता है न ?"

१७८१ में अमेरिका में नागरिकों को पहली बार अधिकार मिले, मान्यता मिली। फिर फ्रांसीसी-विद्रोह के समय वहाँ के राजा और राजवंश के लोगों को हमेशा के लिए इस दुनिया से विदा लेनी हुई थी। सबसे ऊपर इन्सान ही सच है—यह बात मान ली गयी थी। लेकिन मशीनों के आविष्कार के साथ-ही-साथ वे लोग जैसे क़ब्र से उठकर आ गये। वे लोग मरे नहीं थे। लुई द फोर्टीन मरकर फिर से रॉकफेलर, हेनरी फ़ोर्ड, बिड़ला, गोयन्का और डालमिया बनकर जी उठा। बोला, "गवर्नमेंट इज़ ऑफ़ द रिच, बाई द रिच एण्ड फ़ार द रिच।"

एल्गिन रोड के मिस्टर बोस का दरबान चीखा, "कौन है ?"

फिर अच्छी तरह से देखा, कोई औरत थी।

"क्या माँगता ?"

कुन्ती काफ़ी देर से दरवाज़े के पास खड़ी-खड़ी राह देख रही थी। बड़े आदमियों का मुहल्ला है। सुबह हिन्दुस्तान पार्क के बँगले के नौकर से सुन आयी थी सदाव्रत बाबू ऑफ़िस चले गये हैं।

कुन्ती ने पूछा था, "बाबू कब आयेंगे ?"

बद्रीनाथ ने कहा था, "आते-आते रात के दस बजेंगे।"

"शाम को कहाँ रहते हैं ?"

बद्रीनाथ ने कहा था, "शाम के वक्त एल्गिन रोड पर मिस्टर बोस के बँगले में रहते हैं।"

और ज्यादा कुछ कहने की ज़रूरत नहीं हुई। कुन्ती समझ गयी 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के मिस्टर बोस का बँगला। पता मालूम था, लेकिन कभी गयी न थी। लेकिन बहन के लिए आज वहाँ भी जाना हुआ। कुन्ती ने जिस-जिसका इतना अपमान किया उसी से माफ़ी माँगनी होगी। इससे ज्यादा शर्मनाक बात और क्या हो सकती है ? फिर भी सारी शर्म-हया छोड़कर उसे यह काम करना ही होगा। सारे दिन ठीक से कुछ खा भी नहीं पायी। पिछली रात को दौड़-धूप करने की वज़ह से सो भी नहीं पायी थी। सिर दर्द कर रहा था। वैसे उसे रात को जागने की आदत है। पद्मरानी के फ़्लैट में या ड्रामों में उसने पूरी-की-पूरी रात कितनी ही बार जागकर काटी है। फिर भी इस तरह सिरदर्द कभी नहीं हुआ।

साड़ी अच्छी तरह सम्हालकर कुन्ती गेट के अन्दर पाँव रखते-रखते कई बार रुक गयी। अगर दरबान भगा दे ! बड़े आदमी का घर ठहरा। अगर बेइज्ज़ती कर दे।

दरबान के साथ किस तरह बात शुरू करे, शाम से खड़ी-खड़ी यही सोच रही थी।

तभी अचानक लगा एक गाड़ी आ रही है। फ़ाटक के सामने रुकते ही दरबान ने सलाम कर गेट खोला। अँधेरे के बावजूद अन्दर बैठे सदाव्रत और मनिला दिखाई पड़ रहे थे। गाड़ी अन्दर जाकर पोर्टिको में रुकी। दोनों उतरे। फिर अन्दर चले गये।

दरबान की सूरत देखते ही पहले तो कुन्ती डर गयी। फिर पास जाकर बोली, "सदाव्रत बाबू हाय ?"

"केया माँगता ?"

"सदाव्रत बाबू ! अभी जो बाबू गाड़ी में आया, उसी को थोड़ा बुलाना।"

दरबान ने सिर से पैर तक एक बार कुन्ती को देखा। फिर न जाने क्या सोचकर अन्दर ख़बर देने चला गया। शायद औरत देखकर दया आ गयी थी। औरत होने का यही फ़ायदा है। सुविधाएँ जितनी हैं मुश्किलें भी उतनी ही हैं।

"कौन हाय ? किसे चाहती हो ? तुम कौन हो ?"

कुन्ती ने देखा पोर्टिको के नीचे वही लड़की आकर खड़ी है। गेट के अन्दर घुसकर कुन्ती धीरे-धीरे उसी ओर बढ़ने लगी। बजरी-बिछा रास्ता। उसके मन में अभी तक धुक-धुक हो रही थी।

"मैं ज़रा सदाव्रत बाबू से मिलना चाहती हूँ।"

"तुम हो कौन ?"

"मेरा नाम लेने पर आप नहीं पहचानेंगी। मैं अपनी बहन के लिए आयी हूँ। उसे पुलिस ने पकड़ रखा है। उसी बारे में सदाव्रत बाबू के साथ कुछ बातें करनी हैं।"

"लेकिन सदाव्रत के साथ बात करना चाहती हो तो यहाँ क्यों ? उसका घर नहीं है ?"

"उनके घर भी गयी थी, नौकर ने यहाँ आने को कहा। कहा था—शाम के समय वह यहीं रहते हैं।"

"नहीं, यहाँ बाहरी आदमी के साथ मुलाक़ात नहीं होगी !"

"लेकिन उन्हें आप ज़रा खबर तो दीजिये।"

"वह इस समय यहाँ नहीं हैं।"

"लेकिन मैंने अपनी आँखों से उन्हें आते देखा ! आप झूठ बोल रही हैं ! अभी हाल ही तो वह गाड़ी से उतरे थे !"

मनिला से और न रहा गया। चीख़ पड़ी, "तुम निकल जाओ ! भागो यहाँ से ! भागो, निकलो !"

"आप फिर भी झूठ बोल रही हैं !"

"दरबान, निकाल दो इसको ! बेवकूफ़ ! बदतमीज़ ! तमीज़ से बात करना तक नहीं आता है। गरदन पकड़कर निकाल दो इसे ! हटा दो सामने से !"

कुन्ती ने अचानक मनिला के दोनों पाँव पकड़ने की कोशिश की। "आपको पता नहीं है मुझ पर कितनी आफ़त बीत रही है। मेरी बहन जेल में है। मेरे दिमाग़ का ठीक नहीं है, आप..."

लेकिन मिस्टर बोस का दरबान ऐसा-वैसा दरबान नहीं था। बड़ा स्वामीभक्त था। तब तक आकर कुन्ती के बाल पकड़ चुका था।

"बाहर निकालकर गेट बन्द कर दो !"

कुन्ती तब ख़ुद ही सीधी खड़ी हो गयी। आँखों से जैसे अँगारे बरस रहे थे। बदन की साड़ी ठीक कर, जूड़ा ठीक किया। पैर से चप्पल निकल गयी थी, उसे फिर से पहना।

मनिला के दिमाग़ में तब तक ड्राई जिन ने काम शुरू कर दिया था।

"निकाल दो, सड़क पर निकाल दो !"

कुन्ती को लगा, अथाह संसार में कहीं कोई भी आलम्बन होने पर वहीं जाकर आश्रय लेती। यहाँ की सारी रुकावटें जैसे पहाड़ बनी उसके दिल पर एक साथ चोट कर रही थीं। इनसे वह अपने को कैसे बचाये ? कौन है उसका ? सारे कलकत्ता शहर को जैसे उसके अपमान से मज़ा आ रहा था। सभी जैसे उसकी ओर देखकर हो-हो कर रहे हैं—अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ ! बड़े आदमियों को मिज़ाज दिखलाने चली थी ?

□ □ □

पद्मरानी के फ़्लैट को छोड़कर सारा कलकत्ता सो चुका था। सिर्फ़ पद्मरानी का फ़्लैट ही क्यों, कलकत्ता शहर में क्या पद्मरानी का फ़्लैट एक है ? १६९० में जब इस कलकत्ता शहर की नींव पड़ी, तभी से ये लोग यहाँ पर हैं। यह कुन्ती, यह दुलारी, यह गुलाबी और टगर, सब-की-सब। ईस्ट

इंडिया कम्पनी के साहबों का अकेलापन दूर करने के लिए ये ही लोग वाई जी बनकर नाची हैं, फिर इन्होंने ही महाराजा नवकृष्ण मुंशी के यहाँ दुर्गा-पूजा के समय बाबुओं के गिलासों में शराब ढाली है। आज इतने दिन बाद भी ये लोग मौजूद हैं। इन्हीं लोगों ने कलकत्ता शहर में डेरा जमाया हुआ है। एक समय था जब ये लोग एक ख़ास इलाके की बाशिन्दा थीं। अब मुहल्ले-मुहल्ले में फैल गयी हैं—पार्क स्ट्रीट, पार्क सरकस, क्वीन्स पार्क और बालीगंज—हर जगह ये लोग मौजूद हैं। इन्हीं के लिए बम्बइया करोड़पति उड़कर यहाँ रात काटने आते हैं। एक रात यहाँ काटकर कोई फिर भुला नहीं पाता। उन्हें बार-बार यहाँ आना होता है।

यहाँ जो भी आया, जाते समय कह गया: 'कैलकटा इज़ ए लवली प्लेस !'

यहाँ अकाल है, भुखमरी है, महामारी है, मक्खी हैं, मच्छर हैं, कॉलरा और चेचक, सभी-कुछ है। यहाँ ग़रीबी है, चोर-गिरहकट, गुण्डे-बदमाश भी हैं। यहाँ क्या नहीं है? १९४७ के बाद से आकार, आयतन और डिग्री सिर्फ़ बढ़ रही है। लेकिन इसके अलावा दूसरी चीज़ भी है, उल्टा भी है। यहाँ कभी ख़त्म न हो इतनी शराब है, बेशुमार दौलत है, बेशुमार औरतें और मौक़े हैं। गाने की मजलिसें होने पर यहाँ भीड़ टूटती है, मुहल्ले में नाटक होने पर भी कुर्सियाँ रखने को जगह नहीं मिलती, बन्दर का नाच देखने के लिए भी यहाँ आदमी क्यू लगाते हैं।

केदार बाबू इस कलकत्ता के आदमी हैं, मिस्टर बोस भी इसी कलकत्ता के आदमी हैं, शिवप्रसाद गुप्त भी इसी कलकत्ता के लीडर हैं, और कुन्ती गुहा भी यहीं की आर्टिस्ट है!

'साहब बीबी गुलाम' में जिस कलकत्ता की कहानी लिखी है, वह १९११ में दिल्ली चला गया। 'खरीदी कौड़ियों से मोल' का कलकत्ता ब्रिटिश एम्पायर का सेकंड सिटी कलकत्ता था। १९४७ की पन्द्रहवीं अगस्त की रात के बारह बजने के बाद से वह कलकत्ता भी धुल-पुँछकर साफ़ हो गया। लेकिन यह कलकत्ता 'इकाई, दहाई, सैकड़ा' का कलकत्ता है। आपका, मेरा, और भी कितने ही लोगों का कलकत्ता। चालीस लाख आदमियों की ख़ुशी-रंज, पाप-पुण्य, आहों और आँसुओं का कलकत्ता।

इस कलकत्ता की कुन्तियाँ इसी शहर में रहती हैं, लेकिन यह शहर उन्हें अपना नहीं मानता। इस कलकत्ता के केदार बाबू जैसे लोग इसी शहर का भला चाहनेवाले हैं, लेकिन यह शहर उन्हें नहीं चाहता। इस कलकत्ता

मिस्टर बोस इसी शहर का नमक खाते हैं, लेकिन यह शहर उनका भी
गान नहीं करता । यहाँ पर सभी आउटसाइडर हैं। सदाव्रत से लेकर
नय, शंभू, शैल और मनिका, सभी बाहरी हैं। ट्रेन की रिटर्न टिकट
टाकर सभी यहाँ आकर धर्मशाला में ठहरे हैं। मियाद पूरी होने पर एक
न चले भी जायेंगे ।

वास्तव में सुफल ही सुखी है। कुन्ती को इन सबसे ज़्यादा सुफल ही
खी लगता है।

सुफल कहता, "दो दिन टगर दी, दो दिन फूँक मारते निकल जायेंगे।"
र कभी कहता, "पता है टगर दी, सब सालों का कैरेक्टर ख़राब हो
या। बदनाम ख़ाली मैं और तुम हैं।"

फिर अचानक कुन्ती की ओर देखकर बोला, "तुम्हें हुआ क्या है, कमरे
धूनी और गंगाजल नहीं छिड़कोगी ?"

"नहीं सुफल, जी अच्छा नहीं है।"

"अरे, तुमने भी ख़ूब कहा ? कब किसका जी अच्छा रहा है ? ज़रा-
'देसी' ढाल लो, देखोगी जी एकदम चंगा हो गया।"

"नहीं रे, आज बहन को जेल हो गयी !"

सुफल चौंक पड़ा। फिर अचानक अँगूठा और बीच की अँगुली से चुटकी
जाकर बोला, "तब तो किला फ़तह, टगर दी—एकदम फ़तह।"

"मज़ाक नहीं रे, मुझे इस समय कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है !"

सुफल ने कहा, "अच्छा, तुम ऊपर चलो तो, ऊपर जाओ, मैं अभी
म्हारी दवाई लेकर आया।"

कुन्ती ने कहा, "नहीं भाई सुफल, मैं अब चलूँगी !"

"अरे, दूकान नहीं खोलोगी तो इधर आयी क्यों ?"

"क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? सारे दिन तो अदालत में थी, बूढ़ी ख़ूब रो
ही थी, पुलिसवाले ले गये। सोचा, अब कहाँ जाऊँ ? घर में तो रह नहीं
ऊँगी, इसीलिए इधर चली आयी। माँ को सब-कुछ बतलाया। अब जा
ही हूँ।"

"लेकिन आख़िर जाना तो वहीं होगा।"

"और जगह भी कहाँ है !"

सुफल ने कहा, "यहीं क्यों नहीं रह जातीं ? यहीं पद्मरानी के फ़्लैट
[illegible] बैठाने की गोजी [illegible] के कमरे की बत्ती बुझाकर, दरवाज़े में
[illegible] पराठे बनाकर तुम्हें खिलाऊँगा।

पैसे नहीं देने होंगे।"

कुन्ती पता नहीं क्या सोचने लगी।

तुफ़ल ने कहा, "कसम से टगर दी, आज मैं तुम्हें ऐसे ही खिलाऊँगा, पैसे नहीं देने होंगे।"

कुन्ती हँस पड़ी। बोली, "अरे, नहीं। इस बस के आते ही चली जाऊँगी, कुछ अच्छा नहीं लग रहा।"

सारा दिन अदालत में गुज़रा। वकील, मुंशी, पेशकार और चपरासियों ने जैसे हाड़-मांस तक नोचकर खा लिया था। कुन्ती में ताक़त ही कितनी है? बूता ही कितना है? जितने दिन तक मामला चला, अदालत जाकर उसने रुपया पानी की तरह बहाया। पान खाते, अर्ज़ी लिखते, यहाँ तक कि एक गिलास पानी तक पीने के लिए पैसा ख़र्च करना पड़ा, ऐसी जगह।

सदाव्रत भी गवाही देने आया था।

एक बार इच्छा हुई जाकर उससे सब-कुछ कहे। अपनी बहन की बात, खुद अपनी बात। सदाव्रत को दूर से देखने पर कितनी ही बार इच्छा हुई कि मामला रफ़ा-दफ़ा करने की बात उठाये—आप मुझे एक बार, सिर्फ़ एक बार के लिए बचा लीजिए। आपसे मैंने जो कुछ कहा है, उस सबके लिए मैं माफ़ी माँगती हूँ।

"तुमने चोरी क्यों की?"

"मेरे पास रुपयों की कमी थी।"

"तुम्हें मालूम है चोरी करना पाप है?"

"मालूम है।"

वकील के पास जाकर कुन्ती ने धीरे-से पूछा, "वकील साहब, क्या होगा? मेरी बहन को जेल हो जायेगी?"

वकील ने कहा, "ज़रा सब्र करो न। मैं सब ठीक किये देता हूं।"

"उन लोगों से अगर मामला वापस लेने को कहूँ तो क्या केस ख़त्म नहीं हो जायेगा?"

"किससे कहोगी?"

"उन लोगों का जो ख़ास गवाह है न, उसके साथ मेरा परिचय है। मैं क्या उससे जाकर कहूँ? आप अगर कहें तो कोशिश करूँ।"

गवाह के कटघरे में खड़ा सदाव्रत उस दिन की घटना का सिलसिलेवार वर्णन दे रहा था। किस तरह वेटिंग-रूम के अन्दर से ही वह लड़की उसके पीछे लगी थी। किस तरह सब लोगों की निगाह बचाकर उसकी जेब

के मिस्टर बोस इसी शहर का नमक खाते हैं, लेकिन यह शहर उनका भी गुणगान नहीं करता। यहाँ पर सभी आउटसाइडर हैं। सदाव्रत से लेकर विनय, शंभू, शैल और मनिला, सभी बाहरी हैं। ट्रेन की रिटर्न टिकट कटाकर सभी यहाँ आकर धर्मशाला में ठहरे हैं। मियाद पूरी होने पर एक दिन चले भी जायेंगे।

वास्तव में सुफल ही सुखी है। कुन्ती को इन सबसे ज़्यादा सुफल ही सुखी लगता है।

सुफल कहता, "दो दिन टगर दी, दो दिन फूँक मारते निकल जायेंगे।" फिर कभी कहता, "पता है टगर दी, सब सालों का कैरेक्टर ख़राब हो गया। बदनाम खाली मैं और तुम हैं।"

फिर अचानक कुन्ती की ओर देखकर बोला, "तुम्हें हुआ क्या है, कमरे में धूनी और गंगाजल नहीं छिड़कोगी ?"

"नहीं सुफल, जी अच्छा नहीं है।"

"अरे, तुमने भी ख़ूब कहा ? कब किसका जी अच्छा रहा है ? ज़रा-सी 'देसी' ढाल लो, देखोगी जी एकदम चंगा हो गया।"

"नहीं रे, आज बहन को जेल हो गयी !"

सुफल चौंक पड़ा। फिर अचानक अँगूठा और बीच की अँगुली से चुटकी बजाकर बोला, "तब तो किला फ़तह, टगर दी—एकदम फ़तह।"

"मज़ाक नहीं रे, मुझे इस समय कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है !"

सुफल ने कहा, "अच्छा, तुम ऊपर चलो तो, ऊपर जाओ, मैं अभी तुम्हारी दवाई लेकर आया।"

कुन्ती ने कहा, "नहीं भाई सुफल, मैं अब चलूँगी !"

"अरे, दूकान नहीं खोलोगी तो इधर आयी क्यों ?"

"क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? सारे दिन तो अदालत में थी, बूढ़ी ख़ूब रो रही थी, पुलिसवाले ले गये। सोचा, अब कहाँ जाऊँ ? घर में तो रह नहीं पाऊँगी, इसीलिए इधर चली आयी। माँ को सब-कुछ बतलाया। अब जा रही हूँ।"

"लेकिन आख़िर जाना तो वहीं होगा।"

"और जगह भी कहाँ है !"

सुफल ने कहा, "यहीं क्यों नहीं रह जातीं ? यहीं पद्मरानी के फ़्लैट में। बाबू बैठाने की मर्ज़ी न हो तो कमरे की बत्ती बुझाकर, दरवाज़े में कुण्डी लगा लो और आराम करो। मैं गरम परांठे बनाकर तुम्हें खिलाऊँगा।

पैसे नहीं देने होंगे।"

कुन्ती पता नहीं क्या सोचने लगी।

सुफल ने कहा, "कसम से टगर दी, आज मैं तुम्हें ऐसे ही खिलाऊँगा, पैसे नहीं देने होंगे।"

कुन्ती हँस पड़ी। बोली, "अरे, नहीं। इस बस के आते ही चली जाऊँगी, कुछ अच्छा नहीं लग रहा।"

सारा दिन अदालत में गुज़रा। वकील, मुंशी, पेशकार और चपरासी ने जैसे हाड़-मांस तक नोचकर खा लिया था। कुन्ती में ताक़त ही कितनी है? बूता ही कितना है? जितने दिन तक मामला चला, अदालत जाकर उसने रुपया पानी की तरह बहाया। पान खाते, अर्ज़ी लिखते, यहाँ तक कि एक गिलास पानी तक पीने के लिए पैसा ख़र्च करना पड़ा, ऐसी जगह।

सदाव्रत भी गवाही देने आया था।

एक बार इच्छा हुई जाकर उससे सब-कुछ कहे। अपनी बहन की बात, खुद अपनी बात। सदाव्रत को दूर से देखने पर कितनी ही बार इच्छा हुई कि मामला रफ़ा-दफ़ा करने की बात उठाये—आप मुझे एक बार, सिर्फ़ एक बार के लिए बचा लीजिए। आपसे मैंने जो कुछ कहा है, उस सबके लिए मैं माफ़ी माँगती हूँ।

"तुमने चोरी क्यों की?"

"मेरे पास रुपयों की कमी थी।"

"तुम्हें मालूम है चोरी करना पाप है?"

"मालूम है।"

वकील के पास जाकर कुन्ती ने धीरे-से पूछा, "वकील साहब, क्या होगा? मेरी बहन को जेल हो जायेगी?"

वकील ने कहा, "ज़रा सब्र करो न। मैं सब ठीक किये देता हूं।"

"उन लोगों से अगर मामला वापस लेने को कहूँ तो क्या केस खत्म नहीं हो जायेगा?"

"किससे कहोगी?"

"उन लोगों का जो ख़ास गवाह है न, उसके साथ मेरा परिचय है। मैं क्या उससे जाकर कहूँ? आप अगर कहें तो कोशिश करूं।"

गवाह के कटघरे में खड़ा सदाव्रत उस दिन की घटना का सिलसिलेवार वर्णन दे रहा था। किस तरह वेटिंग-रूम के अन्दर से ही वह लड़की उसके पीछे लगी थी। किस तरह सब लोगों की निगाह बचाकर उसकी जेब

से मनीबैग निकाला। शीशे की तरह साफ़ भाषा में एक के बाद दूसरी घटना का वर्णन कर रहा था। कोई जानता नहीं था। किसी को पता नहीं लगा। किसी को पता लगने की बात थी भी नहीं। बूड़ी रोज़ शाम को बैठकर अपनी टीचर से पढ़ती है, कुन्ती को तो यही मालूम था। घर जाकर रात को कुन्ती ने कितनी बार पूछा, बूड़ी ने झूठ बोलकर उसे बेवकूफ़ बनाया। आज सब पानी की तरह साफ़ हो गया। हर महीने उसकी मास्टरनी को चालीस रुपये देती रही, वह क्या इसीलिए ? कचहरी में बैठी बूड़ी वकील की जिरह के सामने कुछ भी छुपा नहीं पायी। बेवकूफ़ लड़की, दुनिया को अभी भी अच्छी तरह से नहीं जान पायी। वकील की जिरह के सामने सब-कुछ साफ़-साफ़ बतला दिया। यह भी हो सकता है कि उसने सोचा हो, अपना अपराध मान लेने पर, यह दुनिया उसे क्षमा कर देगी। शायद सोचती हो पश्चात्ताप से न्यायाधीश महोदय पिघल जायेंगे, उसे माफ़ कर देंगे।

लेकिन नहीं। सदाव्रत अकाट्य गवाही देकर कुन्ती की सारी कोशिशों को नाकाम करके अपनी गाड़ी में बैठकर चला गया। दूर भीड़ में खड़ी कुन्ती गुहा असहाय की तरह उसी ओर देखती रही।

"तब क्या होगा, वकील साहब ?"

"आज-भर और देख लो न, बेटी, कल तो फैसला होगा ही। फिर अपील तो अपने हाथ में है ही।"

दूसरे दिन ही फ़ैसला निकल गया। कौन-सा एक सेक्शन है, उसी की धारा के अनुसार बूड़ी को छः महीने की क़ैद हो गयी। शान्ति गुहा को। कलकत्ता शहर निरापद हो गया। अब डरने की कोई बात नहीं है। कलकत्ता के भले आदमी अब बेफ़िक्री से घूम-फिर सकेंगे। इंडियन पैनल कोड की सबसे कड़ी धारा के अन्तर्गत शान्ति गुहा को सज़ा सुनाकर आज़ाद भारत निश्चिन्त हो गया।

"फिर ?"

कुन्ती ने कहा, "फिर आज फैसला सुनाया गया सुफल, कल रात को मुझे नींद नहीं आयी, आज सुबह की जो निकली हूँ तो बस घूम ही रही हूँ, खाना-पीना तक नहीं हुआ है, घर जाने को भी जी नहीं चाहता।"

"नहीं-नहीं, तुम घर जाओ, टगर दी ! सोचना बेकार है। अपील करने से भी कुछ नहीं होगा। देख लेना जेल जाकर तुम्हारी बहन की सूरत बदल जायेगी। मेरा तो जेल जाकर अढ़ाई सेर वज़न बढ़ गया था। तुम

फ़िक्र मत करो।"

सड़क की ओर देखते ही अचानक जैसे भूत देख लिया।

"कौन ? वह कौन है ?"

सुफल ने भी देखकर कहा, "उस गाड़ी की बात कर रही हो ?"

लेकिन कुन्ती सुफल की बात नहीं सुन पायी। अँधेरे में मंदी रोशनी में एक चमचमाती गाड़ी ट्राम-लाइन से गुज़र रही थी। अन्दर बैठा सदाव्रत गाड़ी चला रहा था और बग़ल में बैठी थी मिस्टर बोस की वही लड़की। ऊँचा, बड़ा-सा जूड़ा। और मेकअप किया चेहरा। गाड़ी चलाते-चलाते शायद सदाव्रत आस-पास के मकान दिखला रहा था, और लड़की भौंचक बनी सुन रही थी।

"उस गाड़ी को पहचानती हो क्या, टगर दी ?"

कुन्ती तब भी अपलक उसी ओर ताक रही थी।

सुफल ने कहा, "शायद कलकत्ता में नया आया है। बीवी को शायद रंडियों का मुहल्ला दिखलाने निकला है। एक और दिन भी आयी थी यही गाड़ी। उस दिन भी वह पास में बैठी थी।"

कुन्ती को लगा जैसे पूरा आसमान उसके सिर पर टूट पड़ा हो। इतने दिनों तक बाहरी आदमियों ने उसके ऊपर जो अत्याचार किये, उसकी बहन के ऊपर पुलिस के सिपाही और दारोग़ा ने जितने अत्याचार किये, यह जैसे उसके सामने कुछ भी नहीं है। यह और भी संगदिल है, और भी कठोर है।

"उस दिन श्यामबाज़ार के मोड़ पर केंकड़े खरीदने गया था। वहाँ भी यही गाड़ी देखी। समझीं टगर दी, यहाँ नया आया है। शायद गाड़ी नयी ही ख़रीदी है, दिखलाता फिर रहा है।"

तब तक गाड़ी नज़रों से बाहर हो गयी।

"वह सब देखने से क्या फ़ायदा, टगर दी, इससे तो तुम फ़्लैट पर चलो। मैं गरम-गरम परांठे बनाये देता हूँ, खाकर सो रहो।"

उस समय तक शायद सुफल के खरीदार आने शुरू हो गये थे। दूकान पर भीड़-सी जमा हो गयी थी। केंकड़े की भुनी हुई टाँगें, कलेजी और एग-करी का बाज़ार गर्म हो चला था। हाथों में कोहनी तक लटकाये फूलमाला वाला घूमने लगा था, कुलफी-मलाईवाला भी शायद अपनी हाँडी लिये आता होगा। पद्मरानी के फ़्लैट में दुलारी के कमरे में हारमोनियम बज उठेगा, गाना शुरू होगा—'चाँद कहे जो चकोरी, तिरछे नैनों से न देख।'

ग्राहक देखकर सुफल को दूकान का ध्यान आया। लोहे के कड़ाह में तेल जल रहा था। सुफल ने जल्दी से जाकर उसमें कच्ची चापें डालनी शुरू कर दीं। चाप जब तक गरम न हो माल खाने में मज़ा नहीं आता। सोनागाछी के हर मुहल्ले के लोग चाट खरीदने सुफल की दूकान पर ही आते थे।

सुफल कहता, "ज़रा रुको भाई, हाथ तो एक ही है, क्या-क्या देखूँ?"

नौकरानियाँ कहतीं, "खड़े रहने से हमारा काम नहीं चलेगा। बाबू लोग लाल-पीले होंगे तो सम्हालने कौन आयेगा?"

सुफल भी झल्ला उठा। कहता, "मुझसे इतना नहीं होगा, कहे देता हूँ! सुफल किसी के बाप का नौकर नहीं है! चीज़ जब तैयार होगी तब दूँगा···ए पंचा, देख क्या रहा है, गरम मसाला पीस डाल न! ग्राहक खड़े हैं, देख नहीं रहा?"

फिर चार चाप एक प्लेट में रखकर ऊपर से कटी प्याज डालकर बोला, "जा, यह दौड़कर सत्रह नम्बर के कमरे में दे आ, और आकर थोड़ा-सा आटा मलना, टगर दी के लिए परांठे बनाने हैं।"

"सुफल!"

सुफल भी अवाक् रह गया। टगर दी फिर लौट आयी।

कुन्ती ने कहा, "तुमसे एक काम था सुफल, ज़रा इस ओर आओ न!"

सुफल हाथ का काम छोड़कर नीचे आया। फिर एक ओर होकर बोला, "क्या हुआ? परांठे तो बना रहा हूँ।"

"नहीं, तुमसे एक और काम है।"

"कहो, क्या काम है?"

"वह भूलो था न? तुम्हारा दोस्त भूलो?"

"हाँ-हाँ, भूलो के पास तो तुम्हें उस दिन ले गया था न? वहाँ चलना है? खरीदोगी क्या?"

कुन्ती ने कहा, "हाँ।"

"लेकिन पैसे लायी हो?"

"मेरे पास काफ़ी रुपये हैं। माँ से उधार लायी हूँ। मुझे एक बार वहाँ ले चलो न! ज़रूरी काम है।"

"लेकिन मेरे···ग्राहक खड़े हैं···"

फिर जाने क्या सोचने लगा। उधर पंचा भी सत्रह नम्बर कमरे से चाप देकर लौट आया था।

"ठीक है, चलो, ज्यादा देर नहीं लगेगी। उसके पास माल तैयार ही रहता है। लोगी किस चीज़ में ?"

"अपने इस बैग में, इसमें आ जायेगा ?"

"चलो, चलो, ज़रा जल्दी पाँव बढ़ाकर।"

वही अँधेरी गली। घोर अन्धकार। सारी जिन्दगी जब अँधेरे से नहीं घबरायी कुन्ती, तो आज इतना सब होने के बाद किस बात का डर ?

"वह गाड़ी क्या सारे कलकत्ता में चक्कर काटती है ?"

उस बात पर कोई ध्यान दिये बिना सुफल ने एक पुराने मकान की कुण्डी खटखटायी। कोई आवाज़ नहीं आयी। फिर धीरे-धीरे दबी आवाज़ से पुकारा, "भूलो—ओ भूलो !"

☐ ☐ ☐

शिवप्रसाद गुप्त को ऐसे ही वक़्त नहीं मिलता। थोड़े-से वक़्त में काफ़ी कुछ करना होता है। फ़ालतू वक़्त होने पर भी उन्हें अच्छा नहीं लगता। दिनभर में कम-से-कम बीस टेलीफ़ोन आएँ। कम-से-कम पन्द्रह टेलीफ़ोन ख़ुद करें, तभी तो ज़िन्दगी ज़िन्दगी है। रोज़ कम-से-कम पन्द्रह मीटिंगों में जाने का निमन्त्रण आये, कम-के-कम तीन की अध्यक्षता करें और चालीस के लिए असमर्थता ज़ाहिर करें। अब अख़बार निकालने के बाद तो यह सब और भी बढ़ जायेगा। उम्मीदवारों की और भी बढ़ोतरी हो जायेगी। तीन सौ आदमियों से मुलाक़ात करेंगे और क़रीब दो सौ बिना मिले निराश होकर चले जायेंगे।

इतने दिन इसी तरह गुज़ार दिये। अब उम्र ज्यादा हो गयी है, साथ ही आदत भी उतनी ही जकड़ गयी है। जिस दिन मुलाक़ात करने लोग कम आते हैं, जिस दिन टेलीफ़ोन कम आते हैं, उस दिन मिज़ाज ख़राब हो जाता है।

लेकिन जिस समय अविनाश बाबू वग़ैरह आते हैं, कहते हैं, "और नहीं होता साहब, अब यह सामाजिक काम छोड़ दूँगा—अकेला आदमी, क्या-क्या देखूँ ?"

सामने बैठे जो लोग सुन रहे होते, वे सब मिनिस्ट्री सर्किल की भीतरी बातें जानने को उत्सुक होते। किसका भंडा फूटा, किस पर नेहरूजी की नेक नज़र है, दिल्ली में किसकी क्या पोज़ीशन है, इन बातों में ही उन लोगों की ख़ास दिलचस्पी होती थी।

शिवप्रसाद बाबू कहते, "क्या पता साहब, स्कैंडल सुनने का न तो वक़्त

ही मिलता है, न मुझे इसमें कोई दिलचस्पी ही है। मैं तो जाता हूँ, मेरे आने की खबर मिलते ही पंडितजी बुला भेजते हैं। काम होते ही चला आता हूँ।"

ज़रा देर रुककर फिर कहते, "यह देखिये न अमेरिकन एम्बैसी मुझसे अमेरिका जाने की 'रिक्वेस्ट' कर रही है।"

"अमेरिका ? क्यों ? अचानक अमेरिका क्यों जाने लगे ?"

"अरे, क्यों क्या, ऐसे ही !"

"तब तो काफी रुपया ख़र्च होगा ?"

"वह तो होगा ही।"

"वहाँ जाकर आप करेंगे क्या ?"

"वह कौन सुनता है ! मैंने तो कह दिया, 'मेरी अपनी कन्ट्री को कौन देखेगा ? उन लोगों का जो प्रोग्राम है उसके अनुसार मुझे ले जाने में करीब पचीस हज़ार रुपया ख़र्च होगा। लेकिन ख़र्चा होता है तो हो, आइज़नहावर देगा।"

इसके बाद फिर ज़रा देर के लिए रुके।

कहने लगे, "अरे, मुश्किल तो यही है ! उन लोगों को तो पता है कौन ईमानदार है और कौन नहीं ! यही विजयलक्ष्मी पंडित को ही लीजिये न, साहब ! रूस की एम्बैसेडर होकर गयी थी। स्टालिन के साथ मिलने की कितनी कोशिश की, मुलाक़ात नहीं हुई। बाद में जब डॉक्टर राधाकृष्णन उसी पोस्ट पर गये, साथ-ही-साथ स्टालिन ने बुला भेजा और पूरे आधा घंटा बात की। इसीलिए तो कह रहा था ऑनेस्ट लोगों की ही मुसीबत है। उधर रूस कह रहा है मास्को विज़िट करने के लिए, इधर वाशिंगटन जाने के लिए अमेरिका कह रहा है। बड़े झमेले में पड़ गया हूँ—कहाँ जाऊँ, कहाँ नहीं जाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता !"

"लेकिन वहाँ जाकर आप करेंगे क्या ?"

"वह कौन सुनता है ! सिर्फ़ लालच दिखला रहे हैं, और क्या ! पैसा ख़र्च करके ले जायेंगे, आराम से बढ़िया होटल में रखेंगे, बढ़िया-बढ़िया खाना खिलायेंगे, प्लेन और मोटर-कारों में घुमायेंगे, छाँटकर सुन्दर-सी लड़की को इन्टरप्रेटर बनायेंगे।"

अविनाश बाबू बोले, "हम लोगों को तो कोई चान्स ही नहीं देता, साहब ! ज़िन्दगी-भर जजगिरी की, हम लोग क्या बिलकुल ही अनफ़िट हैं ?"

अम्बिका बाबू ने कहा, "नहीं-नहीं, शिवप्रसाद बाबू, यह मौक़ा न छोड़िये। परसी थाली और हुक्का कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए।"

"सच ही तो, इतने दिन से जान लगाकर देश-सेवा की, मिनिस्ट्री तक में नहीं गये, अब की बार घूम आइये, ज़रा हैल्थ का भी तो ख़याल रखना चाहिए—अब क्या पहले-जैसी उम्र है ?"

शिवप्रसाद बाबू मुसकराये। कहने लगे, "अगर अपना स्वार्थ ही देखना होता तो आप लोग मुझे इस बुढ़ापे में मेहनत करके खाते नहीं देखते। आज भी सोचना होता है, कल क्या खाऊँगा—पता है !"

अम्बिका बाबू बोले, "सो तो है ही, हम लोगों की तरह आपको तो पैंशन भी नहीं मिलती।"

"देखिये न, आज अगर कुछ हो जाये और बिस्तरा पकड़ लूँ तो खाना भी नसीब न होगा।"

"फिर भी तो आपका लड़का मौजूद है, मोटी तनख्वाह मिल रही है, एकदम फ़ाकेबाज़ी नहीं करनी होगी।"

शिवप्रसाद बाबू—"लड़का ? आजकल के लड़के की बात कर रहे हैं ? आजकल के लड़के क्या बाप का कहना सुनते हैं ! लड़के को तो दो हज़ार रुपये महीना मिलते हैं, कभी एक पैसा भी उससे नहीं माँगा !"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"नहीं साहब, लड़के की कमाई मुझे नहीं खानी। मैंने पंडित नेहरू से भी इस बार यही कहा। मैंने कहा, मैं सेल्फ-मेड मैन हूँ, मुझे ऑनर नहीं चाहिए, पोस्ट नहीं चाहिए, मैं केवल देश की सेवा करते रहना चाहता हूँ। अगर वाशिंगटन या मास्को जाना ही पड़े तो मैं देख आऊँगा कि वे लोग अपने देशों में कैसे क्या करते हैं, उनके देश की एजूकेशन-प्रॉब्लम, फूड-प्रॉब्लम उन लोगों ने किस तरह सॉल्व की है। मैं तफ़रीह करने के लिए जाना नहीं चाहता। मैं जानना चाहता हूँ, सीखना चाहता हूँ।"

"फिर ? पंडितजी ने इस पर क्या कहा ?"

शिवप्रसाद गुप्त ने उत्तर दिया, "पंडितजी ने मेरे दोनों हाथ पकड़कर कहा, 'गुप्ता, तुम इस वक़्त देश मत छोड़ो। आजकल देश के बुरे दिन चल रहे हैं। कम्युनिस्टों ने बड़ा एजिटेशन शुरू कर दिया है। सारा एशिया इस वक़्त टरमॉयल के बीच से गुज़र रहा है, इस समय तुम हर्गिज़ इंडिया छोड़कर न जाना।'"

"फिर ?"

"इसके बाद मैं और क्या कहता, आप लोग ही बतलाइये ? मैंने भी सोचकर देखा, बात सच ही है। पाकिस्तान-प्रॉब्लम, इन्दोनेशिया-प्रॉब्लम, कांगो-प्रॉब्लम, क्यूबा-प्रॉब्लम, जिस ओर देखो प्रॉब्लम। अब सिर्फ़ इंडिया के बारे में सोचने से ही तो काम नहीं चलेगा। अब दुनिया उतनी छोटी नहीं रही है। अब गुटबाज़ी करके बचना होगा। अब हमें भी सीटो, नाटो जैसा कुछ करना होगा। देख नहीं रहे कांगो में क्या हुआ, क्यूबा में क्या हो रहा है, एक ओर ख्रुश्चेव और दूसरी ओर अमेरिका के नये प्रेसिडेंट कैनेडी। कहाँ का पानी कहाँ बह रहा है ! खुद पंडित नेहरू की समझ में भी नहीं आ रहा मैं किस खेत की मूली हूँ। याद नहीं है सीलोन के प्राइम मिनिस्टर भण्डारनायके का किस तरह खून कर दिया गया। नित नये हथियार तैयार हो रहे हैं, साथ-ही-साथ नयी-नयी समस्याएँ भी सामने आ रही हैं। आदमी यह भूल रहा है कि वह आदमी है।"

अविनाश बाबू बोले, "अच्छा, कैपिटलिज़्म अच्छा है या कम्युनिज़्म ? आपके खयाल से कौन अच्छा है ?"

"अरे, यही सवाल रोटेरी क्लब में मिस्टर पॉल इवेन्स ने भी किया था।"

"यह कौन हैं ?"

"अरे, इंडिया विज़िट करने तो आजकल कितने ही आ रहे हैं। हम लोगों के लिए तो सभी वी० आई० पी० हैं। मुझसे पूछने लगा—'ह्वाट इज़ कैपिटलिज़्म ?' मैंने जवाब दिया—'मैन एक्सप्लॉयटिंग मैन !' "

अम्बिका बाबू ने हामी भरी, "आपने बिलकुल ठीक कहा—ठीक कहा !"

इसके बाद मुझसे पूछा, "एण्ड ह्वाट इज़ कम्युनिज़्म ?"

मैंने कहा, "उसी बात को उलट लो।"

"माने ?"

"माने उसी बात को घुमाकर कहने पर भी बात वही रहती है—मैन एक्सप्लॉयटिंग मैन !"

अचानक टेलीफ़ोन की घंटी बजने लगी। रिसीवर उठाकर शिवप्रसाद गुप्त ने कहा, "हलो !"

रात हो गयी थी। पैंशन-होल्डरों का दल उठने लगा। अब शिवप्रसाद बाबू काम की बात करेंगे। इसके बाद शिवप्रसाद बाबू का नौकर आयेगा, पूजा की याद दिलायेगा। सभी उठ खड़े हुए। दरवाज़े की ओर बढ़ने लगे।

यहाँ आकर फिर भी कुछ अच्छी-अच्छी बातें सुनने को मिल जाती हैं। बूढ़े होने की वजह से लड़के-बहू कोई भी अच्छी तरह से बात नहीं करता था। अख़बार और रेडियो ही एकमात्र भरोसा था। इसीलिए सरकार की अन्दरूनी और चटपटी ख़बरें सुनने सब-के-सब यहाँ आते। जिस दिन शिवप्रसाद बाबू नहीं रहते, पार्क की बेंचों पर उन लोगों की मीटिंग जमती, इधर-उधर की कितनी ही बातें होतीं, फिर रात ज़्यादा होने पर ठंड लग जाने के डर से मुँह-कान ढँककर सब अपने-अपने घर चले जाते।

मिस्टर बोस की आवाज़ काफ़ी भारी हो रही थी। इसी से शुरू-शुरू में पहचान नहीं पाये।

"मिस्टर बोस ? आप ? क्या हुआ ? अचानक इस वक्त ?"

"आप फ़ौरन चले आइये।"

"कहाँ ? कहाँ चला आऊँ ?"

"पी० जी० हॉस्पिटल !"

"क्यों ? पी० जी० हॉस्पिटल में क्या हुआ ? कौन बीमार है ?"

"बीमार नहीं, एक्सिडेंट हुआ है।"

"किसका एक्सिडेंट ?"

"यह मालूम नहीं है। अभी-अभी पुलिस ने मुझे फ़ोन किया। मेरी गाड़ी तैयार है, मैं चल रहा हूँ। आप भी फ़ौरन चले आइये।"

"लेकिन किसका एक्सिडेंट ? कहाँ हुआ है ?"

मिस्टर बोस के पास शायद और वक़्त नहीं था। उन्होंने लाइन काट दी। रिसीवर रखकर शिवप्रसाद बाबू सोचने लगे।

फिर पुकारा, "बद्रीनाथ !"

बद्रीनाथ हर समय पीछे ही रहता। सामने आया।

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "कुंज कहाँ है ? कुंज से गाड़ी निकालने को कह।"

"नौ बज रहे हैं। आपका पूजा करने का समय हो गया है।"

पूजा ! पूजा करने पर तो और भी एक घण्टा लग जायेगा। जो भी हो, सामने 'माँ' का चित्र लगा है। बीसियों झमेले हैं। कांगो, क्यूबा, लुमुम्बा, कैनेडी, भण्डारनायके, नाटो, सीटो, पाकिस्तान। जादवपुरवाला मकान तैयार हो आया है। पर रूम फॉर्टी रुपीज़। यानी कुल दो हज़ार रुपये महीना। कुंज सामने आकर खड़ा हो गया।

"मुझे बुलाया था ?"

"तुम ज़रा ठहरो। गाड़ी निकाल रखो। पूजा करके एक बार पी० जी० हॉस्पिटल जाऊँगा।" कहकर शिवप्रसाद बाबू कुर्सी से उठे।

लेकिन पूजा करने बैठे ही थे कि टेलीफ़ोन फिर बज उठा।

"हलो!"

उस ओर से मिस्टर बोस की भारी आवाज़ सुनायी दी, "आप अभी तक नहीं आये। फ़ौरन आ जाइये। वेरी सीरियस कंडीशन, मैं पी० जी० हॉस्पिटल से बोल रहा हूँ।"

☐ ☐ ☐

विद्रोह जब होता है, तब ज़्यादातर लोगों को उसका पता नहीं चलता। हर युग के सब लोग अपने-अपने झमेलों में फँसे रहते हैं। अपना धन्धा, बाल-बच्चे, स्वास्थ्य! इसके बाद जो और भी बड़े लोग हैं, उन लोगों के लिए होती हैं लड़कियाँ, क्लब और सम्पत्ति। इन्हीं चीज़ों के बीच ज़िन्दगी गुज़र जाती है। अच्छा खाने को मिले, अच्छा पहनने को मिले, इसके अलावा अगर थोड़ा आराम और आज़ादी भी मिल जाय तो फिर क्या चाहिए! १९४७ के शुरू में जब राजगोपालाचार्यजी लाटसाहब बनकर कलकत्ता आये, उस समय भी किसी ने नहीं सोचा था, समय इतना बदल जायेगा। समझ ही नहीं पाये कि विद्रोह शुरू हो गया है। क्योंकि यह विद्रोह बहुत ही धीरे-धीरे आता है, चुपचाप आकर एकाएक दबोच लेता है। पकड़े जाने पर आदमी चौंकता है। तब उसकी नींद टूटती है। इतने दिन आदमी सुनहले भूत को लिये ही मग्न था। आज जिनकी उम्र चालीस है, वे लोग पीछे फिरकर देख सकते हैं, किस तरह इन्सान की हज़ारों साल की मान्यताएँ, धारणाएँ अचानक टूटकर चूर-चूर हो जाती हैं। एक युग के बाद दूसरा युग आया है और साथ ही मौत का डर भी कम होता गया है, भगवान का डर भी कम हो गया है। डर कम हुआ है, साथ ही भक्ति भी कम हुई है। उसकी जगह ली है युक्ति ने। इस युक्ति से ही इन्सान ने अपने को आविष्कृत किया है। और आविष्कार किया है कि देवता हो या प्रेसिडेंट, सभी आदमी के बनाये हैं। एक समय जिस तरह देवता नाराज़ हो जाने पर भस्म कर देता था, प्रेसिडेंट भी गुस्सा करते हैं। प्रेसिडेंट भी उसी तरह एक को उठाता है और दूसरे को गिराता है। जो लोग ऊँचे-ऊँचे ओहदों के मालिक हैं, उनकी ख़ुशामद करने से जिस तरह अच्छी नौकरी मिल जाती है, उसी तरह इन्हीं मालिकों के कोपभाजन हो जाने पर नौकरी जाने का डर भी बना रहता है। भाग्य आदमी को प्रेसिडेंट नहीं बनाता, आदमी ही प्रेसिडेंट बन

जाने पर अपना भाग्य ख़ुद-ब-ख़ुद बना लेता है। सिर्फ़ इतना ही नहीं, आदमी को यह भी पता लग चुका है कि मनुष्य-जीवन बड़ा सुखकर है। वह अमृत-सन्तान है, इससे बड़ा झूठ दुनिया में दूसरा नहीं है। इस अमृत-सन्तान को ही रोज़ नये-नये टैक्स लगाकर ख़त्म किया जा सकता है। आदमी का कहना है यह हमारी डेमोक्रेसी है, तुम लोगों ने हमारे हाथ में शक्ति दी है, इसी से हम मंत्री बन गये हैं। आदमी ही दूसरी ओर यह भी कहता है, तुम जो मंत्री बने हो, इसी वजह से हमारे दुखों का अन्त नहीं है। तुम लोगों की ही वजह से हम भूखों मर रहे हैं। इसीलिए बेलफ़ ने कहा था––“गवर्नमेंट इज़ नथिंग बट कॉन्सपिरेसी ऑफ़ द फ्यू अगेन्स्ट मैनी ह्वट एवर फ़ार्म इट टेक्स।”

“तुमने हिस्ट्री पढ़ी है ?”

मनिला ने कहा, “पढ़ी थी, भूल गयी हूँ।”

सदाव्रत ने कहा, “मुझे एक प्राइवेट ट्यूटर हिस्ट्री पढ़ाते थे, इसलिए नहीं भूला हूँ ! नहीं तो मैं भी कभी का भूल गया होता।”

फिर ज़रा रुककर कहा, “जिन अंग्रेज़ों ने इतने दिन हमारे ऊपर शासन किया, उन्होंने ही एक दिन अपने राजा का सिर काट लिया था। और एक को सिंहासन से उतार दिया था। यह पता है ?”

“ये सब हिस्ट्री की बातें इस समय छोड़ो।”

“तुम्हारी तरह फ्रांस की रानी भी यह सब सुनना पसन्द नहीं करती थी। कहती––इस समय ये सब बातें रहने दो—और ठीक इसके बाद ही फ्रेंच-रिवोल्यूशन हो गया।”

अचानक मनिला बैचेन हो उठी। चेहरा घुमाकर बोली, ‘वह टैक्सी हमारे पीछे क्यों आ रही है ?”

“कौन-सी टैक्सी ?”

गाड़ी चलाते-चलाते सदाव्रत ने मुड़कर देखा।

“नहीं, बेकार की बात है। कुछ भी नहीं है।”

लेकिन मनिला को जैसे फिर भी यकीन नहीं हुआ। पिछले कई दिनों से वह देख रही है, शाम के वक़्त जब दोनों गाड़ी लेकर निकलते हैं, जिस समय लेक जाते हैं, रेड-रोड पर से गुज़र रहे होते, तब जैसे अचानक एक टैक्सी तीर की तरह बग़ल से निकल जाती। और अन्दर से कोई उन लोगों की ओर तेज़ नज़रों से देखता।

इस तरह एक दिन नहीं, एक बार नहीं, कई दिनों से एक सन्देह-सा

हो रहा था। ग्रांड ट्रंक रोड से जाते-जाते किसी-किसी दिन लगता, बस अब एक्सिडेंट हुआ। दोनों ओर टूटी मोटर-गाड़ियाँ पड़ी हैं। ड्राइवर क्या शराब पीकर गाड़ी चला रहा है ?

"चलो, चलो, लौट चलो, सदाव्रत ! इधर जाने की ज़रूरत नहीं है।"

सदाव्रत कहता, "तब फिर क्लब चलें—वहीं जाकर बैठा जाये।"

मनिला कहती, "क्लब में अच्छा नहीं लग रहा था, इसीलिए तो घूमने निकले।"

"तब लेक चला जाये !"

मनिला को यह बात भी पसन्द नहीं आयी। बोली, "लेक बड़ी डेमोक्रेटिक जगह है।"

"तब चलो, जेस्सोर-रोड चलते हैं।"

जेस्सोर-रोड पर जाते-जाते भी मनिला को न जाने कैसा लगने लगा। सदाव्रत बग़ल में बैठा गाड़ी चला रहा था। हर रोज़ नयी साड़ी, नया ब्लाउज़, नया जूड़ा, नये कॉस्मेटिक्स और सेंट लगाकर मनिला निकलती, फिर भी अच्छा नहीं लगता।

"अच्छा, फ्रांस की मेरी एन्टोनिएट की कहानी तो सुनी न, अब रूस की ज़ेरीना कैथेरिन द ग्रेट की कहानी सुनाता हूँ।"

"फिर हिस्ट्री !"

"अरे सुनो तो, अच्छी लगेगी। उस समय रूस और इंग्लैंड की लड़ाई चल रही थी, ज़ार लड़ाई में गया था, ज़ेरीना को अचानक पूरा क्रेमलिन सूना-सूना लग रहा है, पुलिस-पहरा कहीं कोई नहीं है। राजा के पास एक टेलिग्राम भेज दिया। लेकिन ज़ेरीना को पता नहीं था कि उस समय सिविल-वार शुरू हो गयी थी। पोस्ट-ऑफ़िस से टेलिग्राम लौट आया। उसमें लिखा था—'ह्वेयरएबाउट्स ऑफ़ द एड्रेसी इज़ नॉट नोन !'"

मनिला ने अचानक जैसे घबराकर कहा, "वहाँ कौन है ?"

"कहाँ ?"

मनिला खुद भी अवाक् रह गयी। श्यामबाज़ार के मोड़ पर भीड़ की वजह से गाड़ी चलाना मुश्किल हो रहा है। उन लोगों की गाड़ी के ठीक सामने एक टैक्सी आकर रुकी। और तभी टैक्सी से उतरकर कोई उनकी ओर ही आ रहा था, फिर भीड़ में छिप गया।

"कौन आ रहा था ? कैसा लगता था ?"

"एक आदमी, गुंडा-सा लग रहा था।"

सदाव्रत अचानक ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। बोला, "अरे, गुंडा तुम्हारा क्या करेगा ?"

"वह तो पता नहीं। इसी गुंडे को उस दिन भी देखा था, मेरी ओर ही ताक रहा था।" सदाव्रत ने फिर से गाड़ी स्टार्ट कर दी।

कहने लगा, "अरे, कुछ भी नहीं है। कलकत्ता के सारे कॉमन लोग गुंडे-जैसे ही लगते हैं। तुम्हारी नज़रों में सभी गुंडे हैं। वे लोग साफ़ कपड़े नहीं पहन पाते, सिर में तेल तक नहीं लगा पाते, इसी से गुंडे लगते हैं। असल में ग़रीब हैं बेचारे।"

गाड़ी अपर सर्कुलर रोड से जा रही थी। सीधा रास्ता। विपत्ति का रास्ता हमेशा सीधा ही होता है। उसमें कोई मोड़ नहीं होता, घुमाव नहीं होता। उसकी राह बड़ी चिकनी और फिसलन-भरी है। मनिला जिस समाज में पली है, वहाँ कोई घुमाव-फिराव पसन्द नहीं करता। सुबह के ब्रेकफास्ट के बाद सीधे लंच पर आकर हॉल्ट। फिर वहाँ से सीधे डिनर। और डिनर के बाद रिलैक्स। इस समाज में दिन भी ऐसे ही चलते हैं, रात भी ऐसे ही गुज़र जाती हैं। इसके बीच कोई भी सेमीकोलन अथवा कौमा नहीं होता। ट्रैंक्विलाइज़र की एक गोली रात को शान्तिपूर्ण और आराम-दायक बना देती।

लेकिन उस दिन शायद पहली बार टेढ़े रास्ते पर जा फँसी थी। सदाव्रत कई दिन से सोच रहा था। कितने ही दिन के इन्तज़ार के बाद आखिर एक चिट्ठी आयी थी। चिट्ठी मन्मथ ने लिखी थी।

मन्मथ ने लिखा था :

"सदाव्रत दा,

पिछले महीने जो सात सौ रुपये भेजे थे, उसका हिसाब भेज रहा हूँ। दूध के पैसे बाकी हैं। जैसा कि कहा था, मास्टर साहब के लिए दो सेर दूध रोज़ लिया जा रहा है। मास्टर साहब कलकत्ता जाने के लिए छटपटा रहे हैं। यहाँ और रुकना नहीं चाहते। कहते हैं, तबीयत ठीक हो गयी है। मैंने काफ़ी समझा-बुझाकर रोक रखा है। लेकिन किसी भी तरह नहीं मान रहे। तुम एक बार उन्हें समझाकर लिखो। एक तुम्हारी ही बात सुनते हैं। दिन-भर मेरे साथ बक-झक करते रहते हैं। बेकार नाराज़ होते हैं। शैल ठीक है। वह भी यहाँ आने के बाद से न जाने कैसी हो गयी है। वह भी शायद यहाँ पर ज़्यादा दिन नहीं रुकना चाहती है। ऐसी हालत में मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। तुम्हारे जवाब की राह देख रहा हूँ।

तुम जैसा कहोगे, वही होगा।"

उस दिन क्लब में मिस्टर बोस ज़रा ज़्यादा पी गये थे। सदाव्रत कुछ कहने गया था। उसे देखकर बोले, "चियर अप माई बॉय, चियर अप!"

मनिला ने कहा, "डैडी!"

मनिला ने फिर से कहा, "डैडी, आज कितने पैग पी ली है ?"

मिस्टर बोस ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। कल की लड़की! उनकी नज़रों के सामने पैदा हुई! वही लड़की आज उन पर रौब गाँठ रही है! बेटी की बात का कोई जवाब नहीं दिया। एक पैग और लाने का ऑर्डर दे दिया। इंडिया काफी आगे बढ़ चुका है। फ़ाइव-इयर प्लान के बाद से औसत आय बढ़ गयी है। रूस-अमेरिका सभी 'एड' दे रहे हैं। किसकी परवाह करें ? उन्हें डर किसका ? बांडुंग कांफ्रेंस में सब-कुछ डिसाइड हो गया है। हम किसी के निजी मामलों में दखलन्दाज़ी नहीं करेंगे। लिव एण्ड लैट लिव। पंचशील। डर की कोई बात नहीं है। डोण्ट केयर। अमेरिका हमारा दोस्त है, रूस हमारा दोस्त है, नासिर हमारा दोस्त है, माओत्सेतुंग हमारा दोस्त है, दलाई लामा इंडिया में भाग आये हैं। आएँ। वी आर एव्रीबॉडी'ज़ फ्रेंड!

"डैडी आज आउट-ऑफ़-गियर हो गये हैं!"

गाड़ी में बैठकर मनिला हँसने लगी। फिर बोली, "आज माँ के साथ खूब झगड़ा हुआ है न, इसी से डैडी ज़रा आउट-ऑफ़-गियर हो गये हैं।"

"क्यों, झगड़ा किस बात पर हुआ ?"

"आज ब्रेकफ़ास्ट के समय 'पॉरीज़' नहीं खायी; इसी बात को लेकर! वह बात जाने दीजिये। आज किधर चलोगे ?"

"जिधर कहो।"

"देखो, सेकंड को हम लोगों की शादी है। शादी के बाद वी मस्ट गो सम ह्वेयर। हनिमून के लिए कहाँ चलना है ?"

"क्या हुआ, हिस्ट्री के बारे में सोच रहे हो क्या ?"

सदाव्रत ने कहा, "नहीं।"

"तब क्या सोच रहे हो ? आज माँ ने ब्रेकफास्ट नहीं लिया, डैडी से झगड़कर लंच नहीं लिया। दोपहर को देखा, सिर्फ एक बोतल गोल्डन बियर पिये बैठी हैं। डैडी ने भी छः पैग ह्विस्की पी। वह तो तुमने देखा ही न! अब देख रही हूँ तुम भी अन्माइंडफुल हो रहे हो।"

सदाव्रत ने कहा, "अरे, नहीं-नहीं! ऐसी कोई बात नहीं है। मैं कुछ

और ही सोच रहा था।"

"कौन-सी बात ? हम लोगों की शादी के बारे में ?"

साथ-ही-साथ एक ज़ोर का धमाका-सा हुआ। सदाव्रत स्टियरिंग ह्वील सँभाले था। उसका सारा शरीर जैसे क्षण-भर में फटकर चिथड़े-चिथड़े हो गया। तभी बग़ल में नज़र जाते ही देखा मनिला का सारा बदन जैसे जल रहा था। बम से जलने पर आदमी जिस तरह चीख़ता है, मनिला के मुँह से भी वैसी ही चीख़ निकली। पूरा चेहरा, छाती, हाथ, कन्धे—सब झुलस गये थे। और मनिला दर्द से छटपटाने लगी।

एक सेकंड !

सड़क पर चलते लोग भी घबराकर इधर-उधर छितरा गये। जो लोग दूसरी ओर जा रहे थे उनके कानों में भी धमाके की आवाज़ पहुँची। रात के समय इस ओर वैसे ही काफ़ी भीड़ रहती है। ट्राम, बस, टैक्सी और रिक्शों की वजह से रास्ता चलना मुश्किल हो जाता है। आस-पास की दूकानों पर ख़रीद-फ़रोख़्त चल रही थी। ख़रीदार, फेरीवाले, भिखारी सभी चौंक उठे थे। बस, ट्रामें और टैक्सी रुक गयी थीं।

"पकड़ो, पकड़ो, पकड़ो उसको !"

कहता हुआ लोगों का झुंड पीछे-पीछे दौड़ने लगा। सदाव्रत ने तब तक गाड़ी रोक दी थी। लेकिन मनिला अभी भी चीख़ रही थी, "माई गॉड ! माई गॉड !"

लेकिन उससे बोला नहीं जा रहा था। शायद गला रुँध गया था। सदाव्रत के गाड़ी से उतरकर यह देखने से पहले ही कि क्या हुआ, पुलिस आ पहुँची थी। और जो कुछ देखा उसके बाद कुछ करने को नहीं था।

□ □ □

मधुगुप्त लेन के क्लब में उस दिन फिर 'मरी मिट्टी' की बात चली। कालीपद ने अभी तक हिम्मत नहीं हारी थी। तभी शंभू दौड़ता आया।

"अरे कालीपद, गज़ब हो गया !"

"क्या हुआ ?"

क्लब के सारे मेम्बर 'क्या हुआ ? क्या हुआ ?' कहने लगे। वैसे असल में शंभू ही मधुगुप्त लेन के इस ड्रामेटिक क्लब का मुखिया था। कालीपद ने अभी तक हिम्मत नहीं हारी थी। शंभू के हाथ-पैर जोड़कर उसे एक बार फिर से कोशिश करने को तैयार किया। तय हुआ कि शंभू ही कुन्ती को बुलाकर लाएगा। काफ़ी दिनों पहले पूरे सौ रुपये एडवान्स ले जा चुकी

है। इसलिए उसे हर हालत में आना ही होगा।

"अरे, आज उसी की वजह से आने में देर हो गयी! डलहौज़ी स्क्वायर की सारी ट्रामें और बसें बन्द हो गयी थीं।"

"क्यों? बन्द क्यों? फिर से गोली चली है क्या?"

"अरे, नहीं! अपनी वह कुन्ती गुहा थी न, उसे ही सुना पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया है।"

सुनते ही सब लोग जैसे चौंक उठे।

"क्यों? क्या किया था?"

"एक लड़की के ऊपर एसिड-बल्ब फेंककर मारा था।"

"कौन-सी लड़की? वह कौन है? लड़की क्या मर गयी?"

सिर्फ़ मधुगुप्त लेन का क्लब ही नहीं, यह बात जैसे आग की तरह सारे कलकत्ता में फैल गयी। ऑफ़िस से लौटनेवाले बाबू लोग जगह-जगह झुंड बनाये इसी बारे में बात कर रहे थे।

पद्मरानी भी हैरान रह गयी थी।

"अरी, कहती क्या है, अपनी टगर? टगर को पुलिस ले गयी? ठीक सुना है?"

बिन्दू ने कहा, "हाँ माँ, सुना तो यही है।"

"अरे, उसने किया क्या था, री?"

"सुना है, किसी का ख़ून कर दिया।"

"अरे, जा-जा, तूने ठीक से सुना नहीं होगा। वह कैसे ख़ून कर सकती है! वह क्यों ख़ून करने लगी, री? उसके सिर पर तो वैसे ही तलवार झूल रही है। उसकी बहन को छः महीने की सज़ा हो गयी है। अरे, वह क्यों ख़ून करेगी, बेटी? उसे क्या अपनी जान प्यारी नहीं है? ख़ून क्या ऐसे ही हो जाता है?"

पद्मरानी के फ़्लैट की दुलारी, गुलाबी, बासन्ती, सभी सुनने के बाद गाल पर हाथ रखकर बैठ गयीं। आँखों के सामने से सारी रोशनियाँ जैसे एकाएक गुल हो गयी हों।

कालीघाट वाले मकान में बूढ़ी ताई अगले दिन के लिए दीये की बत्तियाँ बना रही थी। बात सुनकर थर-थर काँपने लगी।

"अरे राम, तू कहती क्या है! खबर कौन लाया?"

"उन्होंने ऑफ़िस से आकर बतलाया।"

१९५७ में मास्को से ख़बर फैली थी, आसमान में स्पूतनिक उड़ाया

गया है। सुनकर सारी दुनिया के लोग चौंक उठे थे। यह ख़बर भी वैसी ही थी। आसमान में जब स्पूतनिक उड़ रहा है, तभी ज़मीन पर आदमी, आदमी के ही बदन पर एसिड फेंककर मार रहा है। यह भी कोई छोटी बात नहीं है। पुलिस ने जगह को चारों ओर से घेर लिया। इंडियन पैनल कोड के सेक्शन थ्री हंड्रेड थ्री या टू। या तो फाँसी होगी, नहीं तो ट्रांसपोर्टेशन फ़ॉर लाइफ़।

मिस्टर बोस उस दिन ज़रा गहरी डोज़ लेकर क्लब से लौटे थे। सुबह ही बेबी के साथ झगड़ा हो गया था। ब्रेकफास्ट के वक़्त बेबी ने पॉरीज़ नहीं ली। हालाँकि मेजर सिन्हा ने कह दिया है—शी मस्ट हैव ओट्स पॉरीज़! लौटकर आये तो सुना—मेमसाहब ने ब्रेकफ़ास्ट भी नहीं लिया, लंच भी नहीं लिया। फ्रिज से निकालकर सिर्फ़ एक बोतल गोल्डन ईगल पी। पीकर अभी तक बिस्तरे पर अन्कॉन्शस हुई पड़ी हैं।

तभी अचानक थाने से फ़ोन आया।

"हलो!"

"यस!"

ख़बर सुनकर छः पैग ह्विस्की का सारा नशा जैसे काफूर हो गया। साथ-ही-साथ शिवप्रसाद गुप्त को फ़ोन किया। ज़्यादा बात करने का वक़्त नहीं था। गाड़ी लेकर सीधे पी० जी० हॉस्पिटल चले आये। वहाँ एमर्जेन्सी वार्ड में जैसे सब-कुछ रुक गया था। डॉक्टर, नर्स, वार्ड-मास्टर, पुलिस! सदाव्रत बेचैनी से इधर-उधर चक्कर काट रहा था।

"ह्वाट हैपेन्ड, सदाव्रत? हाऊ? मनिला कैसी है?"

पूरी बात सुनने से पहले ही शिवप्रसाद गुप्त की याद आयी। मोस्ट इन्फ्लूएंशियल मैन।

"तुम्हारे फ़ादर अभी तक नहीं आये! इतनी देर क्यों कर रहे हैं? पुलिस-कमिश्नर को ख़बर की गयी है या नहीं? पुलिस-मिनिस्टर कौन है? मैंने तो सुनते ही उन्हें रिंग किया था।"

इसके बाद क्या करें, कुछ ठीक नहीं कर पा रहे थे। एक बार वार्ड के अन्दर जाने की कोशिश की। पुलिस ने रोका।

पुलिस-सार्जेंट ने नरमी के साथ कहा, "नॉट नाऊ, सर!"

"तब टेलीफ़ोन कहाँ है? आई वान्ट टु रिंग अप समबडी!"

इसके बाद टेलीफ़ोन करने के कैबिन में जाकर रिसीवर उठाया।

"मिस्टर गुप्त! इतनी देर क्यों कर रहे हैं? हैंग योर पूजा! आप

फ़ौरन चले आइये। कंडीशन वेरी सीरियस!"

□ □ □

कलकत्ता के लोग उस रोज़ हैरान रह गये थे। वैसे हैरानी की कोई बात नहीं थी, फिर भी रह गये थे। सुबह अखबार पर नज़र पड़ते ही चाय का कप और भी मीठा हो गया। उस दिन लोगों ने कितनी ही दूकानों पर एक की जगह दस-दस कप चाय पी डाली।

"मैनेजर, एक कप और, कसम से बड़ी चटपटी ख़बर है।"

और दिनों जो लोग सिनेमा-स्टारों को लेकर माथापच्ची करते थे, काम न मिलने की वजह से जो लोग सड़कों पर आवारागर्दी करते फिरते थे, उनको भी आज जैसे एक नयी ख़ुराक मिल गई थी। कुछ बड़े घरों के पाप का भंडाफोड़ होने पर ख़ुश हो रहे हैं। जो हालत चल रही है उससे और तो कोई आशा है नहीं, सभी जैसे निराश हो गये हैं। बीच-बीच में नमक-मिर्च लगाकर कोई किस्सा अख़बारों में छपता, लाखों रुपये की चोरी होने का भंडा फूटता, फिर सब-कुछ दबा दिया जाता। जो लोग ब्लैक-मार्केटिंग करते हैं, जो लोग पब्लिक-मनी चुराने के अपराध में गिरफ़्तार होते हैं, उनकी खबर अख़बारों में छपने पर लोगों को आशा होती है, इस बार सज़ा मिलेगी। लगता है अब की बार फाँसी होकर रहेगी। चावल में कंकड़ मिलाने के लिए, दवाओं में मिलावट करने के लिए कम-से-कम एक आदमी को तो क़ैद या जुर्माने की सज़ा भुगतनी ही होगी। लेकिन होता कुछ नहीं। दो-चार दिन में सब ठंडा पड़ जाता है।

इसी वजह से लोगों ने आशा करना छोड़ दिया था।

'लेकिन अब? अपने काले-कारनामों को अब कहाँ छिपाओगे, बच्चू? फेंटा खोलते ही तो साँप बाहर आ जायेगा!'

'पता है, वह लड़की थिएटरों में काम करती है!'

'लेकिन वह उस लड़की को मारने क्यों गयी? ज़रूर ही कोई भीतरी बात है!'

थिएटरों और क्लबों में इसी बात को लेकर बहसें होतीं। टाला से लेकर टालीगंज तक जिन्हें एक क्लब से दूसरे क्लब में रिहर्सल करके पेट पालना होता वे सारी लड़कियाँ भी हैरान रह गयी थीं।

श्यामली कहती, "कुन्ती दी ने यह क्या किया, भाई?"

वन्दना कहती, "सुनते ही भाई, मेरी तो छाती धक्-धक् करने लगी।"

सबसे ज्यादा नुक़सान कालीपद का ही हुआ। काफ़ी दिनों के झगड़े

के बाद क्लब के मेम्बरों से फैसला हुआ था। 'मरी मिट्टी' के स्टेज होने की जो बची-खुची आशा थी, वह भी गयी। शंभू के आते ही कालीपद ने पूछा, "क्यों रे, आज कोई खबर मिली क्या ?"

शम्भू का चेहरा भारी हो रहा था। बोला, "मैं आज सदाव्रत के घर गया था, जानने के लिए, आखिर मामला क्या है।"

"सदाव्रत ने क्या कहा ?"

"कहता क्या ? बेचारा एकदम हताश हो गया है। इसी लड़की के साथ ही तो उसकी शादी होनेवाली थी। और इसी शादी के लिए उसकी नौकरी लगी थी।"

"अब क्या होगा ? हाँ, वह लड़की अभी ज़िन्दा है या मर गयी ?"

"ज़िन्दा है। पूरा चेहरा, छाती, सब-कुछ जल गया है। आँख-नाक कुछ भी नहीं हैं। सिर्फ़ मर्फ़िया के इंजेक्शन लगा-लगाकर बचा रखा है। इससे तो मर जाना ही अच्छा होगा !"

"और कुन्ती गुहा ?"

अचानक क्लब के फाटक पर पुलिस के दो आदमियों को देखकर कालीपद रुक गया।

"यह आप लोगों का ड्रामेटिक क्लब है न ?"

शम्भू ने उठकर कहा, "हाँ, अन्दर आइये !"

दो पुलिस सब-इंस्पेक्टर थे। अन्दर आकर वहाँ बिछी चटाई पर बैठकर हाथ की फ़ाइलें एक ओर रखीं।

"हम लोग थाने से आ रहे हैं। आप लोगों के नाम ?"

नाम वगैरह सुनकर एक ने कहा, "देखिये, हम लोग कुन्ती गुहा नाम की एक एक्ट्रेस के बारे में इन्क्वायरी करने आये हैं। आप लोगों के यहाँ, इस क्लब में भी वह रिहर्सल के लिए आती थी !"

क्लब के सारे मेम्बर जैसे सकपका गये। क्या कहना चाहिए, कुछ ठीक नहीं कर पा रहे थे।

"देखिये, असामी ने जो स्टेटमेंट दिया है, उसमें आपके इस क्लब का भी नाम है। उसका कहना है कि आप लोग उसे अच्छी तरह से जानते हैं। शम्भू बाबू और कालीपद बाबू का नाम उसने लिया है। हम लोग तहक़ीक़ात करने आये हैं। आप लोग उसे पहचानते हैं या नहीं ?"

कालीपद ने कहा, "हम लोगों के यहाँ रिहर्सल के लिए आती थी, बस इतना ही। इससे ज्यादा तो कुछ पता नहीं है।"

"और आप ?"

"मैं भी उसे इतना ही जानता हूँ।"

"कभी उसके घर गये थे ?"

"हाँ, जब वह जादवपुर में रहती थी, कांट्रेक्ट के लिए दो-एक बार गया था। उसके साथ और कोई वास्ता नहीं था।"

"उसके साथ टैक्सी से किसी दिन किसी होटल में जाकर एक कमरे में रात नहीं गुज़ारी ?"

शम्भू चौंक पड़ा, "अपने स्टेटमेंट में उसने यह भी कहा है क्या ?"

"उसने क्या कहा है, वह बाद की बात है। आप पहले तो यह बतलाइये कि थिएटर के नाम पर उसके साथ कहाँ-कहाँ गये थे ?"

कालीपद ने कहा, "हम लोग साहब, शाम के वक़्त ऑफ़िस से आकर यहाँ क्लब में थोड़ी देर थिएटर और रिहर्सल पर गपशप करते हैं। हम आर्टिस्टों के साथ वह सब क्यों करने लगे !"

"लेकिन आप लोगों ने थिएटर-क्लब ही क्यों बनाया है ? लड़कियों के साथ उठने-बैठने के लिए ही न ?"

"नहीं, वह क्यों करने लगे ? हम लोगों के यहाँ घरों में बीवी और बाल-बच्चे हैं, बेकार में इन सब लड़कियों से क्यों मिलने लगे ? ऐक्टिंग करना भी तो एक आर्ट है। अपने आर्ट और कल्चर के लिए ही हम थिएटर वगैरह करते हैं।"

सब-इंस्पेक्टर ने सारी बातें नोट कर लीं। फिर बोले, "तब आप लोगों का कहना है कि और कोई उद्देश्य नहीं था ?"

"और क्या उद्देश्य हो सकता है ? थिएटर करके इंडिया के कल्चर को ग्लोरीफ़ाई करने की कोशिश कर रहे हैं। नहीं तो सरकार हम लोगों को हज़ारों रुपये क्यों दे रही है ?"

"सरकार आप लोगों को रुपया देती है ?"

"हमारे क्लब को नहीं दिया, लेकिन दूसरे क्लबों को तो दे रही है। किसी को चालीस हज़ार, किसी को बीस हज़ार, किसी को दस हज़ार और किसी को पाँच हज़ार। दो-एक सफल नाटक खेलने के बाद ही हम लोग मिनिस्टर के पास एप्लीकेशन भेजेंगे। हम लोगों को भी रुपया मिलने की आशा है। सभी को मिल रहा है, हम ही को क्यों नहीं मिलेगा ?"

दारोग़ा साहब ने जो लिखना था, लिख लिया। फिर चले गये।

शम्भू साथ-साथ बाहर आया। पूछने लगा, "अच्छा, बतला सकते हैं,

वह यह सब करने क्यों गयी ? क्या हुआ था ?"

पुलिस से इतनी आसानी से कुछ बात निकलेगी, ऐसी बात तो नहीं थी। और शायद पुलिसवालों को भी पता नहीं था। इन्वेस्टीगेशन होगा, इन्क्वायरी होगी, तब तो ? अगर कोई बात नहीं होगी तो बेकार में क्यों मारने जायेगी बेचारी को ? ज़रूर अन्दर-ही-अन्दर कोई बात थी, जो किसी को भी नहीं मालूम। घटना जिस वक़्त घटी, किसी ने भी नहीं देखा। सभी अपने-अपने काम में लगे थे। सिर्फ़ जोर की आवाज़ कान में आयी थी। चारों ओर अँधेरा हो चुका था। मनिला के साथ बातें करता सदाव्रत गाड़ी चला रहा था। सब इधर-उधर की बातें। अगले महीने की दूसरी तारीख़ को उनकी शादी होगी, इसी बारे में बात चल रही थी।

"आपको पता नहीं चला कि कोई आपको फॉलो कर रहा है ?"

"नहीं ! धमाके की आवाज़ कान में आते ही मुझे ज़र्क-सा लगा। मैं चौंक पड़ा। फिर क्या हुआ है, देखने के लिए बग़ल में नज़र जाते ही देखा, मनिला का सारा बदन जल गया था। उसके जलते बदन से धुआँ उठ रहा था। चमड़ी जलने की बदबू आ रही थी।"

"फिर ?"

"इसके बाद मैंने जल्दी से ब्रेक लगाकर गाड़ी रोकी। तब तक चारों ओर पुलिस और भीड़ जमा हो चुकी थी।"

"इससे पहले, आवाज़ सुनने के बाद आपने और कुछ नहीं देखा ?"

सदाव्रत ने ज़रा सोचने की कोशिश की। फिर कहा, "मुझे धुँधली-सी याद है, गाड़ी के पास कोई दौड़ रहा था, उस आवाज़ के होते ही भागा।'

"उसकी हुलिया कैसी थी ?"

"मैंने बग़ल से देखा था। सामने से ठीक-ठीक नहीं देख पाया।"

"फिर भी बग़ल से देखने पर क्या लगा ? उम्र क्या होगी ? मर्द या औरत ?"

"लड़की, उम्र क़रीब···"

"चौबीस-पचीस के क़रीब ?"

"हाँ, ऐसी ही होगी।"

"अच्छा, मैं अगर आपको वह लड़की दिखलाऊँ तो क्या आप उसे पहचान पाएँगे ?"

"ज़रूर। न पहचान पाने की तो बात ही नहीं हो सकती।"

इसके बाद जेल में लोहे का एक दरवाज़ा खोलकर वे लोग सदाव्रत

को दूसरे कमरे में ले गये। दिन के समय भी वहाँ अँधेरा था। अजीब-सी मिचलाँद-भरी बदबू आ रही थी। सदाव्रत को ऑफ़िस से बुलाकर 'आई-डेंटीफ़िकेशन' कराया जा रहा था। मिस्टर बोस काफ़ी हताश हो गये थे। इकलौती लड़की। बीवी से सारी ज़िन्दगी कभी शान्ति नहीं मिली। इसी वजह से उनके लिए मनिला ही भरोसा थी। डैडी से मनिला ने जो कुछ भी चाहा, उसे मिला। उसकी कोई भी ज़िद, कोई भी माँग कभी ठुकरायी नहीं गयी। इसी वज़ह से आज मिस्टर बोस की आँखें छलछला रही थीं। शायद सारे 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के जलकर राख हो जाने पर भी उन्हें इतना दुःख नहीं होता। उन्होंने सदाव्रत से कह दिया था, "द कल-प्रिट मस्ट बी पनिश्ड !"

उन्होंने ही पुलिस-कमिश्नर को फ़ोन कर दिया था कि उनकी लड़की के मामले में स्पेशल केयर ली जाये. पूरी-पूरी तहक़ीक़ात हो। पुलिस-मिनिस्टर से भी मुलाक़ात की। अकेले नहीं, शिवप्रसाद गुप्त को भी साथ ले गये। दिस इज़ हॉरीबुल। कलकत्ता का अगर यही हाल रहा तो यहाँ पर रहने वाले पीस-लविंग लोगों का क्या होगा ? वे लोग कहाँ जायँ ? कलकत्ता में आज जो इतने रिफ्यूजी भरे हैं, यहीं है इसकी जड़। सरकार इन लोगों पर ज़रूरत से ज़्यादा मेहरबान हो गयी है। हज़ारों रुपये लोन दे-देकर आप लोगों ने इन्हें हम लोगों के सिर पर बिठा दिया है। हम लोग वेस्ट-बंगाल के लोग हैं। इन लोगों ने आज हमें अपने ही घर में आउट-साइडर बना दिया है।

शिवप्रसाद गुप्त को जो कहना था, उन्होंने कहा।

अन्त में पुलिस-मिनिस्टर ने पूछा, "अब पेशेण्ट का हाल कैसा है ?"

शिवप्रसाद गुप्त ने कहा, "पता नहीं बचेगी भी या नहीं ! लेकिन वह तो डॉक्टर का काम है। रिफ़्यूजी लोग जब शुरू-शुरू में कलकत्ता आये थे मैंने श्यामाप्रसाद मुकर्जी से कह दिया था—यही लोग एक दिन वेस्ट-बंगाल की इन्टेग्रिटी बिगाड़ेंगे। मैंने जो कुछ कहा था, वही हुआ न !"

"आप डॉ॰ राय से इस बारे में कहिये।"

"ज़रूर कहूँगा। मैंने वियना टेलिग्राम कर दिया है। लौटते ही कहूँगा। मैं आप लोगों की तरह डॉक्टर राय से क्यों डरने लगा ? मुझे किस बात की परवाह है, जनाब ? मैं कांग्रेस का भी कोई नहीं हूँ, मिनिस्ट्री का भी कोई नहीं हूँ, मुझे किस बात का डर ? ज़रूरत होने पर पंडित नेहरू से कहकर स्पेशल पुलिस से इन्वेस्टीगेशन कराऊँगा।"

"लेकिन आपको क्या लगता है ? अचानक एक इनोसेंट लड़की को मारने क्यों गयी ?"

मिस्टर बोस बीच ही में बोले, "मेरी लड़की को आपने नहीं देखा, शी इज़ एन इनोसेंट गर्ल !"

"कोई पर्सनल ग्रज थी क्या ? जान-पहचान थी ? जैलसी ?"

"एक हैगर्ड लड़की के साथ कैसे जान-पहचान हो सकती है ?"

पुलिस-मिनिस्टर ने शिवप्रसाद गुप्त से पूछा, "लेकिन आपके लड़के के साथ ?"

"आप कह क्या रहे हैं ? मैं अपने लड़के को नहीं जानता ? असल में यह कम्युनिस्टों का काम है। मैं आपसे कहे देता हूँ, इन कम्युनिस्टों को अगर आप लोग यहाँ से सबडिउ नहीं करेंगे तो इसका फल आपको भुगतना होगा। मैंने अतुल्य बाबू से भी इस बारे में बात की है।"

पुलिस-इंस्पेक्टर से लेकर पुलिस सब-इंस्पेक्टर तक सभी ने तहक़ीक़ात शुरू कर दी। मिस्टर बोस की यह ट्रेजैडी, उनकी निजी ट्रेजैडी नहीं है, इस स्टेट की भी ट्रेजैडी है। अगर अभी से इन कलप्रिटों को सख़्त-से-सख़्त सजा नहीं दी जायेगी तो यह वेस्ट-बंगाल स्टेट भी एक दिन मुश्किल में पड़ने वाली है।

□ □ □

अँधेरी सेल।

एक सेल के सामने जाकर पुलिस-ऑफ़िसर ने ताला खोला।

पहले तो सदाव्रत कुछ देख ही नहीं पाया। फिर अचानक लगा जैसे अन्दर कोई हिला। पुलिस-ऑफ़िसर के हाथ में टार्च थी। टार्च की रोशनी पड़ते ही जनाने गले की चीख़ सुनायी दी। ज़ोर की चीख़। ठीक इसी तरह उस दिन मनिला के मुँह से चीख़ निकली थी। जैसे टार्च की रोशनी उसके बदन में ज़हर में बुझे तीर की तरह जाकर घुसी। आँखें धुँधली पड़ गयी थीं। रोशनी पड़ते ही जैसे छटपटा उठी।

"इसको पहचान सकते हैं ? आपने इसी को उस दिन देखा था ?"

सदाव्रत पहचान गया। अब चेहरे पर टार्च की रोशनी अगर नहीं भी पड़ती तो भी काम चलता।

"आपकी गाड़ी के पास यही तो दौड़ रही थी ?"

सदाव्रत ने कहा, "हाँ।"

"इसके साथ क्या कोई और भी था ? किसी को इसके साथ देखा था ?"

"नहीं।"

जिस काम के लिए आना हुआ, वह एक मिनट में ही हो गया। लोहे का दरवाज़ा फिर से बन्द हो गया। सदाव्रत का माथा अभी भी झुका हुआ था। इतने दिन बाद कुन्ती गुहा को इस तरह देखना होगा, वह सोच भी नहीं पाया था। वही कुन्ती गुहा ! सारी घटनाएँ एक-एक कर दिमाग़ में चक्कर काटने लगीं। पहले-पहल उसे शम्भू के क्लब में देखा था। वहाँ से काफ़ी देर तक टैक्सी में एक साथा घूमना। बाद में शायद एक दिन उसका पता ढूँढता उसके घर की तलाश में भी गया था। लेकिन उसको दिया पता ग़लत था। इसके बाद की मुलाक़ात धर्मतल्ला में हुई। शैल चप्पल मरम्मत करा रही थी, कुन्ती गुहा ने जान-बूझकर धक्का दिया था। एक के बाद एक पर्दा खुलता जा रहा था। जैसे कुन्ती गुहा को लेकर काफ़ी दूर तक जाया जा सकता है। उसके बाद की मुलाक़ात ही आख़िरी थी। जिस दिन 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के फाउण्डर्स-डे के उपलक्ष्य में ड्रामा हुआ था। पिताजी के दिये मैडल को उसने लौटा दिया था।

"इसका पनिशमेंट क्या होगा ?"

सब-इंस्पेक्टर भला आदमी था। बोला, "अगर गिल्टी साबित होती है तब डैथ सेंटेन्स।"

"उसने स्टेटमेंट क्या दिया है ?"

"उसने स्टेटमेंट दिया है कि वह उस जगह पर थी ही नहीं। वह एक आर्टिस्ट है, अमेच्योर क्लबों में ऐक्टिंग करती है।"

"वह तो मुझे भी मालूम है।"

"आपको पता है ? आपने उसकी ऐक्टिंग देखी है ?"

"हाँ, एक बार।"

"तब तो आप उसे पहले से ही जानते हैं ?"

सदाव्रत ने कहा, "बहुत ही कम। मेरे दोस्त के क्लब में वह रिहर्सल के लिए आती थी। वहीं दो बार देखा था।"

"एक बात और···"

सदाव्रत रुका।

"कहिये।"

"उसने स्टेटमेंट दिया है कि एक समय वह नर्स थी। आपको इस बारे में कुछ पता है ? आपने उससे किसी भी सिलसिले में कभी काम लिया है ?"

"नहीं।"

"तब इसके पीछे क्या कारण हो सकता है, कुछ बतला सकते हैं ?"

"मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा।"

"मिस बोस के साथ आपकी शादी को लेकर कोई जैलसी हो सकती थी क्या ?"

"यह कैसे हो सकता है ? मिस बोस के साथ उसका क्या सम्बन्ध ? शी इज़ नो बडी टु मी ऑर टु हर—उसके साथ मेरा कोई भी रिलेशन नहीं था, मिस बोस का भी नहीं।"

पुलिस-स्टेशन पर ही देर हो गयी थी। वहाँ से सीधे हॉस्पिटल। हॉस्पिटल के कैबिन में उस समय तक मरीज़ के लिए दुनिया की सारी कोशिशें जैसे बेकाम होकर पड़ी थीं। इतने कॉस्मेटिक्स, इतना रूज़, इतनी लिपस्टिक, इतना मैक्स-फैक्टर, आज सब-कुछ बेकार था। सिर पर पीछे की ओर थोड़े-से बाल हैं। आँख, मुँह, नाक, कान में से कौन-सा क्या है, पता नहीं लगता। पार्क-स्ट्रीट की सैलून ने इसी चेहरे को सजाने और सँवारने के लिए मोटी-मोटी रक़में वसूली हैं। इन्हीं बालों को सँवारकर जूड़ा बनाकर स्काइ-स्क्रेप में बदलने में उन्हें काफ़ी मेहनत करनी हुई है, आज इनमें सिर्फ़ 'ऑयन्टमेंट' लगाया जाता है, चमड़ी झुलसकर लटक पड़ी है, गले में एक छेद कर उसमें रबर का ट्यूब डालकर खाना खिलाया जाता है। ज़रा-सी भी आवाज़, ज़रा भी एक्साइटमेंट नहीं होना चाहिए। एक जान को किसी भी तरह बचाना ही होगा। ब्रिटिश 'फार्माकोपिका' में जितनी भी दवाएँ हैं, खरीद लाओ। मैं रुपया दूँगा, मैं करोड़पति हूँ। मैं मिस्टर बोस हूँ। मेरी इकलौती बच्ची, शी मस्ट लिव।

मिसेज़ बोस एक दिन आयी थीं।

डॉक्टर ने पहले से ही कह दिया था—ज़रा-सी भी आवाज करने में जान का ख़तरा है, जरा भी एक्साइटमेंट होने पर। माँ-बाप आये हैं, पता लगते ही कोलैप्स कर जायेगी। गाड़ी से उतरते वक़्त भी मिसेज़ बोस ने गारन्टी दी थी कि मनिला को एक बार देखकर ही वह चली जायेंगी।

लेकिन कैबिन में घुसते ही जैसे भूत देख लिया।

बात न चीत ! एक ज़ोर की चीख़ मारकर वहीं ज़मीन पर फेन्ट होकर गिर गयीं। दाँत भिंच गये। हॉस्पिटल वालों ने बड़ी मुश्किल से स्ट्रेचर पर लिटाकर उन्हें गाड़ी तक पहुँचाया। एक के ऊपर दूसरी आफ़त। मिस्टर बोस ने जेब से निकालकर वहीं 'ट्रैंक्विलाइज़र' की एक टिकिया

निगल ली।

कह रहे थे, "मेरी ऑन्‌ली चाइल्ड ! शी मस्ट नॉट डाई, डॉक्टर ! उसे जैसे भी हो बचाना होगा। वह बचनी ही चाहिए !"

और दिनों की तरह उस दिन भी सदाव्रत आया था। उस दिन भी हमेशा की तरह चुपचाप सिरहाने खड़ा रहा। बात करना मना है। मनिला कैसी है—पूछना भी जुर्म है। चार नर्स, चार आया, छः डॉक्टर हर समय पेशेण्ट को अटेन्ड कर रहे थे। इसलिए मनिला को बचना ही चाहिये। मिस्टर बोस की इकलौती बेटी को बचाना ही होगा। नहीं तो बहुत-सा रुपया आइडल हो जायेगा। इधर-उधर के लोग लूट खायेंगे। सोलह मिलियन रुपये। और सुवेनीर इंजीनियरिंग का मालिकाना सब ज़ब्त हो जायेगा। उसे बचाना ही होगा। शी मस्ट लिव, शी मस्ट !

हर रोज़ इसी तरह यहाँ आना होता है। आकर इस बेजान चीज़ के सामने खड़े रहना होता है। ज़रा-सा मानसिक शोक भी 'शो' करना होता है। इसके बाद सिर नीचे किये चला आता है। सदाव्रत को सोचने में भी न जाने कैसा लगता है कि यही शरीर एक दिन 'जिन' न मिलने पर चुस्त नहीं रहता था। इसी चेहरे पर बिना मैक्स-फ़ैक्टर चुपड़े बाहर नहीं निकला जा सकता था। आज वही चेहरा असहाय और निर्जीव पड़ा था।

मिस्टर बोस भी आते।

धीरे से पूछते, "हाऊ इज़ शी ?"

सदाव्रत कहता, "अच्छी है।"

"एनी होप ?"

लगता था आजकल मिस्टर बोस ने ड्रिंक की मात्रा बढ़ा दी थी। रेसकोर्स में भी ज़्यादा रुपयों की बाज़ी लगाते थे। क्लब में भी काफ़ी रात तक किटी खेलते थे। बाद में जब लौटकर घर आते, मिसेज़ बोस की डिनर पूरी हो चुकी होती। बिस्तरे पर 'साइड-लैम्प' की रोशनी पर रेस-हैंडीकैप देखती-देखती सो जातीं। मिस्टर बोस भी एक-दो नींद की गोली निगलकर बिस्तरे पर जा पड़ते।

□ □ □

इसके बाद वह दिन भी आ गया।

सदाव्रत के ये कुछ दिन बड़ी बेचैनी में कटे। सिर्फ़ सदाव्रत ही क्यों, सारे कलकत्ता के लोगों को ही बेचैनी हो रही थी। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के स्टाफ़ में भी खुस-फुस शुरू हो गयी थी। वे लोग दूर से देखते।

सदाव्रत की गाड़ी के ऑफ़िस के फाटक में आते ही वे लोग ताक-झाँक शुरू कर देते। कोई-कोई टिप्पणी भी कसता। सुनायी नहीं देता। अन्दाज़ किया जा सकता था।

"अब गुप्ता साहब का क्या होगा ?"

"होगा क्या, नौकरी जायेगी।"

"अरे, इन लोगों की नौकरी रहे या जाये, इससे क्या फ़र्क पड़ता है ? उसके बाप के रुपये खानेवाला और कौन है ? यही तो एक लड़का है।"

लेकिन शिवप्रसाद गुप्त को सचमुच ही इन सब बातों पर माथापच्ची करने का वक़्त नहीं था। वह और ही बातों में मशगूल रहते थे। इण्टरनेशनल पॉलिटिक्स के बारे में उन्हें सोचना होता था। एशिया में कौन-सी पावर उठ रही है, इस बात का वह बराबर ख़याल रखते। स्वेज़ नहर की घटना से पॉलिटिक्स ने एक नया मोड़ ले लिया था। पंडित नेहरू की सुप्रिमेसी ईजिप्ट के नासिर के हाथों लगी। इसके बाद ही धीरे-धीरे सीरिया, ईराक़ और सऊदी अरब वगैरह एंग्लो-अमेरिकन ग्रुप से निकल गये। इज़राईल को सभी मिलकर कोने में कर देंगे। डर की बात तो अब थी। कौन किस ग्रुप में जायेगा। अब इंडिया पर भी दबाव पड़ेगा। अब इंडिया से भी पूछा जायेगा, तुम्हें किस दल में रहना है ? अब यह ढुलमुल नीति नहीं चलेगी। साफ़-साफ़ कह दो।

उस दिन अख़बार उठाते ही नज़र पड़ी। यह तो वही मिस बोस का केस है !

पुकारने लगे, "बद्रीनाथ !"

बद्रीनाथ के आते ही पूछा, "क्यों रे, छोटे बाबू कहाँ हैं ?"

"जी, छोटे बाबू तो ऑफ़िस चले गये।"

मन्दाकिनी भी कुछ नहीं कह पायी।

शिवप्रसाद गुप्त ने पूछा, "लगता है मामला कोर्ट में चला गया है।"

"मुझे तो कुछ पता नहीं है।"

"आज के अख़बार में है न।"

"होगा।" मन्दाकिनी इन सब बातों से कोई मतलब नहीं रखती। किसी मामले में उसकी दख़लन्दाज़ी शायद कोई पसन्द भी नहीं करता। नहीं तो इस गृहस्थी के बाहर उसका अपना अस्तित्व क्यों नहीं है ? उसका पति, उसका लड़का क्या करता है, कहाँ जाता है, कब आता है, उसे इन सब बातों की खबर देने की आवश्यकता भी शायद कोई महसूस नहीं करता। इस घर की

चहारदीवारी के अन्दर तुम्हारा साम्राज्य है। तुम उसकी महारानी बनकर रहो। तुम हमारे मामलों में सिर खपाने मत आओ। इस कलकत्ता शहर में इतनी बातें हो जाती हैं। पद्मरानी के इतने फ़्लैट, इतने सारे क्लब, इतनी किटी, इतनी टी० बी०, इतने झंझट और झमेलों से तुम्हें दूर रखकर हम लोगों ने निश्चिन्त कर दिया है। इसके लिए हमें धन्यवाद देना चाहिए। तुम गृहलक्ष्मी हो। लैंड-डेवेलपमेंट कॉरपोरेशन में कितना प्रॉफ़िट और कितना लॉस होता है, इससे तुम्हें क्या मतलब? तुम्हें यह भी जानने की कोई ज़रूरत नहीं है कि तुम्हारा लड़का 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के ऑफ़िस से हर महीने दो हज़ार रुपये लेकर किसी बैंक में जमा नहीं करता, दान कर देता है।

उस दिन अचानक बद्रीनाथ अन्दर आया।

"माँ, एक आदमी तुमसे मिलना चाहता है।"

मन्दाकिनी हैरान रह गयी। "मुझसे? कौन है? मुझसे क्यों मिलना चाहता है? तूने शायद ग़लत सुना है।"

बद्रीनाथ ने कहा, "नहीं, माँ! मैंने कहा था घर में कोई नहीं है। फिर भी आपसे मिलना चाहता है।"

"कौन है? कहाँ से आया है? क्या काम है?"

ऐसा तो कभी होता नहीं। मन्दाकिनी के साथ तो सिर्फ़ ग्वाला, ऊपले-वाले, कहारिन, नौकरानी और महाराज को ही काम रहने की बात है। फिर भी जल्दी से बाहर के कमरे में आ गयी। आकर अनजान चेहरों को देखकर हैरान रह गयी।

मन्मथ बैठा था। मन्दाकिनी को देखते ही उठ खड़ा हुआ।

"आप लोगों को ठीक से पहचान नहीं पा रही?"

केदार बाबू आगे आये। कहने लगे, "आपने मुझे देखा है, माँ! मैं सदाव्रत का मास्टर हूँ। मधुगुप्त लेन वाले मकान में पढ़ाने जाता था।"

फिर भी न पहचानने की ही बात थी। पास की कुर्सी पर एक लड़की चुपचाप बैठी थी।

"यह मेरी भतीजी शैल है। शैल बेटी, प्रणाम करो!"

शैल की उठने की या प्रणाम करने की इच्छा नहीं थी। लेकिन मन्दाकिनी ने खुद ही बचा दिया।

"नहीं-नहीं, प्रणाम नहीं करना होगा, मैंने अभी स्नान नहीं किया है।"

मन्मथ ने कहा, "हम लोग अभी-अभी पुरी से आ रहे हैं। मास्टर साहब

की बीमारी की वजह से गये थे। लेकिन अख़बार में सदाव्रत दा के एक्सिडेंट की ख़बर पढ़कर मास्टर साहब वहाँ और ज़्यादा दिन नहीं रुकना चाहते थे। कहने लगे, और एक मिनट भी यहाँ नहीं रुकूँगा। टिकट मिलने में दस-बारह दिन की देर हो गयी। नहीं तो और पहले चले आते। हावड़ा-स्टेशन से सीधे यहीं आ रहे हैं।"

केदार बाबू ने मन्मथ को रोक दिया। बोले, "अच्छा, तुम चुप रहो। बहुत बेकार की बात करते हो। आप बतलाइये माँ, सदाव्रत को क्या हुआ? अख़बार में तो सारी खबरें मिलती नहीं हैं। किसने यह काम किया? जब से सुना है माँ, मेरा मन बेचैन हो रहा है।"

मन्दाकिनी ने कहा, "क्या पता, मास्टर साहब, मुझे भी ठीक-ठीक सब-कुछ मालूम नहीं है।"

"आपको नहीं पता? तो कौन जानता है? किसके पास जाने पर सब पता लगेगा? सदाव्रत कहाँ है?"

"वह तो सुबह का ऑफ़िस गया है।"

"तब हम लोग ऑफ़िस ही चलें। मन्मथ, चलो, ऑफ़िस ही चलें। हम लोग अब चलें, माँ! चलो, शैल, सदाव्रत के ऑफ़िस चलते हैं। देखता हूँ काफ़ी मुश्किल हो गयी है।"

मन्मथ शायद विरोध करने जा रहा था। बोला, "सारी रात ट्रेन में काटकर अब फिर निकलेंगे? खा-पीकर ज़रा देर आराम कर लेते, फिर···"

"तुम चुप रहो न! चलो, शैल! एक बार बैठ जाने पर तेरा तो उठने को मन ही नहीं करता!"

"तुम लोगों का खाना-पीना अभी नहीं हुआ क्या?"

केदार बाबू ने ही उत्तर दिया, "खाना होगा कैसे? सदाव्रत के साथ इतनी बड़ी घटना हो गयी और मैं खाऊँगा? शादी टूट गयी न? दो हज़ार की नौकरी क्या रहेगी अब? काफ़ी मुश्किल हो गयी।"

"तब तुम लोग यहाँ ही खा-पी लो न! मेरे यहाँ रसोई उठी नहीं है···"

केदार बाबू उठकर खड़े हो गये थे। बोले, "रसोई उठी नहीं है?"

"हाँ। महाराज अभी पाँच मिनट में खाना तैयार कर देगा।"

केदार बाबू शैल की ओर मुड़े। बोले, "क्यों री, खायेगी? भूख लगी है न? शरमाने की कोई बात नहीं है। कह दे। रसोई अभी उठी नहीं है। महाराज अभी हाल लिये आता है।"

फिर मन्दाकिनी की ओर देखकर बोले, "सिर्फ़ चावल! और कुछ

नहीं। ज़रा से चावल, आलू और मूँग की दाल।"

"तुम रुको तो, काका !"

केदार बाबू ने कहा, "क्यों ? मैंने क्या कुछ खराब कह दिया ? ये लोग बड़े आदमी हैं। हम लोग खा लेंगे तो ऐसा क्या ख़र्च हो जायेगा ! क्यों, माँ ?"

"लेकिन घर पर भी तो खाना बना है। मैंने ख़बर भी भिजवा दी थी।" मन्मथ ने कहा।

केदार बाबू नाराज़ हो गये। "तुम बेकार की बात बहुत करते हो, मन्मथ ! तुम्हारे घर का खाना और यहाँ का खाना ? इस घर के साथ अपनी तुलना कर रहे हो ? पता है ये कितने बड़े आदमी हैं ? तुम्हारे पिताजी को ख़रीद सकते हैं। आप बतलाइये माँ, मैंने कुछ ग़लत कहा ?"

मन्दाकिनी को हँसी आ रही थी। लेकिन शैल तब तक उठकर खड़ी हो चुकी थी। उठकर मन्मथ से बोली, "मन्मथ दा, मेरे साथ चलो। काका को यहीं रहने दो !"

कहकर सीधी बाहर जाकर खड़ी हो गयी।

भतीजी के इस व्यवहार से केदार बाबू हैरान रह गये। मन्मथ भी तब तक बाहर चला आया था। बाहर टैक्सी खड़ी थी। टैक्सी के अन्दर ट्रंक, बिस्तरे और ज़रूरत की सारी चीज़ें थीं।

केदार बाबू भतीजी की बात समझ नहीं पाये। ऐसा आराम और स्नेह भी कोई ठुकरा सकता है, उनकी समझ में नहीं आ रहा था।

और कोई रास्ता न देख वह भी सीढ़ी उतरकर सबके साथ टैक्सी में बैठ गये। बैठने से पहले मन्दाकिनी से बोले, "तब सदाव्रत से कह दीजियेगा माँ, कि हम लोग आ गये हैं। शैल और मन्मथ सभी आ गये हैं। कह दीजियेगा। भूल न जाइयेगा।"

टैक्सी चली गयी।

□ □ □

अदालत में अपराधी के कठघरे में उस समय एक आदमी की मूर्ति खड़ी एक-एक मिनट गिन रही थी। दुनिया के सारे लोगो, देख लो, मैं आज अपराधी हूँ। अब तक मैं ही फरियादी थी। मेरी फरियाद ने एक दिन इस दुनिया की धरती, आसमान, हवा हर चीज़ को छू लिया था। उन दिनों मैं भूखी मर रही हूँ या नहीं, इस बात को लेकर इन लोगों ने सिर नहीं खपाया। मैं ज़िन्दा हूँ या मर गयी, इस बात को जानने की भी इन लोगों

ने ज़रूरत नहीं समझी। मेरी मौजूदगी के बारे में हर कोई बेख़बर था। जिस चीज़ की ओर हर किसी की नज़र थी—वह थी मेरी उम्र, मेरा स्वास्थ्य। उस दिन मेरी उम्र और मेरी सुडौल देह देखकर लोगों ने मुझे सोने का मैडल देना चाहा। मेरा अभिनय देखकर ताली बजाते, वाह-वाह! मेरे साथ सोने के लिए पैसे देते। ऑकलैंड प्लेस के बड़े बाबू विभूति बाबू से लेकर सेठ ठगनलाल तक सभी मेरे साथ सोये हैं। मेरे लिए तालियाँ पीटीं, और काम निकल जाने पर जूते के सूखे तल्ले की तरह निकालकर फेंक देते। मेरी रात कटी है रोने में, दिन ऐक्टिंग करने में और रिहर्सल देने में। मेरे रहने की जगह तक गुंडे लगवाकर जलवा दी। उस आग में मेरे बूढ़े पिता जलकर मर गये। फिर भी दूसरे हाथ से आँसू पोंछकर और रंग पोतकर मैंने ड्रामे में रानी की भूमिका की। इस फरियाद पर किसी ने कान नहीं दिया। रुपये देकर जिन लोगों ने पास सोने के लिए मेरी ख़ुशामद की, आज उन्होंने ही अपराधी बनाकर इस कठघरे में खड़ा किया है।

एक-एक गवाह आता और पता नहीं क्या-क्या कह जाता। कुन्ती के कान में कुछ भी नहीं जाता। कुछ दिनों से अदालत में जैसे मेला लगा था।

शंभू भी आया था। शंभू बाबू।

"आप लोगों के क्लब में अपराधी रिहर्सल के लिए जाती थी?"

"जी हां।"

"इसका मतलब है कि आप इसे पहचानते हैं! इसके स्वभाव और चरित्र के बारे में कुछ बतलाइये।"

"अच्छा ही है।"

"आपको क्या यह भी मालूम है कि यही अपराधी सोनागाछी के चकलों में 'टगर' के नाम से अपना शरीर बेचती थी?"

पब्लिक प्रॉसीक्यूटर के इस सवाल से शंभू चौंक उठा। उसने कहा, "मुझे तो मालूम नहीं है।"

"अच्छा, अब आप जाइये।"

इसके बाद की गवाह पद्मरानी थी। सिर को अच्छी तरह ढँककर पद्मरानी गवाह के कठघरे में आयी।

□ □ □

आखिर में शशिपद बाबू के घर जाकर ही टैक्सी रुकी। केदार बाबू, मन्मथ और शैल तीनों ही। कल रात को पुरी से ट्रेन में चढ़े थे। सदाव्रत हर महीने रुपये भेजता था। इतने कामों के बीच भी सदाव्रत रुपया भेजना

नहीं भूला। रजिस्टर्ड लिफाफे में हर महीने की तीसरी तारीख को डाकिया रुपये पहुँचा आता और केदार बाबू रसीद पर दस्तखत करके ले लेते।

हर महीने सात-सौ रुपये। उसमें भी कभी-कभी कम पड़ता।

दूध की क़ीमत बढ़ रही है, दवाओं की क़ीमतें बढ़ रही हैं, अनाज का भाव भी चढ़ गया है। शुरू-शुरू में जिस भाव चावल मिलता था, बाद में वही चावल डेढ़ गुने भाव में खरीदना पड़ा। और दवाएँ ? पैसा ख़र्च करने से ही क्या दवाएँ मिलती हैं ?

एक दिन मन्मथ के ऊपर बिगड़ गये।

बोले, "दवा मिलती नहीं है, माने ? कहने से ही हो गया ? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

मन्मथ ने ये कुछ महीने किस तरह काटे, यह वही जानता है। केदार बाबू एक आदर्श आदमी हैं। इन्सान और इन्सानी सरकार के ऊपर अटूट विश्वास रखकर उन्होंने जीना चाहा। लेकिन उन्हें हर बार ही धक्का लगा। धक्के के बाद धक्का खाते-खाते आजकल न जाने कैसे हो गये हैं।

कभी-कभी कहते, "नहीं मन्मथ, और नहीं होगा।"

"क्या नहीं होगा, सर ?"

"हम लोगों से कुछ भी नहीं होगा। हमारा मॉरल-कैरेक्टर ही ख़राब हो चुका है।"

पुरी में केदार बाबू को कोई काम नहीं था। इसी वजह से सोचने का वक़्त और भी ज़्यादा मिलता था। इस सोचने की ही वजह से उनकी हालत ज़्यादा नहीं सुधर पाती थी। हीगेल कह गया है : स्टेट इज़ द नेचुरल, नेसेसरी एण्ड फ़ाइनल फॉर्म ऑफ़ ह्यूमन ऑर्गनाइज़ेशन। गांधीजी इस बात को नहीं मानते थे। गांधीजी का कहना था : एन आइडियल स्टेट शुड बी एन ऑर्डर्ड एण्ड एन्लाइटण्ड अनार्की। इन सच ए स्टेट एव्री वन इज़ हिज़ ओन रूलर। ही रूल्स हिमसेल्फ़ इन सच ए मैनर दैट ही इज़ नेवर ए हिंडरैन्स टु हिज़ नेबर्स। इन दिस आइडियल स्टेट देयरफ़ोर देअर इज़ नो पॉलिटिकल पॉवर बिकॉज़ देअर इज़ नो स्टेट।

पुरी में गरजते समुद्र के किनारे बैठे यही सब ज़मीन-आसमान के कुलावे लगाया करते। किसकी बात सच है ? कौन-सी बात से मनुष्य जाति का भला होगा ? किस तरह इस जाति का शुभ हो ? एक गवर्नर या प्रेसिडेंट के बदल देने से अगर अच्छा होना होता तो नैपोलियन के मर जाने के बाद फ्रांस में शान्ति होनी चाहिए थी। फ़ज़लुलहक़ साहब एक

दिन बंगाल के चीफ़ मिनिस्टर थे। उनके हटते ही अगर बंगाल में शान्ति आनी होती तो आज बंगाल का यह हाल न होता। यहाँ कोई तकलीफ़ न होती। वह फ़जलुलहक़ भी नहीं हैं, निजामुद्दीन साहब भी नहीं हैं। तब क्यों चावल के दाम बढ़ रहे हैं और दवाओं में क्यों मिलावट की जाती है?

यूक्लिड साहब काफ़ी दिन हुए लाइन की परिभाषा देते हुए लिख गये हैं—ए लाइन इज़ वन ह्विच हैज़ लैंथ बट नो ब्रेड्थ। लेकिन यूक्लिड साहब की परिभाषा के अनुसार लाइन कोई खींच पाया है? यह क्या सम्भव है? शायद यह आदर्श की बात होगी। इसी बात को ध्यान में रखकर ही आज भी ज्यॉमिट्री आगे बढ़ रही है। इसी तरह सारे इन्सान अच्छे ही हों, यह सम्भव न होने पर भी गवर्नमेंट तो आगे बढ़ेगी ही। तो बढ़ क्यों नहीं रही?

केदार बाबू सामने किसी को देखते ही पूछते, "क्यों मन्मथ, तुम्हारा क्या ख़याल है? आगे क्यों नहीं बढ़ रही है?"

मन्मथ इस बात का क्या उत्तर देता! उसको और भी बहुत-से काम हैं। बाज़ार से सामान लाना, दवा लाना, सभी कुछ उसे ही तो देखना होता था। शैल जाने कैसी हो गयी थी। ज़्यादा बात नहीं करती थी।

केदार बाबू शैल से भी पूछते "क्यों शैल, तेरा कहना क्या है?"

पहले तो शैल काका की बातों पर ध्यान देती थी, लेकिन बाद में उस ओर ध्यान नहीं देती थी।

केदार बाबू कहते "अच्छा, तुम लोग कोई कुछ भी नहीं बोलोगे? कोई कुछ भी नहीं सोचोगे? मैं अकेला ही सब-कुछ सोचूँ?"

शैल रूखे स्वर में कहती, "हम लोगों का तो दिमाग़ अभी ख़राब नहीं हुआ है। हम लोगों को और भी काम हैं।"

सच ही तो! केदार बाबू और नाराज़ नहीं हो पाते। सभी क्यों उनकी तरह से सोचने लगें? हर कोई अगर सोचने लगता तो धरती स्वर्ग न बन जाती। बाहर सड़क पर इधर-उधर देखने की कोशिश करते। सभी साड़ियों के बारे में सोचते हैं, गहनों के बारे में सोचते हैं। हर किसी को प्रमोशन, डिवीडेंड और प्रॉफ़िट की पड़ी है। रुपया, बँगला, गाड़ी और नाम की पड़ी है। अपने मतलब की चीज़ के सिवाय और कुछ सोचने का वक़्त किसी के पास नहीं है। चीज़ों की क़ीमतें क्यों बढ़ रही हैं? लड़ाई क्यों होती है? ईमानदार आदमी रातों-रात बेईमान क्यों बन जाता है? इसका ऐतिहासिक कारण क्या है, इसका कोई भी पता नहीं लगाता। तुम्हारे पड़ोस में आग लगने पर तुम क्या बचोगे? पाकिस्तान में गड़बड़ होने पर तुम्हारा

इंडिया क्या ऐसे ही रह जायेगा ? बर्मा, ईजिप्ट और सीलोन में रिवोल्यूशन होने पर क्या तुम शान्ति से रह पाओगे ?

इन्हीं दिनों ख़बर फैली। अख़बार में सदाव्रत की ख़बर पढ़ने के बाद केदार बाबू के लिए पुरी में और एक दिन भी रुकना मुश्किल होगया। उनको लगा, जैसे उनका हिसाब मिल गया है—अब ? मैंने तभी कहा था कि दुनिया में चैन से रहने के दिन बीत चुके हैं। अब हर वक़्त होशियार रहना होगा। हमारे पुरखे जो दिन देख गये हैं अब वे दिन नहीं रहे। आज भी अगर समस्या का हल नहीं होगा तो हम लोग कहीं के नहीं रहेंगे। हम डूब जायेंगे। घर आते ही 'हर्बर्ट रीड' की किताब खोलकर बैठ गये।

कहने लगे, "यह देखो, हर्बर्ट साहब ने क्या लिखा है !"

इसके बाद पढ़ने लगे, "इट इज़ ए सोसायटी विद लयज़र—दैट इज़ टु से स्पेयर टाईम—विदाऊट कम्पेन्सेटरी ऑकूपेशन आऊट ऑफ़ व्हिच क्राईम गैंगस्टर्डम एण्ड फ़ासिज़्म इन्एविटेबली डेवेलप।"

इसके बाद पियारीलाल की किताब खोलकर दिखलायी—यह देखो, पियारीलाल ने लिखा है—देयर इज़ ए ग्रोइंग क्लास ऑफ़ पीपल टु-डे इन अवर मिडस्ट हू आर प्राउड ऑफ़ द जॉब्स बिकॉज़ ऑफ़ देयर रेम्यूनेरेशन एण्ड सोशल स्टेटस इट गिव्स देम बट दे हेट द वेरी साईट ऑफ़ देयर वर्क। इट इज़ दे हू, टु कवर द एशेन्शियल एम्प्टीनेस ऑफ़ बोर्डम ऑफ़ देयर ऑकूपेशन गिव देमसेल्व्स अप टु द एडवान्समेंट ऑफ़ मोर्बिड ड्रीम्स ऑफ़एमबिशन एण्ड पॉवर।

तभी अचानक नज़र उठाकर देखा, सामने कोई नहीं था। मन्मथ और शैल नज़रों के सामने से न ज़ाने कहाँ ओझल हो गये थे। कोई उनकी बात नहीं सुनता। कोई सुनना भी नहीं चाहता। जानना भी नहीं चाहता।

और इसके दूसरे ही दिन कलकत्ता चले आये। पहले सदाव्रत से ही मिलना चाहते थे। सदाव्रत होता तो शायद उनकी बातें समझता। उससे कहकर तसल्ली मिलती। भले ही आज एक लड़की गिरफ़्तार हुई हो, भले ही आज एक लड़की अपना चेहरा और आँखें झुलसवाकर अस्पताल में पड़ी हो, जिस दिन हालत और भी खतरनाक होगी, उस दिन की बात सोचकर ही केदार बाबू मन-ही-मन सिहर उठे।

शशिपद बाबू तब तक ऑफ़िस चले गये थे। मन्मथ ने पहले से ही माँ को लिख दिया था। खाना तैयार ही था।

बाहर आते हुए मन्मथ की माँ ने कहा, "आओ बेटी, चली आओ।"

केदार बाबू बीच ही में बोल उठे, "माँ, आप पहले इस शैल को कुछ खिला दीजिये। न खाने की वजह से मुझ पर खूब गुस्सा है। कल से मेरे साथ बात नहीं कर रही।"

"क्यों, आपने भी तो खाना नहीं खाया होगा। आप भी खा लीजिये, सब तैयार है।"

मन्मथ ने कहा, "माँ, ऊपरवाले बड़े कमरे में मास्टर साहब रहेंगे, कमरा साफ़ करा लो।"

"उस सबके लिए तुझे परेशान होने की ज़रूरत नहीं है, मैंने सब ठीक कर रखा है।"

□ □ □

शाम को सदाव्रत आया। कोर्ट से सीधा यहीं आया था। कुछ दिन से सिर भारी-भारी-सा लग रहा है। रोज़ ही एक बार कोर्ट और वहाँ से हॉस्पिटल। एक दिन वह इसी कलकत्ता को देखने निकला करता था। गाड़ी को किसी जगह पार्क कर इधर-उधर घूमता था। इन्हीं इन्सानों को, कलकत्ता के नये ज़माने के इन्सान को देखना, उसे अच्छा ही लगता था—कितने असहाय हैं ये इन्सान! लेकिन उन्हें कोई 'ऑकूपेशन' नहीं देता। इसीलिए यहाँ-वहाँ खड़े होकर फ्रॉक या बनियानों का मोल-भाव कर बे-बात घूमा करते हैं। उस विनय की तरह 'इन्सटॉलमेंट' में सूट बनवाने या शंभू की तरह ड्रामेटिक क्लब में बैठकबाज़ी करने के सिवाय इन लोगों के पास कोई काम नहीं है।

लेकिन आज कोर्ट में ही जैसे उसने असली कलकत्ता देखा।

कहाँ की एक पद्मरानी। वह भी गवाही देने आयी थी। इतने दिन से ये लोग कहाँ थीं? ये लोग भी क्या इसी कलकत्ता की रहनेवाली हैं?

पहला ट्रायल लोअर-कोर्ट में ही हुआ था। सभी को जो कुछ कहना था, कहा गया। ट्राइंग मजिस्ट्रेट ने मामला 'हाईकोर्ट' के सुपुर्द कर दिया। 'कॉज़िंग ग्रीवियस इन्जरी एमाउन्टिग टु मर्डर।'

पद्मरानी ने कहा, "अजी नहीं बाबूजी, वह मेरी कोई नहीं है। पेट की बेटी भी नहीं है। न मैंने उसे पाला-पोसा ही है।"

"अच्छा, अच्छी तरह से देखिये! मुजरिम का नाम कुन्ती गुहा है या टगर?"

"अरे राम, कुन्ती गुहा क्यों होने लगी? यह तो अपनी टगर है। मेरे यहाँ एक कमरा ले रखा था किराये पर।"

"किसलिए?"

"यही ज़रा गाना-बजाना होता है, और क्या ! मेरी बिटिया नाच भी जानती है न। लेकिन मेरा कहना है कि भले आदमियों के लड़के अगर वहाँ बैठकर ज़रा देर…"

"अच्छा एक बात और। आपने क्या इसे कभी नाटक वगैरह में काम करते देखा है ?"

"अरे राम, नाटिक कैसे करेगी बेचारी ? मैं ही नाटिक-वाटिक में काम नहीं कर पायी, तब वह कैसे करेगी ?"

"मकान के किराये से हर महीने आपकी कितनी आमदनी होती है ?"

"उसका क्या कोई हिसाब है, भैया ? हिसाब ही अगर रख पाती तो क्या मेरा यह बुरा हाल होता ?"

"आपकी आमदनी कितनी है, आपको नहीं मालूम ?"

"नहीं भैया, ख़याल में नहीं है।"

"अच्छा, अब आप उतर आइये।"

पद्मरानी की आँखें शायद भर आयी थीं। ज़िन्दगी में बहुत-से वकील देखे, पुलिस देखी। लेकिन इतनी मुश्किल में पड़ने का मौक़ा नहीं आया।

निचले कोर्ट में जो पद्मरानी शुरू से आखिर तक झूठ बोलती रही, वही पद्मरानी हाईकोर्ट में वकील की जिरह से परेशान हो गयी। अंट-संट कहने लगी।

"आपने सुन्दरियाबाई का नाम सुना है ?"

पद्मरानी पसीने-पसीने हो गयी थी। उसकी हालत देखकर पूरी अदालत के लोग हैरान थे। पिछले दिन जो भी आया था, उसने पद्मरानी को देखा था। फुलाकर काढ़े गये बाल, पान से रंगे होंठ। भारी-भरकम गोल-मटोल देह। खून-खराबी के मुक़दमे में सुनने आनेवाले बेकार लोगों की अदालत में कमी नहीं रहती। सोनागाछी की चकलेवाली का बयान सुनने के लिए लोग अपना सारा काम छोड़कर आये। इस मामले को महीनों हो गये। बड़े घर के किस्से सुननेवालों की जैसे फिर भी कोई कमी नहीं है। अखबारी सूखी रिपोर्ट पर उन्हें विश्वास नहीं है। मुजरिम को अपनी आँखों से देखने आते। नाटकों में जो काम करती थी यहाँ वह हाड़-माँस की मूर्ति थी। इस हाड़-माँस की पुतली को रोज़ देखा जा सकता है। इसी लड़की को कलकत्ता के लोगों ने रात-रात-भर भोगा। रुपये लेकर जो पहुँचा, उसी को यह देह मिली। दूसरी ओर 'सिराजुद्दौला' नाटक में

'आलिया' का अभिनय करके इसी लड़की ने लोगों को मंत्रमुग्ध किया। कभी कुन्ती गुहा होती तो कभी टगर !

हर मुहल्ले, हर गली में यही चर्चा थी, हर जगह कुन्ती गुहा का नाम गुलज़ार था।

कोई कहता, 'अरे, असल में छोकरी कम्युनिस्ट है—इस मामले के पीछे कम्युनिस्टों का हाथ है।'

तो कोई कहता, 'धत् ! कम्युनिस्ट क्यों होने लगी ! इसके पीछे काँग्रेस का हाथ है—शिवप्रसाद गुप्त के लड़के के साथ ज़रूर ही कोई साँठ-गाँठ है।'

किसी-किसी दिन हियरिंग होती और रातों-रात हवा का रुख़ बदल जाता।

'और पता है सुन्दरियाबाई ही असली सप्लायर है ?'

'सुन्दरियाबाई कौन ?'

लोअर कोर्ट में सुन्दरियाबाई का नाम नहीं आया था। हाईकोर्ट में जब मामला ज़ोरों से चल रहा था, अचानक एक दिन उसका नाम लिया जाने लगा। राजस्थान में कोई जयपुर नाम की जगह है, वहीं रहती है, और पद्मरानी को लड़कियाँ सप्लाई करती है। इधर-उधर की लड़कियों को फँसाकर लाती और अच्छे भाव पर पद्मरानी को बेच देती। सिर्फ़ राजस्थान ही नहीं, उड़ीसा, बिहार, यू० पी०, आसाम, ईस्ट पंजाब वगैरह सभी जगहों पर उसके दलाल और एजेन्ट फैले थे। पद्मरानी इन लड़कियों को सजा-सँवारकर और सिखा-पढ़ाकर आदमी बनाती। बाद में पैर-पर-पैर रखे उनकी कमायी खाती।

और क्या सिर्फ़ इतना ही ! एक घंटे-दो घंटे के लिए कमरा किराये पर लेकर बाहरी लड़कियाँ भी धन्धा करतीं। किसी-किसी के घर तो उसका आदमी और बाल-बच्चे भी होते। ऐसी भी कितनी ही लड़कियों ने पद्मरानी के यहाँ किराये पर कमरे ले रखे थे।

जिरह के समय एक-एक करके बातें खुलतीं और दूसरे क्षण कलकत्ता-वालों की ज़बान पर होतीं। इतना सब हो रहा ! अन्दर-ही-अन्दर ये गुल खिल रहे हैं ! ऊपर से तो प्लानिंग कमीशन और फॉरेन-एड की बातें की जातीं, और अन्दर-ही-अन्दर यह चल रहा है।

हर गली और मुहल्ले के लोगों की ज़बान पर यही बात थी। ऑफ़िसों और क्लबों में भी विषय यही था।

लोअर-कोर्ट के मजिस्ट्रेट ने कुन्ती से पूछा, "तुम्हें कुछ कहना है ?"

कुन्ती सिर्फ़ सुन रही है। एक के बाद एक गवाह आता और पब्लिक-प्रॉसीक्यूटर के सवालों का जवाब देकर चला जाता। और बातें उसके कान में घुस ही रही थीं। किसी भी दिन उसकी ज़बान से कुछ नहीं निकला। कुन्ती गुहा को पता है कि यह कलकत्ता सिर्फ़ उसका नुक़सान कर सकता है, भला करने की ताक़त यहाँ किसी में नहीं है। बूड़ी के मुक़दमे के वक़्त उसने इसी कलकत्ता को देखा है। किसी ने जानने की कोशिश नहीं की, क्यों उसने चोरी की। आज किसी को इस बात से भी कोई मतलब नहीं है कि उसने एसिड-बल्ब क्यों फेंका? अगर जानने की कोशिश की जाती?

तभी मजिस्ट्रेट ने फिर कहा, "तुमने तो सभी-कुछ सुना। इस केस के मुख्य गवाह, ख़ुद सदाव्रत गुप्त ने ही तुम्हें बल्ब फेंकते हुए देखा है। इस बारे में तुम्हें क्या कहना है? तुम कसूरवार हो या बेकसूर?"

कुन्ती ने सिर झुकाये कहा, "मैं बेकसूर हूँ।"

मजिस्ट्रेट शायद सुन नहीं पाये।

कहा, "ज़रा ज़ोर से साफ़-साफ़ कहो, मैंने सुना नहीं।"

पूरी अदालत में खामोशी छा गयी।

कुन्ती गुहा ने फिर से साफ़ आवाज़ में कहा, "मैं एकदम बेकसूर हूँ!"

□ □ □

सदाव्रत ने एक बार नज़र उठाकर कुन्ती की ओर देखा। इसके बाद दोनों ओर से दो कान्स्टेबल आकर मुजरिम को ले गये। अदालत के सारे लोग बाहर सड़क पर आ गये। जो लड़की रास्ता चलते आदमी की भोग्या है, वह भी कहती है मैं बेकसूर हूँ। इससे ज़्यादा, मज़ेदार बात जैसे कोई भी नहीं हो सकती। इससे बड़ा झूठ दुनिया में सुनने को नहीं मिलेगा।

लेकिन हाईकोर्ट में उस दिन पद्मरानी का बुरा हाल हो गया।

स्टैंडिंग कौंसिल ने फिर से सवाल दुहराया, "आपने सुन्दरियाबाई का नाम सुना है?"

पद्मरानी क्या कहे, कुछ ठीक नहीं कर पा रही थी।

"कहिये, सुना है या नहीं? अगर सुना नहीं है तो हम उसी सुन्दरियाबाई को बुलाते हैं। वह आकर बतलायेगी कि आप उसे जानती हैं या नहीं! अब कहिये, उसके साथ आपका क्या सम्बन्ध है?"

पद्मरानी—"उसे कभी-कभी कुछ रुपया भेजती थी।"

"कभी-कभी या हर महीने?"

"हर महीने।"

"रुपया क्यों भेजती थीं ?"

"वह मेरा काम करती थी।"

"क्या काम ?"

"जिन सब लड़कियों का कोई नहीं होता, ऐसी अनाथ और असहाय लड़कियों को मेरे पास भेज देती। मैं उन्हें खिलाती-पिलाती, आदमी बनाती।"

"फिर ?"

"फिर वे लोग मेरे फ़्लैट में कमरा किराये पर लेकर रहतीं, और···"

स्टैंडिंग कौंसिल ने फिर सवाल किया, "सुन्दरियाबाई के साथ आपकी जान-पहचान कैसे हुई ?"

पद्मरानी चुप रही।

"कहिये, कैसे जान-पहचान हुई ?"

पद्मरानी ने सिर झुकाये कहा, "ख़याल नहीं है।"

"याद करने की कोशिश करिये न !"

"ख़याल नहीं पड़ता।"

अदालत खचाखच भरी थी। अचानक घंटे की आवाज़ आयी। जूरी लोग अपने चैम्बरों में चले गये। ट्राइंग जज भी अपने चैम्बर में चले गये। लंच। लंच टाइम हो गया था।

लंच के बाद फिर से सुनवायी शुरू हुई। सब लोग अपनी-अपनी जगह आ बैठे थे। इस बार एक नया गवाह था। नये गवाह का नाम सुन्दरियाबाई था।

"मैं ईश्वर की कसम खाकर कहती हूँ कि सच छोड़कर झूठ नहीं बोलूँगी।"

"तुम कहाँ रहती हो ?"

"जयपुर।"

"तुम पद्मरानी दासी को जानती हो ?"

"हाँ।"

"उससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?"

"मैं उसके साथ धन्धा करती हूँ।"

"किस चीज़ का धन्धा ?"

"लड़कियों का।"

"ठीक से समझाओ, लड़कियों के धन्धे से तुम्हारा क्या मतलब है ? जज साहब तुमसे साफ़-साफ़ सुनना चाहते हैं।"

सुन्दरियाबाई का घूँघट ज़रा खिसक गया। अब उसका पूरा चेहरा साफ़-साफ़ दिखलाई दे रहा था। वह बतलाने लगी—सारी इंडिया में उसका जाल किस तरह बिछा हुआ है। उड़ीसा, यू० पी०, मध्यप्रदेश, बम्बई, हर जगह। उसकी कलकत्ता की एजेन्ट है पद्मरानी दासी। पद्मरानी को अभी तक उसने क़रीब तीन-चार सौ लड़कियाँ बेची हैं। एक-एक लड़की दो-दो हज़ार के हिसाब से। कम उम्र और ज़्यादा ख़ूबसूरत लड़की होने पर चार हज़ार तक लिया है। उसके कितने ही दलाल हैं। वे लोग ही उसके लिए लड़कियाँ लाते हैं। गाँवों और शहरों में उसके एजेन्ट हैं। ये एजेन्ट और दलाल लोग ही बहला-फुसलाकर या गहनों का लोभ दिखलाकर लड़कियाँ फँसाते और जगह-जगह सप्लाई कर देते हैं।

"इस मुजरिम की ओर देखो, इसे भी क्या तुमने सप्लाई किया है ?"

सुन्दरियाबाई ने अच्छी तरह से कुन्ती की ओर देखा। फिर कहा, "नहीं हुजूर, यह मेरी भेजी लड़की नहीं है।"

"तुम्हें कैसे पता लगा ? हर लड़की को क्या देखकर भेजती हो ?"

"जी हाँ।"

"जिस-जिसको तुमने पद्मरानी के यहाँ भेजा है, देखने पर हर किसी को पहचान पाओगी ?"

"सो तो ठीक-ठीक नहीं कह सकती, फिर भी आसामी या बंगाली। हाँ, मैंने कभी बंगाली लड़कियों का धन्धा नहीं किया है।"

"बंगाली लड़कियों का इन्तज़ाम क्या पद्मरानी ख़ुद ही करती है ?"

"वह तो मैं कह नहीं सकती।"

"तुम जो धन्धा करती हो इसके लिए क्या पद्मरानी से तुम्हारी चिट्ठी-पत्री चलती है ?"

"जी नहीं। चिट्ठी-पत्री लिखकर यह धन्धा नहीं होता। हम लोग लिखा-पढ़ी के झमेले में नहीं पड़ते। मैं ट्रंककाल कर देती हूँ, टेलीफ़ोन पर ही भाव-ताव ठीक हो जाता है।"

"तुम जो आज ये सब बातें बतला रही हो इससे तुम्हारे धन्धे को नुक़सान नहीं पहुँचेगा ?"

"नुक़सान होगा, यह जानकर ही कह रही हूँ।"

"क्यों ?"

"हुज़ूर, अब मुझे कोई डर नहीं है। मुझे रुपयों की भी ज़रूरत नहीं है।"

"पता है, इन सारी बातों के लिए तुम्हें सज़ा हो सकती है ?"

"मुझे सज़ा मिल चुकी है, हुज़ूर !"

"कैसी सज़ा ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "मेरा एक लड़का था, इकलौता लड़का। लड़के की शादी नहीं हुई थी। शादी का सब ठीक-ठाक कर रखा था। आज एक महीना हुआ, वह लड़का मर गया।"

पूरी अदालत ने जैसे एक गहरी साँस ली।

"आज मेरा अपना कहने को कोई नहीं है। आज मेरे लिए रुपया-पैसा सब-कुछ फिज़ूल है, हुज़ूर !"

"लेकिन तुम्हें क्या यह भी मालूम है कि तुम्हारी गवाही पर पद्मरानी को सज़ा हो सकती है ?"

"मैं चाहती हूँ कि उसे सज़ा मिले।"

"क्यों ?"

"पद्मरानी ने मुझे बड़ा धोखा दिया है, हुज़ूर ! पूरे पचास हज़ार का नुक़सान करा दिया है। मैंने कितनी ही बार आदमी भेजे। ख़ुद भी उसके फ़्लैट पर आयी। रुपया माँगा। बाद में कितनी ही बार ट्रंककाल भी किया। फिर भी रुपया नहीं दिया।"

उस दिन की सुनवायी पूरी हो गयी। झुंड-के-झुंड कलकतिया फिर से सड़क पर आ गये। गली-गली और मुहल्ले-मुहल्ले में मीटिंगें जमने लगीं।

कोर्ट से हॉस्पिटल जाकर सदाव्रत ज़रा देर कैबिन के सामने खड़ा हुआ। कैबिन के अन्दर वही अचल और बीभत्स देह पड़ी हुई है। दोनों ओर खड़ी दो नर्सें ऑक्सीजन दे रही होंगी। गले के पास छेद कर नली से शायद उसे खिलाया जा रहा है।

मिस्टर बोस एक कुर्सी पर बैठे थे। सदाव्रत की ओर देखा। फिर बाहर आये।

पूछा, "कोर्ट की प्रोसीडिंग्स कहाँ तक पहुँची ? हाऊ इज़ इट प्रोग्रेसिंग ?"

"ठीक हो रही है।"

मिस्टर बोस ने पूछा, "एक्यूज़्ड का कहना क्या है ?"

"कहती है नॉट गिल्टी—एकदम बेकसूर।"

"अभी तक नॉट गिल्टी कह रही है ? तुमने अपनी आँखों देखा है, फिर भी कह रही है ?"

सदाव्रत ने पूछा, "मनिला का क्या हाल है ?"

"शी मस्ट लिव। उसे बचाना ही होगा, नहीं तो मैं मर जाऊँगा, आइ वान्ट टू लिव।" ज़रा रुककर फिर सदाव्रत से पूछा, "मिस्टर गुप्त कहाँ हैं ?"

"पिताजी दिल्ली गये हैं।"

"कब तक लौटेंगे ?"

"वह तो मालूम नहीं है। वहाँ कल्चरल मिनिस्ट्री की ओर से अमेरिकन लिटरेरी डेलीगेशन का रिसेप्शन किया जा रहा है, उसी सिलसिले में गये हैं।"

उस दिन की हॉस्पिटल ड्यूटी बजाकर सदाव्रत घर चला आया।

□ □ □

घर आते ही पता लगा। मन्दाकिनी ने कहा, "आज तेरे मास्टर साहब आये थे।"

"मास्टर साहब ! किस समय ?"

"सुबह। यही क़रीब दस बजे।"

"वे लोग गये कहाँ ?"

"यह तो मालूम नहीं है।"

सुनकर सदाव्रत रुका नहीं। उसी हालत में सीधा मन्मथ के घर पहुँचा। इस तरह अचानक चले आने के लिए तो उसने मना किया था। फिर भी यह मन्मथ मास्टर साहब को क्यों ले आया ?

मन्मथ ने ही दरवाज़ा खोला।

सदाव्रत को देखकर शशिपद बाबू हैरान रह गये। बोले, "तुम ?"

केदार बाबू ने भी शायद तब तक आवाज़ सुन ली थी।

"समझे सदाव्रत, मैं फिर नहीं रुक पाया। अखबार में तुम्हारा केस देखकर वहाँ कैसे पड़ा रह सकता था, तुम्हीं कहो ? मैं तो कह रहा था हियरिंग सुनने कोर्ट जाऊँगा, लेकिन शैल और मन्मथ जाने ही नहीं देते।"

उस बात का कोई जवाब दिये बिना सदाव्रत ने पूछा, "आपकी तबीयत कैसी है ?"

"मेरी बात छोड़ो। तुम्हारा यह मुक़दमा क्यों हुआ, यह बतलाओ ? तुम्हारी शादी भी रुक गयी न ! राम-राम, अखबारों में आजकल क्या सब

निकल रहा है ! सुना है, यही सब किस्से पढ़ने के लिए आजकल अख़बार ख़ूब बिक रहे हैं। क्यों, कुछ बोल नहीं रहे हो, सच ?"

फिर शशिपद बाबू की ओर देखकर कहने लगे, "शशिपद बाबू से भी तो वही कह रहा था, बेचारे की आजकल बड़ी मुश्किल है। अपने पिताजी की ही बात लो न ! यह सब पिताजी की नज़रों में भी तो पड़ा होगा।"

शशिपद बाबू—"नज़र में तो पड़ेगा ही। वैसे जो दो-एक सच्चे आदमी हैं, वे ही पढ़ रहे हैं और थू-थू कर रहे हैं !"

"लेकिन अख़बारवाले यह सब छाप क्यों रहे हैं ?"

"क्यों नहीं छापेंगे, उनका तो धन्धा ही यही है !"

"लेकिन धन्धा है तो ये सब छापेंगे ? कलकत्ता के छोटे-छोटे बच्चे भी तो पढ़ते होंगे ?"

शशिपद बाबू—"सो तो पढ़ते ही होंगे। सारे देश में ही जब आग लगी है तो क्या सोचते हैं, आप और हम बचे रहेंगे ?"

केदार बाबू ने पूछा, "लेकिन उस लड़की से तुम लोगों की क्या दुश्मनी थी, सदाव्रत ? तुम्हारी गाड़ी पर ही उसने एसिड-बल्ब क्यों फेंका ?"

सदाव्रत चुप रहा।

"इतने लोगों के रहते तुम्हारा नुक़सान करके उसने कौन-सा बदला लिया ? तुम लोगों ने उसका क्या बिगाड़ा था ?"

"मैं उसे जानता था।" सदाव्रत ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"तुम उसे जानते थे ?"

शशिपद बाबू भी हैरान रह गये। बोले, "तुम उस कुन्ती गुहा को पहचानते थे ?"

सदाव्रत चुप रहा। उसकी ज़बान से एक शब्द भी नहीं निकला। पिछले कुछ महीनों से वह जैसे गूँगा हो गया था। उसी दिन, जिस दिन से मनिला हॉस्पिटल में गयी है। उसके बाद जिस दिन से अदालत में मामला आया है, उस दिन से वह चुप्पी जैसे और भी बढ़ गयी है। एक्सिडेंट होने के दूसरे दिन से जाने-अनजाने कितने ही लोग उसे परेशान कर रहे हैं। उसका जीना दुश्वार किये दे रहे हैं। सभी जानना चाहते हैं, उस लड़की के साथ उसका क्या रिश्ता था ? क्या रिश्ता है, इस बात को क्या वह खुद ही जानता है ? या, किसी से कहता है तो क्या वही विश्वास करेगा ? इसके अलावा सदाव्रत जान भी कैसे सकता है कि कुन्ती गुहा सिर्फ़ अमेच्योर एक्टर ही नहीं है, वह पद्मरानी के फ़्लैट की लड़की भी है। सदाव्रत कैसे

जान सकता है कि हावड़ा स्टेशन पर जिस लड़की ने उसका बटुआ चुराया था वह इसी कुन्ती गुहा की छोटी बहन थी ? उसे कैसे पता लग सकता है कि उसी की गवाही पर उसकी बहन को छः महीने की सज़ा हुई ? वह किस तरह जान सकता है कि यही कुन्ती गुहा एक दिन उसे खोजते-खोजते एल्गिन रोड वाले मकान में आयी थी, और मनिला ने उसे दरबान से धक्के लगवाये थे ? उसे क्या पता कि उन लोगों की जादवपुर वाली ज़मीन पर कुन्ती वगैरह शरणार्थी होकर आये थे और उन्हीं लोगों ने गुंडे लगाकर वहाँ आग लगवा दी थी ? वह कैसे जानेगा कि उन्हीं गुंडों की लाठी की चोट से कुन्ती गुहा के पिताजी मर गये ? अगर यह केस नहीं होता तो क्या सदाव्रत यह सब जान पाता ? उसके पीठ-पीछे जो सब हो गया था, इसका अगर ज़रा भी पता होता तो क्या आज मनिला की यह हालत हुई होती ? और कुन्ती गुहा ही क्या इस तरह मुजरिम के कठघरे में खड़ी होती ?

शशिपद बाबू ने कहा, "मैं तो तभी समझ गया था कि इस मामले में जरूर कोई मिस्ट्री है।"

केदार बाबू का सन्देह अभी भी नहीं मिटा था। पूछा, "सच ही तुम्हारे साथ उस लड़की का परिचय था ?"

सदाव्रत चुप रहा। इन सब बातों का जवाब देने को उसका मन नहीं हो रहा था।

अचानक अन्दर से शैल आ गयी। बोली, "हाँ काका, मुझे मालूम है, सदाव्रत बाबू का उससे परिचय था।"

"हैं ! तुझे भी मालूम है ?"

"हाँ, मुझे पता है। मैंने उस लड़की को देखा है।"

"कहाँ देखा है ?"

केदार बाबू और शशिपद बाबू दोनों ही शैल की बात सुनकर जैसे आसमान से गिरे।

"तुम्हारी बीमारी के दिनों में मैं सदाव्रत बाबू के साथ दवा लेने धर्मतल्ला स्ट्रीट गयी थी। उसी दिन देखा था। मेरी चप्पल टूट गयी थी। मैं मोची के पास चप्पल की सिलाई करा रही थी, तभी !"

"फिर ? फिर ?"

सदाव्रत गम्भीर होकर शैल की ओर देखने लगा।

उस ओर बिना देखे शैल कहती रही, "मुझे उसी दिन सन्देह हुआ था, नहीं तो हम लोगों के साथ वह इतनी बुरी तरह क्यों पेश आती ? इस

बुरी तरह गाली-गलौज क्यों करती ?"

"हैं ! तुझे गाली ?"

"मुझे नहीं, सदाव्रत बाबू को !"

सदाव्रत की ओर देखकर केदार बाबू ने कहा, "सचमुच यह बात थी, सदाव्रत ?"

सदाव्रत और बैठ नहीं पाया। उठ खड़ा हुआ।

बोला, "इस बात का जवाब मैं आज नहीं दे पाऊँगा, मास्टर साहब ! सारे दिन अदालत में था। काफ़ी थक गया हूँ, इसका जवाब कल दूँगा।"

फिर कहा, "आज चलता हूँ।" कहकर सड़क पर आकर गाड़ी में बैठकर इंजिन स्टार्ट कर दिया। मन्मथ दरवाज़े तक आया था। सदाव्रत ने उसकी ओर भी नहीं देखा।

□ □ □

दुनिया में ऐसे बहुत-से दुःख हैं जिनसे छुटकारा पाना इन्सान के हाथ में नहीं है। फिर भी कोई सब-कुछ छोड़कर बेकार नहीं बैठता। इन्सान भाग-दौड़ करता है, सलाह करता है, छुटकारे का उपाय खोजने के लिए नाते-रिश्तेदारों और पड़ोसियों के पास जाता है। कोई मन-ही-मन आकाश-वासी देवता की प्रार्थना करता है।

लेकिन आज सदाव्रत वास्तव में बड़ा असहाय महसूस कर रहा था।

बचपन से ही वह अकेला था। बचपन से एक मास्टर साहब से ही उसे अपने अस्तित्व का समर्थन मिला था। सदाव्रत की जीवन-समस्या को एक केदार बाबू ही जानते थे; लेकिन आज जैसे वह सहारा भी टूट चुका था। इतने दिनों में आज पहली बार लगा कि वह भी उस पर संदेह करते हैं।

गाड़ी लेकर मन्मथ के घर से निकल तो पड़ा, लेकिन अपने घर जाने को भी मन नहीं चाह रहा था। इतने दिन की धारणा, इतने दिन का विश्वास, सब जैसे अचानक ख़त्म हो गया था। सिर्फ़ इन्सान को देखने के लिए वह एक दिन कलकत्ता की सड़कों पर घूमता था। पिता का नाम और रुपया उसे सन्तुष्ट नहीं कर पाया। पिताजी से रुपया लेता, उसी रुपये से कॉलिज की फीस भरता, किताबें खरीदता और जरूरत पड़ने पर जान-पहचान की दूकान से पेट्रोल भी लेता। सब-कुछ पिताजी के पैसे से। फिर भी वह रुपया सदाव्रत को आकर्षित नहीं कर पाया।

इस आकर्षण के न होने की वज़ह थे केदार बाबू। केदार बाबू ने ही रोज़ का साथ देकर, रोज़मर्रा की फ़िक्र और हर मिनट का जीवन-यापन

देकर उसे आदमी बनाया। उसने इतने दिन तक इस शहर को मास्टर साहब की नज़रों से ही देखा है, यहाँ के लोगों को जाना है।

आज अचानक इस उलट-पुलट के बाद अँधेरी सड़क पर गाड़ी चलाते-चलाते लगा कि उसका सब देखना, सब जानना जैसे बेकार गया।

अँधेरी सड़क के बाद बड़ी सड़क आते ही ट्रैफिक-सिगनल की लाल रोशनी देखकर गाड़ी रोकनी पड़ी।

दूसरी ओर भी और कई गाड़ियाँ खड़ी थीं। ज़रा देर बाद ही एम्बर सिगनल होगा और फिर ग्रीन। ग्रीन होते ही फिर चलना होगा।

लेकिन सदाव्रत को लगा कि रुके रहना ही जैसे उसके हक़ में अच्छा होगा। अनन्तकाल तक रुके रहने पर ही जैसे वह बच जायेगा। काफ़ी दिनों तक लगातार चलने के बाद आज पहली बार उसे थकान महसूस हो रही थी। ऐसा क्यों हुआ? रुकना माने ही तो मौत है! आज वह इस तरह मृत्यु क्यों चाह रहा है? वह क्या इतना टूट चुका है? उसे क्या हुआ है? अस्तित्व में चोट लगते ही क्या आदमी अपने चारों ओर देखता है? ऐसा तो नहीं है। इतने दिनों तक इतना बड़ा रास्ता पार कर उसने क्या देखा? वही एक दिन, जिस दिन वह पैदा नहीं हुआ था, उस दिन तो कलकत्ता की ही छाती पर सात समुद्र पार कर एक आदमी क़िस्मत आज़माने निकला था। वह यहाँ नाव से उतरा। उस दिन क्या जॉब चॉर्नक ने ही स्वप्न देखा था कि एक दिन यहाँ एक बस्ती बस जायेगी। इस बस्ती के लोग ही बाद में उन क़िस्मत आज़मानेवालों को भगा देंगे? इसी शहर में एक दिन ईस्ट इंडिया कम्पनी से पाए धन से पैसे और ऐशो-आराम की लहर उमड़ पड़ी थी। और इसी शहर में ही एक दिन आस-पास के आत्मा को पहचानने में लगे लोगों ने अपने-आपको पाया। दुनिया में और कहीं भी क्या ऐसा शहर है, जिसका अतीत इतना अजीब हो, वर्तमान इतना रोमांचकारी और भविष्य इतना अन्धकारमय! इस शहर की कहानी में अलिफ़-लैला की कहानी का मज़ा आता है! लेकिन किसने इसका इतना बड़ा नुक़सान किया? कौन है वह? कौन? किसने उस कहानी को आगे बढ़ने से इस तरह रोका? किसने इस कहानी के भविष्य को इतना अन्धकारमय बना दिया है?

सदाव्रत को याद आया, एक दिन पिताजी ने उससे एक सवाल पूछा था, "पाकिस्तान किसने बनाया, बतला सकते हो?"

"किसने?"

जवाब देते वक़्त शायद टेलीफ़ोन आ गया था। और जवाब नहीं दे पाये। उसके बाद काफ़ी दिन गुज़र गये, कितने ही साल निकल गये। इतने दिन बाद जैसे सदाव्रत को जवाब मिल गया। आदमी के बेसहारा होने का फ़ायदा उठाकर जो लोग उसके साथ जानवर की तरह पेश आते हैं, इसके पीछे भी वही लोग हैं। वे ही लोग एक दिन अचानक सरसों के तेल का भाव चढ़ा देते हैं। उन्हीं लोगों की वजह से अचानक बाज़ार से चीनी ग़ायब हो जाती है, और वे ही लोग कुन्ती गुहों को किराये पर चढ़ाकर पैसे का पहाड़ खड़ा कर लेते हैं।

अदालत में प्रोसीडिंग सुनते-सुनते अचानक शर्म और घृणा से सदाव्रत की आँख, कान और चेहरा लाल हो उठता। उसकी यह नालिश किसके ख़िलाफ़ है? मनिला को मारने के लिए किसने एसिड फेंकी? वह क्या कुन्ती गुहा थी?

एक के बाद एक लाइन-की-लाइन गाड़ियाँ खड़ी थीं। अचानक इतनी रात को पता नहीं कौन एक सड़क पार करते समय सदाव्रत के ठीक सामने उसकी ओर देखकर ज़रा मुसकराया। कौन? सदाव्रत क्या इस लड़की को पहचानता है?

"मुझे ज़रा लिफ्ट देंगे?"

सदाव्रत ने अच्छी तरह से देखा। कभी देखा हो, याद तो नहीं पड़ता। अचानक जैसे दिमाग़ में बिजली कौंध गयी। हो सकता है, यह भी कुन्ती गुहों में से एक होगी। शायद यह भी कुन्ती गुहा की तरह किसी सुन्दरिया-बाई की शिकार होगी। किसी पद्मरानी की किरायेदार होगी।

"मैं आपको ज़रा-सी तकलीफ़ दूँगी।"

"आइये।"

इस बार सदाव्रत को साफ़-साफ़ दिखलायी दिया। बग़ल कटी स्लीवलेस ब्लाउज़, सूखे बाल, होंठ और मुँह पर रंग पोते हुए, जबकि बदन का रंग एकदम काला था।

"आपको कहाँ जाना है?"

काफ़ी दिन हुए, ठीक इसी तरह एक दिन सदाव्रत ने कुन्ती गुहा को गाड़ी में बिठाया था। इसी तरह उसने सवाल किया था। लेकिन इस बार जैसे वह लड़की अपनी मर्ज़ी से ही सदाव्रत की ओर खिसककर बैठने की कोशिश करने लगी। अजीब बात है! यह भी क्या कुन्ती गुहा की तरह उसे लुभा रही है?

"तुम रहती कहाँ हो ?"

"आपकी जहाँ मर्ज़ी हो उतार दीजियेगा। मुझे इस समय कोई काम नहीं है।"

"मतलब ?"

लड़की ने कहा, "लगता है आप काफ़ी डर गये हैं। डरने की कोई बात नहीं है। मैं कुन्ती गुहा नहीं हूँ।"

"कुन्ती गुहा ? कुन्ती गुहा कौन ?"

"क्यों, आप जानते नहीं हैं ? अख़बारों में देखा नहीं, केस चल रहा है। हम लोगों को ख़राब लड़कियों में से न समझियेगा।"

"कुन्ती गुहा क्या ख़राब लड़की है ?"

"आप कह क्या रहे हैं, ख़राब लड़की नहीं है ? इन्हीं लोगोंकी वजह से तो सारी लड़कियाँ बदनाम हो रही हैं। यही देखिये न, कितनों से ही तो लिफ्ट देने को कहा, किसी ने नहीं दी। आजकल लोग हम लोगों पर भी सन्देह करने लगे हैं। उसे ज़रूर ही फाँसी होगी।"

"तुम्हें कैसे पता लगा ?"

"वाह, सभी जानते हैं। कुन्ती गुहा ने जिस लड़की को मारा है उसके पिता बहुत बड़े आदमी हैं, और जो लड़का उसके साथ था···"

"कौन-सा लड़का ?"

"वही, जिसका नाम सदाव्रत गुप्त है। पता है वह कौन है ?"

"तुम्हें पता है ?"

"सुना है, काफ़ी बड़े आदमी का लड़का है। शिवप्रसाद गुप्त का तो नाम सुना होगा, इतने बड़े पॉलिटिकल सफरर, कितनी ही बार जेल गये हैं। अब ज़मीन-जायदाद का धन्धा करते हैं, उन्हीं का लड़का।"

सदाव्रत और भी उत्सुक हो उठा। पूछा, "तुम्हें कैसे पता लगा ?"

"सिर्फ़ मैं ही क्यों, सभी को पता है। कलकत्ता में जिससे पूछेंगे वही बतला देगा। क्यों, आपने नहीं सुना ? आप शायद कलकत्ता में नहीं रहते ? मिस्टर बोस की लड़की के साथ शादी होने पर लड़के को और भी बहुत रुपया मिलनेवाला था, जानते हैं ?"

सड़क की रोशनी पड़ने से लड़की के कान के झुमके चमचमाने लगे।

"अपने बापका भी पैसा और ससुर का भी रुपया—इस कुन्ती गुहा ने सब गोलमाल कर दिया।"

सदाव्रत को न जाने कैसा सन्देह हुआ, "तुम कुन्ती गुहा को जानती

हो ?"

लड़की जैसे सचमुच ही डर गयी। कहने लगी, "सच कह रही हूँ, मैं नहीं जानती। आप यकीन करिये।"

"तब रात में इस समय सड़क पर अकेली क्यों घूम रही हो ?"

लड़की और भी डर गयी।

"तुम करती क्या हो ? कहाँ रहती हो ?"

लड़की अब ज़रा हटकर बैठी।

"बोलो, मेरी बात का जवाब दो ! नहीं तो मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूँगा, थाने ले जाऊँगा।"

लड़की की आँखों से पानी गिरने लगा।

"आप मुझे यहीं उतार दीजिये।"

"लेकिन उससे पहले बतलाओ तुम कौन हो ?"

तब तक आँसुओं से गाल का पाउडर, आँखों का काजल, होंठों की लिपस्टिक सब-कुछ जैसे धुल-पुँछकर धुँधली हो गयी थी। और भी दूर हटकर कहा, "मुझे आप यहीं उतार दीजिये, आपके पाँव पड़ती हूँ।"

कहकर दरवाज़ा खोलकर उतरने लगी। सदाव्रत ने झट से लड़की का एक हाथ पकड़ लिया। और साथ-ही-साथ लाल रोशनी हो गयी।

"सदाव्रत !"

इधर-उधर की गाड़ियों ने तब तक खिसकना शुरू कर दिया था। पास की गाड़ी से अपना नाम सुनते ही सदाव्रत चौंक उठा। मिस्टर बोस !

मिस्टर बोस ने गाड़ी लाकर पास की सड़क पर लगा दी। सदाव्रत ने भी पीछे-पीछे ले जाकर अपनी गाड़ी लगायी।

"यह कौन है ?"

मिस्टर बोस उस लड़की के लिए ही कह रहे थे। लड़की तब तक मौक़ा पा दरवाज़ा खोलकर भाग गयी। देखते-देखते अँधेरे में खो गयी।

"हू इज़ शी ?"

"पता नहीं कौन थी। शायद ब्लैक-मेल करना चाहती थी। मेरी गाड़ी पर लिफ़्ट लेना चाहती थी।"

मिस्टर बोस ने कहा, "बी केयरफुल। होल कैलकटा इस समय ब्लैक-मेल करनेवालों से भरा हुआ है।"

"मैं तो ऐसा नहीं समझता।"

"ह्वाट डु यू मीन ?"

"मुझे तो लगता है यह कुन्ती गुहा जैसी एक है।"

"कुन्ती गुहा कौन ?"

मिस्टर बोस शायद क्लब से ही आ रहे थे। इस सब के बाद भी नशा नहीं छोड़ पाये थे। सदाव्रत की बात सुनकर नाम याद आ गया। बोले, "ओह, यू मीन दैट स्कैंडल ऑफ़ ए विच।"

कहकर चुरुट का कश लेकर धुआँ छोड़ा। फिर कहा, "लेकिन न्यूज़ बहुत फैल गयी है। मैं चाहता था कि अख़बारवाले इसे न छापें। काफ़ी रुपया देना भी चाहा, लेकिन अख़बार की बिक्री के लिए इन लोगों ने छाप ही दी। ख़ैर, जो भी हो, मैं इन सब बातों की परवाह नहीं करता। ज़िन्दगी में यह सब सहना ही होता है। आई एम अफ़्रेड ऑफ़ नो बडी। इस वक़्त मुझे मनिला की फ़िक्र है।"

सदाव्रत चुप रहा।

मिस्टर बोस ने ही कहा, "हो सकता है, मनिला बच जाये। मैं इस समय हॉस्पिटल से आ रहा हूँ। उन लोगों का कहना है, वह हमेशा इसी तरह 'इनवैलिड' होकर ही पड़ी रहेगी। माने लम्प ऑफ़ फ्लैश या माँसका लोथड़ा। इस बारे में तुमसे कुछ बातें करनी थीं। तुम्हें तो मालूम ही है, मुझे सलाह देनेवाला और कोई नहीं है। बेबी आजकल और भी गुम रहती है। दिन-रात ह्विस्की के नशे में डूबी रहती है। पुअर लेडी ! आजकल मुझे उस पर दया आती है, जानते हो !"

सड़क पर खड़े-खड़े ये सब बातें करना ठीक नहीं है; मिस्टर बोस में जैसे यह सब सोचने तक की ताक़त नहीं थी। आजकल के मिस्टर बोस पहले वाले मिस्टर बोस नहीं थे। ऑफ़िस में भी ज़्यादा देर नहीं रुकते थे। शायद क्लब भी नहीं जाते। सिर्फ़ हॉस्पिटल और ड्रिन्क्स ! और है कोर्ट।

"तुम्हारा एवीडेन्स कब है ?"

"परसों।"

"तुम प्रिपेअर्ड हो न ? इन सारे ब्लैक-मेलरों को मुँहतोड़ जवाब देना होगा। इन लोगों को, जिन्होंने कलकत्ता की पीसफुल लाइफ़ को मिज़रेबुल बना दिया। चैन से रहना मुश्किल कर दिया। इन स्कैंडल करनेवालों को सबक सिखलाना होगा। यह सारा काम कम्युनिस्टों का है। मैंने पहले ही कहा था। तुमने मेरी बात का यकीन नहीं किया। अब देख रहे हो न ? मैंने उन लोगों का क्या बिगाड़ा था ? हज़ारों ग़रीब मज़दूरों को अपनी फ़र्म में काम दिया। भारत सरकार भी इन्हीं लोगों की भलाई के

लिए फाइव-ईयर प्लान बना रही है। फिर भी ये लोग ख़ुश नहीं हैं। हम लोग गाड़ी में बैठकर घूमते हैं, इसलिए उन सबको भी गाड़ी चाहिए। हाऊ सिली !"

मिस्टर बोस जैसे अपने-आपसे बात कर रहे थे।

सदाव्रत ने एक बार टोका, "आपको शायद देर हो रही है।"

"क्यों ? तुम्हें घर जाना है ?"

"नहीं।"

"और इम्मॉरेल ट्रैफिक ! यह किस देश में नहीं है ? इंग्लैंड में नहीं है ? अमेरिका में नहीं है ? फ्रांस में नहीं है ? इटली में नहीं है ? टोकियो, बर्लिन—कहाँ नहीं है यह प्रॉस्टीट्यूशन ? मैं तो मनिला (पुअर गर्ल) को लेकर सारी दुनिया में घूमा हूँ। यह हर जगह है। हर जगह पर रहेगा भी। फिर इसे लेकर इतना गला फाड़ने की क्या ज़रूरत है ?"

सदाव्रत ने फिर कहा, "आपको काफ़ी देर हो रही है।"

"हो देर। मुझे कोई जल्दी नहीं है। मेरे लिए जैसी सड़क वैसा घर।"

"चलिये, आपको घर पहुँचा दूँ।"

इतनी देर बाद जैसे मिस्टर बोस को होश आया। मिस्टर बोस को हाथ का सहारा देकर सदाव्रत अपनी गाड़ी में ले आया। मिस्टर बोस का ड्राइवर गाड़ी लेकर पीछे-पीछे आ रहा था।

□ □ □

सदाव्रत का कोई-कोई दिन इसी तरह कटता। हमेशा की तरह सुबह होती और समय होने पर हमेशा की तरह रात होती। 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' के ऑफ़िस में अपने चैम्बर में जाकर भी बैठना होता। किसी-किसी दिन अचानक मिस्टर बोस का टेलीफ़ोन आता।

मिस्टर बोस घर से ही टेलीफ़ोन करते, "सदाव्रत !"

सदाव्रत आवाज़ सुनते ही कहता, "यस सर !"

इसके बाद मिस्टर बोस इधर-उधर के तमाम कामों की लिस्ट देते। मिस्टर बोस की ग़ैरहाज़िरी में सदाव्रत ही कम्पनी का मालिक था। कम-से-कम दूसरे ऑफ़िसरों को यही मालूम था। उसी के अनुसार सब उसे सम्मान भी देते थे। सदाव्रत मिस्टर बोस के काम करता। किसी-किसी दिन कम्पनी भी चलाता।

और उधर मिस्टर बोस का सेक्रेटरी अखबार पढ़कर सुनाने आता। मिस्टर बोस को कोई भी खबर खुश नहीं कर पाती थी। लोकल अखबारों

में ही कुन्ती गुहा का केस बड़े-बड़े टाइप में निकलता। सेक्रेटरी उस ओर देखता भी नहीं।

मिस्टर बोस कहते, "ह्वाट नेक्स्ट ? उसके बाद और क्या है ?"

एक-एक कर सेक्रेटरी सारी ख़बरें पढ़ जाता। मिस्टर बोस के मिजाज़ के साथ किसी ख़बर का मेल नहीं बैठेगा, यह बात सेक्रेटरी आगे से नहीं समझ पाया। नेपाल के किंग महेन्द्र ने अपने प्रधानमंत्री को बरख़ास्त कर शासन की बाग़डोर अपने हाथ में ले ली है। मेरे पास नेपाल को लेकर माथापच्ची करने का वक़्त नहीं है। वह रहने दो। फिर ? पंडित नेहरू ने विनोबा भावे को आसाम भेजा है।

"ह्वाई ?"

"जी, वहाँ पर लैंग्वेज को लेकर बड़ा झमेला हो रहा है। असमिया भाषा को वे लोग वहाँ की स्टेट लैंग्वेज बनाना चाहते हैं···बंगालियों का कहना है, बँगला ही रहेगी।"

"उफ़ ! तुम मेरा समय नष्ट कर रहे हो। ह्वाट नेक्स्ट ?"

"दलाई लामा ने यू० एन० ओ० में अपील की है।"

"क्यों ?"

"उनका कहना है तिब्बत एक सॉवरेन पॉवर है, सॉवरेन पॉवर नहीं होता तो जब मैकमोहन लाइन तैयार हो रही थी, उस समय भारत और चीन के साथ तिब्बत के हस्ताक्षर क्यों माँगे गये ?"

मिस्टर बोस ने मुँह से चुरुट निकाल ली।

"दिस दलाई लामा। इसे इंडिया में शैल्टर देकर नेहरू ने बड़ी भारी ग़लती की है। फिर ? ह्वाट नेक्स्ट ?"

रोज़ इसी तरह चलता। अख़बार की बातें सुन-सुनकर और अच्छी नहीं लगतीं। सेक्रेटरी से चले जाने को कहते। फिर ख़ुद उठते। अन्दर जाते-जाते अचानक बेबी का ध्यान आ जाता। बेबी के कमरे की ओर जाते।

"बेबी !"

बेबी नहीं, मिसेज़ बोस की आया बाहर आती। वह जैसे साहब को देखकर चौंक उठी थी।

"मेमसाहब कहाँ हैं ?"

कहते-कहते कमरे में अन्दर जाकर देखा। बेबी अभी तक सो रही थी। आया शायद पाँव दाब रही थी। गहरी नींद में बेख़बर सो रही थी। मिस्टर बोस पास गये। शायद सो रही है। जगाना ठीक नहीं समझा। आया को

बुलाकर पूछा, "मेमसाहब ने क्या आज भी गोली खायी है ?"

"जी हाँ।"

"मैंने कितनी बार कहा है, गोली बिलकुल मत देना। खरीदकर कौन लाता है ?"

जिस दिन से मनिला हॉस्पिटल गयी है, बेबी ने उसी दिन से नींद की गोलियाँ खाना शुरू किया है। पहले कभी-कभी खाती थी। आजकल रोज़ चार-पाँच गोलियाँ खाना शुरू कर दिया है। मेजर सिन्हा ने गोलियाँ न खाने के लिए खास तौर पर कहा है। शुरू-शुरू में अच्छी लगेंगी। शुरू-शुरू में इसके खाने से नींद भी आयेगी, भूख भी लगेगी, लेकिन बाद में पागल कर देगी। पारकिनसन्स डिज़ीज़ भी हो सकती है।

दरवान को भी बुलाया। नौकर-चाकर सभी को बुलाया। घर के सारे कर्मचारी आकर साहब के सामने खड़े हो गये। ड्राइवर, कुक, बवर्ची, खानसामा, अर्दली सभी।

"तुम लोगों ने फिर मेमसाहब को गोली लाकर दी ?"

"जी, मैं नहीं लाया, हुजूर !"

"स्टॉप !"

मिस्टर बोस चिल्ला उठे।

"मैं किसी की बात सुनना नहीं चाहता। जो गोली खरीदकर लाया है, मैं उसे 'सैक' करूँगा। आइ मस्ट !"

सोलह मिलियन रुपये के मालिक मिस्टर बोस अचानक जैसे ख़ुद को बड़ा बेसहारा महसूस कर रहे थे। अपने स्टाफ को डाँटते-डाँटते जैसे ख़ुद को ही डाँट रहे थे। एक दिन उन्होंने ख़ुद ही ये गोलियाँ लाकर बेबी को प्यार से खिलायी थीं। उस समय खाने में बड़ा अच्छा लगता था, मन चियरफुल लगता था। आज वही गोलियाँ उनकी फैमिली-लाइफ़ बिगाड़ रही थीं। प्यार से कितनी ही बार मनिला को भी खाने को देते थे।

अचानक कॉरीडोर की ओर नज़र जाते ही दिल पसीज गया। पेगी। पेगी भी इस घर में है, यह बात वह जैसे भूल ही गये थे। एक दिन वह पेगी को देख नहीं पाते थे, यह बात पेगी जानता था। आज जैसे वह भी मिस्टर बोस को पहचान नहीं पा रहा था।

धीरे-धीरे पेगी के पास गये। मनिला आज नहीं है। पिछले कुछ दिनों से उस पर का मनिला का खिंचाव भी कम हो गया था।

पास आकर बुलाया। प्यार से हाथ बढ़ाया, "पेगी !"

पेगी कुछ नहीं बोला। उनकी ओर देखा भी नहीं। शायद समझ गया था। जानवर भी समझते हैं, जबकि इन्सान भी ग़लती कर जाते हैं।

"पेगी !"

पेगी को जैसे अच्छा नहीं लगा। काटना नहीं जानता। फिर भी जैसे काटने आया।

अचानक तभी पीछे से अर्दली ने कहा, 'साॅब, टेलीफ़ोन !"

पेगी के बारे में और नहीं सोच पाये। जल्दी से ख़ास-कमरे में आकर रिसीवर उठाया।

"मैं सदाव्रत बोल रहा हूँ।"

"बोलो।"

"अभी-अभी साॅलिसिटर ने टेलीफ़ोन किया था। हम लोगों के मामले ने एक सीरियस टर्न लिया है।"

"कौन-सा टर्न ?"

"वह नहीं जानता। वह सब मुझे नहीं बतलाया। आपको साथ लेकर फौरन अपनी फ़र्म में आने को कहा है। मामला दूसरी ओर घूम चुका है। आप चले आइये।"

□ □ □

शशिपद बाबू के घर जाकर भी वही एक समस्या। केदार बाबू किसी की एक न सुनते। सुबह होते ही निकल पड़ते। छाता लिये सारे दिन चक्कर काटते। एक बार गुरुपद के घर, वहाँ से अधीर के घर और अधीर के यहाँ से सोमनाथ के घर।

"तुम लोगों का क्या हाल है ?"

कोई पास कर गया था, कोई नहीं कर पाया। किसी ने पढ़ना छोड़ दिया है, किसी को नौकरी मिल गयी है। सभी से मिलकर ख़ुश होते। केदार बाबू की बीमारी के बाद से कई लड़के ट्यूटोरियल स्कूलों में भर्ती हो गये थे। वहाँ कई लाभ हैं। मोटी रक़म देकर क्वश्चन आउट किये जा सकते हैं। फिर घर लौट आते। मन्मथ की माँ खाना लिए बैठी होती।

एक दिन अकेला पाते ही शैल ने पकड़ लिया।

"काका, तुम क्या हमेशा यहीं रहोगे ?"

केदार बाबू चौंक उठे। सिर उठा शैल की ओर ताकने लगे। फिर बोले, "क्यों ? यह बात क्यों पूछ रही है ? यहाँ क्या तुझे कोई तकलीफ़ है ?"

"नहीं, मेरा वह मतलब नहीं है।"

"तब ? ये लोग भरपेट खाना नहीं देते ? कम देते हैं ?"

"काका, ज़रा धीमे बोलो ! कोई सुन लेगा।"

केदार बाबू ने आवाज़ धीमी की। बोले, "लगता है, यह महाराज चोरी करता है। अच्छा, तू फ़िक्र मत कर। मैं मन्मथ की माँ से कह आऊँ। घर में चोर पालना तो अच्छी बात नहीं है।"

कहकर उठ ही रहे थे, शैल ने रोककर कहा, "तुम कैसे हो, काका ! तुम क्या कभी भी कुछ नहीं समझोगे ?"

केदार बाबू फिर भी कुछ नहीं समझ पाये। बोले, "क्यों ? मैं समझता नहीं हूँ ? तू कह क्या रही है ? भूखे रहने से तकलीफ़ तो होगी ही, खाना न मिलने से तकलीफ़ नहीं होगी ? मैंने तो उसी दिन कहा था, सदाव्रत के यहाँ चल। वहाँ रहने पर तुझे कोई तकलीफ़ नहीं होगी।"

शैल ज़रा देर चुप रही। फिर बोली, "तुम भी अजीब बात करते हो, काका ! मैंने यह कब कहा !"

"तूने भले ही न कहा हो, मैं क्या समझता नहीं ? देखने में पागल लगता हूँ, तो क्या सचमुच ही मेरा दिमाग़ ख़राब हो गया है ? अच्छा, मैं आज ही कहता हूँ शशिपद बाबू से।"

"क्या कहोगे ? नहीं, तुम्हें कुछ भी कहना नहीं होगा।"

"नहीं कहूँगा, माने ? ज़रूर कहूँगा ! महाराज चोरी करे, और घरवालों को खाना न मिले, यह क्या अच्छी बात है ? मुझे तो ख़ुद ही यहाँ पर अच्छा नहीं लग रहा। चल न, हम लोग सदाव्रत के यहाँ चलें। वहाँ आराम से रहना। बालीगंज इलाके में।"

अचानक बाहर किसी के पैरों की आहट हुई।

"अरे, क्या हुआ, तुम लोगों को क्या किसी तरह की असुविधा हो गयी ?" मन्मथ की माँ अचानक कमरे में आ गयी।

"देखिये माँ, आपने जिस महाराज को रख छोड़ा है, वह चोर है। मेरा कहना है, वह चोर है। उसे निकाल दीजिये।"

"चोर ?"

"हाँ, अगर विश्वास न हो तो इस शैल से पूछ लीजिये। बेचारी को भरपेट खाना तक नहीं मिल पाता। उसे आपके यहाँ बड़ी तकलीफ़ हो रही है।"

मन्मथ की माँ ने शैल की ओर देखा। "क्यों बेटी, तुम्हारा पेट नहीं

भरता ? कभी मुझे तो नहीं बतलाया, बेटी ?"

"आप लोगों से कैसे कहती ? मैं उसका काका हूँ, मुझसे चुपचाप कहने आयी थी। मैंने कह दिया, यह क्या चुपचाप कहने की बात है ? माँ से कहनी चाहिए थी।"

मन्मथ की माँ ने कहा, "वह तो है ही।"

"आप ही कहिये, मैंने ठीक कहा या नहीं। मैंने उससे कहा था, तुझे अगर यहाँ किसी बात की तकलीफ़ हो रही हो तो चल, सदाव्रत के यहाँ चल। वह इस घर से बहुत अच्छा है। वहाँ कितने ही नौकर-चाकर हैं। वहाँ जाने पर ये सब तकलीफ़ें नहीं होंगी। सदाव्रत की माँ तुझे रानी की तरह रखेगी। बरतन साफ़ नहीं करने होंगे, कमरों में झाड़ू नहीं लगानी होगी, कुछ भी करना नहीं होगा।"

फिर मन्मथ की माँ की ओर देखकर बोले, "क्यों माँ, मैंने क्या कोई खराब बात कही है ?"

शैल काफ़ी सह चुकी थी, और नहीं सुन पायी। कमरे से निकल गयी। उसे जाते देखकर केदार बाबू हँसने लगे।

बोले, "देखा न माँ, मैंने सब-कुछ कह दिया इसलिए शरमाकर कमरे से भाग गयी है।"

लेकिन मन्मथ की माँ नहीं हँस पायी। वह भी कमरे से जा रही थी कि केदार बाबू ने फिर कहा, "देखिये, माँ !"

मन्मथ की माँ के घूमते ही पास जाकर केदार बाबू ने कहा, "आप उसे कहीं डाँटियेगा तो नहीं !"

"अरे नहीं, मैं क्यों डाँटने लगी ?"

केदार बाबू ने कहा, "इसलिए कह रहा था, बड़ी गुस्सैल और गुमसुम लड़की है। किसी पर भी गुस्सा होती है, उतारती मुझ पर है। मैं बूढ़ा आदमी ठहरा। इतना सब कैसे सह सकता हूँ, आप ही कहिये ! इसका बाप भी ऐसा ही गुस्सैल था।"

"अच्छा, मैं उसके पास जाती हूँ।"

कहकर मन्मथ की माँ चली गयी। केदार बाबू ने कुर्ता उतारा। फिर टेबल-लैम्प जलाकर किताब खोलकर पढ़ने लगे। शशिपद बाबू ऑफ़िस से अभी तक नहीं लौटे थे। आते ही उनको भी सुनाना होगा। शशिपद बाबू सारे सरकारी अफ़सरों को चोर कहते हैं। और यहाँ उनके घर में ही चोर घुसा बैठा है। उसका पता ही नहीं है !

दरवाज़ा खुलने की आवाज़ आते ही केदार बाबू बोल उठे, "आइये, शशिपद बाबू !"

लेकिन मन्मथ की माँ को फिर से कमरे में आते देखकर चौंक गये।

"क्या हुआ, माँ ? शैल को समझा दिया न ? शान्त हुई ? मुझे भी कभी-कभी ऐसा ही होता है। भूख लगते ही सारा शरीर···"

"अच्छा, मास्टर साहब !"

मन्मथ की माँ अचानक सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गयी। कहने लगी, "आपकी भतीजी की तो काफ़ी उम्र हो गयी। अभी तक उसके शादी-ब्याह का कुछ ठीक नहीं कर रहे। मैं यही कहने आयी थी।"

केदार बाबू ने सिर नीचा कर लिया।

"क्यों ? शैल कुछ कह रही थी क्या आपसे ?"

मन्मथ की माँ ने कहा, "नहीं, यह बात भी क्या कोई लड़की अपने मुँह से कहती है ? वह वैसी लड़की नहीं है।"

"तब ?"

"मैं ख़ुद ही कह रही हूँ। भले घर की लड़की। उम्र हो गयी है। माँ-मौसी कोई भी नहीं है। आपको ख़ुद भी तो सोचना चाहिए।"

"मैं तो उसकी शादी की ही कोशिश कर रहा हूँ। सदाव्रत इस समय मुक़दमे में फँसा है। और कोई लड़का मिलते ही मोटी रक़म माँगेगा। तब तो सदाव्रत के सामने ही हाथ फैलाना होगा। उसकी तनख़्वाह दो हज़ार रुपये है। उसके लिए हज़ार रुपये कोई बड़ी बात नहीं होगी। इसी भरोसे पर तो हूँ।"

मन्मथ की माँ ने कहा, "जिस लड़की के साथ सदाव्रत की शादी होने वाली थी, वह तो अस्पताल में पड़ी है। सदाव्रत ख़ुद भी तो शादी कर सकता है।"

केदार बाबू के दिमाग़ में यह बात कभी नहीं आयी थी।

"आपने बात तो ठीक कही। यह बात मेरे दिमाग़ में आयी ही नहीं।"

"आप एक बार बात चलाइये न !"

"बात क्या चलानी है, सदाव्रत मेरी बात ठुकरा नहीं सकता। मैं कल ही जाऊँगा।"

अचानक मन्मथ कमरे में आया।

आते ही बोला, "मास्टर साहब, गज़ब हो गया !"

मन्मथ की माँ ने उठते हुए कहा, "क्या हुआ ?"

"मैं सीधा सदाव्रत दा के पास से आ रहा हूँ।"

"क्यों ?"

"उस दिन आने को कहकर गये तो फिर आये ही नहीं, आने के लिए कहने गया था। सुना था, उनके मुक़दमे ने नया टर्न लिया है।"

"इसका मतलब ?"

"वह नहीं मालूम। सॉलिसिटर का फ़ोन आने पर सदाव्रत ने मिस्टर बोस को टेलीफ़ोन कर दिया। दोनों सॉलिसिटर के ऑफ़िस जायेंगे।"

"इस नये टर्न का कुछ पता नहीं चला ?"

"लगता है पूरा केस ही बदल गया है। सुन्दरियाबाई ने जो बयान दिये हैं उनसे केस सदाव्रत दा के अगेन्स्ट चला गया है। सदाव्रत दा काफ़ी नर्वस लग रहे थे। मेरे साथ ठीक से बात भी नहीं कर पाये——गाड़ी लेकर चले गये।"

□ □ □

ज़िन्दगी का ज़रूर ही कोई मतलब है। वह अर्थ कौन खोज पाया, कोई नहीं जानता। इतिहास का भी कोई अर्थ ज़रूर है, उसका भी किसे पता चला है, किसे मालूम। लेकिन शुरू से ही जैसे खोज चल रही है। एक के बाद दूसरा युग आता है और पुरानी धारणाएँ, पुराने मूल्य बदल जाते हैं। पिछला सब-कुछ जड़ से उखाड़कर नये युग की विजय-यात्रा शुरू करने की कोशिशें हुई हैं। उससे भी जब समस्या का समाधान नहीं हुआ तब विद्रोह हुए, ख़ून-ख़राबियाँ हुईं। इसी तरह टूटता-फूटता इतिहास आगे बढ़ रहा है। अनन्तकाल से महाकाल की ओर आगे बढ़ रहा है। इस गति का कोई अन्त नहीं है।

शिवप्रसाद बाबू जब छोटे थे, तब उनका काल ही आधुनिक-काल था। वह कब आधुनिक से पुराने हो गये, खुद उन्हें भी नहीं मालूम। मिस्टर बोस उठते हुए उद्योगपति थे। देश को उनसे बड़ी आशाएँ थीं। हम लोगों ने उनके ऊपर ही भरोसा कर रखा था। सदाव्रत भी उसी युग का बच्चा था। आज वह यंगमैन है। आजका इन्सान उससे बहुत-कुछ आशा करता है। आशा कर रहा है कि यह सदाव्रत ही एक दिन इन्सान की मेहनत को मिस्टर बोस के चंगुल से निकालकर इज्ज़त बख़्शेगा। इसी तरह लोग बदलते हैं, सिंहासन बदलते हैं। उत्थान-पतन का सिलसिला चलता है। आज का बच्चा कल के युवक में बदलता है, कल का युवक परसों के वृद्ध में बदलता है। सृष्टि की शृंखला इसी तरह घूमती रहती है। यहाँ कोई

हमेशा के लिए मौरूसी पट्टा लिखाकर नहीं आया है !

लेकिन इसी शृंखला में जब गाँठ पड़ जाती है, तब गड़बड़ शुरू होती है। १७८१ की उस गाँठ पर एक और गाँठ लगी १७८९ में। रूसो की लिखी किताबें जिस देश में जैसे भी पहुँच गयीं, वहीं गड़बड़ दिखलाई देने लगी। इसके बाद इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन; मशीन, औज़ार और फैक्टरियों का युग आया। और फिर नैपोलियन से भी ज्यादा बड़े दुर्धर्ष आततायियों का आविर्भाव हुआ। जहाँ-जहाँ कल-कारखाने जमे, वहीं-वहीं पृथक्-पृथक् दल सिर उठाकर खड़े हो गये और हुंकार लगाकर कह उठे—'अयमहं भो!'

इसके बाद का इतिहास भी केदार बाबू का जाना हुआ है। जिस समय से कॉलोनियों की नींव पड़नी शुरू हुई थी तभी से। बाद में···

केदार बाबू वसन्त को पढ़ा रहे थे। पढ़ाते-पढ़ाते अचानक मॉडर्न पीरियड में चले आये।

वसन्त को मॉडर्न पीरियड की ज़रूरत नहीं थी। उसने कहा, "सर, फॉर्टी-सेवेन के बाद की हिस्ट्री मेरे कोर्स में नहीं है।"

केदार बाबू एकाग्रभाव से पढ़ा रहे थे। अचानक रुक गये।

"क्यों, कोर्स में नहीं है तो क्या हुआ ?"

"बेकार पढ़ने से क्या फ़ायदा ?"

"जो कुछ कोर्स में नहीं है बेकार है ? पढ़ना नहीं चाहिए ?"

मत पढ़ो। फिर भी जैसे केदार बाबू को बोलना अच्छा लगता था। सोचना भी अच्छा लगता है। जबकि और किसी को भी अच्छा नहीं लगता। उनको छोड़कर और कोई सोचता भी नहीं है। चलते-चलते वह जैसे दिन में ही स्वप्न देखने लगते। लगता आजकल सेवेन्टीन-एट्टी-नाइन चल रहा है। कभी लगता एट्टीन-फ़िफ्टी-सेवेन है। कभी लगता एट्टीन-थर्टी-थ्री है। राममोहनराय हाल में ही मरे हैं। और कभी लगता, अब डरने की कोई बात नहीं है, यह एट्टीन-ट्वेन्टी है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने जन्म लिया है। तभी बस से जब सड़क पर नज़र जाती है तो देखते हैं, सिनेमा हाऊस के सामने लोगों की लम्बी लाइन लगी है। उसे देखकर लगता सेवेन्थ सेन्च्यूरी बी० सी० आ गयी है। स्लेव-ट्रेड का युग। सारे स्लेवों को जैसे जंजीर से बाँधकर कड़कड़ाती धूप में खड़ा कर नीलाम किया जा रहा हो।

वसन्त ने कहा, "सर, आज यहीं तक।"

केदार बाबू जैसे फिर से वर्तमान में लौट आये। एकदम नाइन्टीन-सिक्स्टी-टू में। आज तुम अगर व्यापार करना चाहते हो तो बतलाओ

तुम्हारी जाति क्या है ? तुम बंगाली हो या गुजराती, या उड़िया या असमिया, या पंजाबी या और कोई ? राइटर्स बिल्डिंग में मिस्टर 'ए' तुम्हारे साथ मुलाक़ात ही नहीं करेंगे। लेकिन अचानक डिप्टी ने जाकर कहा—सर, मिस्टर दत्त आये हैं।

मिस्टर दत्त के पास और कुछ हो न हो, रुपया है। टॉप से बॉटम तक सभी ने उनका चाँदी का जूता खाया है। मिस्टर दत्त का रुपया नहीं खाया हो ऐसा कोई ऑफ़िसर, क्लर्क या और कोई हो तो उसे निकाल बाहर करो। बिना घूस लिए नाइन्टीन-सिक्स्टी-टू में वह मिसफ़िट है। वह धोखेबाज़ है, वह ट्रेटर है। सरकारी नौकरी में उसका रहना ग़ैर-क़ानूनी है। मिस्टर दत्त का नाम सुनते ही मिस्टर 'ए' इतने बड़े डिपार्टमेंट के हैड होते हुए भी कुर्सी छोड़कर सड़क तक दौड़े आये।

वसन्त देखकर हैरान रह गया! कड़ी धूप की वजह से बाहर जैसे दिन सायँ-सायँ कर रहा था। सड़क पर रिक्शा, आदमी और गाड़ियाँ चल रही थीं। मास्टर साहब सुबह के आये हैं और अब ग्यारह बज रहे हैं। अभी भी उठने का नाम नहीं है। पढ़ाते-पढ़ाते चुप हो गये। आँखों से झर-झर आँसू बह रहे थे।

वसन्त ने फिर से पुकारा, "सर !"

केदार बाबू ने धोती के छोर से आँखें पोंछीं।

"सर, आपकी क्या तबीयत गड़बड़ है ?"

"नहीं," कहकर केदार बाबू उठ खड़े हुए।

"सर, आपके लिए रिक्शा बुला दूँ ?"

केदार बाबू की आँखें अभी तक भरी थीं। बोले, "नहीं रे, मुझे कुछ नहीं हुआ है। तुम लोगों के बारे में ही सोच रहा था, तुम लोगों का क्या होगा ?"

"क्यों सर, मेरी प्रिपरेशन तो अच्छी ही हुई है !"

"प्रिपरेशन करने से क्या होता है ! तुम लोगों का कोई भी तो नहीं है। हम लोग तो बूढ़े हो गये। कुछ दिन और हैं। तुम लोगों के बारे में सोचता हूँ तो मन ख़राब हो जाता है। तुम्हें देखनेवाला कोई नहीं है।"

कहकर छाता लिए उसी कड़कती धूप में निकल पड़े।

वसन्त काफ़ी दिन से मास्टर साहब को देख रहा है। लेकिन जितना देखता है, उतना ही हैरान होता है। जिन दिनों पिताजी की हालत ख़राब थी, महीनों फीस नहीं दे पाया। फिर भी पढ़ाना बन्द नहीं किया। इतने

दिन बाद इस बीमारी के बाद से ही जैसे और भी टूट गये हैं। मॉडर्न हिस्ट्री पढ़ाते-पढ़ाते उनकी आँखें भर आती हैं।

सिर्फ़ बसन्त ही क्यों, इस ज़माने के किसी का भी कोई गार्जियन नहीं है। बसन्त की ही तरह गुरुपद का भी कोई गार्जियन नहीं है। सड़क पर चलते-चलते छाता बन्द कर केदार बाबू ने चारों ओर देखा। सेवेन्थ सेन्च्युरी बी० सी० का हाल था। किसी का गार्जियन नहीं है। ये लोग पास करते हैं तो कॉलेज में एडमिशन नहीं ले पाते। कॉलेज में एडमिशन ले पाते हैं तो नौकरी नहीं मिलती। व्यापार करते हैं तो इन्हें सरकार की सपोर्ट नहीं मिलती। ये लोग बंगाली जो हैं। इन लोगों की शादी नहीं होगी, व्यापार नहीं चलेगा, नौकरी नहीं मिलेगी। ये लोग कहाँ जायें ? क्या करें ?

आश्चर्य ! शैल भी तो इन्हीं लोगों में है ! इतने दिनों तक केदार बाबू सिर्फ़ विद्यार्थियों के बारे में ही सोचते रहे। आज अचानक शैल का ध्यान आ गया। सदाव्रत के इस मुक़दमे के बाद से ही शैल का ज्यादा खयाल आता। जब तक वह है, किसी तरह चलता रहेगा। फिर ?

अख़बार में रिपोर्ट पढ़ने के बाद से और भी ज़्यादा फ़िक्र होने लगी थी। कुन्ती गुहा बाप के मर जाने के बाद ही तो इस रास्ते पर आयी।

केदार बाबू लौट पड़े।

सदाव्रत की माँ से एक बार साफ़-साफ़ बात कर लेना अच्छा होगा। और अगर सदाव्रत भी घर पर मिल जाये तो बात ही क्या ! उसके सामने ही बात हो जायेगी।

ट्राम से बालीगंज इलाके में आकर उतरे। इसके बाद हिन्दुस्तान पार्क में पहुँचकर सदाव्रत के घर का दरवाज़ा खटखटाया।

दरवाजा बद्रीनाथ ने ही खोला। यह बेवक़्त कौन आया ?

केदार बाबू ने कहा, "ज़रा कमरे में अन्दर बैठने दो, भैया ! पंखा खोल दो, ज़रा हवा लगे। पसीने से एकदम नहा गया हूँ।"

बद्रीनाथ ने अन्दर बैठा भी दिया। बोला, "बड़े बाबू, छोटे बाबू कोई भी नहीं हैं।"

"वह जानता हूँ, भैया ! मैं क्या आज पहली बार आया हूँ ? ज़रा अपनी माँ को बुला दो। दो बात करनी हैं।"

दोपहर के समय मन्दा को काम नहीं रहता। इस बेवक़्त सदाव्रत के मास्टर साहब क्यों आये हैं, कुछ समझ में नहीं आया। सिर को अच्छी

तरह से ढँककर बाहर के कमरे में आयी।

"माँ, आपसे कुछ कहना था।"

मन्दा ने कहा, "आपका खाना-पीना हुआ या नहीं ?"

"आप उसके लिए परेशान न हों। मैं ज़रा देर से ही खाता हूँ। किसी-किसी दिन नहीं भी खाता। आपके पास मैं उसके लिए नहीं आया हूँ। कल मन्मथ ने बतलाया, सदाव्रत का मुक़दमा पलट गया है।"

"मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम।"

"आपको नहीं पता तो मन्मथ कहाँ से सुन आया ! वह तो कह रहा था, उसे सदाव्रत ने बतलाया है। इतने दिन से जो मामला चल रहा था, एक गवाह की वजह से पलट गया है। आपको कुछ भी पता नहीं है ? शिवप्रसाद बाबू कहाँ हैं ?"

"वह तो दिल्ली गये हैं। अभी तक वापस नहीं आये।"

बात किस तरह चलायें, केदार बाबू कुछ ठीक नहीं कर पा रहे थे। उनके जैसा आदमी भी झिझक रहा था। फिर ज़रा देर सोचने के बाद बोल ही पड़े, "अच्छा माँ, आपसे एक बात कहूँगा।"

"कहिये न !"

"आज मन्मथ की माँ मुझसे कह रही थी, वैसे सच पूछिये तो मन्मथ की माँ ने ही बात चलायी। असल में मुझे तो ख़याल ही नहीं था। आप तो जानती ही हैं, आजकल कैसे दिन जा रहे हैं, मतलब साधारण आदमी बड़ी मुश्किल में है।"

सदाव्रत की माँ कुछ भी समझ नहीं पा रही थी।

"मेरा ही हाल देखिये न। मैं छः ट्यूशन करता हूँ। सब लोग अगर ठीक से फीस दे दें तो एक सौ चालीस रुपये होते हैं। एक सौ चालीस रुपये में अच्छी तरह से ही गुज़र हो सकती है। फिर मेरी भतीजी शैल है। शैल को तो आपने देखा ही है। बड़ी हिसाब से चलने वाली लड़की है।"

सदाव्रत की माँ के पल्ले फिर भी कुछ नहीं पड़ा।

"लेकिन कितने ही तो फीस दे ही नहीं पाते। देंगे भी कैसे, आप ही कहिये न ? सैंतीस रुपये चावल का भाव हो गया है। शशिपद बाबू ने मुझसे ख़ुद कहा है। शशिपद बाबू तो झूठ बोलनेवाले आदमी नहीं हैं। मान लीजिये मैं अकेला आदमी हूँ। मैं अपने लिए नहीं सोचता, सोचूँगा भी क्यों, कहिये न ? अकेले के लिए कौन सोचता है ? दुनिया में हम इतने सारे लोग हैं। इसीलिए तो मुश्किल है। किस तरह हम लोगों का फ़ायदा होगा,

क्या करने पर हम लोग सुखी रहेंगे, इन्हीं बातों के लिए तो इतने सारे कायदे-क़ानून बनाये गये हैं, जिससे कोई किसी के ऊपर अत्याचार न करे…"

बाहर कड़ी धूप से सड़क तप रही थी। एक भी आदमी नहीं था। कमरे के अन्दर केदार बाबू बोले जा रहे थे। सदाव्रत की माँ को सम्बोधित करके ही बात कर रहे थे। लेकिन कोई सुन रहा है या नहीं, केदार बाबू को इससे कोई मतलब नहीं था। उन्हें तो सिर्फ़ बोलने का मौक़ा मिल जाये बस। सेवेन्थ सेन्च्यूरी बी० सी० से शुरू कर आदमी और उसके समाज को सेवेन्टीन-एट्टी-वन में आकर पहली बार पैर रखने की जगह मिली। फ्रेंच रिवोल्यूशन को लाँघकर किस तरह इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन ने आकर…

अचानक बद्रीनाथ ने कमरे में आ सब गड़बड़ा दिया। बोला, "माँ!"

केदार बाबू की बात का तार टूट गया। उन्हें इतना अच्छा श्रोता बड़ी मुश्किल से मिलता है। बात के बीच में टूट जाने से उन्हें खराब लगा।

"बड़े बाबू दिल्ली से ट्रंककाल पर बात कर रहे हैं।"

मन्दा उठ खड़ी हुई। शायद अन्दर जाने के लिए।

"अच्छा तो माँ, मैं चलूँ अब।" कहकर केदार बाबू चले ही जा रहे थे, लेकिन अचानक रुक गये।

बोले, "एक बात और कहूँगा, माँ! अच्छा, शैल को तो आपने देखा ही होगा?"

व्यस्त होने पर भी यह सवाल सुनकर मन्दा चौंक उठी। इस सवाल का जवाब क्या है, वह भी नहीं समझ पायी। सिर्फ़ टालने के लिए कहा, "हाँ, देखा तो है। उस दिन आयी थी न!"

केदार बाबू ने फिर भी नहीं छोड़ा। पूछने लगे, "कैसी लगी?"

"अच्छी। बहुत अच्छी है!"

"बहुत अच्छी थी न?"

मन्दा ने कहा, "उधर वह टेलीफ़ोन पर खड़े हैं।"

केदार बाबू उतने से ही खुश थे। बोले, "नहीं-नहीं, आप और देर न करिये। मैं चलता हूँ।" कहकर छाता लिये निकल गये।

□ □ □

शैल जिन्दगी में शायद आज पहली बार अकेले बाहर निकली थी। घर पर किसी से कुछ नहीं कहा। फिर भी पता अच्छी तरह से याद कर

लिया था। बाद में अगर भूल जाये। काका भी सुबह के घर से निकले हैं। मन्मथ भी नहीं है। उसे यूनिवर्सिटी में एडमिशन मिल गया है।

मौसीमा ने पूछा था, "अपने काका के आने तक रुकोगी या पहले ही खाओगी ?"

शैल—"आप मेरी फ़िक्र न करें, मौसीमा, मैं बाद में ही खाऊँगी।"

तब तो हो लिया। काका के लौटने का जैसे बँधा हुआ समय हो। मौसीमा के बाहर जाते ही शैल जल्दी से साड़ी बदलकर तैयार हो गयी। जब कभी बाहर गयी है, मन्मथ या सदाव्रत में से कोई-न-कोई उसके साथ ज़रूर होता।

घर से निकलकर बस पकड़ते समय ही गड़बड़ हो गयी। अगर कोई देख ले ? लेकिन उसे पहचाननेवाला है ही कौन ! हो सकता है काका मिल जायें। सुबह के वक़्त उनके तीन टयूशन हैं। ट्राम से एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं। काका के पास ट्राम का मन्थली टिकट है।

एक बस के आते ही उठने लगी। तभी अचानक ख़याल आया, यह बस कहाँ जायेगी, पूछ लेना चाहिए।

कंडक्टर के पास आते ही पूछा, "यह बस कहाँ जायेगी ?"

"हावड़ा। आपको कहाँ जाना है ?"

"बेहाला !"

"तब जाकर उस ओर के फ़ुटपाथ पर खड़ी होइये।"

इतने दिनों तक शैल बाहरी दुनिया के लोगों से डरती आयी है। सभी जैसे उसे फँसाने का, उसे मुश्किल में डालने का चांस देख रहे हैं। कलकत्ता में इतने दिन वह यही धारणा लिए थी। उस दिन उस लड़की ने सड़क पर चलते-चलते धक्का मारा था। उसी पर तो मुक़दमा चल रहा है। एक बार उसकी चप्पल भी टूट गयी थी। हर तरह की आशंका लिए ही वह बाहर निकली थी। बिना निकले चारा भी तो नहीं था।

इस बार ठीक बस मिल गयी थी। यह बस सीधे बेहाला पहुँचा देगी। ज़िन्दगी में कभी इस ओर नहीं आयी। शैल को लगा जैसे सभी उसकी ओर अजीब निगाहों से देख रहे थे। जैसे सभी जान गये हैं कि उसे रास्ते का पता नहीं है। अगर कोई पीछे लगे ? शैल ने साड़ी को कसकर लपेट लिया, बदन का कोई भी हिस्सा जिससे दिखायी न दे। चेहरा भी अगर ढंक पाती तो अच्छा होता। बस किधर से कहाँ जा रही थी कुछ भी पता नहीं चल रहा था। क्या बजा है, यह भी मालूम करना मुश्किल था।

मौसीमा को शायद अब तक पता लग गया होगा। शैल को न देख मौसीमा ने ढूँढना शुरू कर दिया होगा।

और अगर काका लौट आये होंगे तो ?

काका तो आते ही ढूँढना शुरू कर देंगे। घर में घुसते ही काका शैल को आवाज़ देते हैं। शैल जहाँ कहीं भी होती, सामने आ खड़ी होती। आज काका उसे नहीं देख पायेंगे।

शैल को याद आया, काफ़ी दिन पहले जब बागमारी में रहती थी, वहीं अगर पानी में डूब गयी होती तो यह सब क्यों देखना होता !

पास में एक महिला बैठी थी।

शैल ने पूछा, "अच्छा, घोषालपाड़ा किस जगह का नाम है, बतला सकती हैं ?"

उस महिला ने ठीक जगह पर ही उतार दिया। एकदम अनजान जगह। किसी को यह पता भी नहीं लगने देना चाहती थी कि वह यहाँ नयी आयी है। फिर बिना पूछे कोई चारा नहीं है। अखबार का पेज निकालकर फिर से विज्ञापन देखा। सड़क के किनारे साइन बोर्ड था। उस पर सड़क का नाम लिखा था। बड़ी मुश्किल से पढ़ पायी। जंग-खायी पुरानी प्लेट लगी थी। नाम धुंधला पड़ गया था।

"अच्छा, इस ओर घोषालपाड़ा लेन कौन-सी है ?"

पोखर के किनारे एक औरत बर्तन साफ़ कर रही थी। शैल ने उसी से पूछा।

पोखर थी। फिर भी बागमारी से अच्छी जगह थी। लोग भी काफ़ी हैं। किसी तरह ढूँढकर मकान तक पहुँची। दरवाज़ा खटखटाते ही एक बूढ़ी-सी औरत ने आकर दरवाज़ा खोल दिया।

"आपके यहाँ कोई मकान खाली है ? अखबार में विज्ञापन देखा..."

बूढ़ी औरत ने ऊपर से नीचे तक शैल को देखा। फिर कहा, "अरे, वह तो आज सुबह ही किराये पर उठ गया !"

"किराये पर उठ गया ?"

शैल जैसे बैठ गयी। इतनी आशा लेकर आयी थी। किसी को बिना बतलाये चली आयी है। सोचा था, घर देखकर पसन्द कर लेगी, फिर काका को बतलायेगी। इतने दिन से पराये घर में पड़ी है। काका को बुरा न लगता हो, शैल को तो लगता है।

"अच्छा, देखिये, यहाँ क्या और कोई मकान खाली है ?"

"यहाँ मकान कहाँ से मिलेगा बेटी, आजकल क्या घर खाली पड़े रहते हैं ? हम लोगों ने छः महीने की सलामी माँगी थी, इसीलिए खाली था, नहीं तो···"

शैल का सिर जैसे चकराने लगा था। धूप तेज़ हो रही थी। उसी हालत में उसी रास्ते से फिर लौटी। फिर वही ट्राम-लाइन। किस रास्ते से आयी थी, यह भी भूल चुकी थी। लेकिन फिर भी जैसे उस औरत के शब्द गूँज रहे थे : 'घर क्या आजकल खाली पड़े रहते हैं, बेटी ?'

लेकिन सड़क पर एक भी बस या ट्राम दिखलायी नहीं दे रही थी। लोग पैदल ही चल रहे थे। लाइन-की-लाइन लाल पगड़ीधारी पुलिस सड़क के दोनों ओर खड़ी थी। कोई आनेवाला है। इसीलिए सब लोग सड़क के पास जमा हैं।

शैल ने वहाँ खड़ी एक औरत से पूछा, "अच्छा, बस क्या अब आयेगी ही नहीं ?"

"आपको कहाँ जाना है ?"

"बहूबाज़ार !"

"आपको दो घंटे इन्तज़ार करना होगा। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद इस ओर आये हैं। इसीलिए ट्राम-बस सब बन्द हैं।"

"तब आप लोग कैसे जायेंगी ?"

"हम लोगों का मकान तो इसी ओर है। बस-ट्राम चलते-चलते दोपहर का एक बजेगा। तब तक अगर रुक सकें तो कहीं बैठ जाइये, नहीं तो···!"

शैल के सिर पर जैसे बिजली गिरी—अब क्या हो ?

□ □ □

सदाव्रत को ऑफ़िस में ही टेलीफ़ोन मेसेज मिल गया था। ख़बर मिलते ही उसने मिस्टर बोस को टेलीफ़ोन किया। मिस्टर बोस ने कहा था, वह लंच के बाद आयेंगे। लेकिन काफ़ी देर हो गयी थी। मिस्टर बोस नहीं आये। इसके बाद ही मन्मथ आया। मन्मथ को देखकर सदाव्रत को ज़रा अजीब ही लगा।

"अचानक तुम ?"

"काफ़ी दिनों से तुम्हारे साथ मुलाक़ात नहीं हुई, इसीलिए चला आया। मास्टर साहब भी तुम्हारी याद करते हैं।"

"आजकल उनकी तबीयत का क्या हाल है ?"

"फिर उसी तरह ट्यूशन करना शुरू कर दिया है। मना करने पर भी

नहीं सुनते। खाने-पीने, किसी भी बात का ठीक नहीं है।"

"लेकिन शैल मना क्यों नहीं करती ?"

"वाह, जाने-बूझे यह बात कह रहे हो ? मास्टर साहब क्या शैल की बात सुनते हैं ? पिताजी की बात भी नहीं सुनते। इसीलिए तो तुम्हारे पास आया हूँ। तुम एक बार चलो, सदाव्रत दा ! ज़रा समझा देना।"

सदाव्रत क्या कहे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था। अकेले उस पर कितने सब झमेले। अपने निजी झमेलों के मारे परेशान है। इस पर यह सब अच्छा नहीं लगता। सब-कुछ जैसे उलट-पुलट हो गया है। उसकी ज़िन्दगी इस तरह तो शुरू नहीं हुई थी। और शुरू जैसे भी हुई हो, आज जैसे सब गड़बड़ा गया था। उधर मनिला अस्पताल में पड़ी है। कहने को ज़िन्दा है, माने साँस ले रही है। हालाँकि, जिस लिए उसकी नौकरी लगी है, जिस लिए उसे हर महीने इतनी मोटी रक़म दी जाती है, वह काम पूरा होने की अब कोई आशा नहीं है। स्टाफ़ के लोग उसे दया की नज़रों से देखते हैं। सभी को पता है, उसे नौकरी में रखने के कोई माने नहीं हैं। इतनी मोटी तनख्वाह वह बेकार में मार रहा है। इसके अलावा मुक़दमा है। हियरिंग होती है और तारीख़ पड़ती है। महीनों से यही चल रहा है। मौत के मुँह पर खड़ा सदाव्रत जैसे जी-जान से बचने की कोशिश कर रहा है।

"और शैल भी अब हम लोगों के यहाँ नहीं रहना चाहती।"

"क्यों ?"

सदाव्रत नाराज हो गया। कहने लगा, "क्यों, वहाँ नहीं रहेगी तो कहाँ जायेगी ? कौन उसकी देखभाल करेगा ?"

"कहती है पराये घर में पड़े रहना अच्छा नहीं लगता।"

सदाव्रत चीख़ उठा। टेबल पर ज़ोर से एक मुक्का मारा।

"इससे तो बागमारी में जैसे थी वैसे ही रहती तो अच्छा था। एक दिन पानी में डूबने चली थी, क्या फिर से मरने की इच्छा हुई है ? सबकी फ़िक्र नहीं कर पाऊँगा, तुम मास्टर साहब से कह देना। जब वक़्त था, सुविधा थी, भरसक किया। अब ख़ुद मुझे देखनेवाला ही कोई नहीं है।"

मन्मथ ने समझाने की कोशिश की। "तुम इतना गुस्सा क्यों कर रहे हो, सदाव्रत दा ! जरा उसकी हालत समझने की कोशिश करो !"

"लेकिन मेरी हालत देखनेवाला कौन है ? मैं आजकल सो भी नहीं पाता, पता है ?"

मन्मथ और नहीं रुका, उठ खड़ा हुआ। "अच्छा, मैं चलूँ !"

चले जाने के बाद अचानक सदाव्रत को ख़याल हुआ। मन्मथ से इस तरह का व्यवहार नहीं करना था। लेकिन पता नहीं क्यों सब गड़बड़ हो गया। पूरे ऑफ़िस का भार उस पर है। अपनी ज़िन्दगी का बोझ भी सम्हालना उसके लिए मुश्किल हो रहा है।

अचानक घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया। कहा, "अभी जो बाबू चले गये हैं, उन्हें बुला लाओ !"

मन्मथ को अन्दर बैठाकर कम-से-कम दो-चार मीठी बातें करनी थीं। मन्मथ को क्या पता ! उसका क्या दोष है ! मन्मथ के सामने इस तरह बोलने से क्या फ़ायदा ! पहले तो कभी इस तरह गुस्सा होता नहीं था।

चपरासी लौट आया। बाबू नहीं मिले।

इच्छा हुई गाड़ी लेकर सीधा इन लोगों के यहाँ जाये। लेकिन जाये तो कैसे ? इतनी सारी फ़ाइलें पड़ी हैं।

आख़िर जा नहीं पाया। शाम को स्टैंडिग-कौंसिल के यहाँ इस केस पर सलाह लेने जाना था। वहीं चला गया। सुन्दरियाबाई ने अपने एवीडेन्स में कितनी ही ऐसी बातें कह डाली थीं, जो प्रॉसीक्यूशन के अगेन्स्ट पड़ रही थीं। उसी बारे में सलाह लेनी थी।

"मिस्टर गुप्त, आपने क्या पहले कभी सुन्दरियाबाई को देखा है ?"

"जानूँगा कैसे ? इतने दिनों से कलकत्ता में हूँ। यहाँ यह सब भी होता है, मुझे तो पता ही नहीं था।" सदाव्रत ने कहा।

स्टैंडिग-कौंसिल ने कहा, "केस हम लोगों के फ़ेवर में ही है, लेकिन सुन्दरियाबाई कल क्या कहती है, उस पर बहुत-कुछ निर्भर करता है। क्रॉस-एग्ज़ामिन आज पूरा कहाँ हुआ है !"

"लेकिन सुन्दरियाबाई हठात् पद्मरानी के अगेन्स्ट क्यों हो गयी ?"

"इसलिए कि उसका रुपया नहीं मिला। और उसका इकलौता लड़का मर गया है। इसी वजह से ज़रा शॉक खा गयी है।"

फिर फ़ाइल वगैरह समेटकर कहा, "लेकिन जो भी हो, मुज़रिम का कन्विक्शन तो होगा ही।"

"होगा ही ?" सदाव्रत को ज़रा सहारा मिला।

स्टैंडिग-कौंसिल ने कहा, "यह एसिड-बल्ब उसे कहाँ से मिला, यही पता नहीं लगा पा रहा हूँ।"

"कन्विक्शन होने पर क्या फाँसी ही होगी ?"

"कोशिश तो वही कर रहा हूँ, लेकिन इस सुन्दरियाबाई ने सारी गड़बड़ कर दी। उसके क्रॉस-एग्ज़ामिन से पहले कुछ नहीं कहा जा सकता। लगता है उसके मुँह से कुछ और भी निकलेगा। उससे शायद पद्मरानी भी फँस जाये!"

"तब क्या होगा?"

"उससे पता लगेगा, कुन्ती गुहा के पीछे किसी का ब्रेन है या नहीं। मेरा तो खयाल है उसके पीछे किसी का दिमाग़ काम कर रहा है।"

"वह कौन है?"

"यही तो पता नहीं लग रहा। कल सुन्दरियाबाई के बयान से सब साफ़ हो जायेगा। आप कल ज़रूर आइयेगा।"

सदाव्रत ने आते वक़्त कहा था, "ज़रूर आऊँगा।" इसीलिए ऑफ़िस-ऑवर्स में ही गाड़ी लेकर निकल पड़ा। कई सड़कों पर ट्रैफिक बन्द था। काफ़ी घूमकर जाना हुआ। बहुत रोड क्लोज़्ड थीं। चक्कर काटते-काटते जब डलहौज़ी इलाके में पहुँचा, सामने की सड़क भी बन्द हो चुकी थी। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद के लिए क्या सारे रास्ते बन्द हो जायेंगे? कोई काम नहीं होगा?

गाड़ी फिर घुमानी हुई।

आजकल प्रायः ही ऐसा हो रहा है। एक-एक वी० आई० पी० आता है और कलकत्ता के सारे क़ायदे-क़ानून टूट जाते हैं।

एक सड़क के मोड़ पर आकर गाड़ी रुकी। लाइन-की-लाइन पुलिस के सिपाही तैनात थे। किसी को रास्ता पार नहीं करने दे रहे थे। अचानक सब लोग एक ओर देखने लगे—वह आ रहे हैं, आ रहे हैं!

सामने से एक मोटर-साइकिल निकल गयी। पुलिस-सार्जेंट था। उसके बाद ही एक गाड़ी थी। गाड़ी के अन्दर पुलिस थी या कोई सरकारी ऑफ़िसर था। इसके बाद फिर एक गाड़ी। बीच में प्रेसिडेंट की गाड़ी थी। सिर पर खद्दर की टोपी। बन्द गले का कोट। शिवप्रसाद गुप्त के दोस्त राजेन्द्रप्रसाद। सदाव्रत ने पिताजी से ही सुना था।

गाड़ी के गुज़रते ही लोग चिल्लाने लगे—यही हैं, यही हैं प्रेसिडेंट!

सभी जैसे प्रेसिडेंट को देखने के लिए आतुर हो रहे थे। एक-दूसरे को धक्का मारते आगे बढ़ रहे थे। लेकिन पुलिस भी तैयार ही थी। किसी को अन्दर नहीं जाने देगी। लॉ एण्ड ऑर्डर मानना ही होगा। सारे काम-काज भाड़ में जायें, प्रेसिडेंट की गाड़ी ठीक वक़्त पर पहुँचनी ही चाहिए! इस

बारे में पूरा डिसिप्लिन बरतना होगा।

सदाव्रत ने एक बार घड़ी देखी। दो बज चुके थे। लंच के बाद सुन्दरियाबाई का क्रॉस-एग्ज़ामिनेशन शुरू होनेवाला था। सदाव्रत बेचैनी से ट्रैफ़िक-सिगनल की राह देखने लगा।

आखिर में भी एक मोटर-साइकिल थी। उसके चले जाने के बाद रास्ता क्लियर हो गया।

सदाव्रत गाड़ी स्टार्ट कर ही रहा था कि अचानक भीड़ की ओर नज़र जाते ही चौंक उठा। शैल ही है न! शैल अकेली यहाँ क्या करने आयी है? इस ओर? शैल भी क्या प्रेसिडेंट को देखने आयी है? गाड़ी एक ओर पार्क कर सदाव्रत उतरा।

"यह क्या, तुम यहाँ?"

शैल की सूरत देखकर सदाव्रत को जाने कैसा सन्देह हुआ। रूखे बाल, शायद नहायी भी नहीं थी। अनजान की तरह इधर-उधर ताक रही थी। सदाव्रत को देखकर वह भी चौंक उठी, लेकिन मुँह से कुछ नहीं बोली।

"तुम यहाँ इस वक़्त दोपहर को दो बजे क्या कर रही हो? साथ में कौन है?"

शैल ने निगाह नीचे किये कहा, "कोई नहीं।"

"कोई नहीं तो यहाँ अकेली क्या कर रही हो?"

"मैं बेहाला गयी थी।"

"बेहाला? वह तो यहाँ से काफ़ी दूर है। यह तो डलहौज़ी स्क्वायर है! यहाँ आयीं कैसे?"

"बस से। बस आज घूमकर आयी थी, इसी से यहाँ उतार दिया।"

"घर में किसी को पता है कि तुम बेहाला गयी हो?"

शैल चुप ही रही।

"अब घर चलोगी न?"

शैल ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया।

"बेहाला क्या करने गयी थीं?"

शैल ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया।

"बैठो, गाड़ी में बैठो। तुम्हें घर छोड़ दूँ।" सदाव्रत ने कहा।

□ □ □

केदार बाबू ने घर पहुँचते ही हमेशा की तरह पुकारा, "शैल! ओ शैल!"

और दिन शैल ही आकर दरवाज़ा खोलती। दोपहर हो आयी थी। सुबह के निकले हैं। वसन्त को पढ़ाने गये। फिर एक और जगह गये। घूमते-घूमते सदाव्रत के घर जा पहुँचे। ज्यादा देर वहीं हो गयी थी। सिर भी चकरा रहा था।

मन्मथ के नौकर के दरवाज़ा खोलते ही केदार बाबू जैसे चौंक गये।

"शैल कहाँ है ? तुमने दरवाज़ा खोला ?"

तब तक मन्मथ की माँ आ गयी थीं।

"हाँ, शैल कहाँ गयी है, कुछ समझ में नहीं आ रहा।"

"क्यों, घर में नहीं है ?"

"नहीं, उसे तो देख नहीं रही हूँ।"

"तब क्या मन्मथ के साथ निकल गयी ?"

मन्मथ की माँ ने कहा, "नहीं, मन्मथ तो खा-पीकर सुबह का कॉलेज गया है। तब तो शैल घर पर ही थी।"

केदार बाबू ने निराश होकर मन्मथ की माँ की ओर देखा। कुछ ठीक नहीं कर पा रहे थे, कहाँ जा सकती है !

"खाना खा चुकी है ? खाना खाकर गयी है ?"

"नहीं, वही चाय पी है सुबह की। और कुछ तो खाया नहीं।"

केदार बाबू धम्म से कुर्सी पर बैठ गये। बड़ी गुस्सैल लड़की है। गुस्से में सब-कुछ कर सकती है। अपने पिता की तरह इसमें भी गुस्सा भरा है।

कहने लगे, "पता है, माँ ! शैल देखने में ही ऐसी लड़की है, लेकिन बड़ी गुस्सैल है। गुस्से में होश खो बैठती है। गुस्से में शैल सब-कुछ कर सकती है। उसका बाप भी ऐसा ही था। गुस्से से सिर की नस फट गयी थी।"

मन्मथ की माँ और क्या कहतीं। सिर्फ़ कहा, "लेकिन तुम तो खा लो। बिना खाये कब तक बैठे रहोगे ?"

केदार बाबू ने कहा, "लेकिन मेरे खा लेने से तो वह लौटेगी नहीं ! और उसके आये बिना मैं ही कैसे खा सकता हूँ ?"

"लेकिन बिना खाये-पिये तबीयत खराब नहीं होगी ! हम लोग तो सब खा-पी चुके हैं। बिना खाये नौकरों की छुट्टी कैसे होगी ! महरी आकर लौट जायेगी।"

"लेकिन किया क्या जाये, माँ, आप ही बतलाइये। पहले तो कभी ऐसा हुआ नहीं। एक बार बागमारी में इसी तरह हुआ था। मुझ पर

नाराज़ होकर पानी में डूबने पहुँची थी। मैं एक बार थाने में ख़बर कर आऊँ। अभी आया।"

माँ ने कहा, "तुम पहले खाना खा लो, भैया! मन्मथ आकर जहाँ जाना होगा, जायेगा।"

केदार बाबू नहीं माने। उसी हालत में उठ खड़े हुए। शैल नहीं है। शैल ने खाना नहीं खाया। और वह आराम से बैठे रहें, यह नहीं हो सकता। तभी कुछ याद आया। केदार बाबू बाहर जाते-जाते रुक गये।

कहने लगे, "इधर मैं शैल की शादी की बात कर आया हूँ। आपने सदाव्रत के पिताजी के पास जाने को कहा था। मैं आज गया था।"

"उन्होंने क्या कहा?"

"उसके पिताजी घर पर नहीं थे, दिल्ली गये हैं। मैं तो सदाव्रत को बचपन से पढ़ा रहा हूँ। मुझे सभी जानते हैं। उसकी माँ से कहा। पूछ लिया—आपने तो शैल को देखा ही है, अब कहिये, वह आपको पसन्द है या नहीं?"

"सदाव्रत की माँ ने क्या कहा?"

"माँ को ख़ूब पसन्द है। सोच रहा हूँ अगहन में शादी कर दूँ। आपका क्या कहना है? साग-सब्ज़ी भी सस्ती होगी। नये-नये गोभी के फूल, मटर। मछली भी सस्ती हो जायेगी।"

फिर ज़रा रुककर कहा, "लेकिन एक बात है···"

"क्या?"

केदार बाबू ने कहा, "मेरी तो एक यही भतीजी है। इसकी शादी होते ही तो सारा झमेला ख़तम। फिर मुझे किस बात की चिंता! है न? जिधर दो पैर ले जायेंगे चला जाऊँगा। मैं और कुछ भी नहीं सोचूँगा। मैं अकेला इस इंडिया के लिए कितना सोचूँ! न तो इतना जोश ही है, न अब उतनी ताक़त रही है।"

कहकर बाहर जा रहे थे।

लेकिन अचानक दरवाज़े पर गाड़ी के रुकने की आवाज़ सुनकर नज़र उस ओर गयी। पहले तो समझ ही नहीं पाये। आँखें जैसे अटक गयी थीं; सदाव्रत की ही गाड़ी है न!

सचमुच सदाव्रत ही तो है!

सदाव्रत ने गाड़ी लाकर ठीक मन्मथ के घर के सामने खड़ी की। उसी के अन्दर शैल बैठी थी।

केदार बाबू हैरान रह गये। मन्मथ की माँ भी हैरान थीं।

केदार बाबू से न रहा गया। चिल्ला पड़े, "अरे, तू ? मैं तुझे ढूँढने ही तो थाने जा रहा था ! तुझे सदाव्रत कहाँ मिल गया ?"

* * *

इस शहर का यह भी एक रहस्य है। यहाँ आदमी आसानी से दूसरे आदमी को नहीं पहचान पाता। लेकिन एक बार पहचान लेने पर भूलना मुश्किल है। या तो पास खींच लेता है, या दूर ढकेल देता है। लेकिन छोड़ नहीं पाता। सुख-दुःख में लौट-लौटकर आता है। भौतिक रूप में सशरीर न आने पर भी कल्पना में आता है। आधी रात के वक़्त नींद टूट जाने पर आता है, ग़रीब के अकेलेपन में आता है, कभी-कभी विलासिता के आधिक्य में भी आता है। यहाँ पर करोड़ों इन्सान हैं। कीड़ों की तरह, मक्खी-मच्छरों की तरह यहाँ इन्सान भिनभिना रहे हैं। इन्सान, इन्सान की छूत से बचने के लिए बेचैन है। फिर भी इसी इन्सान के लिए इन्सान के मन में पता नहीं क्या होता है। इन्सान लौट-फिरकर इसी इन्सान को चाहता है।

अरसे बाद मुलाक़ात हुई थी। फिर भी पहले बात कौन शुरू करे। काफ़ी देर चुप रहने के बाद पहले सदाव्रत ही बोला। जैसे पहले बात शुरू करने का कर्तव्य उसी का था।

सदाव्रत ने पूछा, "कहाँ गयी थी ?"

शैल चुप रही। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

"सच बतलाओ तो, कहाँ गयी थी ? उस दिन मन्मथ आया था। कह रहा था कि मास्टर साहब ने फिर से घूमना-फिरना शुरू कर दिया है।"

इस पर शैल ने कहा, "हाँ।"

"लेकिन तुम रोक नहीं सकती हो ? मैं तो कितने ही दिनों से देख रहा हूँ, लेकिन मेरे अपने भी तो झमेले हैं। मेरी अपनी प्रॉब्लमें भी तो हो सकती हैं। मैं क्या-क्या देखूँ, तुम्हीं बतलाओ ! कितने ही दिन से रात को नींद भी नहीं आती।"

शैल जैसे चुप थी, वैसे ही रही।

सदाव्रत कहने लगा, "बचपन में और भी एक बार इसी तरह बेचैन हो गया था। किसी ने दिमाग़ में बैठा दिया था कि मैं अपने माँ-बाप का सगा लड़का नहीं हूँ। उन दिनों मैं कितना बेचैन रहा !···बाद में अचानक एक दिन नौकरी मिल गयी। मोटी तनख्वाह। लेकिन इस नौकरी ने भी जैसे अचानक सब-कुछ उलट-पुलट दिया। सभी मुझसे जलने लगे।"

शैल ने अचानक टोका, "लेकिन आप मुझसे यह सब क्यों कह रहे हैं ?"

सदाव्रत ने कहा, "अगर तुम्हीं से न कहूँ तो किससे कहूँ ? मेरी बात कौन सुनेगा ? यह सब सुनाने के लिए मैं किसे खोजूँ !"

इसके बाद ज़रा देर रुककर फिर कहा, "तुम लोगों को लगता होगा, मैं बड़े आराम में हूँ। लेकिन सचमुच अगर खुश रह पाता ! जिस तरह ऑफ़िस के लिए ऑफ़िसर लोग नौकरी करते हैं, क्लब जाते हैं, ड्रिंक करते हैं, शादी करते हैं और पहली तारीख़ को गाड़ी में आकर तनख़्वाह ले जाते हैं, उसी तरह अगर मैं भी दिन काट पाता ! लेकिन शायद वह सुख मुझे कभी भी नसीब नहीं होगा।"

"लेकिन यह सब मुझे सुनाकर आपका क्या फ़ायदा है ?"

"फ़ायदा ?"

सदाव्रत ने एक बार शैल की ओर ताका। "फ़ायदा कुछ भी नहीं है। मैंने किसी से कभी दिलासा नहीं चाही, न मिली ही। यह भी न सोचना कि यह सब तुम्हारी सहानुभूति पाने के लिए कह रहा हूँ। इन्सान को कोई अपने मन की बात सुननेवाला चाहिए, बात करनेवाला चाहिए।"

शैल ने कहा, "आपका खयाल है मेरी बात सुननेवाला कोई मौजूद है ?"

"तुम्हारे पास ऐसी कौन-सी बात है ?"

शैल ने उसी तरह सामने की ओर देखते हुए कहा, "मेरी भी तो मुश्किलें हो सकती हैं, समस्याएँ हो सकती हैं। मुझे भी तो रात को नींद नहीं आ सकती है। मैं भी तो आख़िर इन्सान हूँ।"

सदाव्रत गाड़ी चलाते-चलाते चौंक उठा। मुँह घुमाकर बोला, "सच, मेरी तरह तुम्हें भी रात को नींद नहीं आती है ?"

शैल चुप रही। सदाव्रत ने भी फिर कोई सवाल नहीं किया। गाड़ी घूमकर दूसरी सड़क पर आ चुकी थी। शैल ने कहा, "आपको और तकलीफ़ नहीं करनी होगी। मैं रास्ता पहचान गयी हूँ। मुझे यहीं उतार दीजिये।"

शैल की बात को अनसुनी करके सदाव्रत गाड़ी ड्राइव करता रहा।

"उतार दीजिये !"

सदाव्रत ने कहा, "जब इतनी दूर तक आया हूँ, घर तक भी जा पाऊँगा। तुम्हें घर तक पहुँचा देने से मेरा कोई खास नुक़सान नहीं होगा।"

"लेकिन उससे मेरा भी कोई फ़ायदा नहीं होनेवाला है।"

"तुम्हारा फ़ायदा हो या न हो, मुझे नुक़सान नहीं है। बल्कि फ़ायदा

ही है।"

"लेकिन मुझे घर तक पहुँचाकर आपका क्या फ़ायदा ?"

सदाव्रत गाड़ी ड्राइव करता रहा। उसने शैल की बात का कोई जवाब नहीं दिया।

"कहिये न, आपका क्या फ़ायदा ?" शैल ने फिर पूछा।

"ज़रा देर पहले ही तुम्हें बतलाया है। मेरे कितने ही झमेले हैं। मैं कितना बेचैन हूँ। उनमें से कुछ का तुम्हें भी पता है। कुछ अखबारों में भी पढ़ा होगा। सब-कुछ साफ़-साफ़ कहने लायक फ़िलहाल मेरे मन की हालत भी नहीं है।"

"लेकिन आप सोचते हैं, क्या मेरी भी वह हालत है ?"

"फिर भी मेरे साथ तुम्हारी क्या तुलना ?"

"हर कोई अपने दुःख को बड़ा मानता है, दुनिया का यही क़ायदा है। आपके तो फिर भी माँ-बाप हैं। आपके हाथ में अच्छी नौकरी भी है। आपके लिए तो फिर भी कुछ करने को है, लेकिन मैं क्या करूँ ? आप मर्द ठहरे, जहाँ चाहें जा-आ सकते हैं। आपके पास कुछ नहीं तो रुपया तो है। आप अपनी मर्ज़ी से जिसे चाहें दान भी दे सकते हैं। आप आज़ाद हैं। लेकिन मैं ? एक बार मेरे बारे में भी सोचिये न !"

सदाव्रत चुपचाप सुनता रहा।

"आप शुरू से माँ-बाप के लाड़-प्यार में पले हैं। स्कूल और कॉलिज में दोस्तों के साथ रहे हैं। इच्छा होने पर झगड़ा किया है, ज़िद की है। ज़रूरत होने पर गाड़ी लेकर निकल पड़े हैं। और मैं ? इन पागल काका को लिये किस तरह दिन गुज़ार रही हूँ, एक बार यदि सोच पाते !"

सदाव्रत ने शैल की ओर देखा। चेहरा काफ़ी भारी-भारी-सा लग रहा था, आँखें डबडबा आयी थीं।

"आज सुबह प्रतिज्ञा करके निकली थी, जैसे भी हो, जहाँ भी हो, आज कोई घर ठीक करके ही लौटूँगी। लेकिन मैं भी क्या कोई आदमी हूँ, मेरी प्रतिज्ञा !"

"बेहाला क्या इसीलिए गयी थीं ?"

शैल ने कोई जवाब नहीं दिया।

"लेकिन कलकत्ता में खाली मकान मिलना क्या इतना आसान काम समझती हो ? तुम किस बूते पर इतनी दूर गयी थीं, बोलो ? अगर कोई गड़बड़ हो जाती ?"

शैल चुप रही।

"और फिर तुमसे मकान ढूँढने को कहा किसने ? मन्मथ के यहाँ तुम्हें क्या कमी है ? अलग घर लेकर रहने पर तुम लोगों की देखभाल कौन करेगा ? मास्टर साहब तो सारा दिन बाहर घूमेंगे। तुम अकेली पड़ी-पड़ी घर में क्या करोगी ? फिर से क्या वही बागमारी जैसा तमाशा करना चाहती हो ?"

"लेकिन इस तरह आख़िर कितने दिन ज़िन्दा रहा जा सकता है ?"

"मरना तो आसान काम है। एकदम आसान काम। वह तो सभी कर सकते हैं। जीना कितने लोगों को आता है ! कलकत्ता के कितने लोग सच-मुच ज़िन्दा रहते हैं, कहो ?"

"लेकिन मेरी-जैसी हालत होने पर दूसरा रास्ता ही क्या हो सकता है ?"

"रास्ते बहुत-से हैं। जो जीने का रास्ता नहीं जानते सिर्फ़ वे ही लोग मरना चाहते हैं। तुम ज़रा मेरी ओर देखो। मैं कैसे जी रहा हूँ ?"

शैल ने सिर नीचा किये कहा, "आप ? आपके पास क्या नहीं है? आपके पास जो है, वह सब अगर मेरे पास भी होता ?"

"तुम्हारे पास सब-कुछ है। काका हैं, मन्मथ है, मैं हूँ।"

"अच्छा, अब बन्द करिये ! घर आ गया है।"

सचमुच घर आ चुका था। ब्रेक लगाकर सदाव्रत ने गाड़ी रोक दी।

केदार बाबू बाहर खड़े थे। शैल को देखते ही बोले, "अरे, तू ? तेरा पता लगाने ही तो मैं थाने जा रहा था ! तुझे सदाव्रत कहाँ मिल गया ?"

तब तक सदाव्रत भी उतर चुका था।

केदार बाबू ने सदाव्रत की ओर देखते हुए कहा, "मैं तो तुम्हारे ही घर से आ रहा हूँ। तुम्हारी माँ से सारी बात पक्की कर आया हूँ।"

सदाव्रत समझ नहीं पाया। उसने पूछा, "कौन-सी बात ?"

"तुम्हारी शादी की बात। तुम्हारी माँ को शैल खूब पसन्द है। सोच रहा हूँ अगहन का महीना ठीक रहेगा। साग-सब्ज़ी सस्ती हो जायेगी। नये-नये फूलगोभी भी आयेंगे···"

सदाव्रत ने कहा, "इस समय मुझे हाईकोर्ट जाना है, मास्टर साहब ! लौटकर आपसे बात करूँगा···इस समय वक़्त नहीं।"

कहकर जल्दी से गाड़ी स्टार्ट करके चला गया।

□ □ □

पूरे हाईकोर्ट में सन्नाटा छा गया। इन्हीं धर्मावतार महोदय ने एक दिन वॉरेन हैस्टिंग्स के मामले पर विचार किया था। महाराज नन्दकुमार का विचार किया था। इसी तरह धीरे-धीरे यह न्यायदण्ड महात्मा गांधी, देशबन्धु, मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद, सुभाषचन्द्र बोस के ऊपर से होता हुआ गुज़र गया। इसी न्याय के लिए एक दिन बंगाल के खुदीराम, गोपीनाथ वग़ैरह ने जान दी। उनके बलिदान के बदले में जो आज़ादी मिली है, वह आज़ादी भी जैसे आज परीक्षा की कसौटी पर है। एकदम अग्नि-परीक्षा। इंडिया से पाप निकाल बाहर करना ही होगा। पापी को सज़ा मिलनी ही चाहिए। कमी रहेगी, लेकिन कोई शिकायत नहीं कर सकता। शिकायत करनी है तो शान्ति से करो। विद्रोह करोगे तो न्यायदण्ड के सामने तुम्हें झुकना ही होगा। ज़रूरत पड़ने पर अपना सिर भी देना होगा।

एक-एक गवाह आता था और इतिहास का एक-एक पेज उलट रहा था। कलकत्ता की यह नियॉन लाइट, गांधीघाट, राजभवन, इसी कलकत्ता की साड़ी, गहने, गाड़ी, ऐश्वर्य, इस कलकत्ता के रँगे हुए चेहरे में से जैसे एक और कलकत्ता उभर रहा था। एक के बाद एक तसवीर उभरती आ रही थी। उस कलकत्ता के फाइव-ईयर-प्लान में ब्लफ़ नहीं है। उस कलकत्ता के भले आदमियों के लड़कों के लिए घर में जगह नहीं है। इसलिए मुहल्ले में किराये का मकान लेकर संस्कृति-संघ बनाते हैं। लड़कियों को नज़दीक पाने के लिए ड्रामेटिक क्लब बनाते हैं। वहाँ थोड़ी देर के लिए शंभू वग़ैरह जैसे अफ़ीम खाकर ज़िन्दगी का सारा स्वाद भूल जाते हैं। उस कलकत्ता में विनय की तरह के लड़के शादी नहीं कर पाते, क्योंकि उन्हें नौकरी नहीं मिलती। शादी नहीं करते इसलिए बस की भीड़ में खड़े रहते हैं, जिससे लड़कियों के बदन से रगड़ खायें। इस कलकत्ता के जवान लड़के सिनेमा के सामने क्यू लगाते हैं और घंटों बैठकर ताश खेलते हैं। ये ही लोग रात बिताने दूसरे इलाकों में जाते हैं, जहाँ आदमी का लालच और उसकी लालसा अजगर की तरह मुँह फाड़े जैसे सभी को निगलने के लिए तैयार बैठी है; उस कलकत्ता में पति-पुत्र और लड़के-लड़कियों को घर में छोड़कर, गुलाबी वग़ैरह पद्मरानी के फ़्लैट में धन्धा करने जाती हैं।

कोर्ट में जो लोग हियरिंग सुनने जाते, वे रोज़ कलकत्ता के बारे में अफ़वाहें सुनते। जो उन लोगों ने नहीं देखा, वे लोग जो नहीं जानते, वही देखने और जानने के लिए बेचैन रहते हैं। और घर आकर छिः-छिः करते। कहते—छिः-छिः, यही है अपना कलकत्ता!

कलकत्ता जैसे भाड़ में गया, जहन्नुम में गया ! लोगों का भाव ऐसा है। फिर भी सुनने में अच्छा नहीं लगता। अच्छा लगता है सुबह के अखबार में पहले पेज पर छपी कलकत्ता के लोगों की काली करतूतें पढ़ना। किस तरह पाकिस्तान से आयी एक शरणार्थी लड़की ऑकलैंड-हाउस के बड़े बाबू के चक्कर में फँसकर, इसी शहर की छाती पर आर्टिस्ट बनी। भले लोगों में मिल गयी। उन्हीं भले लोगों के समाज ने किस तरह उस लड़की को इज़्ज़त बख्शी ! उसी लड़की को सोने का मैडल इनाम में दिया। उसकी कहानी उपन्यास और नाटक की कहानी से भी ज़्यादा अजीब है। सदाव्रत गुप्त, मनिला बोस, सुन्दरियाबाई, सेठ ठगनलाल, पद्मरानी, गुलाबी, जूथिका, वासन्ती, दुलाल सान्याल, संजय सरकार, शंभू, कालीपद किस तरह उससे बँधे हैं—यह और भी अनोखी कहानी है।

सभी गवाही दे रहे थे। सभी का कहना था—टगर को वे लोग नहीं जानते। वे लोग सिर्फ़ कुन्ती गुहा को जानते हैं।

कोई-कोई कहता—कुन्ती गुहा को वे लोग नहीं जानते, वे लोग तो टगर को जानते हैं।

जिसको लेकर यह सारा हंगामा मचा था, वह कुन्ती गुहा भूत की तरह अपराधी के कठघरे में खड़ी रहती थी। उसकी छाया में जैसे ज़हर था। वही ज़हर-भरा फन उठाकर जैसे वह सबसे कह रही थी—मैंने जो कुछ किया है, वह मुझ अकेली का कसूर नहीं है। मेरा कसूर, तुम्हारा भी कसूर है! इस कलकत्ता के एक-एक आदमी का पाप है ! युद्ध-परवर्ती इंडिया के सभी का पाप है।

वही भूत जैसे यह भी कह रहा था—मुझे अकेली को सज़ा देने से काम नहीं चलेगा। मुझे अकेली को सज़ा देकर इस पाप का प्रायश्चित्त नहीं होगा। तुम सभी को इस पाप का भागी बनना होगा। मेरे पापों के साथ तुम लोगों के पाप का भी विचार होगा। जिन लोगों के साथ मैं मिलती रही हूँ, जिन लोगों के साथ मैं सोयी हूँ, जिनके हाथ से मैंने पाप का रुपया लिया है, जिन्होंने मेरे हाथ में शराब का गिलास थमाया है, उन्हें भी बुलाओ। उन्हें सज़ा दिये बिना मुझे दी हुई सज़ा बेकार होगी। उन लोगों को सज़ा दिए बिना तुम्हारा सारा किया-धरा बेकार जायेगा।

उस बड़े और पुराने हाईकोर्ट में जैसे और भी कितनी ही अशरीरी आत्माएँ आकर चुपचाप चक्कर काट रही हैं। एक कबूतर बरामदे में आ कर गुटरू-गूँ की आवाज़ करके ज़रा देर के लिए सभी को चौंका देता है।

आसमान में दूर से आते एरोप्लेन की आवाज़ से गुम्बदवाला बड़ा हॉल जैसे गूँजने लगा था। इजलास में इससे पहले जितने लोगों को फाँसी की सज़ा हो चुकी है, सभी जैसे आकर कान लगाये बैठे रहते हैं। अब एक और आ रहा है। एक और आकर उनकी गिनती बढ़ा रहा है।

भूत ने कहा—क्यों, उन लोगों को भी बुलाओ जो लोग दिन-पर-दिन इन्सान के खाने में ज़हर मिला रहे हैं। दवाओं में मिलावट कर रहे हैं। जो लोग इन्सान का खाना इन्सान को न दे, गढ़े में डाल रहे हैं। उन लोगों को भी बुलाओ जो ज़मीन, आसमान और समुद्र में ज़हरीले बम गिराकर दुनिया का सर्वनाश करने पर तुले हैं। वे लोग कहाँ हैं, जो आज भी इसी शहर में, यहीं के क्लबों में, महाजाति सदन में, मैदान और चौरंगी के होटलों में छाती फुलाए घूम रहे हैं। वे सब बेकसूर हैं ! और मैं ही कसूरवार हूँ ? तब किसके लिए हमारे देश के टुकड़े हुए ? किसके लिए हम लोग जानवरों की तरह स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर पड़े रहे ? किन लोगों की वजह से हमारी कॉलोनी जलकर राख हो गयी ? मेरे पिताजी की हत्या किसने की? मेरी बहन को चोरी करना किसने सिखलाया ? वे लोग कहाँ हैं? उन लोगों के बिना आये, उन्हें सज़ा बिना मिले मेरा प्रायश्चित्त अधूरा रहेगा। बुलाओ, उन लोगों को बुलाओ !

अब सुन्दरियाबाई की बारी थी।

स्टैंडिंग-कौंसिल ने पूछा, "अच्छा, अगर तुमने मुजरिम को नहीं भेजा लेकिन और जिन लोगों को भेजा उनका नाम बतला सकती हो ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "उन लोगों के असली नाम बाद में बदल दिये जाते हैं। असली नाम नहीं रहते।"

"तुमने कहा था, तुम कभी चिट्ठी-पत्री नहीं लिखतीं। लेकिन यह किसकी चिट्ठी है ? अच्छी तरह से देखकर जवाब दो !"

कहकर सुन्दरियाबाई के हाथ में एक चिट्ठी दी।

सुन्दरियाबाई पहचान गयी। बोली, "हाँ, यह चिट्ठी मेरी ही है।"

"तब तो तुमने पहले जो कुछ कहा था, वह सब झूठ था ?"

"नहीं, झूठ नहीं, असल में इस चिट्ठी की बात मैं भूल गयी थी।"

"वैसे तुम चिट्ठी लिखती नहीं, इस एक चिट्ठी को छोड़कर और कभी कोई चिट्ठी नहीं लिखी, यह बात ठीक है ?"

"सच !"

"यह एक क्यों लिखी ?"

"मेरा रुपया बाकी था, इसलिए।"

"तुम्हारा कितना रुपया बाकी था ?"

"यही क़रीब चालीस हज़ार रुपये ! वह चालीस हज़ार रुपये देने में देर कर रही थी।"

"तुम जानती हो, तुम्हारी इस गवाही पर तुम्हें सज़ा हो सकती है ?"

"मैं उसके लिए तैयार होकर ही आयी हूँ।"

"तुम्हें डर नहीं है ?"

"अब मुझे किस बात का डर ? मेरा है ही कौन ? अब तो मेरा ज़िन्दा रहना भी बेकार है !"

सदाव्रत चुपचाप बैठा सुन रहा था। सिर्फ़ सदाव्रत ही नहीं, उस-जैसे कितने ही लोग आये थे। ऑफ़िस छोड़कर शंभू आया था। विनय आया था। कालीपद भी दिखलायी दे रहा था। और भी कितने ही जाने-पहचाने चेहरे दिखलायी दे रहे थे। अविनाश बाबू, बंकू बाबू वगैरह शिवप्रसाद बाबू के पैंशनयाफ्ता दोस्त भी आये थे। ये सब लोग रोज़ ही आते हैं। अखबार में इस केस के बारे में दी थोड़ी-सी खबर पढ़कर किसी का मन नहीं भरता। यहाँ आकर सब-कुछ अपनी आँखों देखना चाहते हैं। मुजरिम को भी यहाँ आकर देखा जा सकता है। इस छोकरी ने ही किया यह सब। हमारी नज़रों के सामने इस लड़की को लेकर इतना झमेला हो गया और हमें पता तक नहीं ! शिवप्रसाद बाबू तो देवता आदमी हैं। उनका लड़का इस मामले में ? कल का लड़का, कॉलेज में पढ़ता था। शर्मीला लड़का। शर्म के मारे हम लोगों से बात भी नहीं करता था। निगाह नीची किये रहता था। उसी की ये करतूतें !

"चालीस हज़ार रुपये मेरे लिए कुछ भी नहीं हैं। मेरा नुक़सान उससे भी ज़्यादा हुआ है।"

"क्या नुक़सान ?"

"जो लोग लाखों रुपये का फ़ायदा कर रहे हैं, उन लोगों ने मेरा भाग मार लिया है।"

"कितना रुपया मार लिया ?"

"मेरा क़रीब डेढ़ लाख रुपया बाकी पड़ा है, वापस नहीं मिलता। मुझे मालूम है वह अब नहीं मिलेगा।"

कुन्ती गुहा के वकील ने अचानक प्वाइंट ऑफ़ ऑर्डर उठाया। सारे कोर्ट में सन्नाटा छा गया था। कुन्ती गुहा पत्थर की बुत बनी खड़ी थी।

वह अब भी वैसे ही खड़ी थी। उसके भावों में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। एक दिन वह इसी कलकत्ता को जीतने का बीड़ा उठाकर बाज़ार में आयी थी। उसकी वह जीतने की इच्छा जैसे आज पूरी हुई। अब बतला देने का समय हो चुका है। मैं क़सूरवार ज़रूर हूँ, लेकिन मेरे इस क़सूर के लिए क़सूरवार तुम सब हो! मैं तुम लोगों से अलग नहीं हूँ। कलकत्ता शहर में तुम लोगों ने अलिफ़-लैला के जिस किस्से की रचना की है, वह मेरे, श्यामली और वन्दना के हाड़-माँस और चर्बी से तैयार हुआ है। तुम लोगों की स्वस्थता के लिए ब्लड-बैंक में हम लोगों का ही ख़ून जमा है। लग जाय पता। सभी को पता लग जाय कि मैं अकेली नहीं हूँ। मुझ-जैसों को आगे करके यहाँ पर कितने ही मुझसे भी ज़्यादा कसूरवार आदमी मौजूद हैं। मैंने सिर्फ़ एक एसिड-बल्ब फेंककर एक इन्सान की जान ले ली है। और तुम लोग रात-दिन लाखों एसिड-बल्ब फेंककर लाखों इन्सानों की जानें ले रहे हो। फिर भी तुम फरियादी और मैं मुजरिम!

"तुम्हें तो पता है कि मुजरिम अपने को बेकसूर कह रही है?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "पता है।"

"तुम्हें मालूम है, एसिड-बल्ब कहाँ बनाये जाते हैं? कौन बनाता है?"

"नहीं!"

"तुम्हें मालूम है कि फरियादियों के मुख्य गवाह सदाव्रत गुप्त का मुजरिम के साथ कोई रिश्ता था या नहीं?"

"नहीं!"

"तुम्हें मालूम है कि फरियादियों का मुख्य गवाह सदाव्रत गुप्त कभी पद्मरानी के फ़्लैट में गया था या नहीं?"

"मैं यह कैसे बतला सकती हूँ?"

"तब इतने लोगों के रहते मुख्य गवाह के साथ जिस लड़की की शादी तय हो चुकी थी, उसका ख़ून करने के पीछे क्या कारण हो सकता है?"

"मुझे तो यह भी पता नहीं कि मुजरिम ने ही मारा है। ऐसा होने पर शायद कारण पता लगता।"

"तुम्हारे खयाल से क्या मुजरिम बेकसूर है? उसने एसिड-बल्ब नहीं फेंका?"

"मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। मुझे सिर्फ़ इतना मालूम है कि मुजरिम का कहना है कि वह बेकसूर है।"

"लेकिन जो लोग मुजरिम की तरह गिरे चरित्र के हैं, जो पैसे के लिए

अपनी देह भी बेच डालते हैं, उन लोगों के लिए ऐसे जुर्म करना क्या मुश्किल काम है ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "मुझे मालूम है, किसी भी आदमी के लिए कोई भी जुर्म करना मुश्किल नहीं है। इतने दिन धन्धा चलाने के बाद मैं इसी निश्चय पर पहुँची हूँ।"

"लेकिन क्या बंगाल के नारी-समाज ने इतने नीच काम के लिए मुजरिम को धिक्कारा नहीं ?"

"मुजरिम कौन है, पहले तो यही ठीक करिये !"

"उस मुजरिम को ढूंढ निकालने के लिए ही हम लोग यहाँ आये हैं।"

सुन्दरियाबाई ज़रा देर के लिए रुकी। फिर बोली, "आप लोग चाहे जितनी ही कोशिश करें, असली मुजरिम को नहीं पकड़ पायेंगे।"

स्टैंडिंग-कौंसिल ने साथ-ही-साथ पूछा, "क्यों ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "असली मुजरिम बहुत ही चालाक और बुद्धिमान आदमी है।"

"कौन है वह ? उसका नाम क्या है ?"

सुन्दरियाबाई जैसे कुछ कहते-कहते हिचक रही थी।

"बोलो, क्या है उसका नाम ?"

सुन्दरियाबाई ने कहा, "उसका नाम है शिवप्रसाद गुप्त।"

"तुम कहती क्या हो ?"

सुन्दरियाबाई का चेहरा पत्थर की तरह कठोर और भावहीन हो गया था।

"हाँ, ठीक ही कह रही हूँ। नाम सुन रखिये। उनका नाम शिवप्रसाद गुप्त है। पद्मरानी के फ़्लैट के असली मालिक वही हैं। उनका बँगला, गाड़ी, ज़मीन का धन्धा, कांग्रेस, दिल्ली, खद्दर, इस सबके पीछे पद्मरानी का फ़्लैट ही है।"

अचानक जैसे पूरे हाईकोर्ट में सन्नाटा छा गया। हाईकोर्ट में उन लोगों के अलावा और भी जितनी अदृश्य आत्माएँ फैसला सुनने के लिए आयी थीं, चौंक उठीं। वॉरेन हेस्टिंग्स, महाराज नन्दकुमार, महात्मा गांधी, देशबन्धु, अबुल क़लाम आज़ाद, सुभाषचन्द्र बोस, खुदीराम और गोपीनाथ—सभी आर्तनाद कर उठे। इंडिया के सारे लोगों की सारी कोशिशें, सारी चिन्ताएँ १९६२ के आते ही रातोंरात धूल में मिल गयीं।

□ □ □

आदमी के मन की बात जहाँ दूसरे की इच्छा पर छाना चाहती है, दूसरे के भरोसे रहती है, तब उस बात का अपना निजी अस्तित्व नहीं रहता। तब वह पराधीन हो जाती है। इतने दिन तक सदाव्रत के साथ भी यही बात थी। ऊपर से उसे लगता कि वह आज़ाद है। अपनी मर्ज़ी के मुताबिक वह जो चाहे कर सकता है। वह अपने को जो सोचता है, वही है। वह चाहता था सभी का भला हो। वह चाहता था कि कलकत्ता के सारे लोगों को भरपेट खाना मिले। वह चाहता था इन्सान-इन्सान के बीच आपस में कोई फ़र्क न हो। जिस तरह वह सभी का अपना होना चाहता है, दूसरे भी ठीक उसी तरह उसके हों। लेकिन शायद उसे पता नहीं था कि उसका यह चाहना ही झूठ है, उसकी यह इच्छा बनावटी है। उसे यह भी मालूम नहीं था कि इस इच्छा के पीछे और भी कितने ही लोगों की इच्छाएँ काम कर रही हैं। जब वह अपने को आज़ाद कहता था तब वह सचमुच दूसरों का गुलाम था। उसे इस बात का आभास ही नहीं हुआ। उसे इतने दिन बाद जैसे होश आया।

कितनी बार उसने विनय को उपदेश दिये, शंभू से भी बहुत-कुछ कहा। मन्मथ, शैल सभी को उसने अपनी इच्छा का गुलाम बनाना चाहा। कलकत्ता ही क्यों, सारे इंडिया को ही उसने अपने मन के मुताबिक बनाना चाहा।

सदाव्रत बचपन से ही कहता आया है—जिस रास्ते से सभी गुज़र रहे हैं, वह ग़लत है। मेरा रास्ता ही ठीक है। साथ ही पिताजी का रास्ता ही ठीक है। मेरे मास्टर साहब केदार बाबू का रास्ता ही ठीक है। दुनिया के सारे इन्सानों की इच्छा को हम लोगों की इच्छा के साथ मिलाना होगा, तभी सबका फ़ायदा है। इसी में सबकी भलाई है।

लेकिन आज पता लगा कि उसका सोचना ग़लत है। उसकी इतने दिन की सारी कोशिशें बेकार गयीं। वह ख़ुद भी जैसे झूठ है, बनावटी है।

शाम होते-होते कोर्ट खाली हो गया था। लेकिन कोई उसे देखे, इससे पहले ही सदाव्रत सड़क पर निकल आया। हज़ारों-लाखों आदमियों की भीड़ थी। सदाव्रत को उस भीड़ में खो जाना अच्छा लग रहा था। जो भीड़ उसे पहचानती नहीं है, जो भीड़ उसे मानती नहीं है, वही भीड़। उसी भीड़ में अपने-आपको छिपाकर जैसे सदाव्रत ने अपनी जान बचायी।

"अरे, वह देखो, शिवप्रसाद गुप्त का लड़का !"

"अरे, वह भागा जा रहा है! पकड़ो उसे !"

सदाव्रत को लगा जैसे सारा कलकत्ता उसका पीछा कर रहा है। सारा भारत, सारी दुनिया जैसे उसके पीछे दौड़ रही थी। सदाव्रत ने अपनी गाड़ी का ऐक्सीलेटर और भी ज़ोर से दबा दिया। और स्पीड। और तेज़ी। और भी जल्दी।

ज़रा-सी देर में जैसे पूरा कलकत्ता ज़हर हो गया था। तब वह कौन है ? उसके अस्तित्व का आखिरी छोर कहाँ है ? वह क्या उस पद्मरानी के फ़्लैट की कमाई में पली सन्तान है ? उसकी ज़िन्दगी के हर दिन में, हर सेकंड में, उसकी नस-नस में पद्मरानी के फ़्लैट का ज़हर क्या इस तरह मिला हुआ है ? यह गुलाबी, यह दुलारी, यह वासन्ती, यह कुन्ती गुहा, टगर और पद्मरानी। जिन-जिन ने कोर्ट में गवाही दी है, जिन्होंने कलकत्ता के लोगों की भीतरी बातों का पर्दाफ़ाश किया है, सदाव्रत के बनाने में भी क्या उन्हीं लोगों का हाथ है ? उन्होंने ही क्या अपने पाप और अभिशाप से उसे बनाया है ? जिनके ख़िलाफ़ उसे शिकायत है, वे ही लोग क्या उसे इतने दिन से पाल रहे हैं ?

अदालत में सुन्दरियाबाई का जवाब सुनते ही सब-के-सब जैसे सन्नाटे में आ गये। सिर्फ़ सदाव्रत ही क्यों ? सारे कलकत्ता के लोग उस दिन मौजूद थे। इतने दिन से वे लोग कलेजा थामे इस बात की राह देख रहे थे, आख़िर मामला पहुँचता कहाँ है ? कितनी दूर जाता है ? कलकत्ता के किस बड़े आदमी के 'स्लीपिंग रूम' में जाकर रुकता है ! आखिर में उन्हें मिला भी वही। खुश भी हुए। खुश हुए और हैरान भी हुए।

सदाव्रत ने गाड़ी की स्पीड और भी बढ़ा दी।

सारा कलकत्ता, सारा इंडिया, सारी दुनिया और सारी सभ्यता को छोड़कर सदाव्रत विनाश की ओर बढ़ने लगा। शायद अपने छुटकारे के लिए बढ़ने लगा। हो सकता है, अपने मन की गहराई की ओर बढ़ रहा था। हाईकोर्ट का इलाका पार कर गाड़ी हैस्टिंग्स स्ट्रीट पर दौड़ने लगी। हैस्टिंग्स स्ट्रीट पार कर बहूबाजार, फिर कॉलेज स्ट्रीट। दायीं ओर ही शंभू वगैरह का क्लब है। आज वहाँ पर गर्मागर्म बहस छिड़ेगी।

शंभू के दुलाल दा की आवाज़ भारी होगी। कहेगा, "तुम लोगों से मैंने कहा था न !"

क्या कहा था, किसी को इसकी याद नहीं दिलानी होगी। सभी को मालूम हो जायेगा। शंभू का दोस्त सदाव्रत उनसे भी नीचे दर्जे का लड़का है। सभी को पता लगेगा कि खद्दर और अपनी देश-सेवा के पीछे शिवप्रसाद

गुप्त एक और भी धन्धा चला रहे हैं। सभी को पता लगेगा, सदाव्रत की गाड़ी, उसकी पढ़ाई-लिखाई, हर चीज़ के पीछे कुछ लड़कियों के पाप की कमाई है। शिवप्रसाद गुप्त की सारी शान कुछ वेश्या-लड़कियों की जमा-पूँजी है।

अचानक सुनायी दिया, कोई ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था।

सदाव्रत ने गाड़ी रोक दी। किस चीज़ की आवाज़ है ? क्या हुआ ?

"लड़ाई शुरू हो गयी !"

सदाव्रत चौंक उठा। कैसी लड़ाई ? किस बात की ?

अकेला सदाव्रत ही नहीं, और भी बहुत-से लोग हॉकर के ऊपर टूट पड़े। अनपढ़ आदमी। १९३९ में भी एक बार वह इसी तरह चिल्लाया था। लड़ाई की ख़बर बेचकर रातों-रात बहुत-सा रुपया कमा लिया था। इसके बाद बरसों रुपये का मुँह नहीं देखा। काफ़ी अरसे से राह देख रहा था, कब लड़ाई छिड़ेगी ? लड़ाई फिर से कब शुरू होगी ? लड़ाई हो तो चार पैसे कमा ले।

"लड़ाई शुरू हो गयी !"

अख़बारवाला गले की पूरी ताक़त से चिल्ला रहा था। सिर्फ़ एक ही नहीं, हर मुहल्ले, हर मोड़, हर नुक्कड़ पर अख़बारवाले चिल्ला रहे थे। काफ़ी दिनों बाद मौक़ा मिला है। पिछली लड़ाई में जो लोग फ़ायदा नहीं उठा पाये थे, अब उनका नम्बर था। कुछ भी खरीदकर रख लो। क़ीमतें बढ़ जाने पर कुछ दिन बाद बेच देना। ख़ूब प्रॉफ़िट होगा।

सारे शहर में एक ही बात। फिर लड़ाई ! फिर सायरन बजेंगे ! बम गिरेंगे ! फिर से ए० आर० पी०, सिविक-गार्ड ! फिर से चावल का भाव चढ़ेगा। अकाल पड़ेगा। सब-कुछ वैसा ही होगा जैसा १९३९ में हुआ था।

हर मोड़ पर लोगों की भीड़ जमा थी। देश की गम्भीर स्थिति पर विचार कर रही थी। अब क्या होगा ? सचमुच क्या फिर से लड़ाई शुरू हो गयी है ?

गाड़ी रोककर सदाव्रत ने अख़बार खरीदा।

अब की यूरोप नहीं, अब की एशिया का नम्बर है। यूरोप के लोगों के घाव अभी सूखे भी नहीं हैं। वे लोग शायद आज भी मन-ही-मन डरते हैं। लेकिन हम ? हम लोगों की समझ में नहीं आया। हमने सिर्फ़ अकाल देखे हैं, हम लोगों ने सिर्फ़ साम्प्रदायिक दंगे देखे हैं। हम लोगों को सिर्फ़ इतना

ही पता है कि लड़ाई शुरू होने पर चीज़ों की क़ीमतें बढ़ती हैं। लेकिन उन लोगों को पता है कि लड़ाई के माने ही मौत है। उन्हें पता है लड़ाई के माने विनाश !

सदाव्रत गाड़ी के अन्दर बैठा-बैठा ही पढ़ने लगा। पूरे पचास डिवीज़न सिपाही अचानक इंडिया के वॉर्डर-गार्डों के ऊपर रातों-रात टूट पड़े हैं। नेफा, लद्दाख, पूर्वी-पश्चिमी सीमान्त के पूरे इलाके पर चाइना ने एक साथ हमला किया है।

पढ़ते-पढ़ते सदाव्रत के मन को न जाने कैसी एक तसल्ली-सी मिली। मन के अन्दर जितना भी दुःख, क्षोभ और जितनी जलन भरी थी, धीरे-धीरे ठंडी पड़ रही थी। तभी उसने वाहर सड़क की ओर देखा। भीड़ अभी छटी नहीं थी। झुंड-के-झुंड लोग अभी तक भयभीत हुए बातें कर रहे थे। वस-ट्राम, हर चीज़ जैसे किसी के इशारे पर रुक गये थे। यह तो कोई ज्यादा दूर नहीं है। यह तो बर्मा नहीं है, ईजिप्ट भी नहीं है। बर्लिन, लेनिनग्राद, पैरिस या लन्दन का मामला नहीं है। यह तो एकदम दरवाज़े पर है। आसाम ! नेफ़ा से आसाम आने में देर ही कितनी लगती है ? कुछ पहाड़ियों की ही तो बात है। पहाड़ियाँ पार कर तेजपुर और फिर आसाम। सदाव्रत ने गाड़ी को घर की ओर घुमा लिया।

केदार बाबू की याद आयी। शैल और मन्मथ की याद आयी।

केदार बाबू से वायदा कर आया था कि कोर्ट से लौटते समय मिलता हुआ जायेगा। लेकिन···! लेकिन जैसे सोचने में भी शर्म आ रही थी। किस मुँह से जायेगा वहाँ ! क्या कहेगा ? उन लोगों के सामने कौन-सा मुँह लेकर खड़ा होगा ? अगर कोई पूछ बैठे ? अगर कोई उसकी अवहेलना कर दे ? खबर तो अब तक ज़रूर ही पहुँच चुकी होगी। सब लोगों को पता लग चुका होगा।

शशिपद बाबू उसे देखकर कुछ न भी कहें, लेकिन मास्टर साहब ? वह मास्टर साहब के सामने नजर कैसे उठायेगा ? केदार बाबू शायद सीधे पूछ बैठें, 'क्यों, जो सुन रहा हूँ क्या ठीक है ?'

सिर जैसे चकराने लगा था। केदार बाबू के सामने कुछ भी कह सकता है, और हो सकता है वह विश्वास भी कर लें, लेकिन ख़ुद को कैसे समझाये ?

"सदाव्रत दा !"

अचानक जैसे कलकत्ता शहर ने उसे पीछे से पुकारा।

"सदाव्रत दा !"

तब तक घर के पास आ पहुँचा था। गाड़ी रोककर सदाव्रत ने पीछे देखा। मन्मथ था।

मन्मथ दौड़ते-दौड़ते आ रहा था।

"मैं तो तुम्हारे घर से ही आ रहा हूँ। तुम नहीं थे, इसलिए वापस जा रहा था।"

सदाव्रत गूंगे की तरह मन्मथ की ओर ताकने लगा। आज जैसे जवाब देने को उसके पास कुछ भी नहीं था।

"तुमने तो कहा था, कोर्ट से हमारे यहाँ आओगे। काफ़ी देर तक जब नहीं आये तो बुलाने आया। मास्टर साहब ने मुझे भेजा है।"

"लेकिन मैं इस समय तो जा नहीं पाऊँगा।"

मन्मथ ने कहा, "मास्टर साहब तुम्हारे लिए बैठे हैं। पिताजी भी। सभी तुम्हारी राह देख रहे हैं।"

"लेकिन आख़िर क्यों ? मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा ? मेरे न जाने से क्या तुम लोगों के सारे काम रुक जायेंगे ? मुझे तुम लोग बार-बार क्यों बुलाते हो ? मैं कौन हूँ ? और मुझे क्या अपना काम-धन्धा नहीं है ? मेरे अपने झमेले नहीं हैं ?"

सदाव्रत ख़ुद भी जैसे हैरान रह गया। इतनी कड़ी बात ! मन्मथ भी हैरान था। सदाव्रत ने पहले तो कभी इस तरह का जवाब नहीं दिया।

"अच्छा तो मैं चलूँ।" कहकर मन्मथ चलने लगा।

सदाव्रत ने पुकारा, "सुनो !"

फिर मन्मथ के लौटते ही सदाव्रत ने कहा, "पता नहीं तुमने क्या सोचा होगा। लेकिन शायद तुम्हें पता नहीं है, मैं किस हालत से गुज़र रहा हूँ।"

"मुझे मालूम है।"

"तुम कितना जानते हो ! बाहरी आदमियों को क्या पता !"

"आजकल तो सभी को पता चल चुका है।"

"पता चल चुका है ?"

"अखबार में तो सभी-कुछ छप रहा है—सभी पढ़ रहे हैं, तरह-तरह की बातें कर रहे हैं।"

"क्या बातें कर रहे हैं ?"

"सभी-कुछ। कहते हैं, इन शरणार्थियों ने आकर हम लोगों का सब-

कुछ ख़राब कर दिया—थिएटर और ड्रामों के नाम पर इस तरह के सामाजिक पाप चल रहे हैं…"

"सब वाहियात बातें हैं !"

मन्मथ जैसे चौंक उठा।

"और हम लोगों का कोई कसूर नहीं है ? हम लोग जो भले आदमी कहकर अपना परिचय देते हैं ? तुम्हें पता नहीं है, इसलिए तुम उन्हें बुरा कह रहे हो। सबसे ज्यादा दोष तो ख़ुद मेरा अपना है।"

"तुम्हारा ?"

"हाँ, मेरा। कल सभी को पता लग जायेगा। सभी जानेंगे। तब कुन्ती गुहा को कोई भी दोष नहीं देगा। मुझे गाली देंगे। मन्मथ, दोष मेरा ही है। मैंने ही पाप किया है। कुन्ती गुहा का कोई कसूर नहीं है। मेरी वजह से ही मनिला बोस की ज़िन्दगी ख़राब हुई। कुन्ती गुहा का कन्विक्शन होने वाला है। उसकी बहन को सज़ा हो चुकी है। यह सब मेरी वजह से ही तो हुआ। इसकी जड़ में मैं ही तो हूँ।"

"लेकिन सदाव्रत दा, इसमें तुम्हारा क्या कसूर है, मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा ?"

"तुम वह सब नहीं समझ पाओगे। इस वक़्त मैं इससे ज़्यादा समझा भी नहीं पाऊँगा। आज मैं कोर्ट से सीधा दूसरी ओर जा रहा था, सोच रहा था घर नहीं लौटूँगा। अचानक यह अखबार देखकर इरादा बदल गया। घर की ओर चला आया।"

मन्मथ ने धीरे-धीरे कहा, "इसीलिए तो मास्टर साहब ने तुम्हें बुलाया है। मास्टर साहब समझ गये हैं कि तुम्हें ऐसा कुछ होगा।"

"क्यों, मास्टर साहब ने कुछ सुना है क्या ? कोर्ट में जो कुछ हुआ आज उन्हें पता है ?"

"ऑफ़िस से आकर पिताजी ने सब-कुछ बतलाया।"

"सब बतलाया है ? सुन्दरियाबाई ने क्या-क्या कहा, सब-कुछ बतलाया है ? सुन्दरियाबाई ने किसका नाम लिया, उन्हें वह भी मालूम है ?"

"हाँ !"

सदाव्रत चीख पड़ा, "इस पर भी मुझे बुलाने का मतलब ? मेरा अपमान करने के लिए ? मुझे बुरा-भला कहने के लिए ?"

मन्मथ ने इतना ही कहा, "छिः, सदाव्रत दा, तुम क्या कह रहे हो ?"

सदाव्रत फिर भी नहीं रुका।

"सब सुनकर भी उन्होंने मुझे क्यों बुलाया ? इस ज़िन्दगी में क्या कभी उन्हें मुँह दिखला पाऊँगा ? मैं क्या अब किसी से कह सकता हूँ कि मैं केदार बाबू का विद्यार्थी हूँ ? मास्टर साहब को मेरे ऊपर बड़ा घमण्ड था। आज उस घमण्ड को, उस गर्व को मैंने चूर-चूर कर दिया है।"

"ये सब बातें तुम मुझसे क्यों कह रहे हो, सदाव्रत दा ?"

सदाव्रत कहता रहा, "मन्मथ, तुम जाओ ! तुम्हें मैं ठीक से समझा नहीं पा रहा। तुम जाकर मास्टर साहब से कह दो, सदाव्रत मर गया है। अब कभी भी वह मास्टर साहब को अपनी शक्ल नहीं दिखलायेगा। मैंने उनका मुँह काला कर दिया है।"

अचानक बद्रीनाथ आ पहुँचा। घर के अन्दर ही से उसने छोटे बाबू की गाड़ी देख ली थी।

"छोटे बाबू, बाबू आ गये हैं !"

सुनकर सदाव्रत जैसे चौंक पड़ा। वह यह भी भूल गया कि मन्मथ सामने खड़ा है। जल्दी से गाड़ी स्टार्ट कर घर के सामने आ रुका।

□ □ □

१९६२ के वे दिन। ठीक पूजा के बाद। चारों ओर की आबहवा में इंडिया ने जैसे अपने को भुला दिया था। शंभू वगैरह ड्रामा-थिएटर में मशगूल हैं। विनय जैसे सूट-टाई और शर्ट में निश्चिन्त है। मिस्टर बोस डालर कमाने के लिए परमिट की कोशिश में लगे हैं, केदार बाबू मनुष्य-जाति का पतन संशय की निगाहों से देख रहे हैं। पैंशन-होल्डर्स अपने डियरनेस-एलाउंस के लिए परेशान हैं, और जो लोग वी० आई० पी० के नाम से जाने जाते हैं, वे हर महीने किसी फॉरेन-डेलीगेशन में जाने का बहाना ढूँढ रहे हैं। कभी खाद्य-समस्या पर, कभी मनुष्य-जाति की भलाई के लिए सभाएँ हो रही हैं, गर्मागर्म भाषणों से अखबारों की बिक्री बढ़ रही है। स्कूल-कॉलेज की परीक्षाओं में बेइन्साफ़ी और मनमानी हो रही है। साथ-ही-साथ एक नयी 'क्लास' का उदय हुआ है। वह है 'न्यू क्लास'। अब तक उसका कोई भी अस्तित्व नहीं था। कोई उन्हें जानता नहीं था। इतने दिन वे लोग मोटा खाकर, मोटा पहनकर देश-सेवा कर रहे थे। अब उन लोगों ने बँगले बनवा लिये हैं। गाड़ी खरीद ली है। बिना 'एयर-कंडीशन्ड' कमरे के उन्हें नींद नहीं आती। आज वे लोग वी० आई० पी० कहलाते हैं। इस 'न्यू क्लास' की सहायता के बिना किसी को परमिट नहीं मिल सकता। बिना इसकी सहायता से नौकरी, धन्धा, इंडस्ट्री, फैक्टरी कुछ भी नहीं हो

सकता। जबकि इनकी बेशुमार इन्कम कहाँ से होती है, कहाँ से इनके ठाट-बाट के लिए गाड़ी-बँगला, रेफ्रिजरेटर, रेडियोग्राम आता है, कोई नहीं जानता।

ऐसी ही हालत में एक दिन सभी ने अखबार में पढ़ा, पूर्वी और पश्चिमी सीमा पर चाइना की पचास डिवीज़न फौजों ने इंडिया के बॉर्डर-गार्डों पर हमला कर दिया है। वार। लड़ाई। युद्ध।

दिल्ली से पंडित नेहरू ने लेक्चर दिया—"ह्वाट द चाइनीज़ मे हैव इन माइण्ड इज़ एनिबाडी'ज़ गेस। वी आर एट द क्रॉस रोड्स ऑफ़ हिस्ट्री एण्ड आर फ़ेसिंग ग्रेट हिस्टॉरिकल प्रॉब्लम्स ऑन ह्विच डिपेण्ड्स अवर फ़्यूचर। वी हैव टु बी बिग इन माइण्ड, बिग इन विज़न एण्ड बिग इन डिटर्मिनेशन।"

सदाव्रत के मन में भी उस दिन यही बात आयी। हम लोग काफ़ी छोटे हो गये थे। हम लोग बहुत-सी छोटी-छोटी बातों में मशगूल हो गये थे। उसके मन में यह बात काफ़ी दिन पहले आयी थी। उसे लगता था शंभू ने अपने ध्येय को बहुत ही छोटा बना रखा है। विनय कितनी छोटी-सी चीज़ में अपने को भूला हुआ है!

सदाव्रत के पैदा होने से पहले एक दिन ऐसा भी था जब भारत के लोगों के दिन इस तरह से नहीं कटते थे। उस समय सामने एक महान् आदर्श था। भारत के लोग ही तब इंग्लैंड और अमेरिका जाते। चाइना, जापान, जावा और सुमात्रा गये। वह जाना था राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और रवीन्द्रनाथ ठाकुर का। वह रासबिहारी बोस, सावरकर और महात्मा गांधी का जाना था—सुभाष बोस का जाना था। आजकल की तरह स्टेट गेस्ट या स्टेट डेलीगेशन होकर जाना नहीं था।

यह जैसे अच्छा ही हुआ।

शिवप्रसाद गुप्त का भी यही कहना था। चाइना के मामले पर इंडिया के सारे लोग जब पंडित नेहरू की ओर आस लगाये बैठे थे, तब शिवप्रसाद गुप्त का कहना था—यह अच्छा ही हुआ।

मिस्टर बोस ने उस ओर से टेलीफ़ोन पर कहा, "आपने कोर्ट की प्रोसीडिंग्स सुनीं क्या?"

"नहीं!"

"पता है सुन्दरियाबाई ने क्या कहा है? सुन्दरियाबाई कौन है? आप उसे जानते हैं? यू नो हर?"

शिवप्रसाद बाबू हैरान रह गये। "कौन ? किसकी बात कर रहे हैं ?"

"सुन्दरियाबाई ! आप उसे जानते हैं ?"

"सुन्दरियाबाई ?"

शिवप्रसाद बाबू सोचकर याद करने की कोशिश करने लगे।

फिर बोले, "नहीं तो !"

"लेकिन उसने तो आपके ऊपर एलिगेशन लगाया है कि आप ही पद्मरानी के फ़्लैट के ओनर हैं ? आप ही उसके मालिक हैं ?"

"पद्मरानी का फ़्लैट ? इसके माने ? यह क्या बला है ?"

मिस्टर बोस ने कहा, "आपको नहीं मालूम ? वह एक ब्रोथल है ! वहीं की एक लड़की ने मनिला के ऊपर एसिड-बल्ब फेंका था !"

"ब्रोथल ? यानी वेश्याओं का चकला ? आप कह क्या रहे हैं ? मैं एक चकले का मालिक क्यों होने लगा ?"

"ट्रू ! मैं भी यही सोच रहा था। ह्वाट ए सिली थिंग ! आप ब्रोथल के ओनर क्यों होने लगे ? देखिए न पॉलिटिक्स कितनी गन्दी चीज़ है !"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "लेकिन इन बातों से डरने से तो काम नहीं चलेगा, मिस्टर बोस! इस तरह की बदनामियाँ हमारे सिर पर हमेशा रहेंगी, जब तक हम लोग सिंसियरली देश का काम करेंगे, यह सब होगा ही ! देखा नहीं, कृष्णमेनन को किस तरह कैबिनेट छोड़नी पड़ी ? उस पर कितने एलिगेशन्स थोपे गये ! लेकिन किया भी क्या जाये ! इन बातों के लिए देश का, अपनी कन्ट्री का काम तो नहीं छोड़ सकता।"

फिर ज़रा रुककर बोले, "मनिला का क्या हाल है ?"

"वही हाल है !"

"पुअर गर्ल ! रियली पुअर !"

इसके बाद चाइना की बात उठी। देश के बुरे दिन चल रहे हैं। चाइना के साथ इतनी दोस्ती बढ़ाकर नेहरूजी ने अच्छा नहीं किया। दिल्ली में मैं तो इसी झमेले में फँसा था। जनरल चौधरी को बुलाया गया है। लगता है, चीफ़ ऑफ़ द आर्मी स्टाफ़ उसे ही बनाया जायेगा। पूरी कैबिनेट नर्वस हो गयी है। एक्सटर्नल अफेयर्स मिनिस्ट्री काफ़ी व्यस्त है। दुनिया की सारी पॉवर्स के पास चिट्ठी चली गयी है। नेहरू ने सभी को लिखा है। चाइनीज़ फौजें लोहित डिवीज़न तक आ पहुँची हैं। अब की लगता है, बोमदीला उन लोगों के हाथ में जायेगा।

मिस्टर बोस ने पूछा, "आप सदाव्रत से मिले हैं ?"

शिवप्रसाद बाबू—"नहीं। वह घर में नहीं है।"

"तब गया कहाँ ? कोर्ट से सीधे यहाँ आने की बात थी, अभी तक नहीं आया।"

"शायद पी० जी० हॉस्पिटल गया होगा ?"

"नहीं, वहाँ भी नहीं गया। मैं तो वहीं से आ रहा हूँ।"

तभी बद्रीनाथ ने आकर कहा, "छोटे बाबू आ गये।"

शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "अरे सुनिये, सदाव्रत आ गया। मैं ज़रा उससे बात करूँ। आपको फिर टेलीफ़ोन करूँगा। छोड़ रहा हूँ।"

□ □ □

उस दिन भी हियरिंग थी। कलकत्ता के हर कोने के लोग जैसे बेचैन हो उठे थे। मामला कहाँ से कहाँ पहुँच गया था। किसी की समझ में ही नहीं आ रहा था। हर मुहल्ले में एक ही बात। वैसे आजकल चर्चा का एक यही विषय नहीं था। इतने दिन सोने के बाद इंडिया के लोग जैसे हड़बड़ाकर जाग उठे थे। अब तक उन लोगों को पता नहीं था कि वे कहाँ खड़े हैं, उनके पैरों के नीचे क्या है, वे लोग कहाँ साँस ले रहे हैं, वे लोग किसके भरोसे ज़िन्दा हैं। लेकिन आज पता लग गया है। अब की बार पहाड़ और पर्वत पार कर एक कलंक ने उनके अतीत के गौरव को कलुपित कर दिया है।

सब लोग चन्दा दे रहे हैं।

सिर्फ़ चन्दा ही नहीं, ख़ून भी चाहिए। सोना, रुपया, चन्दा, कपड़े, तुम्हारे पास अपना कहने को जो कुछ भी है, सब दो। यह संकट सभी का है। यह अकेली कुन्ती गुहा का कलंक नहीं है। यह अकेली मनिला बोस की अकाल मृत्यु नहीं है। यह सिर्फ़ मिस्टर बोस का दुःख नहीं है। यह संकट सभी का है। आज सभी कठघरे में खड़े अपराधी हैं। हर किसी को कहना होगा—मैं बेकसूर हूँ। हर किसी को न्यायाधीश महोदय के सामने हाज़िर होना पड़ेगा। बतलाना होगा कि उसने कोई कसूर किया है या नहीं। दुनिया में अगर किसी पर तुमने अत्याचार किया हो, तो वह भी बतला दो। यह भी शपथ खाकर कह दो कि तुमने कभी स्वप्न में भी अपने देश की अनिष्ट-कामना नहीं की है। तुमने अपने देशवासियों, अपने पड़ोसियों की अनिष्ट-कामना की है या नहीं। अपने स्वार्थ के लिए अगर किसी के स्वार्थ पर चोट की हो तो आज तुम्हें उसका पश्चात्ताप करना ही होगा।

भारतीय गणतन्त्र की संसद् में प्रस्ताव पास हुआ—दिस हाऊस नोट्स

विद डीप ग्रेटिच्यूड दिस माइटी अपसर्ज अमंग्स्ट ऑल सेक्शन्स ऑफ़ अवर पीपुल फॉर हार्नेसिंग ऑल अवर रिसोर्सेज टुवर्ड्स द ऑर्गनाइज़ेशन ऑफ़ एन ऑल आऊट एफ़र्ट टु मीट दिस ग्रेव नेशनल इमर्जेन्सी। द फ़्लेम ऑफ़ लिबर्टी एण्ड सैक्रिफाइस हैज़ बीन किंडल्ड ए न्यू एण्ड ए फ्रैश डेडिकेशन हैज़ टेकन प्लेस टु द कॉज़ ऑफ इंडियन फ्रीडम एण्ड इन्टेग्रिटी।

केदार बाबू उस दिन अपने को नहीं रोक पाये। घर से सीधे सदाव्रत के पास चले आये।

बोले, "सदाव्रत, तुमने सुना कुछ?"

सदाव्रत सारी रात सो नहीं पाया। वह किस पर विश्वास करे? आज जैसे उसका अपना घर, आश्रय मिट चुका था।

शिवप्रसाद ने उसे बुलाया था। सदाव्रत जाकर चुपचाप सिर नीचा किये खड़ा हो गया था। बचपन से जिन शिवप्रसाद गुप्त को देखता आया है, आज वही जैसे दुबारा नये सिरे से सीख दे रहे थे। इतने दिनों वह कलकत्ता में नहीं थे। इसी बीच यह सब हो गया। उन्हें क्या एक काम रहता है? पूरे भारत की आज़ादी को इस वक़्त ख़तरा है। इस समय इन छोटी-छोटी घरेलू बातों में फँसे रहना बड़ी शर्म की बात होगी। नेफ़ा में जब हमारे जवान आज़ादी के लिए मर रहे हैं, उस वक़्त किसके घर में आग लगी, किसने किसकी जेब काट ली, इन बातों को लेकर सदाव्रत इतना परेशान क्यों है! मनिला बोस का एक्सिडेंट, इंडिया के इस एक्सिडेंट के सामने न के बराबर है।

सदाव्रत ने पूछा, "लेकिन सुन्दरियाबाई ने जो एलिगेशन्स लगाये हैं, उसके बाद मैं मुँह भी नहीं खोल सकता।"

"लेकिन तुमसे मुँह खोलने को कहा किसने है?"

"मेरे मुँह न खोलने पर मुजरिम रिहा हो जायेगा। कुन्ती गुहा को सज़ा तो मिलनी ही चाहिए!"

"सज़ा देनेवाले तुम कौन हो?"

"और कौन होगा! मेरे ही एवीडेन्स पर उसका फाँसी होना-न-होना निर्भर करता है।"

सदाव्रत ने इससे पहले कभी पिताजी के सामने इतनी ज़ोर से कोई बात नहीं कही थी।

"झूठ! आज जो इंडिया पर चाइना अटैक कर रहा है, उसके लिए कौन ज़िम्मेदार है?"

"हम सभी !"

"तब ? तब कुन्ती गुहा को फाँसी पर चढ़ाकर अगर समाज का कुछ भला होता तो मुझे कोई आपत्ति नहीं थी ! उसे फाँसी पर चढ़ा दो न ! मुझे कुछ नहीं कहना। उससे अगर सोसाइटी का भला हो तो करो न !"

सदाव्रत की समझ में शिवप्रसाद गुप्त की बातें नहीं आ रही थीं।

रात काफ़ी गहरी हो आयी थी, फिर भी सदाव्रत को लग रहा था, इसका कोई-न-कोई रास्ता तो निकालना ही होगा।

"लेकिन, आपके अगेन्स्ट लगाये सारे एलिगेशन्स क्या झूठ हैं ?"

शिवप्रसाद बाबू मुसकराये।

बोले, "मुझे पता था, तुम एक दिन यह सवाल करोगे। ज़रा देर पहले मिस्टर बोस भी यही पूछ रहे थे। लेकिन मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ—तुमने क्या विश्वास कर लिया था कि यह सब सच है ?"

सदाव्रत क्या कहे, ठीक नहीं कर पा रहा था।

"आदमी के लिए विश्वास ही सब-कुछ है। तुम अगर उस विश्वास को खो देते हो तो इससे बड़ा डाऊनफ़ॉल दूसरा नहीं हो सकता। कल तो तुम्हारा एवीडेन्स है न ?"

"जी हाँ।"

"तब कोर्ट में तुम वही बात कहना कि इस लड़की ने ही मनिला बोस का ख़ून किया है। इसी ने मनिला बोस के ऊपर एसिड-बल्ब फेंका था।"

"लोअर-कोर्ट में तो मैंने यही कहा है।"

"और मुजरिम का कहना क्या है ?"

"कहती है, वह इनोसेंट है ! लेकिन मैंने साफ़-साफ़ देखा था, वही शक्ल ! मैं उसे पहले से जानता हूँ। वह क्लबों में नाटक करती है, यह भी मुझे पता था। लेकिन वह उस तरह की लड़की है, यह पता नहीं था।"

"इसका मतलब तुम उसे पहले से जानते थे ?"

"हाँ !"

"तब तो तुम भी कलप्रिट हो ! ख़ुद कलप्रिट होकर एक दूसरे कलप्रिट के विरुद्ध बयान देने जा रहे हो ? अपनी छाती पर हाथ रखकर कह सकते हो, तुममें कोई कमज़ोरी नहीं है ? तुममें कोई 'वीकनेस' नहीं है ? तुम बेकसूर हो ?"

पिताजी के इस सवाल पर सदाव्रत जैसे सिटपिटा गया।

"पहले ख़ुद को देखो, फिर दूसरे को ! जो आज फरियादी हैं, वे सभी

क्या देवता हैं ? सभी बेकसूर हैं ? 'लास्ट वार' के समय में जिन लोगों ने 'न्यूरेमवर्ग ट्रॉयल' का स्वाँग रचा, जिन्होंने हिटलर और मुसोलिनी का फैसला किया, जिन्होंने गोयरिंग और गोयबल्स को सज़ा सुनायी, वे सभी क्या बेकसूर हैं ?"

सदाव्रत क्या कहे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था।

"अगर कसूरवार नहीं हैं, तो आज सारी दुनिया में लड़ाई की आग क्यों भड़क रही है ? जो चीन आज भारत पर हमला कर रहा है, ब्रिटेन क्यों उसी को बम, बारूद और फाइटर प्लेन बेच रहा है ? इसका जवाब है तुम्हारे पास ?"

कहाँ की बात कहाँ आ पहुँची !

शिवप्रसाद बाबू कहने लगे, "इसका फैसला कौन करेगा ? आज जो न्याय है कल वही अन्याय साबित हो सकता है। आदमी वही है, लेकिन सौ साल पहले जो क़ानून, जो विधान ठीक था, आज वही बेठीक है। परसों जो ख़राब था, आज वही अच्छा माना जाता है। तब ?"

शिवप्रसाद बाबू ने और भी बहुत-कुछ कहा। दिमाग़ में सारी रात उनकी ही बातें घूम रही थीं।

"तब आपका कहना है, मैं झूठ बोलूँ ?"

"तुमसे झूठ बोलने को कौन कह रहा है ? तुम सब-कुछ पर से पर्दा हटा देना चाहते हो तो जो कहना है वही कहो। उससे आदमी की मर्यादा ऊपर उठती है या नहीं, तुम देखना। तुम ख़ुद समझदार हो। एक दिन ख़ुद भी फादर बनोगे। तब तुम्हारी ज़िम्मेदारी और ज़्यादा होगी। इसलिए तुम्हें क्या करना चाहिए, तुम्हीं ठीक करो। मुझसे क्यों पूछते हो ?"

सदाव्रत अचानक कहने लगा, "लेकिन मैं ? फिर मैं कहाँ जाऊँगा ? मुजरिम के बेकसूर होने की गवाही देकर मैं कहाँ जाऊँगा ?"

"क्यों ? तुम जहाँ हो वहीं रहोगे !"

"लेकिन मुझे क्या वह अधिकार होगा ? मेरे पाँवों के नीचे की ज़मीन खिसक न जायेगी ? मेरे ऊपर की छत न धँस जायेगी ?"

लड़के की ओर हैरान नज़रों से देखते शिवप्रसाद बाबू ने कहा, "तुम कह क्या रहे हो ?"

"मैं सिर ऊँचा किये कैसे रह पाऊँगा ? इन्सान की ओर निगाह उठाकर कैसे देखूँगा ? किस बूते पर दुनिया की धरती पर घूमूँगा ?"

शिवप्रसाद बाबू को और भी अजीब लगा।

"क्यों ? जैसे घूम रहे हो, जैसे मैं घूम रहा हूँ, तुम भी घूमना ।"

"लेकिन अपने-आपको क्या कहकर समझाऊँगा ?"

"जिस तरह सब लोग अपने को समझाते हैं ! तुम क्या दुनिया से अलग हो ? तुमसे पहले कोई पैदा नहीं हुआ ? कोई ज़िन्दा नहीं रहा ? मैं ज़िन्दा नहीं हूँ ? पंडित नेहरू ज़िन्दा नहीं हैं ?"

"इसके माने आप मानते हैं सुन्दरियाबाई ने जो कुछ कहा ठीक है ?"

अचानक टेलीफ़ोन की आवाज़ सुनकर शिवप्रसाद बाबू ने रिसीवर उठा लिया । इसके बाद ही शुरू हो गया चाइना, अमेरिका, सोवियत रूस और यू० के० । डिफेंस बोंड और गोल्ड कंट्रोल ऑर्डर के बीच सदाव्रत का सवाल कहाँ उड़ गया, कुछ पता नहीं चला ।

रात को एक बार मन्दा कमरे में आयी थी । पूछ रही थी, सदाव्रत ने खाना क्यों नहीं खाया ? सारी रात दिमाग़ में पिताजी की बातें चक्कर काटती रहीं । सुबह के वक़्त हल्की-सी नींद आयी । और तभी आ पहुँचे केदार बाबू ।

केदार बाबू को देखकर सदाव्रत क्या कहे, कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था । वह नहीं चाहता था कि केदार बाबू से उसकी मुलाक़ात हो । उठते ही वह इस घर से भाग जाना चाहता था । लेकिन अब केदार बाबू से बिना मिले चारा नहीं था ।

केदार बाबू ने पूछा, "सदाव्रत, सुना न ?"

सदाव्रत पहले तो समझ ही नहीं पाया ।

पूछा, "क्या ?"

"चाइना और भी बढ़ आया है । एकदम बोमदीला के पास ?"

सदाव्रत के कुछ कहने से पहले ही केदार बाबू कहने लगे, "मैंने कहा था न, कुछ-न-कुछ होगा ही । इस तरह नहीं चलेगा ।"

सदाव्रत ने कोई जवाब नहीं दिया ।

केदार बाबू कहते रहे, "आदमी अगर इतना गिरेगा तो उसका कुछ-न-कुछ प्रायश्चित्त तो होना ही चाहिए । तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

सदाव्रत फिर भी चुप रहा ।

"तुम्हें क्या हुआ है ? तबीयत तो ठीक है ?"

"नहीं, मास्टर साहब ! आज मुझे कोर्ट ज़रा जल्दी जाना है । मुझे गवाह के कठघरे में खड़ा होना होगा । आज मेरा आखिरी दिन है ।"

"लेकिन तुम उस दिन तो नहीं आये ? तुमने शैल से वायदा किया

था कि आओगे ! शैल भी तुम्हारे लिए बैठी रही। हम लोग भी काफ़ी देर तक तुम्हारे लिए बैठे रहे।"

सदाव्रत ने अचानक पूछा, "अच्छा, एक बात पूछूँ ?"

"कहो न !"

सदाव्रत ने कहा, "आदमी को जब वैराग्य होता है तो क्या लोग उसे पागल कहते हैं ?"

"क्यों ? यह बात क्यों पूछ रहे हो ?"

"कहिये न, कई दिन से यह बात सोच रहा हूँ। और किसी से पूछ भी नहीं सकता।"

सदाव्रत की बात सुनकर केदार बाबू भी जैसे हैरान रह गये। बोले, "क्यों, आख़िर क्या हुआ, तुम्हें वैराग्य हो गया है क्या ?"

"मैं आपके साथ बात नहीं कर पाऊँगा, मास्टर साहब ! मेरा मन बड़ा ख़राब हो रहा है।"

"लेकिन कोर्ट के बाद तुम आ रहे हो न ?"

"नहीं !"

"नहीं माने ?"

"नहीं माने, मैं कहाँ रहूँगा, कुछ ठीक नहीं है। मैं अगर आप लोगों से न मिल पाऊँ तो आप लोग दया करके बुरा न मानियेगा।"

"इसके माने ? कहाँ जाओगे तुम ?"

"इस समय कुछ भी नहीं कह सकता।"

"तब मन्मथ से क्या कहूँगा ? शैल से क्या कहूँगा ?"

"उनसे कहियेगा कि उन दोनों को मैंने आशीर्वाद दिया है। दूर से ही उन्हें आशीर्वाद देता हूँ।"

"मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा। तुम कह क्या रहे हो ? तुम्हारा क्या दिमाग़ ख़राब हो गया है ? लोग तो मुझे ही पागल कहते हैं।"

लेकिन सदाव्रत तब तक वहाँ नहीं था। मास्टर साहब के सामने से जाकर जैसे उसने जान बचायी।

□ □ □

पूरी अदालत में सन्नाटा छा गया था।

इसी आदमी ने उस दिन अपने इज़हार में कहा था कि उसने अपनी आँखों से मुजरिम को एसिड-बल्ब फेंकते हुए देखा था; और यही आज

दूसरी बात कह रहा है !

सदाव्रत घर से सुबह का निकला था। फिर क़रीब पाँच मिनट के लिए ऑफ़िस गया था। इतने दिन का पुराना ऑफ़िस। उसके हाथ में सारी ज़िम्मेदारी छोड़कर मिस्टर बोस निश्चिन्त हो गये थे। शायद इसके अलावा कोई चारा भी नहीं था। मिस्टर बोस की आँखों के सामने कुछ ही दिनों में इतना बड़ा कारख़ाना उठ खड़ा हुआ था। अपनी ज़िन्दगी का अधिकांश भाग उन्होंने फैक्टरी के झमेलों में ही बिताया था। फैक्टरी ख़ूब फली-फूली भी; लेकिन मिस्टर बोस को इसके लिए जो क़ीमत चुकानी हुई, वह भी कम न थी। अपनी गृहस्थी की ओर देखने का उन्हें वक़्त ही नहीं मिला। मनिला को दार्जिलिंग के बोर्डिंग स्कूल में भेज दिया था। वहाँ भेजकर ही उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी पूरी समझी। घर में थी अकेली उनकी पत्नी। बेबी। प्यार से बेबी कहकर पुकारते थे। बेबी को उन्होंने धन, दौलत, गाड़ी, घर, नौकर, आया—सभी-कुछ दिया। लेकिन बस इतना ही। बेबी अपने दिन किस तरह काटती है, क्या करती है, मिस्टर बोस को यह सब देखने की फ़ुरसत नहीं थी। उन्होंने सिर्फ़ रुपया कमाया—लाखों, करोड़ों रुपया। उसी रुपये के बूते पर बेबी और मनिला का भविष्य निर्भर करके वह निश्चिन्त थे।

सदाव्रत एक बार के लिए कुर्सी पर बैठा था।

लेकिन ज्यादा देर तक बैठना जैसे खलने लगा।

चपरासी को बुलाया। काम बतलाया। आज भी उस चपरासी को याद है, गुप्ता साहब का मुँह जैसे और भी सूख गया था।

चपरासी ने कहा था, "हुज़ूर, मैं उस दिन भी नहीं समझ पाया कि गुप्ता साहब आज के बाद फिर कभी ऑफ़िस नहीं आयेंगे।"

सिर्फ़ ऑफ़िस का चपरासी ही क्यों, कोई भी नहीं समझ पाया। यहाँ तक कि शंभू भी हर रोज़ की ख़बर रखता था। बहूबाज़ार क्लब में रोज़ सदाव्रत की बात उठती थी। उसके मुक़दमे की चर्चा होती, उसके भाग्य की बात होती। उसने भी कहा था, "पहले दिन मुझे भी मिला था। कसम से, तब भी मैं नहीं समझ पाया कि ऐसा होगा।"

कालीपद बोला, "तेरे दोस्त का दिमाग़ ख़राब हो गया था, नहीं तो कोई ऐसे जाता है।"

सच ही तो दो हज़ार रुपये की नौकरी छोड़कर जाना कोई मज़ाक है!

और शैल ?

किसी को इस बात की ख़बर नहीं थी। किसी ने शक भी नहीं किया। अच्छा-खासा स्वस्थ आदमी। अच्छा खाता, अच्छा पहनता, गाड़ी में सैर करता। उसे क्या तकलीफ़ हो सकती थी ?

इन्सान अपने-आप में मस्त रहता है। शायद इसीलिए दूसरे के मन की बात जानने से डरता है। नहीं तो इतनी छोटी-छोटी बातों को लोग इतना बड़ा क्यों मानते हैं ? नहीं तो उसे किस बात की कमी थी ? दुनिया के लोग जो चाहते हैं, उसे सभी-कुछ तो मिला था !

मन्मथ की समझ में भी मामला नहीं आया। आम लोगों के समझने की बात भी नहीं थी।

शैल सिर्फ़ ज़रा देर के लिए चुपचाप खड़ी रही थी।

इसके बाद अपने कमरे में जाकर, दरवाज़ा बन्द कर शैल ने किस देवता से प्रार्थना की, यह किसी को नहीं मालूम। हर आदमी की कितनी ही लेन-देन और हिसाब-किताब की निजी बातें होती हैं, इनकी ख़बर कौन रखता है ! ख़बर रखने की ज़रूरत भी नहीं होती।

केदार बाबू हमेशा के आशावादी मनुष्य थे। हमेशा हिस्ट्री के साथ मिलाकर इन्सान की तुलना करते। वह भी हैरान रह गये। हैं ! यह बात !

काफ़ी दिन राह देखने के बाद भी सदाव्रत नहीं आया तो केदार बाबू ने हताश हो शशिपद बाबू को बुलाया। बोले, "तो अब क्या किया जाये ?"

शशिपद बाबू भी क्या कहते !

एक आदमी बड़ी अवहेलना और तिरस्कार के बीच इस दुनिया में आया था। जन्म से ही उसे दुत्कार मिली। सिर्फ़ कुछ दिनों के लिए किसी एक ने दो मीठी बातें करके उसे हठात् होश दिला दिया। इससे ज़्यादा कुछ भी नहीं। उतने से ही उसका मन भर गया था। गर्व से छाती फटी पड़ रही थी। फिर भी जाते समय एक शब्द तक नहीं ! निन्दा के दो शब्द ! यह जैसे अपमान था ! इस अपमान की कोई तुलना नहीं हो सकती।

हालाँकि अदालत में खड़े होकर सदाव्रत इस तरह की बातें कहेगा, किसी ने सोचा भी नहीं था।

"लोअर-कोर्ट में तो आपने कहा कि मुजरिम की शक्ल की किसी को आपने एसिड-बल्ब फेंकते देखा था ?"

"हाँ, कहा था !"

"फिर इस समय यह बात क्यों कह रहे हैं ?"

"मैंने सोचकर देखा, मुजरिम की शक्ल ठीक वैसी नहीं है।"

"इसका मतलब है कि आप ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि आपने किसे देखा था ?"

"नहीं।"

"अभी भी समय है। अच्छी तरह से सोच लीजिये। आपकी गवाही पर मुजरिम कुन्ती गुहा की ज़िन्दगी और मौत निर्भर करती है। आप ही इस मामले के मुख्य गवाह हैं।"

"मैंने अच्छी तरह से सोचकर देखा है।"

"क्या सोचकर देखा है ?"

"मैंने जिसे एसिड-ब्रल्ब फेंकते देखा था, वह कोई और ही थी। और कोई औरत थी।"

"आप ठीक कह रहे हैं न ?"

"जी हाँ, बिलकुल ठीक !"

अदालत में जमा भीड़ के बीच एक गुंजन शुरू हो गया था। जो लोग इतने दिन से इस मुक़दमे में हर क़दम पर रोमांच खोज रहे थे, आज का रोमांच उन लोगों के लिए जैसे और भी चौंका देने वाला था। जैसे सारा आकाश हिलने लगा था। सारी धरती डगमगाने लगी।

हाईकोर्ट की स्टैंडिंग-कौंसिल जैसे इस बात को सुनने के लिए तैयार नहीं थी। बिना किसी नोटिस के प्रॉसीक्यूशन विटनेस ने उन लोगों को भी आज मुश्किल में डाल दिया था।

काम खत्म होते ही सदाव्रत बाहर निकल रहा था। लेकिन नहीं, जैसे कुछ और भी सुनने के लिए उसका मन हाहाकार कर उठा।

तुम सिर्फ़ एक बार कह दो कि तुमने मुझे माफ़ कर दिया है। सिर्फ़ मुझी को नहीं ? मैं, शंभू, विनय, कालीपद, शिवप्रसाद गुप्त, मिस्टर बोस, मनिला बोस, जिसने जो भी अत्याचार तुम्हारे ऊपर किये हैं, तुम उन सभी को माफ़ कर दो !

जिसके लिए यह सब कहा गया, वह शायद पत्थर की मूर्ति बनी मौत की राह देख रही थी। हर रोज़ उसे हथकड़ी पहनाकर यहाँ लाया जाता है और हर रोज़ ही उसने अपनी पत्थर की आँखों से सब-कुछ देखा है, पत्थर के कानों से सब-कुछ सुना है। फाँसी के मुजरिम के लिए शायद इससे ज़्यादा किसी चीज़ की ज़रूरत भी नहीं होती। ऑकलैंड-हाउस के उन विभूति बाबू से शुरू कर पद्मरानी के फ़्लैट के सभी जैसे उसकी ओर देखकर हँस दिये।

कैसा हुआ है ? अब क्या हाल है ? इतना घमण्ड अच्छा नहीं होता। तुम्हारे सारे घमण्ड की इस समय हम लोग पाई-पाई चुका लेंगे। एक दिन तुम्हीं ने तो पूरे कलकत्ता को खरीदना चाहा था। अपनी चौबीस साल की जवानी के सामने तुम किसी को कुछ नहीं समझती थीं ! तुम्हीं ने तो सेठ ठगनलाल के दिये पचास हजार की गड्डी ज़मीन पर फेंक दी थी ! तुम्हीं तो अपनी वहन को पद्मरानी के फ़्लैट पर लाने को तैयार नहीं थीं ! तुम्हीं ने तो शिवप्रसाद गुप्त जैसे आदमी का दिया मैडल ठुकराया था ! अब तुम्हें कौन बचायेगा ? अब तुम किससे बदला लोगी, बोलो ?

अचानक सभी ने देखा आँखों के ऊपर पलकें ज़रा हिलीं। ज़रा सिर इधर-उधर हुआ। माथे की सलवटों पर पसीने की दो-एक बूँदें दिखलायी दीं। तब क्या पत्थर के भी दिल होता है ?

□ □ □

उन दिनों के कलकत्ता की बातों का बहुतों को ध्यान भी नहीं है।

रेडियो के सामने लोगों की भीड़ जमा थी। इसके बाद चाइनीज़ आर्मी और कितना आगे बढ़ी ? तेजपुर पहुँचने में अब कितनी देर है ? वालोंग कहाँ है, बोमदीला कहाँ है और तेजपुर कहाँ है ? लेकिन जैसे सारे इंडिया के लोग घबरा गये थे। इतने दिन तक हम लोगों ने जो कुछ अन्याय किया है, सभी के सारे अन्यायों का बदला लेने का समय आ गया है।

शशिपद बाबू ऑफ़िस से आते और केदार बाबू खबर सुनने के लिए बेचैनी से उनकी राह देख रहे होते। सुबह अखबार पढ़ने से जैसे पेट नहीं भरता था। लड़कों को पढ़ाते-पढ़ाते अचानक अनमने हो जाते।

कहते, "अब ठीक हुआ है। बहुत अच्छा हुआ है।"

उस दिन सदाव्रत के यहाँ से आकर पुकारा, "शैल !"

शैल से कोई जवाब नहीं मिला।

कमरे के अन्दर आये। देखा शैल चुपचाप बैठी है।

"क्यों री, जवाब नहीं दे रही है ?"

फिर भी शैल ने जवाब नहीं दिया।

"मैं सदाव्रत के घर गया था। जानती है, वहीं से आ रहा हूँ।"

शैल ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

"क्या हुआ है तुझे ?"

पास जाकर शैल के माथे पर हाथ रखते ही नींद टूट गयी। ज़रा उनींदा-सा भाव था। जैसे नींद में ही शैल के कमरे में गये थे। शैल के माथे पर हाथ

रखा था। अब ध्यान आया, शैल और मन्मथ तो मकान देखने गये हैं। सच ही तो, कब तक यहाँ पड़े रहेंगे ? वह खुद, सारे दिन घर के बाहर घूमते रहते हैं। लेकिन शैल ? शैल के लिए भी तो सुख-सुविधा जैसी कोई चीज़ हो सकती है। निश्चिन्त होकर अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गये।

सड़क पर तब मन्मथ का बुरा हाल था।

कह रहा था, "मुझे कहाँ ले चलीं ?"

उस दिन की तरह शैल आज अकेली नहीं निकली थी। साथ में मन्मथ था। बार-बार रास्ता भूलने की तो बात नहीं है। बस में चढ़कर सीधे वहीं जाकर उतरे। फिर वहाँ से दूसरी जगह जाकर उतरे। फिर भी मन्मथ की कुछ कहने की हिम्मत नहीं थी।

"लेकिन इस तरह कब तक सड़क पर घूमती रहोगी ?"

"मैं जहाँ जाने को कहूँगी, तुम्हें वहीं जाना होगा।"

"वैसे ही तो जा रहा हूँ।"

"तब बात न करो। मैं जहाँ-जहाँ कहूँ, वहीं-वहीं चलो !"

मन्मथ को लग रहा था जैसे इस पागलपन का कोई छोर नहीं है।

कलकत्ता की सड़कों पर दोपहर की तेज़ धूप छायी हुई थी। इतने दिनों तक कलकत्ता के बन्द और घुटे कमरों में सालों काटने के बाद जैसे शैल मन्मथ से बदला ले रही थी। काफ़ी दिनों से ही मास्टर साहब का मन्मथ के घर आना-जाना है। वह हमेशा से ही उसके हुक्म की तामील करता आया है। गृहस्थी की छोटी-मोटी चीज़ें भी वही ला देता। कभी विरोध नहीं किया। बदले में कुछ चाहा भी नहीं। आज इतने दिन बाद विरोध करने पर सुनेगा भी कौन ?

मन्मथ ने पूछा, "घर लौटने पर मास्टर साहब पूछें तब क्या कहूँगा ?"

"वह तुम्हें नहीं सोचना होगा।"

"लेकिन आखिर जाना कहाँ है, यह बतलाओ ?"

"जहाँ सदाव्रत दा का मुक़दमा चल रहा है, वहाँ ले चलो।"

"वह तो हाईकोर्ट है !"

"तो क्या हुआ, मुझे वहीं ले चलो।"

"लेकिन सदाव्रत के पास बात करने की फ़ुरसत होगी ?"

"उनसे बात किसे करनी है ? मुझे तो सिर्फ एक बार वहाँ जाना है।"

बस आते ही दोनों चढ़ गये।

सदाव्रत से सिर्फ़ एक बात कहेगी, और कुछ नहीं। इन्सान की ज़िन्दगी में हेर-फेर तो होता ही रहता है। ज़िन्दगी-भर मुश्किल और अशान्ति रहती है। उस बीच अगर किसी को दो सेकंड के लिए भी शान्ति मिल जाये तो उस आदमी को भाग्यवान कहना होगा। तब दुनिया में मीठी बातों की इतनी क़ीमत क्यों है ? ख़ुश और खिले चेहरे की इतनी क़द्र क्यों की जाती है ? ज़रा-सी शान्ति के लिए इन्सान अपनी ज़िन्दगी की बाज़ी लगाने को क्यों तैयार रहता है ? शैल सिर्फ़ यही बात पूछेगी। सदाव्रत अगर जवाब देता है तो ठीक, नहीं देता है तब भी ठीक।

हाईकोर्ट में उस समय सन्नाटा छाया था।

दोनों साइड की हियरिंग हो चुकी है। सभी उत्सुकता से राह देख रहे हैं। हम सभी राह देख रहे हैं। युगों से हम लोग अपना-अपना अस्तित्व सँभाले बैठे हैं। अपनी नज़रों से परे की एक दूसरी दुनिया के बारे में अब हम लोग सुनेंगे। वह दुनिया भी इस कलकत्ता शहर का एक भाग है। हम लोग कितने छोटे हैं, हम कितने नीच हैं, कितने खराब और ओछे हैं, वह जाना जा चुका है। हम लोगों की नीचता की ही वजह से आज हमारे घर में आग लगी है। अब देखते हैं, हमें सज़ा मिलती है या नहीं। हमें छुटकारा मिलता है या नहीं।

सदाव्रत भी एक ओर बैठा था।

सदाव्रत की गवाही पर सब-कुछ निर्भर था। आज उसने अपनी बात को पलटा है। उसने कहा है कि कुन्ती गुहा बेकसूर है। उसने कुन्ती गुहा को कसूर करते नहीं देखा। उसे छोड़ दो। उसे छोड़कर मुझे भी छुट्टी दो।

अब की बार नम्बर था मुजरिम का।

हाईकोर्ट के न्यायाधीश महोदय ने पूछा, "कुन्ती गुहा, अपने ख़िलाफ़ जो-जो इलज़ाम तुमने सुने, उनके बारे में तुम्हें कुछ कहना है ?"

१६६२ का साल जैसे निस्तब्ध था।

"बोलो, तुम्हें कुछ कहना है ?"

"मैं कसूरवार हूँ।"

"तुम कसूरवार हो ? तुम अपना अपराध स्वीकार करती हो ? अब तक तो तुम अपने को बेकसूर कह रही थीं ?"

१६६२ जैसे फिर बोल उठा।

"नहीं हुज़ूर, अब मैं अपना कसूर स्वीकार करती हूँ। मैंने ही मनिला बोस के ऊपर एसिड-बल्ब फेंका था। मैं कसूरवार हूँ। धर्मावतार, आप

मुझे जो सज़ा देंगे मुझे स्वीकार होगी। मुझे कड़ी-से-कड़ी सज़ा दीजिये!"

□ □ □

बोमदीला दुश्मन के हाथ में चला गया। इंडियन आर्मी पहाड़ों और चट्टानों को पार करती ढालू रास्ते से तेजपुर लौट आयी। अब तेजपुर का नम्बर है। वहाँ से सिविलियन्स को निकालना शुरू हो गया है। उधर अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, ब्राज़ील, बोलीविया, कनाडा, चिली, डेनमार्क, इथोपिया, फ्रांस, इटली, जापान, जोर्डन, यू० ए० आर०, नार्वे, स्वीडन, ग्रीस, यू० के०, यू० एस० ए०, उगान्डा, वेस्ट जर्मनी, युगोस्लाविया, मैक्सिको, मोरक्को वगैरह दुनिया की साठ ताक़तों ने इंडिया का पक्ष लिया। सभी ने कहा, अपराधी को सज़ा मिलनी चाहिए।

कलकत्ता की रातें और भी गहरी हो गयीं। सड़कें खाली-खाली नज़र आतीं। ट्रैफ़िक कम हो गया। और भी अँधेरा। और भी डर। शिवप्रसाद बाबू हिन्दुस्तान पार्क के अपने बँगले में सो चुके थे। एल्गिन रोड पर मिस्टर बोस की आँखों पर स्लीपिंग पिल्स ने अपना असर शुरू कर दिया था। पद्मरानी के फ़्लैट में भी धीरे-धीरे सन्नाटा छा गया। शाम से ही शुरू हो गया था—'चाँद कहे ओ चकोरी, तिरछी नज़रों से न देख।' वह भी कभी का रुक गया था।

मन्दाकिनी ने घड़ी की ओर देखा। बद्रीनाथ की नाक भी बोलने लगी थी। लेक की ओर से एक परिन्दा कैंक्-कैंक् करता आसमान में पूर्व की ओर उड़ गया। रासबिहारी एवेन्यू के मोड़ पर सोयी एक लड़की ने करवट बदली। गश्त लगाते सिपाही के पैरों में दर्द होने लगा था। वह भी पनवाड़ी की दूकान के तख्ते पर बैठकर ऊँघने लगा। एक खजेला कुत्ता आसमान में चाँद की ओर मुँह कर भौं-भौं करने लगा। ज़रा देर भौंकने के बाद वह भी गरदन मोड़कर सो गया।

बाकी था अंधकार। डर। सन्नाटा। कागज़ के खाली खोखे और पत्तों से बने दौनों के इधर से उधर उड़ने की खस-खस। और सब चुप। सब चुप हो जाओ। अब दुनिया भी करवट बदलकर सोयेगी। इंडिया की नाक भी बोलना शुरू करेगी।

सदाव्रत फिर वापस नहीं आया।

उपसंहार

ऐतरेय ब्राह्मण के राजा रोहित तब भी चल रहे थे। उन्हें न थकन थी, न विश्राम की आवश्यकता। आगे बढ़ना ही तो जीवन है, आगे बढ़ना ही तो यौवन है। उस समय जो प्राण-शक्ति लाखों और करोड़ों क्षोभयुक्त तरंगों से इस पृथ्वी पर लगातार चोट कर रही थी, राजा रोहित के लिए वह सब-कुछ भी नहीं है। अर्थ, यश, मान-सम्मान और प्रतिष्ठा सब-कुछ उनके लिए तुच्छ हो चुकी थी। राज्यलिप्सा का मोह भी उनके पीछे न था। भय और चिन्ता का बन्धन भी ढीला पड़ चुका था। जो यह कर पाता है वह राजा रोहित की तरह से ही कर पाता है। इसी तरह भय, चिन्ता, मोह, आशा और कामना के बन्धन को तोड़कर लगातार रात-दिन जीवन-परिक्रमा कर सकता है।

कुन्ती गुहा नाम की एक अनजान और बेनाम लड़की ने इस उपन्यास की नायिका के रूप में बंगाल के किसी अनजान देहात में जन्म लिया था। कलकत्ता आकर उसने कब कुछ घरों में उलट-पुलट कर दी, जमी-जमायी गृहस्थी उजाड़ दी, कलकत्ता के नागरिक-जीवन में अपने कलंक की पब्लिसिटी करके कुछ महीनों के लिए जिसने उथल-पुथल मचा दी थी, उसके भी काफ़ी बाद की बात है।

लेकिन इतनी बातों के झमेले में किसे उस बात का ख़याल था! जो रोमांच रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के लिए अटूट है, उसी रोमांच की प्यास में कुन्ती गुहा का कलंक भी धीरे-धीरे मिटने लगा। दूसरे हज़ारों रोमांचों के दबाव से एक दिन कुन्ती गुहा का नाम भी कलकत्ता शहर के लोगों के बीच कहाँ खो गया, इस पर किसी का ध्यान ही नहीं गया।

□ □ □

नये सिरे से एक लड़ाई शुरू हो गयी थी। १९४७ की पन्द्रहवीं अगस्त के बाद बढ़ते-बढ़ते हम लोग भी काफ़ी आगे निकल आये थे। हमने लड़ाई देखी थी, अकाल देखा, पार्टिशन देखा, रिफ़्यूजी देखे। सारे इंडिया में किसी ने भी हमारी तरह इतना सब नहीं देखा। इन्सान मरता नहीं है, इसीलिए

हम भी नहीं मरे। नहीं तो कब के मर गये होते। १९६१ में पोर्चुगीज़ को हराकर हमने अचानक गोआ ले लिया। और फिर इलेक्शन में हम लोगों ने लाइन लगाकर पोलिंग बूथ में वोट डाले।

शिवप्रसाद गुप्त ने भी उन दिनों काफ़ी मेहनत की थी।

इलेक्शन-मीटिंग्स में जाकर उन्होंने लेक्चर दिये थे। हिन्दुस्तान के आदमी को खाने के लिए रोटी नहीं मिलती, उसके पास पहनने के लिए कपड़ा नहीं है, इससे कटु और भीषण सत्य और क्या हो सकता है ! लेकिन गोआ की लड़ाई के बाद से कांग्रेस ने साबित कर दिया है कि भारत भौगोलिक दृष्टि से आज़ाद है। इस इलेक्शन के द्वारा कांग्रेस को आगामी पाँच सालों में यह साबित करना होगा कि उसने मनुष्य को भी स्वाधीन किया है। खाने-पीने की आज़ादी, जिस-जिस चीज़ के लिए हमने अब तक लड़ाई लड़ी है, वे सब चीज़ें ये लोग दे पाये हैं।

उन दिनों पार्कों में शिवप्रसाद गुप्त के लेक्चरों से कलकत्तावासियों को अपना ठीक-ठीक परिचय मिला। सभी ने कहा था—शिवप्रसाद बाबू का कहना ठीक है—शिवप्रसाद बाबू आदमी सच्चे हैं।

मुहल्ले के पैंशनयाफ्ता बाबू लोग मीटिंग से लौटकर पार्क में बैठते और बहस करते।

कहते—शिवप्रसाद बाबू किसी से डरनेवाले आदमी नहीं हैं। नेहरू के मुँह पर ही कैसी दोटूक बात कह दी, देखा न साहब !

इसके बाद ही लड़ाई शुरू हो गयी। यह हमारी-तुम्हारी, भारत के करोड़ों लोगों की लड़ाई है। इस मौक़े पर भी शिवप्रसाद बाबू ने डिफेन्स फंड के लिए लाखों रुपया इकट्ठा कर दिया। उस वक़्त जैसे होड़ लग गयी थी, कौन कितना चन्दा उगाह सकता है। तुम्हारे पास जो कुछ भी है, सब लाओ। सोना दो। सोना नहीं हो, अगर सोने के जेवरात हों, तो वही लाओ। ऊपर से नीचे तक सभी चन्दा इकट्ठा करने लगे। अखबारों में रोज़ चन्दा देनेवालों की लिस्ट छपती। पंडित नेहरू ने कितना रुपया इकट्ठा किया, पद्मजा नायडू ने कितना रुपया उगाहा, अतुल्य घोष ने कितना रुपया इकट्ठा किया, रोज़ इस सबका हिसाब अखबारों में छपता।

इसी लिस्ट में एक दिन सभी ने देखा 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' की ओर से डिफेंस फंड के लिए एक लाख रुपये दिये गये हैं।

देश के लिए सब लोग कमर कसकर तैयार हो गये।

शंभू वगैरह भी फिर से लग पड़े हैं। लड़ाई के लिए डिफेंस फंड के नाम पर उनकी 'मरी मिट्टी' एक दिन सचमुच स्टेज हो गयी।

लेकिन कुन्ती गुहा के हीरोइन बनने पर जैसा लगता वैसा नहीं हुआ।

कालीपद ने कहा, "आज कुन्ती गुहा होती तो बोर्ड फाड़कर छोड़ता।"

और कुन्ती गुहा ! आज कुन्ती गुहा की ख़बर ही जैसे पुरानी हो गयी है। बासी हो गयी है। चीनियों ने लड़ाई शुरू करके सब गड़बड़ कर दी है। नहीं तो मुक़दमा चलते-चलते कुन्ती गुहा को कब बरी कर दिया गया, किसी को पता भी नहीं ! लोग कहते, बेनीफ़िट ऑफ़ डाउट।

सन्देह की चोर गली के किस रास्ते से वह निकल भागी, वह सब याद करने के लिए काफ़ी देर तक सोचना होता है।

असल में कुन्ती गुहा बरी होना भी नहीं चाहती थी। उसने सिर ऊँचा करके कहा था—मैंने कसूर किया है, मुझे सज़ा दी जाये।

सरकारी वकील। बड़ा मेधावी और बुद्धिमान। समझ गया कि मुख्य गवाह सदाव्रत और मुजरिम के बीच कहीं कुछ ऐसा है, जो मुक़दमे और अदालत की फ़ाइलों में नहीं है। उसका कोई भी रेकार्ड नहीं है, होगा भी नहीं। उन्होंने भी कुन्ती गुहा को पागल करार देकर मामला मुल्तवी करने की अर्ज़ी दे दी।

अपनी मर्ज़ी से कोई फाँसी पर लटकना चाहता है ? दुनिया में सिर्फ़ पागलों को छोड़कर ऐसा बेवकूफ़ और कोई हो सकता है ? लोअर-कोर्ट के बयान में जो अपने को बराबर बेकसूर कहती आयी है, वही हाईकोर्ट में अचानक अपने को कसूरवार कैसे मान लेती है ? ज़रूर ही कहीं कुछ गड़बड़ है।

वकील ने सदाव्रत से भी जिरह की।

उसने पूछा, "आपने अचानक अपनी राय बदल क्यों डाली ?"

सदाव्रत ने जवाब दिया, "अचानक नहीं, काफ़ी सोच-समझकर ही कहा है।"

"अपने परिवार की बदनामी के डर से ?"

"नहीं, यह बात भी नहीं है।"

"तब आपने कुन्ती गुहा को सचमुच एसिड-बल्ब फेंकते नहीं देखा ?"

इस एक ही बात का जवाब उसे कितने लोगों को कितनी तरह से देना हुआ, इसका कोई हिसाब नहीं है।

आम आदमी जो क़ानून के बारे में कुछ नहीं जानते, ख़बर सुनकर

हैरान थे। फिर तो कुन्ती कब और कहाँ खो गयी, किसी ने पता लगाने की कोशिश नहीं की। आवश्यकता भी नहीं हुई।

लेकिन कुछ ही दिनों में लड़ाई का ज़ोर और भी बढ़ गया। रात के गहरे अँधेरे में स्यालदह स्टेशन से ट्रेनें जातीं। और जाते प्लेन। बैरकपुर एअरपोर्ट से मिलिटरी प्लेन उड़ते।

ये ट्रेनें रास्ते में सामान्यतः कहीं रुकती नहीं थीं। इंजिन में पानी लेने के लिए किसी-किसी स्टेशन पर रुकना होता। यही क़रीब बीस या पचीस मिनट के लिए। इसके बाद फिर से ह्विसिल बजती, पहिये घूमते और छक्-छक् की आवाज़ होती। इन ट्रेनों से जो लोग जा रहे हैं, वे कभी वापस भी आ पायेंगे या नहीं, कुछ नहीं कहा जा सकता। इसी से दूर की पहाड़ियों को घेरती कुछ नज़रें ट्रेन से निकलकर खो जातीं। कभी वे लोग खाली पड़े मैदान में जाकर खेलते रहते, कभी अँधेरी रात में जिस समय गुस्से से फुफकारता इंजिन धुआँ उगलता होता, चुपचाप कान लगा वह आवाज़ सुनते।

नेफ़ा यहाँ नहीं है। वे लोग रात-दिन चल रहे हैं। ट्रेन ने स्यालदह स्टेशन कब का छोड़ा है। लेकिन वहाँ कब पहुँचेगी, इस बात को लेकर किसी ने भी सिर नहीं खपाया। एक-न-एक दिन पहुँचेगी ही। और अगर न भी पहुँचे तो किसी का क्या जाता है? किसका क्या इरादा है? वे लोग देशवासियों की रक्षा करेंगे, देश की धरती से चीनियों को भगायेंगे।

इन लोगों ने यह सब-कुछ भी नहीं सोचा। जो लोग इस गाड़ी से जा रहे हैं, वे सब-के-सब अखबार में विज्ञापन पढ़कर निर्देशित स्थान पर हाज़िर हुए थे। ब्लैंक-फार्म पर नाम लिखाया था। अपनी-अपनी क्वालिफ़िकेशन्स लिखीं। अपने-अपने अभिभावकों का नाम भी लिखाया।

सब-कुछ जल्दबाज़ी में हुआ। चीनी सेना नेफ़ा के कामेंग की ओर से होकर बोमदीला तक आ पहुँची थी। एक दिन बाद ही तेजपुर आ पहुँचेगी। उसके बाद शिलांग और गोहाटी। फिर कलकत्ता।

"आपका नाम?"

"कल्याणी हाजरा।"

"पिता का नाम?"

"जगतहरि हाजरा!"

"अब तक क्या काम करती थीं?"

"नर्सिंग का डिप्लोमा है।"

"आपका नाम?"

"कुन्ती गुहा !"

"पिता का नाम ?"

"मनमोहन गुहा—मर चुके हैं।"

"कहीं काम किया है ?"

"नर्सिंग का काम किया है—नर्सिंग-होम में।"

"डिप्लोमा है ?"

"नहीं !"

□ □ □

मन्मथ ने अचानक कहा, "अरे, सदाव्रत दा जा रहे हैं ! बुलाऊँ ? या उधर ही चलें ?"

शैल ने कहा, "नहीं, रहने दो !"

अदालत के उठते ही सबने जाना शुरू कर दिया था। सदाव्रत भी शायद खो ही जाता। आज ही आखिरी जिरह थी। फ़ैसला कल सुनाया जायेगा। सॉलिसिटर के साथ मशविरा करना होगा। जल्दी करो। गड़बड़ हो सकती है ! बेनेट और बन्दूक के पहरे में पुलिस मुजरिम कुन्ती गुहा को ले गयी।

"सदाव्रत, हम लोग यहाँ हैं !"

सदाव्रत ने मुड़कर देखा। इतने झमेले। सिर्फ़ झमेले ही नहीं, सदाव्रत की इतने दिनों की उपलब्धि में जैसे कहीं कुछ गड़बड़ हो गयी थी। इतने दिन के अस्तित्व के साथ जैसे झगड़ा हो गया था। आज अगर मुजरिम को सज़ा हो जाये तो उसका सारा-का-सारा भूत झूठा साबित हो जायेगा। और कुन्ती गुहा अगर बरी हो जाये, फिर भी शायद सदाव्रत की जिम्मेदारी खत्म नहीं होगी। दुनिया के सारे गुनाहगारों, सारे अत्याचारियों के कारनामों के लिए उसे प्रायश्चित्त का रास्ता निकालना होगा।

जिसने जहाँ कहीं भी अपमान और लाँछना सहकर अकाल मृत्यु के सामने खड़े होकर क्षण गिने हैं, उन सभी के पास जाकर कहना होगा—मुझे माफ़ करो। सिर्फ़ मुझे ही नहीं, मेरे इस देश, यहाँ के लोग, समाज, इन सभी को माफ़ कर दो। इनको क्षमा दिलाए बिना मुझे मुक्ति नहीं है। बिना क्षमा के मैं ऐसे ही भटकता रहूँगा, मुझे मुक्ति मिले बिना मेरी जाति, मेरे समाज का भी कल्याण नहीं होगा।

"सदाव्रत दा !"

सदाव्रत पास आया।

मन्मथ ने कहा, "वह देखो, शैल आयी है।"

"शैल ! लेकिन उसे यहाँ क्यों ले आये ? यह क्या बात करने की जगह है ?"

"मैं शैल को नहीं लाया, शैल ही मुझे ले आयी है।"

"लेकिन मन्मथ, मुझे बिलकुल भी वक़्त नहीं है।"

"मुझे मालूम है, सदाव्रत दा, तुम्हारी हालत मैं समझता हूँ।"

सदाव्रत ने टोका। उसने कहा, "ग़लत बात ! एक मुझे छोड़कर कोई भी नहीं समझता।"

"सुना है कल रात घर भी नहीं गये ! तुमने कहीं चले जाने का निश्चय किया है ?"

सदाव्रत ने कहा, "मुझे मालूम है, मेरे बारे में सभी का यही खयाल है। सभी का कहना है कि पिताजी के साथ मेरा झगड़ा हो गया है।"

"तुमने क्या नौकरी भी छोड़ दी है ?"

"सारे कलकत्ता के लोगों का भी यही कहना है।"

"लेकिन तुम क्या कहते हो ?"

"मैं कुछ भी ठीक नहीं कर पा रहा, मन्मथ ! इस वक़्त मैं सॉलिसिटर के यहाँ जा रहा हूँ। उसके बाद जब तक केस का जजमेंट नहीं सुनाया जाता, तब तक कुछ भी नहीं कह सकता।"

"तब सॉलिसिटर के यहाँ का काम खत्म करके एक बार शैल से मिल जाना। हम लोग बाहर खड़े हैं।"

सदाव्रत फिर भी हिचकिचा रहा था।

"लेकिन मैं उससे कहूँगा क्या ? उसे भी मुझसे ऐसा क्या कहना है ?"

"यह तुम जानो और वह जाने !"

"लेकिन शैल ने क्या खुद मुझसे मिलने को कहा है ?"

मन्मथ ने कहा, "नहीं, वैसा तो उसने कुछ नहीं कहा। लेकिन उस दिन तुम्हारे घर पहुँचाने के बाद से बड़ी अनमनी हो रही है। मेरी इच्छा है कि तुम दोनों एक बार मिल लो।"

"लेकिन उससे तुम्हारा क्या फ़ायदा है ?"

"वह तो मालूम नहीं, लेकिन मेरी इच्छा है।"

"तो ज़रा देर रुको। मैं सॉलिसिटर के पास होकर अभी आया।"

"ज़्यादा देर न करना। शैल वहाँ खड़ी है। मैं उसी के पास जा रहा हूँ।"

इसके बाद जैसे कुछ कहना भूल गया हो, इस तरह फिर से सामने आया। बोला, "एक बात ध्यान रखना। शैल को यह मालूम न हो पाये कि मैं तुम्हें ज़बर्दस्ती उससे मिला रहा हूँ।"

सदाव्रत की समझ में नहीं आया।

बोला, "इसका मतलब ?"

"शैल से तुम ख़ुद ही मिलना चाहते हो, यह जान उसे ख़ुशी होगी।"

"ठीक है, वही होगा। तुम ज़रा रुको। मैं अभी आया।"

कहकर सदाव्रत चला गया।

मन्मथ फिर से शैल के पास आकर खड़ा हो गया।

शैल ने पूछा, "कहाँ थे इतनी देर से ? मैं यहाँ खड़ी-खड़ी परेशान हो रही हूँ।"

"सदाव्रत दा ने मुझे बुलाया था।"

"किसलिए ?"

मन्मथ ने शैल की ओर देखा। उसका मुँह, कान, नाक, सब जैसे अचानक लाल हो उठे।

"क्यों ? तुम्हें क्या करने को बुलाया था ?"

"सदाव्रत दा एक बार तुमसे मिलना चाहते हैं। तुम उनसे मिलोगी?"

"क्यों ? मुझसे उन्हें ऐसा क्या काम आ पड़ा ?"

"वह तो मालूम नहीं, लेकिन सदाव्रत दा ने मुझसे तुम्हें राज़ी करने को विशेष रूप से अनुरोध किया है।"

"लेकिन मुझसे कहना क्या है ?"

"पता नहीं क्या बात है। तुमसे ज़रा अकेले में मिलना चाहते हैं।"

"क्यों ? अकेले में क्यों ?"

"लगता है, तुमसे कहने को ऐसा कुछ है, जिसे मेरे लिए सुनना उचित नहीं है। सदाव्रत दा सॉलिसिटर से मिलने गये हैं। अभी आयेंगे। तुमसे ज़रा देर रुकने को कह गये हैं।"

□ □ □

पानी और कोयला लेकर मिलिटरी ट्रेन ने फिर धुआँ उगलते हुए चलना शुरू कर दिया। बंगाल की नरम ज़मीन छोड़कर कठोर और दुर्गम पथ पर यात्रा। जहाँ नदी पार करनी होती वहाँ सब लोग फिर से ज़मीन, आसमान, पेड़-पौधे, मिट्टी, पत्थर और घास के साथ अपने को मिलाकर सोचते। हो सकता है, यह दृश्य फिर देखने को न मिले। हो सकता है,

आसमान से बम गिरे, सामने पहाड़ी की चोटी से तोप का गोला आकर लगे। इसीलिए सब लोग दिल भरकर देख लेते।

तभी गार्ड की सीटी बज उठती। हरी झंडी दिखलायी देती। ज़ोर की एक चीख मारकर इंजिन फिर से चलना शुरू कर देता। किसी-किसी प्लेटफ़ॉर्म पर जब ट्रेन रुकती तो प्लेटफ़ॉर्म की उल्टी ओर स्टेशन मास्टर के क्वार्टर की ओर देखने पर जंगलों से झाँकते दो-चार चेहरे दिखलायी देते। छोटे-छोटे बच्चे हाँफते-हाँफते आते और रेलिंग पकड़कर ट्रेन की ओर देखते।

कहते—देख, ये लोग लड़ाई में जा रहे हैं। कैसी एक निराशाभरी भयभीत दृष्टि होती वह! ये लोग जैसे अजीब किस्म के जानवर हैं। ये लोग वापस नहीं आयेंगे। लड़के-लड़कियाँ और बहुएँ जैसे आख़िरी बार के लिए देख लेते।

"अच्छा, कह तो गाड़ी के ऊपर क्रॉस क्यों लगा है?"

"डॉक्टर-गाड़ी है न इसीलिए। इसमें सिर्फ़ नर्स, डॉक्टर हैं, इसीलिए क्रॉस लगा है। दूर से यह चिह्न देख कोई इस पर बम नहीं गिरायेगा।"

रात के वक़्त चेहरों की रंगत दूसरी होती। कुछ लोग अचानक सोते-सोते उठ बैठते और चेहरों की ओर देखते। यहाँ कोई कुछ खरीदेगा। इन लोगों को चाय, बीड़ी, सिगरेट, किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं होती। इन लोगों को सारी चीजें मिलिटरी से सप्लाई होती हैं।

कल्याणी हाजरा ने अचानक पूछा, "आपके पास डिप्लोमा नहीं है, फिर भी ले लिया?"

कुन्ती गुहा ने कहा, "हाँ।"

"शायद कोई जान-पहचान का है?"

"नहीं।"

कई बातें पूछने पर किसी एक बात का जवाब देती है यह लड़की। एक ही डिब्बे में स्यालदह से पास-पास बैठी आ रही हैं। फिर भी लड़की घनिष्ठ नहीं हो पायी। उठते-बैठते कितनी ही बातें शुरू हुईं। लड़ाई में जाने से डर तो नहीं लगता? घर पर कौन-कौन हैं? लड़ाई पर जाने के लिए नाम क्यों लिखाया?

लड़की हमेशा ही गम्भीर रहती।

"आपको शायद काफ़ी डर लग रहा है?"

कुन्ती गुहा ने कहा, "नहीं।"

"किसी की याद आ रही है ?"

"नहीं।"

"आपके घर में कौन-कौन हैं ?"

"कोई नहीं।"

"तब आप इतनी गम्भीर क्यों हैं ?"

जवाब में कुन्ती गुहा ज़रा-सा मुसकरा दी। हँसी नहीं कहा जा सकता। रोना भी नहीं कहा जा सकता। कल्याणी हाजरा इस लड़की के बारे में जितना सोचती उतना ही हैरान होती।

रात काफ़ी गहरी हो चुकी थी। एक स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही कल्याणी हाज़रा अचानक चिल्ला पड़ी, "वह देखो, वही आदमी !"

कुन्ती गुहा लेटी हुई थी। वैसे ही पड़ी रही।

कल्याणी हाजरा ने कहा, "अच्छा, कह सकती हो, यह आदमी कौन है ? कलकत्ता में भी इसे आपकी ओर ताकते देखा था।"

कलकत्ता के रिक्रुटिंग ऑफ़िस के सामने जिस दिन कल्याणी वगैरह नाम लिखाने गयी थीं, उस दिन भी यह आदमी दूर खड़ा-खड़ा देख रहा था। उसके बाद जैसे-जैसे दिन गुज़र रहे हैं, शक्ल उतनी ही खराब होती जा रही है। बढ़ी हुई दाढ़ी। मुरझाया चेहरा। बदन पर का कोट-पैंट गन्दा-चीकट हो गया था।

"आप इस आदमी को पहचानती हैं क्या ?"

कुन्ती गुहा लेटी हुई थी। उसी तरह पड़े-पड़े कहा, "नहीं।"

ट्रेन फिर चल दी। मिलिटरी-स्पेशल फिर से वन, जंगल, नदी पार करती आगे की ओर बढ़ने लगी।

□ □ □

टेम्पल चैम्बर के बन्द होने का समय हो रहा था। मन्मथ बाहर खड़ा था। सदाव्रत और शैल अन्दर गये थे।

कॉरीडोर से बाहरी आदमी नीचे जा रहे थे। छुट्टी हो गयी थी। हाईकोर्ट बन्द हो गया था। किसी को कोई खास काम नहीं था। जो लोग काम के पीछे पागल होते हैं, जिनके घर में कोई नहीं है, वे लोग ही रात के आठ-आठ और नौ-नौ बजे तक बैठे यहाँ फ़ाइलें चाटते रहते हैं।

लेकिन सदाव्रत के सॉलिसिटर की फ़र्म बड़ी नामी फ़र्म है। काफ़ी बड़े-बड़े मुवक्किलों के साथ उनका कारबार रहता है। मिस्टर बोस के ही इस केस की वजह से महीनों उनका खाना-पानी हराम हो गया था। आज

हियरिंग ख़त्म हो चुकी है। अब फ़ैसला होगा।

मिस्टर गांगुली फ़ाइलों में डूबे थे।

सदाव्रत ने कहा, "आपका उस ओर का पार्टीशन खाली है क्या ?"

आज जबकि यह उपन्यास पूरा कर रहा हूँ, अब से क़रीब एक साल पहले की बात है। उन दिनों भी यही नवम्बर का महीना था। दोपहर ढलते-ढलते शाम लग रही थी। सारा कलकत्ता डर और आतंक में डूबा था। किसी भी दिन तेजपुर पर बम गिर सकते थे। रिज़र्व-बैंक के लोगों ने लाखों रुपये के नोट फाड़कर जला डाले थे—कहीं चीनियों के हाथ न पड़ जायँ। कमिश्नर साहब रात के वक़्त जीप गाड़ी से कहाँ भाग गये थे, कुछ ठीक नहीं है। इंडियन फौजें पहाड़ी इलाका छोड़कर समतल मैदान में आ गयी थीं। शहर में एक भी होटल नहीं था। ज़रा-सी भी रोशनी नहीं थी। एक भी आदमी नहीं था। जो बचे थे वे बड़े लापरवाह थे। उन लोगों के ऊपर तेजपुर का भार छोड़कर शासक लोग भाग खड़े हुए थे। वह आतंक सिर्फ़ कलकत्ता ही नहीं सारे भारत में छा गया था। ऐसे ग़ैर-ज़िम्मेदार शासकों के हाथ में हज़ारों लोगों की जान-माल का भार छोड़कर हम लोग इतने दिन से चैन की नींद सोये थे। अब तक किसी ने हमला नहीं किया, आश्चर्य तो इस बात का था !

मनुष्य-जाति के इतिहास ने बार-बार यह साबित कर दिया कि दिल के अन्दर एक प्राण भी है। दिल चलता है, दिल टूट रहा है। यह दिल अपनी परिधि में नहीं रहना चाहता। चाहता नहीं है इसलिए इसको लेकर इतनी खींचतान होती है। दिल की लेन-देन को लेकर इतने काव्य, उपन्यास और कहानियों की रचना हुई है। इसी दिल को बीच में रखकर आदमी-आदमी का झगड़ा होता है, आदमी-आदमी का रिश्ता जुड़ता है। मेरे अन्दर विश्वमन है। इसी वजह से दुनिया-भर में मेरी पहुँच है। आदमी के साथ सम्पर्क टूटते ही मेरा दिल टूट जाता है। हज़ारों साल पहले इसी दिल को आकर्षित करने के लिए धर्म की अवतारणा हुई। सारी दुनिया को इन्सान ने धर्म की एक डोर में बाँधना चाहा। बाद में धर्मों में आपस में लड़ाई शुरू हो गयी। ईसाइयों के साथ पोप लोगों की, हिन्दुओं के साथ मुसलमानों की, बौद्धों के साथ ब्राह्मण-धर्म के अनुयायियों की। आज धर्म नहीं है। धर्म के बन्धन को आज कोई खास बन्धन नहीं मानता। उसकी जगह आज राजनीति ने ले ली है। आज बीसवीं शती में धर्म शायद नया

चेहरा लगाकर आया है। यह राजनीति विश्व-राजनीति है। सारे विश्व के मनुष्यों के मन को आकर्षित करने के लिए इसने तरह-तरह के तरीके खोज निकाले हैं। यू० एन० ओ० इसी का आविष्कार है। इसी ने मार्शल प्लान ईजाद किया है। इसी ने म्युचुअल-एड का आविष्कार किया है। इसी ने सीटो, नाटो और सेंटो की नींव डाली है। अजीब-अजीब सन्धियाँ और पैक्ट! इतना सब होने पर भी मनुष्य को शान्ति नहीं है। उसे हमेशा कोई-न-कोई डर लगा रहता है। डर, कहीं कुछ हो न जाय! कहीं सब ख़त्म न हो जाय!

शैल जब कमरे से बाहर आयी तो उसका चेहरा देखकर मन्मथ हैरान रह गया।

पूछा, "क्या हुआ, सदाव्रत दा के साथ बात हुई?"

"चलो, काफ़ी दूर जाना है, एक टैक्सी ले लो।"

शैल को अचानक टैक्सी की क्या ज़रूरत आ पड़ी?

मन्मथ ने पूछा, "सदाव्रत दा कहाँ गये?"

"और वापस नहीं आयेंगे।"

"वापस नहीं आयेंगे माने?"

शैल ने और कुछ नहीं बतलाया।

मन्मथ ने फिर पूछा, "सदाव्रत दा से तुम्हारी क्या बातें हुईं? तुमसे किसलिए मिलना चाहते थे?"

"मालूम नहीं।"

"वह भी नहीं मालूम तो इतनी देर से तुम लोग कर क्या रहे थे?"

शैल झुँझला उठी। बोली, "वह भी नहीं मालूम।"

मन्मथ इसके बाद काफ़ी देर तक चुप रहा।

टैक्सी में बैठते ही शैल जैसे अपने में खो गयी। आज इतने दिनों बाद अपने में ख़ुद को पाकर वह जैसे सब-कुछ भूल गयी थी। काका के यहाँ उसके दिन बड़ी मुश्किलों में गुज़रे थे। बागमारी में एक बार तो आत्महत्या तक करने की कोशिश कर बैठी। लेकिन आज जैसे सदाव्रत ने संजीवनी खिलाकर उसमें फिर से जीवन डाल दिया था। शैल के लिए यह अनुभूति बिलकुल नयी थी।

टैक्सी-ड्राइवर ने पीछे घूमकर पूछा, "किधर जाना है?"

मन्मथ ने भी शैल की ओर देखकर पूछा, "कहाँ चलना है?"

शैल ने उसकी ओर देखे बिना ही जवाब दिया, "हिन्दुस्तान पार्क, सदाव्रत के घर..."

सदाव्रत के यहाँ ! सुनकर मन्मथ हैरान रह गया। "इस वक़्त इस हालत में सदाव्रत के यहाँ क्या करने ? वहाँ कौन है ?"

हिन्दुस्तान पार्क में शिवप्रसाद गुप्त के बंगले के सामने टैक्सी के पहुँचते ही शैल दरवाज़ा खोलकर उतर पड़ी।

दरवाज़े के सामने पहुँचकर कुंडी खटखटाने लगी।

"मौसीमा, मौसीमा !"

मन्मथ ने पूछा, "टैक्सी रखनी है या छोड़ दूँ ?"

"छोड़ दो !"

☐ ☐ ☐

कल्याणी हाजरा को वह आदमी फिर दिखलायी दिया। नर्सों के क्वार्टर्स अस्पताल से लगे हुए ही थे। कहाँ-कहाँ के रोगी आते। रात-दिन ड्यूटी बजानी होती।

उस दिन भी कल्याणी चिल्ला उठी, "अरे, देखो-देखो, वही आदमी!"

शक्ल और भी ख़राब हो गयी थी। दाढ़ी और भी बढ़ गयी थी। बिखरे हुए बाल। कहाँ रहता है, कहाँ खाता है, कहाँ सोता है, कुछ भी पता नहीं चलता।

ड्यूटी पूरी कर क्वार्टर की ओर जानेवाले रास्ते पर वह खड़ा रहता।

पुकारता, "कुन्ती !"

कुन्ती गुहा सिर झुकाये, मुँह फेरकर अपने क्वार्टर की ओर तेज़ी से चली जाती।

उसके बाद जब धीरे-धीरे शाम हो आती, रात ठिठुरने लगती, हू-हू करती ठंडी हवा चलती, तब खिड़की के काँचों से दिखलायी देता, अँधेरे में भूत की तरह चुपचाप वही आदमी खड़ा है। धुँधला-सा काला बुत। चारों ओर काले-काले पहाड़। उसके बाद जब अँधेरा और भी घना हो जाता, रात और भी गहरी हो जाती, तब वह आदमी भी जैसे थक जाता। एक पेड़ के सहारे बैठ जाता। लेकिन मिलिटरी पुलिस की नज़र पड़ते ही उसे भगा दिया जाता। भागो—भागो यहाँ से !

किसी-किसी दिन उस आदमी की हिम्मत और भी बढ़ जाती।

पीछे से पुकारता, "कुन्ती, मुझे माफ़ कर दो !"

प्रेत जैसी सर्द आवाज़। कोई समझ पाता, कोई नहीं भी समझता। लेकिन कोई समझे या नहीं समझे, मुझे माफ़ी चाहिए। मैं माफ़ी मिलने पर ही वापस जाऊँगा। मुझे माफ़ करो। सिर्फ़ मुझे ही नहीं, मेरी माँ को,

मेरे पिताजी को, मेरे सगे-सम्बन्धी वगैरह सभी को। मेरे कलकत्ता को, मेरे बंगाल को, मेरे भारत को। हम सभी कसूरवार हैं। हमने इन्सान को इन्सान का अधिकार नहीं दिया है। उसे लेकर हमने धन्धा चलाया है, स्लेव-ट्रेड की है। आजादी के नाम पर हमने इन्सान से जानवर का काम लिया है। मुझे पता नहीं था, इसीलिए इतने दिन से तुम्हारी बेइज़्ज़ती की। तुम्हें मुजरिम के कठघरे में खड़ा किया। तुम्हें कसूरवार साबित करने की कोशिश की। लेकिन असली कसूरवार हम लोग ही हैं। हम सब अपराधी हैं; लेकिन हमी लोग फरियादी बनकर छाती फुलाए घूमते हैं। तुम हम लोगों को सज़ा दो। तुम जो भी सज़ा दोगी, मुझे सिर झुकाकर मंजूर होगी। अगर सज़ा न दे पाओ तो हम लोगों को कम-से-कम माफ़ तो कर ही दो।

कुन्ती गुहा ने उस दिन अचानक स्टाफ-नर्स के पास कम्प्लेन्ट की—"एक आदमी मेरा पीछा करता है।"

स्टाफ-नर्स ने नियम के मुताबिक मिलिटरी ऑफ़िसर को रिपोर्ट की।

"उसका नाम क्या है? हू इज़ ही? ह्वाट इज़ ही?"

"मेरी स्टाफ को यह सब नहीं मालूम।"

"ऑलराइट! हम लोग देखते हैं।"

□ □ □

किसी की भी समझ में नहीं आया कि बीसवीं शती के इन्सान की बुद्धि को आखिर हो क्या गया! आत्मोपलब्धि के साथ-साथ वह बुद्धि, वह विवेक जैसे कलकत्ता से अचानक लापता हो गया। कलकत्ता के लोग जिस समय इन्सान के मुर्दे पर बैठे मौत की साधना कर रहे थे, पाप की पोटली सम्हाले बेशर्मी से अपने धन्धे में लगे थे, उस समय उस विवेक की किसी को याद भी न रही।

ख़याल था सिर्फ़ एक जने को। वह थी शैल।

उस समय भी उसे सदाव्रत की उस दिन वाली बातें याद आ रही थीं।

एटर्नी के ऑफ़िस के सूने और अकेले कमरे में अचानक जैसे उसी विवेक का आविर्भाव हो गया था।

सदाव्रत ने कहा था, "शादी अगर करूँगा तो वह तुमसे ही होगी, शैल! लेकिन मैं विवेक को किस तरह समझाऊँ?"

शैल सिर झुकाये सिर्फ़ रोती रही थी।

सदाव्रत ने फिर कहा, "अगर मैं तुम लोगों की तरह दुनियादारी और

गृहस्थी की छोटी-छोटी बातों में अपने को खपा पाता तो शैल, मैं बच जाता। लेकिन वह मुझे यहाँ रहने से रोक रहा है।"

शैल ने पूछा, "कौन ?"

"और कौन ? मेरा विवेक !"

इसके बाद ज़रा देर रुककर कहा, "तुम लोगों में से किसी में विवेक नहीं है। तुम लोग बच गये हो। तुम लोग आराम करो, सुख से रहो। थोड़े में ही तुम लोग सन्तोष कर लेते हो। ज़रूरत होने पर ताश खेलकर, सिनेमा देखकर या गाना सुनकर तुम लोगों को शान्ति मिल जाती है। लेकिन मैं क्या करूँ ? मेरा तो इस समय 'काला शौच' चल रहा है।"

शैल ने अचानक सिर उठाकर पूछा, "काला शौच ? इसके माने ?"

सदाव्रत ने कहा, "चारों ओर का यह पाप, यह अन्याय, अनाचार, व्यभिचार, यही तो जाति की मौत है। एक जाति जब मरने लगती है तो यही सब होता है। ये सब मृत्यु के पूर्वाभास हैं।"

"लेकिन इनके लिए क्या तुम ज़िम्मेदार हो ?"

"ज़रूर ! यह अगर मेरी ज़िम्मेदारी नहीं है, तो इसकी ज़िम्मेदारी कौन लेगा ? इंडिया के प्राइम मिनिस्टर के ऊपर सारी जिम्मेदारी डालकर हम सब चुपचाप बैठे रहें ?"

"लेकिन तुम्हारे अलावा क्या इसका भार लेनेवाला और कोई भी नहीं है ? सारा कसूर तुम्हारा ही है ?"

"कसूर सिर्फ़ मेरा ही नहीं है, शैल ! सभी कसूरवार हैं, वह मैं जानता हूँ। लेकिन पुण्य के भागीदार बहुत-से आ जुटते हैं, पाप का भाग कोई भी नहीं लेना चाहता।"

"तब मैं क्या करूँ ? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

"सब लोगों की ओर से मुझे ही 'काला शौच' पालन करने दो। मियाद पूरी होने पर मैं फिर आऊँगा। तब तक क्या तुम राह नहीं देख पाओगी ?"

"कहाँ देखूँगी राह ?"

"क्यों, मेरी माँ के पास, मेरे घर !"

"कितने दिन राह देखनी होगी ?"

"वह कैसे कह सकता हूँ ! काला शौच पूरा हुए बिना तो मेरा विवेक मुझे छोड़ेगा नहीं। और तुम भी क्या उस आदमी के साथ सुखी हो पाओगी ?"

"तुम जाओगे कहाँ ?"

"यह बात तुम मुझसे न पूछो। मुझे खुद भी नहीं पता कि मैं कहाँ रहूँगा, क्या करूँगा। मुझे सिर्फ़ इतना मालूम है कि जब तक मेरा विवेक नहीं लौटेगा मैं भी नहीं आ सकूँगा।"

"तुम अगर वापस नहीं आओगे तो मुझे क्या करना होगा ?"

"तुम सिर्फ़ प्रार्थना करना, जिससे मुझे मुक्ति मिले।"

जरा देर रुककर सदाव्रत ने फिर कहा, "मुझे अपनी ज़िन्दगी में शान्ति नहीं मिली, यह बात ठीक है, लेकिन यह बात भी ठीक है कि हर किसी को शान्ति मिले बिना मुझे भी शान्ति नहीं मिलेगी। शैल, मैं इसी शान्ति के लिए जा रहा हूँ। तुम मुझे रोको मत। मेरा तुमसे अनुरोध है। तुम मुझे माफ़ करो। मैं चलता हूँ। अच्छा !"

कहकर फिर सदाव्रत नहीं रुका। उसी हालत में वहीं से लापता हो गया। उसके बाद शैल वहाँ से सीधी सदाव्रत के घर चली आयी।

मन्दाकिनी उस दिन शैल को देखकर पहले तो पहचान ही नहीं पायी।

"मौसीमा, मुझे पहचान नहीं पा रहीं ? मैं शैल हूँ !"

इतनी देर बाद मन्दाकिनी को याद आया।

बोली, "ओह, उस दिन तुम्हारे काका आये थे। तुम्हारी शादी की बात कर रहे थे।"

शैल ने कहा, "मैं इसीलिए तो आपके पास आयी हूँ, मौसीमा ! सदाव्रत दा ने मुझे भेजा है।"

"कौन ? खोका ने ?"

"हाँ, मैं सीधी उन्हीं के पास से आ रही हूँ।"

"लेकिन खोका ? वह नहीं आया ? वह कहाँ है ?"

"वह अब नहीं आयेंगे, मौसीमा !"

"हैं ? तुम कह क्या रही हो, बेटी ?"

मन्दाकिनी जैसे सिसक पड़ी।

शैल ने कहा, "हाँ, मौसीमा, वह नहीं आ पायेंगे। इसीलिए तो मुझे आपके पास भेजा है। उनके बदले मैं आयी हूँ। मैं आपके पास ही रहूँगी, मौसीमा !"

मन्दा जैसे समझ नहीं पा रही थी।

पूछने लगी, "तुम आयी हो। बड़ा अच्छा हुआ, बेटी ! लेकिन खोका ? खोका क्यों नहीं आयेगा ?"

शैल ने कहा, "उन्होंने कहा है कि उनका 'काला शौच' चल रहा है।

जिस दिन पूरा होगा, उसी दिन वापस आयेंगे।"

"काला शौच ?"

"हाँ, मौसीमा, काला शौच !"

"काला शौच ! काला शौच माने क्या होता है, बेटी ? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा।"

शैल क्या इतना सब समझा सकती थी ? सदाव्रत की सारी कसक, उसके दर्द को क्या शैल शब्दों में कह सकती थी ? यह भी तो एक तरह का काला शौच ही है। यह हत्या ! यह अत्याचार ! हमने क्या राष्ट्रपिता का खून नहीं किया ? इंडिया को क्या पितृ-वियोग नहीं सहना हुआ ? कुन्ती गुहा तो कोई एक साधारण इन्सान नहीं है। आज तक हमारी जाति ने जितने भी अपराध किये हैं, जितने पाप किये हैं, सारे पापों, सारे अपराधों की वह प्रतीक है। वह जब तक क्षमा नहीं करती, तब तक प्रायश्चित्त पूरा नहीं होगा। तब तक किसी को भी मुक्ति नहीं मिलेगी, किसी को भी छुटकारा नहीं मिलेगा।

शैल ने कहा, "लेकिन मौसीमा, मैं यहाँ रहने आयी हूँ।"

"ज़रूर, बेटी, ज़रूर। तुम किसके साथ आयी हो ?"

"मन्मथ पहुँचा गया है। मुझे पहुँचाकर वह चला गया है।"

मन्दाकिनी ने कहा, "लेकिन खोका ? खोका क्या सचमुच नहीं आयेगा ?"

"उनके बदले मैं जो आ गयी हूँ, मौसीमा ! मैं ही आपके खोका की कमी पूरी करूँगी।"

मन्दाकिनी को जैसे विश्वास नहीं हो रहा था। पति होते हुए भी नहीं थे, लेकिन जो था वह भी चला गया। लेकिन क्यों ? किसके कसूर से ?

□ □ □

मिलिटरी पुलिस ने उस दिन आदमी को पकड़ लिया। अँधेरा हो चुका था। वे लोग कई दिन से पकड़ने की कोशिश कर रहे थे।

नर्सेज़ क्वार्टर में जैसे आवाज़ आ रही थी। हंटर की आवाज़। आदमी को पकड़कर पुलिस हंटर से मार रही है। फिर भी आदमी भाग नहीं रहा। हंटर के सामने सिर झुका देता है। तुम लोग मुझे मारो। मुझे खत्म कर दो। नहीं तो माफ़ करो। मुझे माफ़ करो। मेरी माँ को माफ़ करो। मेरे पिताजी को माफ़ करो। मेरे देश, मेरे भारत और मेरी दुनिया को माफ़ करो। आज तुम फ़रियादी हो और मैं मुजरिम हूँ। माफ़ करके मुझे नयी

जिन्दगी दो। मुझे फिर से शक्तिशाली और बलवान बनाओ, मुझे आगे बढ़ने दो। मैं सिर ऊँचा करके खड़ा होऊँगा। मुझे महान् होना है। मुझे आज़ाद होना है।

हर रोज़, हर रात यही एक प्रार्थना इंडिया के आसमान में गूंजने लगी। जो अध्याय १६९० में एक दिन शुरू हुआ था, वह १९६२ में जाकर पूरा हुआ। मृत्यु और अत्याचार के बूते पर नहीं; क्षमा, त्याग और प्रेम की राह से हम लोग नये सिरे से महाजीवन आरम्भ कर रहे हैं।

राजा रोहित तब भी चल रहे हैं। उन्हें न थकन है, न विश्राम की आवश्यकता। वह अभी भी कह रहे हैं—कुन्ती, तुम मुझे माफ़ कर दो! मेरे भारत को, मेरी दुनिया को माफ़ कर दो। सभी ने बाहरी विचरण को संकुचित बनाकर अपने में अपने को छिपा रखा है। सभी को अकाल-मृत्यु शुरू हो गयी है। तुम मुझे इससे छुटकारा दिलाओ, इससे मुझे बचाओ, इससे हमें रिहाई दिलाओ।

जो चलते-चलते थक जाता है उसकी मृत्यु अनिवार्य है। महान्-से-महान् व्यक्ति भी अगर व्यक्ति के अन्दर ही समाया रहेगा तो उसकी भी श्री नष्ट होगी। जो आगे बढ़ता है इन्द्र उसका मित्र है, वरुण उसका सहायक है। जो चलता है उसके शरीर का हर अंग स्वस्थ रहता है, उसकी आत्मा का विकास होता है, उसकी हीनता और दीनता ख़त्म हो जाती है। जो बैठा है उसका भाग्य भी बैठा रहता है। जो उठ खड़ा होता है, उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है। जो सोता है वह खोता है। जो आगे बढ़ता है, उसका भाग्य भी उसके साथ आगे बढ़ता है। सोये रहना कलि है, जाग उठना द्वापर है, उठ खड़े होना त्रेता है और चलना सतयुग है। इसलिए आगे बढ़ो। राजा रोहित, आगे बढ़ो—चरैवेति, चरैवेति!

चलते-चलते राजा रोहित और भी आगे बढ़े। मिस्र की नील नदी पार कर बाकू। बाकू पार कर कश्यप सागर। कश्यप सागर पार कर कृष्ण सागर। कृष्ण सागर पार कर जिस समय नील नदी पार कर रहे थे—सभी चारों ओर से हैं-हैं कर उठे—"राजा रोहित, रुको, रुको!"

लेकिन तब कौन किसकी सुनता है! राजा रोहित तब भी कहे जा रहे थे—कुन्ती, तुम मुझे माफ़ कर दो! मेरे पिताजी को माफ़ कर दो! मेरे देश को, मेरे भारत को, मेरी दुनिया को तुम माफ़ कर दो!

हिन्दुस्तान पार्क में उस समय भी पेंशन-होल्डर बाबुओं के सामने

शिवप्रसाद गुप्त देश-सेवा के किस्से सुना रहे थे। उनके लैंड-डेवेलपमेंट कार्पोरेशन ऑफ़िस के बड़े बाबू हिमांशु बाबू तब भी क़ानून के पेंच से ज़मीन की क़ीमत के गिरने-उठने को लेकर स्पेक्यूलेशन करते हैं। सोनागाछी के पद्मरानी के फ़्लैट में तब भी रोज़ शाम को फूलवाला बेले के गजरे बेचने आता, सुफल फ़्लैटों में मटन घुघनी लिए हर कमरे में सप्लाई देता फिरता। शाम होते ही तब भी उठते हुए छोकरे आकर फ़्लैट में घुसते और बन्द दरवाज़े के अन्दर हारमोनियम, तबला और घुँघरू के साथ गाना शुरू हो जाता—'चाँद कहे ओ चकोरी तिरछी नज़रों से न देख।' उधर 'सुवेनीर इंजीनियरिंग वर्क्स' की फ़ैक्टरी में तब भी फ़ॉरेन पार्ट्स के परमिट के लिए दिल्ली से ट्रंककाल पर बातें होतीं। टेलीफ़ोन का रिसीवर उठाकर मिस्टर बोस कहते—'हलो।' मिसेज़ बोस तब भी बाथ-टब में हॉट वाटर छुड़वाकर पड़ी-पड़ी टर्फ़ क्लब के हैंडीकैप्स पढ़तीं। पी० जी० हॉस्पिटल के कैबिन में तब भी मनिला बोस के गले में सूराख से रबर का ट्यूब घुसाकर उसे ग्लूकोज़ दिया जाता। वन्दना दास और श्यामली चक्रवर्ती की पार्टी उसी तरह मधुगुप्त लेन में जाकर 'मरी मिट्टी' का रिहर्सल करती। शंभू और कालीपद ठीक पहले की तरह ऑफ़िस से आते ही सीधे क्लब में जा बैठते। विनय उसी तरह इन्स्टालमेंट पर सूट सिलने का ऑर्डर देता और बस की भीड़ में लड़कियों की देह से सटकर बदन गर्म करता। केदार बाबू उसी तरह आदमी गढ़ने के लिए घर-घर लड़कों को पढ़ाने जाते। मन्मथ और शैल तब भी सदाव्रत के 'काला शौच' का समय पूरा होने की राह देखते बैठे थे। सब-कुछ ठीक वैसे ही चल रहा है, जैसा १९४७ की 'पन्द्रहवीं अगस्त' के बाद से चल रहा था। सड़क के हर मोड़ पर, हर चौराहे पर, ठीक उसी तरह पोस्टर लगे रहते। प्राइम मिनिस्टर की बस्ट फ़ोटो के नीचे लिखा होता—जवानों के लिए ख़ून दो, धन दो, सोना दो!

लेकिन नेफा का देवता इतिहास के देवता की ही तरह बड़ा निष्ठुर और निर्मम था।

इसीलिए राजा रोहित उसी तरह चल रहे हैं। उसी तरह कह रहे हैं—कुन्ती, तुम मुझे माफ़ कर दो, मेरे पिताजी को माफ़ कर दो, मेरी माँ को माफ़ कर दो, मेरे देश को माफ़ कर दो, मेरे भारत को माफ़ कर दो, मेरी दुनिया को माफ़ कर दो! अपने कृत्रिम आचार के, अपने काल्पनिक विश्वास के, अपने अन्ध-संस्कारों के अँधेरे आवरण में अपने को छिपाये न रखो। उज्ज्वल सत्य से फैले प्रकाश के बीच हमें जागृत करो। हमें नया जीवन दो!!!

H83 52435

GPS./538/68-5,000

DATE SLIP

This book was taken from the Library on the date last stamped. A fine of (a) 00.05 paise per book/volume for the first 20 days of delay per day. (b) 00.20 paise per book/volume per day of delay thereafter which shall be realised from the defaulters before a new book is issued to him/her.

2/12/71 (A)	3/XII/71	20/1/94
16/11 (S)	11/5/85	28/6
3/XII/73	21/10/87	
22/12/73		

Acc. No. 32435

Class N Book No. v739

Au

Title

Borrower's No.	D Iss		Date of Issue
20/6	21/12/		

ook borrowed must
be returned within one
month of its issue. It may
be reissued for fifteen days,
if not requisitioned by
another member. Members
residing outside Srinagar
may return books within
forty days of their issue.

H